परमयोगी, परमज्ञानी

ॐ

श्री गुरु-चरित

प्राचीन श्री लक्ष्मणी जैन तीर्थ और श्री माण्डवपुर जैन तीर्थोद्धारक
श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्री श्री
श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब का
जीवन-चरित

लेखक—

जैन-जगती', 'छत्र-प्रताप', 'रसलता' 'बुद्धि के लाल' 'सट्टे के खिलाड़ी'
'राजमती', प्राग्वाट-इतिहास के कर्त्ता और श्री जैन-प्रतिमा—
लेख-संग्रह के संपादक, मेदपाटदेशीय खेराड़भूमीय प्रगणा काछोला—
माण्डलगढ़ के अन्तर्गत आये हुये धामणियाग्रामनिवासी
श्रेष्ठि जड़ावचन्द्रजी लोढ़ा के कनिष्ठ पुत्र

दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

अर्थ-सहायक

मुनिराज साहब विद्याविजयजी और मुनिराज साहब सागरविजयजी के सदुपदेश से
मारवाड़ जैन संघ द्वारा प्रदत्त द्रव्य-सहायता से रचित एवं प्रकाशित

प्रकाशक

श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन, धामणिया

(मेवाड़-राजस्थान)

वीर संवत् २४८१ | विक्रम संवत् २०११
ईस्वी सन् १९५४ | राजेन्द्र-संवत् ४८

मू० ३)

प्राप्ति-स्थान—

१. श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन,
धामणिया, पो० मांडलगढ़ (मेवाड़-राजस्थान)

२. श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय,
खुड़ाला, पो० फालना (मारवाड़-राजस्थान)

३. दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी० ए०
मकान नं० ६१/५५
भीलवाड़ा (मेवाड़-राजस्थान)

प्रथम संस्करण
प्रतियाँ १०००

मुद्रक:—
शिरीशचन्द्र शिवहरे,
दी फाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर

चरितनायक

श्रीमद् जैनाचार्य व्याख्यान-वाचस्पति
श्री श्री १००८ श्री श्री विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

गुरुदेव !

आपश्री का उज्ज्वल चरित रञ्जरजित लेखनी चित्रित करने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती है; फिर भी मुझ को विश्वास हे कि इसने लगभग बारह मास से ऊपर चल कर जो चरित चित्रित किया है वह सच्चाई की दृष्टि से पूर्ण उज्ज्वल है और इसीलिये मैं उसको आपश्री को सादर समर्पित करने में विशेष आनंददायी गौरव का अनुभव करता हूँ।

लेखक—

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायदाता सद्गृहस्थों की स्वर्णिम शुभनामावली साभार प्रकाशित,

आहोर (मारवाड़)

श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छीय श्वेताम्बरजैनसंघ ।
सराफ मोतीचंदजी सोभागमल मदनलाल ।
शा० छोगमलजी भानाजी ।
शा० प्रेमचंद छोगमल वच्छाजी ।
शा० नेमिचंद मांगीलाल घेवरचंद चंपालाल पूनमचंदजी ।
शा० मिश्रीमलजी रतनाजी ।
शा० नेनावत मागीलाल सिरेमलजी ।
शा० ताराचंदजी कस्तूरचंदजी ।
शा० ओटमल उदयचंद मांगीलाल मिश्रीमल किशोरीलाल ओखाजी
मूता शा० घेवरचदजी जेठमलजी ।
मूता शा० नथमलजी माणकचंद चुन्नीलालजी ।
मूता प्रतापचंद मुकनचंद नत्थमलजी ।
शा० हजारीमलजी कस्तूरचंदजी ।
शा० हीराचंदजी केसरीमलजी ।
शा० टेकचदजी केराजी ।

बागरा (मारवाड़)

शा० हजारीमलजी वनेचदजी भडारी ।
शा० पुखराज सांकलचन्दजी ।
शा० ओटमल (प्रतापचंद) धुड़ाजी ।
शा० शान्तिलाल पदमाजी ।
संघवी शंकरलाल पारसमल गोमाजी ।

सियाणा (मारवाड़)

संघवी खुमाजी सिरेमल ।

गुड़ाबालोतरा (मारवाड़)

शा० रतनचंदजी जीवाजी ।
शा० केशरीमलजी नरसिंगजी राजमल ।
शा० मकनाजी धूराजी बेटा ताराचंद चुन्नीलाल गेनमल ।

जालोर (मारवाड़)

मूता कानराजजी प्रतापचंद छोगमलजी ।

रानीस्टेशन (मारवाड़)

भंडारी विमलचंदजी पूनमचंद महावीरचंद सुगनचंद ।
शा० गुलाबचंद भभूतचंद ताराचंद भीमचद ।

भूति (मारवाड़)

शा० पुखराज नेनमल अनराज जुहारमलजी ।
शा० श्राविका हंजाबाई ।

आकोली (मारवाड़)

शा० चंदाजी मिश्रीमल ।

भेंसवाड़ा (मारवाड़)

शा० हजारीमलजी रत्नाजी ।

अहमदाबाद (गुजरात)

शा० गोकुलचंदजी कस्तूरचंदजी इन्द्रमल ।

बालाघाट सी० पी०

शा० मिश्रीमलजी मोतीचद वोरा रतलामवाला ।

थराद (बनासकांठा)

संघवी छोटालाल हालचंद ।
बोरा भूषणदास भाईचंद ।
संघवी चिमनलाल खेमचंद ।
संघवी रिखबचंद जीतमल ।
भणशाली कालीदास ककलभाई ।

—लेखक

निवेदन

जैनाचार्य श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी का जीवन-चरित लिखना कर्म से अधिक कर्त्तव्य रहा है और दृष्टि इतिहास की रही है। वर्णन संवत-क्रम से किया गया है न कि विषयों की जैसे छटनी करली जाती है और फिर एक-एक विषय पर निबंध उतारे जाते हैं। सूरिजी महाराज का चरित कई दृष्टियों से पाठकों को लाभदायक सिद्ध हो सकेगा ऐसा मेरा अनुभव है और वह नवीन प्रेरणायें भी देगा यह सत्य है।

जैनाचार्य और जैन साधु चातुर्मास के अतिरिक्त विहार करते रहते हैं और यह काल शेष-काल कहा जाता है। चातुर्मास में वे धर्मोपदेश करते हैं। उनकी निश्रा में अपेक्षाकृत तप, तपस्यायें जैसे व्रत, आयंबिल, एक उपवास से दस उपवास, अट्ठाई-तप, मासिक तप आदि कई प्रकार के तपादि आराधित किये जाते हैं। शेष-काल में अंजनशलाकाप्रतिष्ठायें, छोटी बड़ी संघयात्रायें, दीक्षायें आदि कई प्रकार के पुण्यदायी कार्य उनके उपदेश एवं उनकी अधिनायकता में किये जाते हैं। अगर इन सब का व्यवस्थित विवरण लिखा जाय तो इतिहास के विद्यार्थियों की बड़ी सेवा की गई समझी जा सकती है; क्योंकि ऐसे विवरणों में ग्राम, नगरों के यथासंभव अच्छे वर्णन होते हैं; जैसे कौन राजा अथवा ग्रामपति, कितने श्रीमंत, कैसे व्यापारी, कैसे धर्मिष्ठ, कैसे दक्ष, कौन व्यापार-धंधा, किसका राज्य, कैसा राज्य-प्रबंध, कितना लंबा राज्य, कौन २ परगणे, कैसी भूमि, कैसा जलवायु, क्या २ कृषि आदि अनेक प्रकार के वर्णन रहते हैं। आज तक मेरे देखने में जितने भी जैन साधु एवं जैनाचार्यों के प्रकाशित जीवन-चरित आये हैं, वे केवल अधिनायक के इधर-उधर ही व्रत लगाकर रह गये हैं। परन्तु श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी के इस प्रस्तुत चरित में उन स्वयं के गुण और उनकी विशेषताओं को शीर्षक मान कर कुछ नहीं लिखा गया है, यह सत्य पाठक पढ़कर स्वयं अनुभव कर सकते हैं। इसमें इनके द्वारा किये गये चातुर्मास और चातुर्मासों में इनकी निश्रा में हुये धर्मकृत्यों का लेख और शेष-काल में किये गये विहार, यात्रायें, संघयात्रायें, अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें और ऐसे ही अन्य कई-एक महत्त्वपूर्ण कार्यों का लेखा है। पाठक उनको पढ़ कर कई तीर्थों के इतिहास जान सकते हैं, कई-एक ग्राम और नगरों की कुल आबादी, जैन-आबादी, जैन मंदिर, जैन उपाश्रय और धर्मशालाओं की संख्या का पता मिल सकता है, धंधा और व्यापार, राजकुली और राजा, भूमिपति और चारों वर्णों की कई-एक ज्ञातियों और उनकी सभ्यता, रहन-सहन से अवगति प्राप्त होती है और धार्मिक भावनाओं, शैक्षणिक स्तर, आर्थिक स्थिति का भी भलीविध परिचय मिलता है।

आपश्री देश, काल और परिस्थिति को समझने में बड़े दक्ष हैं; अत आपके जीवन में असफलता जैसी कोई रेखा और निराशा जैसी स्थिति उत्पन्न हुई ही नहीं देखी

गई है। यह एक बहुत बड़ी विशेषता जो सज्जन इस चरित को पढ़ेंगे, उन्हें समझने को मिलेगी। आपका चरित विहार-दिग्दर्शन, अंजनशलाका-प्रतिष्ठा और साहित्य-सेवा इन तीन बातो से विशेषत अधिक सुशोभित है। मेरा अनुमान है कि जैन साधु और आचार्यों के जीवनो में विहार और साहित्य-सेवा का जितना अधिक महत्त्व रक्खा गया है उतना अन्य और बातों का कम। परन्तु जीवन-चरितो में साहित्य-सेवा का तो अच्छा उल्लेख कर दिया जाता है और विहार का कम। विहार का महत्त्व अपनी स्वयं की स्वतन्त्र विशेषता रखता है और जिस चरित मे विहार का दिग्दर्शन समुचित और निश्चित नीति से किया हुआ नहीं होता, वह चरित एक कहानी हो जाता है। इस प्रस्तुत चरित में विहार और साहित्य-सेवा को बराबर २ स्थान दिया गया है; फलतः यह इतिहास, भूगोल एवं धर्मवृत्त अथवा धर्म-साधु के हितकारी जीवन-चरित की दृष्टि से पूरा सुसज्जित है।

इस जीवन-चरित को रचने का सदुपदेश चरितनायक के प्रमुख अन्तेवासी शिष्य मुनिराज साहब विद्याविजयजी और मुनिराज साहब सागरविजयजी की ओर से हुआ था तथा इन दोनों मुनिराजों की सतत् प्रेरणा और सद्भावनापूर्ण हर प्रकार के सहयोग को पाकर ही यह तैयार हुआ है और प्रकाशित भी इन दोनों महाराजों के सदुपदेश से प्राप्त अर्थ-सहाय से ही हो रहा है। अतः इसमें लगे मेरे श्रम से इन मुनिराजों का श्रम किसी प्रकार कम रहा नहीं कहा जा सकता। मेरे श्रम को मूर्त्तरूप देकर सफल करने वाले इन दोनों मुनिराजों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ और इनका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

अंतमें मैं चरितनायक गुरुदेव से सविनय निवेदन करना चाहता हूँ कि आपश्री की मेरे ऊपर जैसी कृपादृष्टि रही और मेरे साहित्यक जीवन एवं भविष्य को बनाने का आपश्री जो वि० सं० १९९५ मे बागरा में मुझको आपश्री के हुये दर्शन के प्रथम दिन से प्रयत्न करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे—इतने ऊँचे ऋण को चुकता करने के लिये इतनी ऊँची मूल्य की मेरे पास मे कोई वस्तु और वह भी साधु के योग्य और वह साधु भी फिर साधारण नहीं हैं अतिरिक्त इस तुच्छ लेखिनी के तुच्छ श्रम से उत्पादित इस तुच्छ भेंट के नहीं है। अगर आप कृपालु श्री इस तुच्छ भेंट को स्वीकार करेंगे तो यह श्रावकजन अपना श्रम सफल समझेगा।

गुरुश्री के आशीर्वाद का अभिलाषी—
लेखक—
दौलतसिंह लोढ़ा 'अरविंद' बी. ए.

वि० सं० २०११ पौष
शु० ७ गुरुसप्तमी
ता० १-१-१९५५

प्रस्तुत चरित के उपदेशक

मुनिराज श्री सागर विजय जी

गुरु-चरित

साहित्य में जीवन-चरितों का स्थान

और

उनकी उपयोगिता

स+हित=सहित। सहित से 'साहित्य' बनता है। 'साहित्य' एक कल्याण-स्वरूप संज्ञा है।

धर्म सुखस्वरूप एवं कल्याणस्वरूप मार्ग है। अतः साहित्य धर्म का मूर्त्तरूप है।

धर्म आचार का कोष है। अतः साहित्य आचार का स्पष्टीकरण है।

आचार ही जगत् मे एकमात्र आचरने योग्य है। अतः आचार्य आचार को समझने का साधन है।

आचार की व्याख्या आचार्य का जीवन है। अतः आचार्य का जीवन-चरित ही उस व्याख्या को समझने का माध्यम है।

प्रत्येक आचार अंतिम सिद्ध होता है और वह अनेक युगों, परिस्थितियों, विभिन्न प्रदेशों मे निकल कर यह अमर रूप प्राप्त करता है। उसको आचरने के लिये जो यम, नियम, विधि बनते हैं, वे भी इसी कारण से सिद्धान्त कहलाते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रत्येक आचार आचरने योग्य ही होता है और मनुष्य मे उसको आचरने की समता होती है और तभी ऐसा ग्रंथ जिसमें आचारों का उल्लेख होता है आगम कहलाता है।

सिद्धान्त नियंत्रण का काम करते हैं और अतः अनाचार का मार्ग ग्रहण करने वालों के लिये वे शस्त्रस्वरूप हैं। अतः ऐसा ग्रंथ जिसमे सिद्धान्तों का उल्लेख होता है शास्त्र कहलाता है।

अत आगम और शास्त्र ये साहित्य के दो पक्ष हुए, जो अन्योन्याश्रित हैं, धर्मशकट के चक्र हैं। जीवन-चरित इस शकट का ध्रुवदंड है।

पुराण, कथा, कहानी, उपन्यास, नाटक, आदि जीवन-चरित के विविध अंग-रूप हैं।

पुराण—अनेक जीवन-चरितों का कोष है।

कथा—एक जीवन-चरित का लेखा है।

कहानी—जीवन-चरित की एक घटना है।
उपन्यास—जीवन-चरित का एक सर्ग है।
नाटक—जीवन-चरित की अति संबंधित घटनाओं का एक अभिनयात्मक श्रुतकाव्य है।

व्याकरण, छंद और अलंकार—इन सब में रोचकता, रसात्मकता प्रदान करनेवाले तथा इनको सुबोध, सरल और धारावाही बनाने वाले विकल्प हैं। साहित्य मे जीवन-चरित का क्या स्थान है, अब भलीविध सिद्ध हो चुका है। अतः इसी पर अधिक कहना व्यर्थ नहीं तो भी अनुपयुक्त और अनावश्यक है।

जीवन-चरित का साहित्य मे स्थान निर्धारित करने की अपेक्षा इसकी उपयोगिता पर कहना, मेरे लिये तो अधिक कठिन विषय है। कारण यह है कि जीवन-चरित तो मूर्त्त और उनकी उपयोगिता अमूर्त्त है। फिर संसार के साहित्य में उपलब्ध विविध जीवन-चरित एकरूप और एकरंग नहीं होकर विविधरूप और रंग हैं। महत्त्व और मूल्य में एक-दूसरे से ऊँचे और नीचे हैं और हम एक-दूसरे के लिये फिर प्रत्येक का भिन्न मान और महत्त्व है। बात यह है कि कोई भी जीवन-चरित सर्वदेश अर्थात् समस्त संसार के प्राणियो के लिये अपने प्रारंभ काल से समस्त भविष्य या आगे आने वाले समस्त युगों के लिये प्रलय पर्यन्त एक-सा शिक्षाप्रद एवं भावप्रद या उपयोगी नहीं हो सकता है। आदि से प्रलय पर्यन्त तक के लिये अगर एक ही जगत् का अधिनायक रहे तो ऐसा फिर भी संभव हो सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति मे तो जीवन-चरित की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। तह तो केवल अभाव की पूर्त्ति का ही एकमात्र साधन है। ईसाइयो में ईसा, मुसलमानों में मुहम्मद, जैनियो में तीर्थङ्कर और हिन्दुओं मे अवतार अधिनायक माने गये हैं। तीर्थङ्कर फिर एक नहीं चौबीस हैं। अवतार एक नहीं चौबीस है। प्रत्येक भिन्न पुरुष है और प्रत्येक का काल, देश भिन्न है। प्रत्येक का कार्य भिन्न रहा है। इतनी बातों मे ये भिन्न हैं तो स्वाभाविक है कि इनके जीवन-चरित भी भिन्न ही होगे। यह सब परन्तु बहिरंग हैं। अतरंग मे सब एक हैं, यह एक अजब रहस्य है। नायक का नायकत्व उसके कार्य मे नहीं, उद्देश्य में होता है। उद्देश्य नायक के अंतरंग में युग-धर्म की उपज है। नायक के जीवन-चरित मे केवल उसके उद्देश्य के दर्शन ही नहीं होते, वरन् उसका जीवन एकमात्र रंगशाला होती है; जहां उद्देश्य सूत्रधार है और नायक अभिनेता। नायक के समस्त कार्य उसके उद्देश्य के अनुसार प्रारंभ होते, बढ़ते और बनते हैं। उद्देश्य होता है शिवं, सुखं और सुन्दरम्। अर्थात् नायक जगत् में उत्थापित, ग्लानिप्राप्त, विचलित हुये कल्याण, सुख और सौन्दर्य्य की स्थापना करने आता है। विभिन्न देश, विभिन्न युग और विभिन्न परिस्थितियो में फिर भी कल्याण, सुख और सौन्दर्य्य की मांग सब की रही है और आज भी है और आगे भी रहेगी। अब यहां यह समझ मे आ जाता है कि कोई भी नायक किसी के भी लिये उद्देश्य से भिन्न नहीं है, उसके कार्य मे भले ही भिन्न हो सकता है। ऐसे अधिनायको के जीवन-चरित सदा और सर्वत्र

मननीय, पठनीय हैं; परन्तु फिर भी वे सदा और सर्वत्र हल नहीं हैं। इससे उनके महत्त्व और उनकी आदर्शता पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं होता है। एक आदर्श अध्यापक का जीवन-चरित हर एक के लिये मननीय और पठनीय हो सकता है, लेकिन वह हल होगा एक अध्यापक का जीवन व्यतीत करने वाले पुरुष के लिये ही। यह तो एक प्रकार के प्रतिभावान् पुरुष की बात हुई। अधिनायक सर्वोन्मुखी प्रतिभासम्पन्न होते हैं। अत वे हल भी सर्वोन्मुखी ही होंगे। इस को हम इस उदाहरण से अच्छी भांति समझ सकते हैं कि—एक पुरुष है वह अपनी पत्नी के लिये पतिरूप मे हल है, पुत्र के लिये पितारूप मे हल है, बहिन के लिये भ्रातारूप मे हल है, माता के लिए और पिता के लिये पुत्ररूप में हल है और इसी प्रकार और-और के लिए और-और रूप से हल है। व्यक्ति एक ही है, परन्तु अनेक के लिये वह अनेक प्रकार से हल है। परन्तु फिर भी वह निश्चित सीमा देश में, निश्चित जीवन-अवधि मे और निश्चित आत्म-स्थिति में ही रहेगा इसमें कोई शंका नहीं। त्यागी बन कर वह अपना उपयोग बढ़ा सकता है और तब वह होगा पिता नहीं लोकनायक, पुत्र नहीं—जगसेवक, पति नहीं—जनसहयोगी, भ्राता नहीं—दीन-बंधु। तब वह गृहव्रती नहीं रहेगा, सर्वव्रती होगा। सर्वव्रती का जीवन-चरित ही सर्व की चीज है। देश, काल एवं स्थिति के कारण चाहे उसका कार्यक्षेत्र सीमित रहा हो, परन्तु उसका उद्देश्य अपरमित था। साहित्य से सिद्ध होता है कि सर्वव्रती अधिनायकों की सदा से परंपरा रही है और वे युग के प्रतिनिधि और युगप्रवर्त्तक रहे हैं। उन्होंने बिगड़े युगों को बनाया है और घातक युगों को हटा कर नव युगों का निर्माण किया है। वे स्वयं बनते रहे हैं, तब यह सब संभव हुआ है। कैसे बनना और बनाने का अर्थ ही कैसे धर्म का पालन करना और पालन करवाना है। उनके जीवन क्षेत्र में ये ही पगडंडियां मिलेंगी; जिनमें वे स्वयं चल रहे हैं और अन्य चलने वालों को आकर्षित कर रहे हैं और देखने वालों को उत्साहित, सोते हुओं को प्रबुद्ध और भटके हुओं को उद्बोधित कर रहे हैं। उनका जीवन-चरित इन पगडंडियों का ही चित्र है। अधिनायक कैसा भी समर्थ सर्वव्रती क्यो न होवे, उसको भी साधक की अपेक्षा तो रहती ही है, अपने लिए नहीं, वरन् अधिक से अधिक प्राणिसमाज को अधिक से अधिक काल के लिये लाभ पहुँचाने की दृष्टि से। तीर्थङ्कर अगर अघ-नाशक हैं, तो सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु उनके साधक हैं। ये अधिनायक के मार्ग में ही चलने वाले हैं और उसका प्रचार करने वाले हैं। कार्य और उद्देश्य से—नहीं कि केवल वेश और उपदेश से। ये अंधे को लकड़ी हैं, सूझते को दर्शन हैं, रुकते को सहारा हैं, चलते को मार्ग हैं, रोते को फल हैं, हंसते को विचार हैं, दुःखी को धैर्य हैं, और सुप्त को चैतन्य हैं। उपयोग जो इनका करना चाहे वह करले—जैसा व्यक्ति वैसा उपयोग—समकालीन सत्संग करके और अनागत इनके जीवन-चरितों का मनन, पठन करके। बनने वाले सदा बनाने वाले ही होते हैं—यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। अनेक को बना कर ही एक बनता है। अनेक को बिगाड़ने वाला आप बिगड़ता ही है। मिटानेवाले को पहिले अपने को मिटाने का संकल्प-सा कर लेना पड़ता

है। मिटने वाले और मिटाने वाले दोनों में अधर्मतत्त्व की प्रधानता है और तभी वे एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। बनने वाले और बनाने वाले में धर्मतत्त्व की प्रधानता है और तभी वे एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं। साहित्य में प्रधान वर्णन बनने और बनाने वालों का ही होता है और तभी साहित्य धर्म का मूर्त्तरूप कहलाता है। जो जैसे बनना चाहते हैं वे वैसे बने हुये या बनते हुओ की राह में चलें—उनके सत्संग से और उनके जीवन-चरितों के अध्ययन से। यही उनकी उपयोगिता का सरल और सीधा मार्ग है। इस मार्ग में केवल दो वस्तु साथ चाहिए, विवेकपूर्ण श्रद्धा और परिष्कृत ज्ञान। ये दोनो वस्तुयें प्रारंभ में अगर अल्प मात्रा में भी हैं तो भी अभ्यास और प्रगति के साथ ये बढ़ने वाली हैं।

—————

गुरु-माहात्म्य

संसार एक रंगशाला है। इस रंगशाला का कोई संयोजक या सूत्रधार है—विवादास्पद है। ईश्वरवादी ईश्वर को और अन्य कर्मों को ही यह महत्त्वशाली पद प्रदान करते है। इस रंगशाला पर आज तक अनंत और महादीर्घकालीन अभिनय खेले जा चुके हैं। उन सब का परिणाम और अंत वर्त्तमान है। आज तक संसार में असंख्य महापुरुष जन्म ले चुके हैं। अनेक तो असंख्य वर्षों पूर्व हुये और उनका चिह्न भी नहीं रहा, नाम तो दूर का विषय है। अनेक ऐसे रत्न हो गये, जो संसार में अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुये जैसे आये वैसे निकल गये और उनको आज तक किसी ने जाना तक नहीं। और कुछ ही महापुरुष ऐसे हैं जिनको हम जानते हैं। महापुरुष हमेशा उद्देश्य में एक परन्तु, देश, काल एवं क्षेत्र और विषय की दृष्टि से भिन्न २ रहे हैं। कवि, ग्रंथकार, गुरु और लेखक भी अगर वे इन शब्दों की संमत परिभाषा में आते हैं तो अवश्य महापुरुष हैं और ये ऐसे महापुरुष हैं जो वर्त्तमान और भविष्यत् को बनाने वाले हैं। धर्म की स्थापना तो तीर्थङ्कर या प्रवर्त्तक करते हैं, परन्तु धर्म का प्रचार और उसकी नींव को दृढ़ ये ही करते हैं। माता-पिता तो केवल संतान उत्पन्न करते हैं, ये हैं जो उसको संस्कार और संस्कृति देकर मानव बनाते हैं। आदि तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव, और चौवीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर का महत्त्व आज इनकी सरस वाणी से बढ़ा है, इनकी जीवन-साहित्य-धारा में बहकर दूर-दूर तक पहुँचा है। ये भी महापुरुष ही हैं। संसार वस्तुतः इन ही महापुरुषों का अधिक कृतज्ञ है कि इनके श्रम और कलम से संसार के कल्याणकारी सुपुत्रों का कुछ भी लेखा आज उपलब्ध है। इनकी कलम और वाणी से जो भी लेखांश बच गया वह भविष्य को लाभ पहुँचाने में निष्फल मनोरथ ही रहेगा और संसार का भी दुर्भाग्य ही रहा की उसके आदर्श, संदेश, सुसमतियों और प्रेरणाओं को प्राप्त करने से वह वंचित ही रहा। इन दो प्रकार के महापुरुषों के अतिरिक्त शेष मानव श्रोता हैं, जो सुनते हैं, देखते हैं, सुने हुये में से ग्रहण करते हैं, देखे हुये में से

कुछ चुनते हैं और तदनुसार वर्त्तने का प्रयत्न या संकल्प करते हैं और वे तब आगे बढ़कर संसार के सुपुत्रों में गिने जाते है। भगवान् ऋषभदेव ने कल्याणमय जीवन व्यतीत कर जैन-धर्म और जैन समाज को अमर गौरव दिया, जिसको कोई अग्नि भस्म नहीं कर सकती, कोई ताप पिघला नहीं सकता, कोई वायु उड़ा कर नहीं ले जा सकती, कोई आकाश उसको आत्मसात् नहीं कर सकता। इतना ही नहीं उनके मार्ग का प्रचार समय-समय पर जन्म लेने वाले अन्य तेईस तीर्थङ्करो ने ससार के कोने-कोने में किया और भव्य प्राणियो को सत्पथ दिखा कर अजर-अमर शान्ति के दर्शन कराये और आप मोक्ष धाम पधारे। इस मार्ग में अनेक चल कर सिद्ध हो गये, अनेक आचार्यपद से और उपाध्यायपद से विभूषित हुये और असंख्य साधु एवं मुनि जैसे आदर्श पदों के धारक बने। धन्य है भगवान् ऋषभदेव को जो आप तरे और आज तक भव्य प्राणियो को तारते आ रहे हैं। तभी तो ऐसे महा-पुरुषों को जगन्नाथ, जगद्गुरु, जगरक्षक, जगसार्थवाहक, जगबधु, जगचिंतामणि, आदिकर, आदिनाथ, तीर्थंकर, अवतार, सिद्ध, स्वयंसिद्ध, पुरुषोत्तम, अशरणशरण, ज्ञानदाता, मार्गदाता, अभयदाता आदि अतिशय सम्मानसूचक उपाधियों से विभूषित कर के जगत् आज तक पूजता है। जिस कुल में, जिस पुर में, जिस प्रान्त में और जिस देश अथवा भूभाग में ऐसे महापुरुषों का जन्म हो जाता है, वह भी इनकी अमरता के साथ अमर बन जाता है। आज हम देख रहे हैं कि उदयपुर का राजवंश अपने पूर्वजो की उज्ज्वल कीर्त्ति के कारण एक छोटा-सा राज्य होकर भी संसार में सम्मान एवं गौरव की दृष्टियों से अद्वितीय ही नहीं प्रतिक्षण स्मरणीय है। अयोध्या भगवान् ऋषभदेव, सत्यवर्त्ती राजा हरिश्चन्द्र और पुरुषोतम रामचन्द्र की जन्म-भूमि होने के कारण भारत की समस्त नगरियों में पूज्या है। सम्मेतशिखर का महत्त्व आज इसीलिये है कि उसके ऊपर २० जिनेश्वर भगवान् मोक्षधाम पधारे थे। शत्रुंजय, अर्बुदाचल और गिरनार तीर्थों का महत्त्व का कारण यही है कि इनके ऊपर ऐसे कल्याणकारी महापुरुषों की प्रतिमायें भव्य मदिरों में प्रतिष्ठित हैं, जो दर्शकों को आनंद, भक्तो को शान्ति और साधुओं को अवलंब प्रदान करती हैं। इस प्रकार के उदाहरण ही अगर देने का संकल्प कर लिया जाय तो समस्त भूमि भी अगर पत्र बनाली जाय तो भी वह अपर्याप्त ही रहेगी। संसार का प्रत्येक देश अपने ऐसे ही महापुरुषों के पीछे अन्य देशों के बीच गौरव और प्रतिष्ठा आज तक प्राप्त करता चला आया है। प्रत्येक देश का प्रत्येक प्रान्त अपने ऐसे किसी न किसी महापुरुष के पीछे अन्य प्रान्तों मे अपनी विशेषता आज तक रखता चला आया है। इसी प्रकार नगर, पुर और ग्राम भी अपने ऐसे सुपुत्रों के पीछे धन्य और सफल जीवन होते आये हैं। कुल, ज्ञाति और समाज तथा राष्ट्र भी ऐसे ही महापुरुषों के पीछे उत्तम, संस्कृत, सभ्य, उन्नत और गौरवशाली तथा प्रतिष्ठित रहे हैं। ये जगत् के सूरज हैं, जिनसे जगत् आज भी जगमगा रहा है। दुर्भाग्य हम अन्धो का है कि हम आज इनके जगमगाते प्रकाश को नहीं देख रहे हैं और उसका परिणाम हमारा

गर्त्त अथवा गह्वर में गिर कर असहाय अवस्था में चल बसना है। यहां तक का लेखा तीर्थङ्कर, सिद्ध, अवतारों के विषय में अधिक रहा।

'गुरु गोविंद दोनों खड़े किसके लागू पायं।'

गोविंद देव है और गुरु उनके आराधक। फिर भी कबीर साहब असमंजस में पड़ जाते हैं कि प्रथम नमस्कार किसको किया जाय।

'बलिहारी गुरुदवे की गोविंद दिया बताय।'

गुरु भले ही गोविंद के आराधक और भक्त हों, परन्तु कबीर के लिये तो गुरु का महत्त्व ही अधिक है, क्योकि गुरु की कृपा से ही उनको गोविंद के दर्शन हो रहे हैं। ऐसे गुरु के विषय में मेरे लिये भी कुछ लिखना अनधिकार चेष्टा और अनुचित लक्ष्य नहीं। वैसे तो गुरु अनेक प्रकार के माने गये हैं। जो आयु में बडा है वह भी गुरु है और उसका संमान करना उससे छोटे के लिये कर्त्तव्य है। जिससे कुछ भी शिक्षा प्राप्त हो वह भी सीखनेवाले के लिये गुरु है; परन्तु समस्त प्रकार के गुरुओं में धर्मगुरु का पद ऊंचा है और महत्त्व अधिक है। धर्मगुरु सदुपदेश देता है, धर्म का तत्त्व समझाता है, जीवन का रहस्य उद्‌घाटित करता है, गुणों से परिचय कराता है और कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान कराता है, सुख और शान्ति के प्राप्त करने का यत्न सिखाता है। ऐसा गुरु ही गुरुओं में गुरु है—गुरु-सम्राट् है। ऐसे गुरुओं में अनेक गुण होते हैं और जिनमें गुण ही गुण होते हैं वे ही ऊंचे से ऊंचे गुरु कहे जाते है। जैन-धर्म में ऐसे गुरु के गुणो को छत्तीस प्रकार के गुणो में प्रतिमित कर दिये हैं।

पंचिंदिअसंवरणो, तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो।
चहुविहकसायमुक्को, इस अट्ठारस गुणेहि संजुत्तो ॥१॥
पंचमहव्वयजुत्तो, पंचविहायारपालणसमत्थो।
पंचसमिऊतिगुत्तो, छत्तीशगुणो गुरु मज्झ ॥ २ ॥

पांच प्रकार की कर्मेन्द्रियों का संवरण करना, नव प्रकार के ब्रह्मचर्य्य का पालन करना, चार प्रकार के कषायो से दूर रहना, पांच प्रकार के महाव्रतो से युक्त रहना, पांच प्रकार के आचार-व्यवहारो के पालन करने में समर्थ रहना, पांच प्रकार की समितियो और तीन प्रकार की गुप्तियों का धारण करना—इस प्रकार छत्तीस गुणवाला जो भी होवे गुरुपद प्राप्त करने के योग्य है—ऐसा शास्त्रीय नियम है। इक गुणो की परीक्षा देकर ही कोई धर्मगुरु बन सकता था, यह सूरिपदोत्सव, आचार्यपदोत्सव जैसे महोत्सवो के इतिहासो से भलीविध सिद्ध होता है। धर्मसंस्था के व्यवस्थापकों ने धर्मगुरुओं को भी तीन श्रेणियों में विभाजित कर दिया है। प्रथम श्रेणी का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। इस श्रेणी के धर्मगुरु आचार्य कहे जाते हैं, दूसरी श्रेणी के धर्मगुरु उपाध्याय और तीसरी श्रेणी के साधु कहे जाते हैं। इन दो के लिये भी गुणो की संख्या अलग-अलग है। उपाध्याय के पच्चीस गुण होते हैं

और साधु के सत्ताईस। गुरुओं की पहिचान इस प्रकार शास्त्रों ने देकर मुमुक्षु और जिज्ञासु भव्य प्राणियों की एक प्रबल समस्या और उलझन को सुलझा दिया है। कौन किस कोटि का गुरु है इन गुणों की संख्या और मात्रा पर उसका अनुमान लगाया जा सकता है। इतना ही नहीं जैन-शास्त्रों मे जहां गुरु की पहिचान और उसके पद का विवेचन है, वहाँ श्रावक के गुणों का भी पूरा २ उल्लेख है। श्रावक बारह व्रतों का धारक होना चाहिए; तभी वह अपने पूर्ण गुरु का पूरा-पूरा लाभ प्राप्त कर सकता है अन्यथा जितना कम उतना ही लाभ मे कम। व्रत श्रावक की भूमि को नम्र और संग्रहणशील बना देते हैं, परन्तु इस भूमि के रूप मे हमेशा यह विशेषता रही है कि इसमे वह ही बीज अंकुरित होगा, बढ़ेगा, विकसित होगा, लहरायेगा और फूलेगा फलेगा जिसको यह भूमि मान जायगी, अन्यथा हुआ तो लग कर तुरंत ही सड़ जायगा, मर जायगा। यहाँ किसी भी वैज्ञानिक की युक्ति को दिशा नहीं। तात्पर्य यह है कि श्रावक की भूमि मे गुणो का ही एकमात्र आरोपण हो सकता है और विकास और विस्तार। श्रेष्ठी सुदर्शन, आनंद, सद्दाल, जावड़शाह, वस्तुपाल-तेजपाल जैसे श्रावक यहाँ उदाहरणरूप मे लिये जा सकते हैं। इन धर्मिष्ठ श्रावकों में जन्म से मृत्यु पर्य्यन्त गुण विकसित और वृद्धिगत ही होते रहे, न्यूनता और शिथिलता जैसी अनिष्टकारी वस्तुयें इनको छू तक नहीं पाई। कारण इसका एक ही है कि वे पूर्ण श्रावक थे। आज वैसे श्रावक बनने की कोई चेष्टा भी करता दृष्टिगत नहीं होता और यही कारण जैन-समाज के अधःपतन का है। अगर हम श्रावक बनने का सत्य प्रयत्न करें तो निर्विवाद है कि हम गुणों की ओर ही आकृष्ट होंगे और हमारे में श्रावकपन बढ़ता ही जायगा और कोई भी विरोध और अधर्म-तत्त्व हमको किंचित् भी शिथिल, विचलित, भ्रमित और दिग्मूढ़ नहीं बना सकेगा। तब हम इस दिखावा, आडंबर, पाखण्ड, दंभ और प्रगल्भता से ऊपर उठ जावेंगे। ये विकार तब हमको इनके सत्य रूप में दिखाई देंगे, जिनको हम क्षण भर के लिये भी अधिक सहन और वहन करने के लिए प्रसन्न नहीं होंगे। इन दोषो को चारा तब ही और तब तक ही मिलता है जब तक हम गुणो के प्रति उदासीन रहते हैं। गुरु का श्रम और प्रयास भी तभी ही पूर्ण सफल होता है। श्रावक गुरु का पुजारी है। गुरु धर्म की प्रतिमा है और धर्म तीर्थंकरों की चर्य्या है।

श्रावक तीर्थंकरो की चर्य्या अर्थात् उनके धर्म को समझना चाहता है तो उनके धर्म की प्रतिमा गुरु की उपासना, सेवा, आराधना करे। ऐसा करके ही वह ज्ञानवान्, गुणवान् बन सकता है और कर्त्तव्याकर्त्तव्य को समझने के योग्य बन सकता है। कहा भी है 'गुरु बिन ज्ञान कहां?'

वर्त्तमान में चलते हुये विद्यलय, पाठशालायें, गुरुकुल मान की दृष्टि से कैसे भी समझ लिये जायं, फिर भी इनसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शिष्य या विद्यार्थी को शिक्षक की आवश्यकता तो अनिवार्य्यतः रहती ही है। यहां हम यह भले ही कह सकते हैं कि जैसे गुरु, वैसे चेले। फिर भी शिक्षक का महत्त्व और शिष्य के

लिये उसका अनिवार्य्य अस्तित्व तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। यह बात तो आज के अर्थोपजीवी शिक्षकों की है, जो गुरुओ के कक्ष में निम्न श्रेणी के हैं। धर्मगुरु अर्थोपजीवी नहीं—वे तो परोपकारी, त्यागी, दयालु, क्षमाशील, परमहंस होते हैं। इन गुणों मे जो भी गुरु कहा जाने वाला जितना न्यून और शिथिल होगा, उसका उतना ही तप, तेज, प्रभाव भी कम होगा और इसका अर्थ एक ही होगा कि अगर वह अधिक प्रभावक नहीं है तो भी पूर्ण हानिकर अथवा अनिष्टकर तो किसी भी रूप में नहीं है। शिक्षकों के लिये यह बात नहीं है। शिथिल और दुर्गुणी शिक्षक पूर्ण हानिकर और अनिष्टकर हो सकता है।

भारतवर्ष का भूत का इतिहास जितना भी उपलब्ध है, बताता है कि शिक्षण का कार्य धर्मगुरु ही करते थे। वे धर्म और व्यवहार के पूर्ण पण्डित होते थे। साधु और गृहस्थ के समस्त विषयो के विद्वान् होते थे। तभी तो कहा गया है कि 'गुरु बिन कोई ज्ञान नहीं'। परन्तु दुःख है कि वर्त्तमान ने धर्मगुरुओं के क्षेत्र से शिक्षण-कार्य को अलग करके उसको अर्थोपजीवी शिक्षको को समर्पित कर दिया है। आज की चरित्र-हीनता इसी का दुष्परिणाम है। आज के शिक्षकों को देख कर अगर कोई गुरु की परिभाषा को नहीं जानने वाला उनको गुरु कह दे तो मै कहूँगा कि 'गुरु बिन कोई स्थान नहीं। 'मै स्वयं शिक्षक हूँ और अपने लिये इस स्तुति को प्रथम स्वीकार करता हूँ। यद्यपि मेरे समस्त शिक्षक-जीवन का प्रत्येक पल और अणु इसके विरोध मे अचल, अटल और संघर्षमयी रहा है। केवल अपने और अपने से संबंधित क्षेत्र मे। शिष्यरूप में मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरा शिक्षण आर्य-समाजी संस्थाओं में हुआ। जो मुझको आर्यसमाजी धर्मोपदेशक दे सके उसका शतांश भी मेरे अर्थोपजीवी अध्यापक नहीं। यह इनके प्रति कृतघ्नता नहीं। अगर कोई ऐसा अर्थ लेगा तो यहां पाप करने का दोषी होगा। मै आज भी मेरे समस्त शिक्षको का श्रद्धापूर्वक स्मरण और कीर्त्तिगान करता हूँ। लेकिन यह कहते नहीं हिचकूंगा कि उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण करना और उनकी कीर्त्ति करना मुझ को आया आर्यसमाजी धर्मोपदेशको की शिष्यवत्सलता से और मैंने सीखा, 'पश्यता गुणानी केवलानि' श्रीमद् विजय-यतीन्द्रसूरजी महाराज से मुझको क्या प्राप्त हुआ यह मेरा भविष्य कहेगा।

अंत में यही कहना है कि गुरु के बिना जीवन मे जो सरसता आनी चाहिए, जो सुख-शांति के मार्ग दिखाई देने चाहिए, दु ख और संकटों में, शोक और रोगों के अवसरो पर जो सहनशीलता और धैर्यता आनी चाहिए नहीं आ पाती। इसी लिये धर्मगुरु का स्थान इतना ऊंचा माना गया है। इत्यलम्।

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज
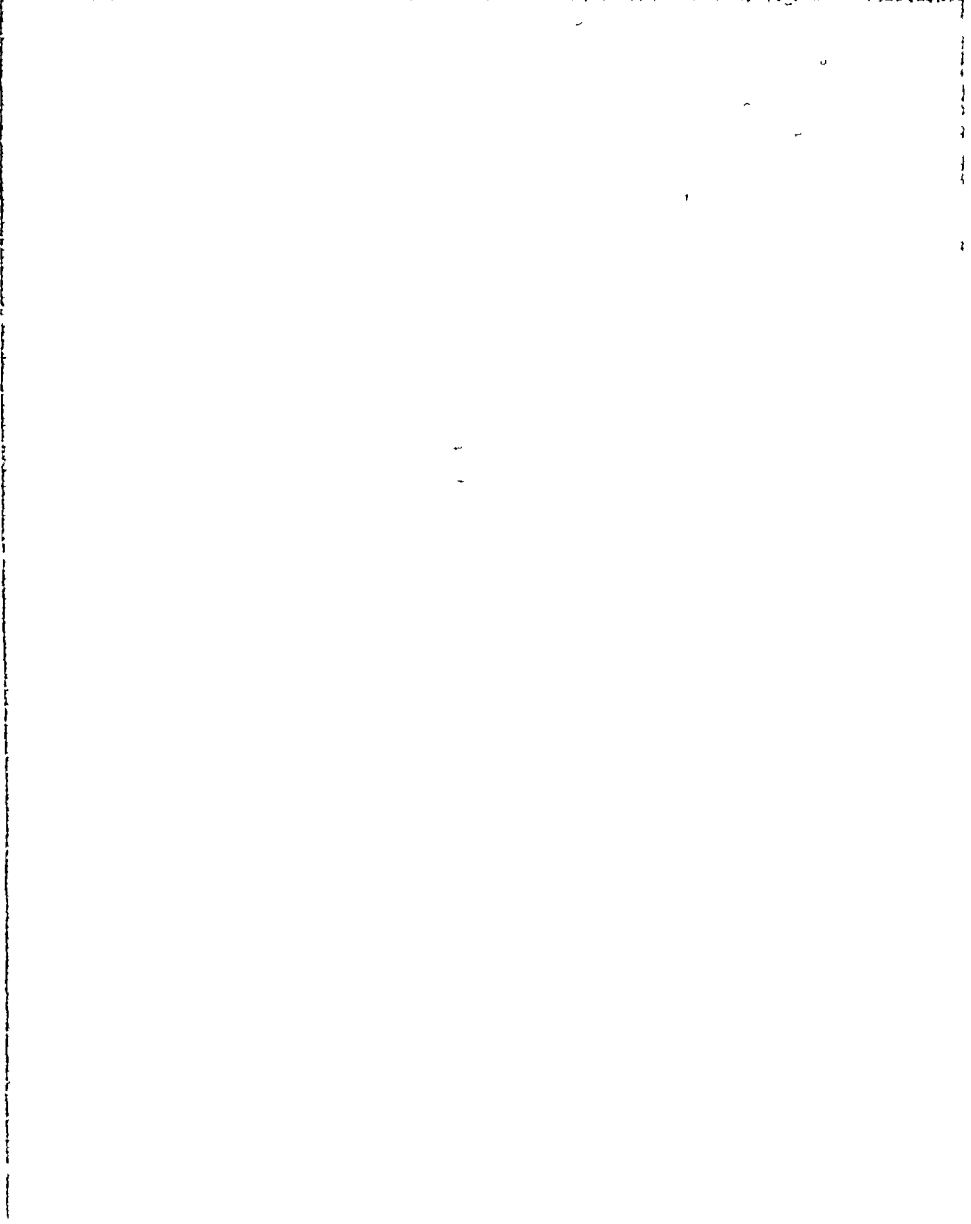
लेखक और चरित-नायक

सन् १९३८ में एक समाचार-पत्र मे मारवाड़-बागरा में स्थापित होने वाले 'श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल' के लिये कुछ अध्यापकों की आवश्यकता प्रकाशित हुई।

चरितनायक के कर-कमलो से मारवाड़-बागरा में गुरुकुल की स्थापना और लेखक का प्रधानाध्यापक होकर जाना

उस समय मैं 'श्री नाथूलालजी गोदावत जैन गुरुकुल', छोटी सादड़ी (मेवाड) में गृहपतिपद पर कार्य कर रहा था; परन्तु अपनी निडर प्रकृति, स्वतंत्र विचारधारा, आदर्श नीति, अखण्ड कर्त्तव्यपरायणता, सत्यता एवं स्पष्टवादिता के कारण, जिनको गुरुकुल के प्रमुख कार्यवाहक सहन करने में असमर्थ रहे, उपरोक्त आवश्यकता के प्रकाशन के कुछ ही दिनों पूर्व एक मास की अवधि के साथ में मुक्ति की सूचना प्राप्त कर चुका था। उपरोक्त आवश्यकता को पढ़कर मैंने मंत्री श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल, बागरा (मारवाड़) के नाम पर प्रधानाध्यापक-पद के लिये प्रार्थना-पत्र भेजा। पत्र में स्पष्ट लिखा कि अगर प्रधानाध्यापक धर्म-शास्त्रों का ज्ञाता ही होना चाहिये, तो कृपया पत्र देकर व्यर्थ व्यय में नहीं उतरें और अगर सिद्धान्तों का प्रेमी और उन पर निडरता और दृढ़ता से चलने वाला चाहिये तो अवश्य पत्र-व्यवहार करें। बागरा में उक्त गुरुकुल चरितनायक के कर-कमलों से स्थापित होना निश्चित हो चुका था। अनेक प्रार्थना-पत्रों के साथ मेरा पत्र भी आपश्री के समक्ष पहुँचा। निश्चित तिथि पर समस्त प्रार्थना-पत्रो का कार्य-कारिणी-समिति ने आपश्री के समक्ष अवलोकन किया। प्रधानाध्यापक के लिये धार्मिक ज्ञान का होना आवश्यक है के विरोध में सर्वसम्मति से प्रधानाध्यापक के पद के लिये मैं चुना गया और मुझको पत्र द्वारा सूचित किया गया कि प्रारम्भ मे वेतन रु० ३५) प्रतिमास और संतोषजनक कार्य प्रतीत होने पर तीन मास पश्चात् रु० ४१) प्रतिमास वेतन मिलेगा और संस्था की ओर से छः मास पूर्व छोड़ने की स्थिति में छः मास का वेतन दिया जायगा। मकान और नौकर संस्था देगी। ता० २० सितम्बर तक बागरा पहुँचना आवश्यक है।

ता० १९ सितम्बर को ही मैं बागरा पहुँच गया। मैं जब 'श्री नाथूलालजी गोदावत जैन गुरुकुल' के फाटक से बाहर हो रहा था, पीछे से किसी विद्यार्थी ने दुःख भरे स्वर में सुना कर कहा 'गुरुकुल का प्राण जा रहा है।' एक वर्ष पश्चात् गुरुकुल बंद भी हो गया और गुरुकुल के संचालक जी और संरक्षकों के बीच में उदयपुर के न्यायाधिकरण मे कुयोग भी चालू हो गया।

श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल की स्थापना वि० सं० १९९५ आश्विन शुक्ला ६ तदनुसार सन् १९३८ सितम्बर २९ को प्रातः ९ बजे शुभ मुहूर्त्त में आपश्री की तत्त्वावधानता में ही होना निश्चित हो चुकी थी। स्थापना-दिवस के पूर्व ही मैंने गुरुकुल की नियमावली, विद्यार्थी-प्रवेश-पत्र, कर्मचारी-नियम और संस्था का विधान बनाकर आचार्यश्री को अवलोकनार्थ दे दिये थे। इन सबको पढ़कर आचार्यश्री मेरे पर अत्यन्त ही प्रसन्न हुये और कार्य-कारिणी-समिति के समक्ष विचारार्थ जब वे

रक्खे गये, तो उसने भी बिना एक शब्द के संशोधन के उनको ज्यों का त्यों सम्मत घोषित कर दिया।

एक दिन रात्रि के लगभग आठ बजे मैं आचार्यश्री के समक्ष बैठा हुआ था, मुनिराज वल्लभविजयजी ने मुझ से पूछा, "तुमने धर्म भी सीखा है ?" इस प्रश्न का मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और बैठा रहा। तदनन्तर आचार्यश्री ने पूछा, "तुमने किसी भी शास्त्र का अध्ययन नहीं किया ?" मैंने सविनय उत्तर दिया, "जी साहब ! नहीं किया।" इस उत्तर का आचार्यश्री पर एक नया ही प्रभाव पड़ा और वे बोले, "मास्टर ! तुमने मेरे प्रश्न का तो उत्तर दिया और मुनि के प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं दिया ?" इस पर मैंने सविनय कहा, "मुनिराज का प्रश्न भाषा की दृष्टि से अस्पष्ट था। धर्म का रहस्य तो मैं सीखने और जानने का प्रयत्न अहर्निश करता रहा हूं। परन्तु मैं अपने मुंह से यह कैसे कहता कि मैं धर्म कुछ सीमा तक जानता हूँ। अगर यह कह भी देता तो वे अवश्य मुझ से किसी सूत्र को बोलने के लिये कहते। जैन शास्त्र जब मैंने पढ़े ही नहीं तो मैं कोई भी सूत्र कैसे बोल सकता था। यह सीधी-सी बात है कि ऐसी स्थिति में तब मेरा उपहास होता और फिर मुझ को स्पष्टीकरण करना पड़ता। परन्तु मौन रहकर जैसा मैं अपने को बचा सका, वैसा स्पष्टीकरण करके नहीं कर सकता था। आपका प्रश्न बिलकुल स्पष्ट है कि क्या तुमने किसी शास्त्र का अध्ययन किया है ? मैंने तुरन्त उत्तर दे दिया कि जी साहब ! नहीं।" मेरे इस वक्तव्य का आचार्यश्री पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने मुस्करा दिया।

उन्हीं दिनों में बागरा नगर मे किसी सज्जन के परिवार मे किसी की असामयिक मृत्यु हो गई। मृत्यु के दूसरे दिन रात्रि को समवेदना प्रदर्शित करने के लिये मैं भी जा पहुँचा। नगरजनो पर मेरी इस व्यावहारिकता का अच्छा प्रभाव पड़ा और उन्होंने आचार्यश्री के समक्ष मेरी सरलता और सहृदयता की बहुत अच्छे शब्दों में सराहना की। आचार्यश्री ने भी उनको मेरे विषय में अत्यन्त संतोषपूर्ण शब्दो में प्रशंसा भरे वाक्य कहे।

ता० २९ सितम्बर को शुभ मुहूर्त्त में गुरुकुल की स्थापना होगई। अन्य संस्थाओं के अध्यापक और संचालक भी निमन्त्रित किये गये थे। भारी समारोह और महामहोत्सवपूर्वक स्थापना की समस्त विधियां संपादित की गई थीं। इस अंतर मे एक मनोरंजक बात हुई। वह यह कि आचार्यश्री ने मुझ को आदेश दिया कि प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियो को प्रथम मंगलाचरण में 'नमस्कार मंत्र' का पाठ दो। विशाल समारोह की उपस्थिति थी; परन्तु मैं सत्य का पुजारी था, उठकर तुरन्त सविनय निवेदन किया कि अनुचर को 'नमस्कार-मंत्र' पूर्ण और फिर वह भी शुद्ध नहीं आता है, अतः मै क्षमा चाहता हूँ। अन्य संस्था के लोग जो उस समय उपस्थित थे, खुल-खुल हंस उठे। इस पर आचार्य महाराज साहब को मेरे सत्य-भाषण की सराहना करनी पड़ी और हंसने वालो को लज्जित होना पड़ा।

मुनि श्री विद्याविजयजी महाराज और लेखक

भूति चातुर्मास मे वि० स० २००२

आचार्य महाराज साहब नमस्कार-मन्त्र के पदों का एक-एक करके उच्चारण करते थे, मैं प्रत्येक पद का अनूच्चारण करता था और फिर प्रविष्ट हुये विद्यार्थी बोलते थे। इस विधि के समाप्त होने पर आचार्यश्री का विद्या और शिक्षक के विषय को लेकर लंबा और अत्यन्त सारगर्भित भाषण हुआ। वर्धमान विद्यालय, जालोर के प्रधानाध्यापक का और तत्पश्चात् मेरा भाषण हुआ। मेरे भाषण से उनको डाह उत्पन्न हुआ और उन्होंने बागरा के कुछ सज्जनों को कहा कि आपके प्रधानाध्यापकजी तुतलाते हैं। इस पर उन्होने कहा "कुछ भी हो उनके भाषण के बराबर किसी का भाषण नहीं रहा।" मैं जब आचार्य महाराज के समक्ष बैठा हुआ था, तब यह चर्चा वहां भी चली और मैंने उसकी उपेक्षा ही की। इससे मेरा मान और विश्वास अधिक ही बढ़ा।

विद्याप्रेमी मुनिराज साहब विद्याविजयजी से अधिक सम्पर्क

मुनिराज विद्याविजयजी चरित-नायक के प्रमुख शिष्य हैं। आप अपने गुरु की सेवा पूर्ण भक्ति एवं श्रद्धा से करते हैं। छाया जैसे देह के संग है, आप वैसे ही गुरु के संग सदा विचरते हैं। पल भर के लिये आप गुरु से अलग रहना पसन्द नहीं करते हैं। आप सहृदय, सौम्य और सरल प्रकृति एवं रसिक स्वभाव वाले हैं। वैसे आप कविता और काव्य के अभिन्न प्रेमी हैं, जो फिर स्वाभाविक ही हैं। आपने छोटी, बड़ी अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आपके पास घंटों बैठ कर भी कोई व्यक्ति उठना नहीं चाहता है। मुझको भी आपके संग बैठने और घंटों सामाजिक और साहित्यिक विविध विषयों पर वार्त्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आप उस समय "यतीन्द्रसूरि प्रथम भाग" लिख रहे थे। आपका मुझ पर अनुराग तो था ही और जब आपको यह अनुभव हो गया कि मैं भी तुकबन्दी और टूटी-फूटी कविता कर लेता हूँ तो आपने मेरे सामने श्रीमान् उपाध्याय मोहनविजयजी का जीवन-चरित संक्षेप में और पद्य में लिखने का प्रस्ताव रक्खा और वह मुझको स्वीकार करना पड़ा। लगभग एक मास में १०९ हरिगीतिका छन्दों में वह पूर्ण भी होगया। आचार्यश्री ने उसका श्रवण और अवलोकन किया और उन्हें संतोष हुआ।

एक दिन रात्रि के समय जब बहुत सज्जन आचार्यश्री के समक्ष बैठे हुये थे और मैं भी बैठा हुआ था, आचार्यश्री ने 'भारत भारती' की भूरी २ प्रशंसा की और मेरी ओर दृष्टि करके आदेशात्मक शब्दों में कहा, "मास्टर! तुम कविता भी अच्छी करते हो, ऐसी ही एक पुस्तक जैन-समाज के लिये भी लिखो" मेरे मुंह से निकल गया, "जैसी गुरुदेव की आज्ञा।" पीछे तो मैंने गुरुदेव को अपनी धारणा से परिचित भी किया कि वैसे मेरा विचार साहित्यिक जीवन ही व्यतीत करने का है, लेकिन साहित्यिक सेवाओं का प्रारंभ मैं अपनी तीस वर्ष की आयु हो जाने पर करना चाहता था। इतने में आप बोल उठे कि जीवन का क्या पता, कब कौनसी पल-घड़ी आजावे। और फिर यह ग्रंथ जो तुम लिखोगे सामाजिक ही तो है, अभ्यासार्थ हीं होगा। इसी

प्रकार की और जैन-समाज संबंधी विविध विषयों पर थोड़ी २ चर्चा होती रही। मुनिराज विद्याविजयजी भी वहाँ उपस्थित थे ही। आप यह तत्परता से देख रहे थे कि कहीं मास्टर शिथिल शब्दों में तो नहीं बोल रहा है। आप इस आशंका से आचार्य महाराज साहब के भावों का बीच-बीच में मधुर और स्नेहपूर्ण वाक्यों में बोल कर मेरे पर पूरा प्रभाव डाल रहे थे। समय होने पर हम सब वहाँ से उठे और अपने २ स्थानों को गये। परन्तु उस रात्रि को मुझे अपने घर में विशेष ज्योति और स्थल स्थल पर जागरण का अनुभव हुआ और मैंने भी जागते २ रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत किये। चतुर्थ प्रहर के प्रारंभ में 'जैन-जगती' का मंगलाचरण बना और प्रातः होने तक उसकी उपक्रमणिका बन गई। वह दिन 'शनिश्चर' का दिन था। यह मैंने तीन-चार वर्षों पश्चात् जाना कि मेरे महत्त्व के समस्त कार्य आपो-आप जाने-अनजाने शनिश्चर को ही प्रारंभ होते हैं और प्रायः समाप्त भी शनिश्चर को ही होते हैं। मैं चूक जाता हूँ तो शनिश्चर आ जाता है और शनिश्चर चूक जाता है तो मैं उस तक पहुँच ही जाता हूँ। प्रथम मैंने सरस्वती का वंदन किया और उठ कर बाहर आया और मंगलमयी उषा का दर्शन किया। उस दिन जो ज्योति और दिव्य आभा मैंने उषा में देखी, वह सच कहता हूँ, मुझको अच्छी भांति याद है मैंने पूर्व कभी नहीं अनुभव की थी। मैं शौच, स्नान-क्रिया से निवृत्त होकर उपाश्रय में पहुँचा और मुनिराज साहब विद्याविजयजी को 'जैन-जगती' का मंगलाचरण, लेखनी-वंदना और उपक्रमणिका सुनाई। उनको इतना आह्लाद हुआ कि वह अनिर्वचनीय है। हम दोनों गुरुदेव के समक्ष पहुँचे। यथाविधि वंदना कर लेने के पश्चात् मैंने पद्यों को जो तीन श्वेत पत्रों पर लिखे हुये थे, गुरुदेव के आगे बढ़ा दिया। उन्होंने पत्र लिये और वे उनका मौन वाचन कर गये। वाचन समाप्त करके बोले, "मास्टर! पद्य बहुत अच्छे हैं। ग्रंथ अच्छा बनेगा। प्रारंभ अच्छा तो अंत भी अच्छा।" हम दोनों वहीं बैठ गये और लगभग अर्ध घंटे तक उन्हीं पद्यों और जैन समाज के भूत, वर्त्तमान और भविष्य पर चर्चा होती रही। मैं जब वहाँ से उठकर सविनय वंदना करके चलने लगा और कुछ कदम उपाश्रय के द्वार की ओर बढ़ आया था, मुझको याद है, गुरुदेव ने कहा, "यह आगे जाकर साहित्य की अच्छी सेवा करेगा।" जैन-जगती के प्रारंभ की चर्चा बागरा नगर में भी उसी दिन फैल गई। अनेक मित्र और साहित्य-प्रेमी सज्जनों ने उक्त पद्यों का कितनी ही बार वाचन-श्रवण किया। जैन-जगती-लेखन का कार्य इस प्रकार सोत्साह चलने लगा। सहृदय मुनिराज विद्याविजयजी साहब के स्तुत्य सम्पर्क का पाठकगण! यह सुफल आया और चरित-नायक की कृपा दृष्टि ने क्या किया और क्या कर रही है और क्या करेगी इसकी रूप रेखा आगे का वर्णन और पूर्ण मेरा भविष्य बतलावेगा।

चातुर्मास पूर्ण करके गुरु महाराज शिष्य-मण्डली के सहित आकोली होते हुये सियाणा पधार गये।

गुरुकुल की अभिनव स्थापना के कारण गुरुकुल की व्यवस्था और उसकी उन्नति की दृष्टियों से मुझ को दिन का अधिक भाग और वह भी महत्त्वांश उस ओर

'जैन-जगती' और चरितनायक

व्यय करना पड़ता था। बागरा का जलवायु भी पहिले-पहिल अनुकूल नहीं पड़ा और ऐकान्तर ज्वर से मैं लगभग चार मास पीडित रहा और स्थिति यह आगई कि स्थानान्तर होना आवश्यक प्रतीत होने लगा। इस पर भी गुरुकुल की सेवा आशा से बाहर करता रहा। समिति के सदस्यों की इस पर सहानुभूति अधिक ही बढ़ी। संगीत-अध्यापक सालिग्रामजी जो आयुर्वेद के निष्णात वैद्य हैं, वे जब गुरुकुल में अध्यापक होकर आये, उन्होंने तीन खुराक में मेरे ज्वर को सदा के लिये विलीन कर दिया। एक मास का अवकाश लेकर मैं घर आ गया। घर से जब बागरा लौटा तो शृंगाररस के जादू से मैं अभिभूत था। और वह 'रसलता' के मिस फिर उतरा। दो-चार मास फिर ऐसे-वैसे संस्था और गृहस्थ के झंझटों में व्यतीत हो गये। एक रात्रि को 'महाराणा प्रताप' ने आ घेरा। मैं बचपन से उनका श्रद्धालु था और उनको हिन्दू-कुल-गौरव-स्तम्भ मानता था। फलतः 'छत्र प्रताप' की सृष्टि हुई। तत्पश्चात् 'जैन-जगती' की चिंताओं ने आ घेरा। इन्हीं दिनों बागरा में अंजनशलाका-प्रतिष्ठोत्सव का होना निश्चत होकर गुरुमहाराज साहब का चातुर्मास भी बागरा में होना निश्चित् हो गया। गुरुकुल के छात्रों को प्रतिष्ठोत्सव के लिये संगीत और नाटक, ड्रामों में तैयार करना और उधर गुरु महाराज साहब को 'जैन-जगती' तैयार नहीं होने की स्थिति में कैसे मुंह दिखाना—दुविधा में पड़ गया। चातुर्मासार्थ वि० सं० १९९८ आश्विन पूर्णिमा को गुरुदेव का बागरा में प्रवेश महामहोत्सवपूर्वक हुआ। उसी दिन रात्रि को गुरुदेव ने पूछा, "मास्टर! 'जैन-जगती' का कितना कार्य शेष रहा है?" मैंने सविनय उत्तर दिया, "जी आप यहां विराजेंगे तब तक संभव है पूर्ण हो जावेगी। आपश्री फरमावें तो उसका सुनाना चालू किया जाय।" गुरुमहाराज बोले, "कल से ही रात्रि के समय प्रतिक्रमण-क्रिया के पश्चात्।" "जो आज्ञा।" उस दिन तक अतीत खंड के लगभग दो सौ छंद ही बन पाये थे। मैं हतोत्साह नहीं हुआ, ऐसे अवसरों पर मेरे में स्फूर्ति और उत्साह बढ़ता है। फल यह हुआ कि लगभग २५,३० छंद रोज अथवा ऐकान्तर जैसी गुरु महाराज को सुविधा होती सुना देता और उतने ही छंद न्यून या अधिक प्रायः बना लेता। प्रतिष्ठा भी होगई और फाल्गुन शु० ६ शनिश्चर वि० सं० १९९८ तदनुसार २१-२-४२ को 'जैन-जगती' भी समाप्त हो गई। पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि २५० पृष्ठ की 'जैन-जगती' के प्रारंभ करने में और उसके पूर्ण होने में गुरुदेव का प्रभाव किस सीमा तक रहा।

'जैन-जगती' बन तो गई, लेकिन उसको छपवाने की विकट समस्या उत्पन्न हो गई। एक रात्रि को तो ऐसा कुत्सित विचार किया कि इसको जला देना चाहिये। जब कि चिंताओं से मुक्त होने का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। गुरु महाराज को मैं नित्य सबेरे वंदन करने जाता था। इस विचार के आने के पश्चात् लगभग एक सप्ताह तक मैं वंदनार्थ नहीं गया। 'जैन-जगती' को मेरी धर्मपत्नी ने अधिकार में कर लिया था। गुरु महाराज ने मुझ को किसी कारण से बुलवाया। मैं जब वहां पहुँचा, उस समय

प्रकार की और जैन-समाज संबंधी विविध विषयों पर थोड़ी २ चर्चा होती रही। मुनिराज विद्याविजयजी भी वहाँ उपस्थित थे ही। आप यह तत्परता से देख रहे थे कि कहीं मास्टर शिथिल शब्दों में तो नहीं बोल रहा है। आप इस आशंका से आचार्य महाराज साहब के भावों का बीच-बीच में मधुर और स्नेहपूर्ण वाक्यो में बोल कर मेरे पर पूरा प्रभाव डाल रहे थे। समय होने पर हम सब वहाँ से उठे और अपने २ स्थानों को गये। परन्तु उस रात्रि को मुझे अपने घर में विशेष ज्योति और स्थल स्थल पर जागरण का अनुभव हुआ और मैंने भी जागते २ रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत किये। चतुर्थ प्रहर के प्रारंभ में 'जैन-जगती' का मंगलाचरण बना और प्रातः होने तक उसकी उपक्रमणिका बन गई। वह दिन 'शनिश्चर' का दिन था। यह मैंने तीन-चार वर्षों पश्चात् जाना कि मेरे महत्त्व के समस्त कार्य आपो-आप जाने-अनजाने शनिश्चर को ही प्रारंभ होते हैं और प्रायः समाप्त भी शनिश्चर को ही होते हैं। मैं चूक जाता हूँ तो शनिश्चर आ जाता है और शनिश्चर चूक जाता है तो मैं उस तक पहुँच ही जाता हूँ। प्रथम मैंने सरस्वती का वंदन किया और उठ कर बाहर आया और मंगलमयी उषा का दर्शन किया। उस दिन जो ज्योति और दिव्य आभा मैंने उषा में देखी, वह सच कहता हूँ, मुझको अच्छी भांति याद है मैंने पूर्व कभी नहीं अनुभव की थी। मैं शौच, स्नान-क्रिया से निवृत्त होकर उपाश्रय में पहुँचा और मुनिराज साहब विद्याविजयजी को 'जैन-जगती' का मंगलाचरण, लेखनी-वंदना और उपक्रमणिका सुनाई। उनको इतना आह्लाद हुआ कि वह अनिर्वचनीय है। हम दोनों गुरुदेव के समक्ष पहुँचे। यथाविधि वंदना कर लेने के पश्चात् मैंने पद्यों को जो तीन श्वेत पत्रों पर लिखे हुये थे, गुरुदेव के आगे बढ़ा दिया। उन्होंने पत्र लिये और वे उनका मौन वाचन कर गये। वाचन समाप्त करके बोले, "मास्टर! पद्य बहुत अच्छे हैं। ग्रंथ अच्छा बनेगा। प्रारंभ अच्छा तो अंत भी अच्छा।" हम दोनो वहीं बैठ गये और लगभग अर्ध घंटे तक इन्हीं पद्यों और जैन समाज के भूत, वर्तमान और भविष्य पर चर्चा होती रही। मैं जब वहाँ से उठकर सविनय वंदना करके चलने लगा और कुछ कदम उपाश्रय के द्वार की ओर बढ आया था, मुझको याद है, गुरुदेव ने कहा, "यह आगे जाकर साहित्य की अच्छी सेवा करेगा।" जैन-जगती के प्रारंभ की चर्चा बागरा नगर में भी उसी दिन फैल गई। अनेक मित्र और साहित्य-प्रेमी सज्जनों ने उक्त पद्यों का कितनी ही बार वाचन-श्रवण किया। जैन-जगती-लेखन का कार्य इस प्रकार सोत्साह चलने लगा। सहृदय मुनिराज विद्याविजयजी साहब के स्तुत्य सम्पर्क का पाठकगण! यह सुफल आया और चरित-नायक की कृपा दृष्टि ने क्या किया और क्या कर रही है और क्या करेगी इसकी रूप रेखा आगे का वर्णन और पूर्ण मेरा भविष्य बतलावेगा।

चातुर्मास पूर्ण करके गुरु महाराज शिष्य-मण्डली के सहित आकोली होते हुये सियाणा पधार गये।

गुरुकुल की अभिनव स्थापना के कारण गुरुकुल की व्यवस्था और उसकी उन्नति की दृष्टियों से मुझ को दिन का अधिक भाग और वह भी महत्त्वांश उस ओर

'जैन-जगती' और चरितनायक

व्यय करना पड़ता था। बागरा का जलवायु भी पहिले-पहिल अनुकूल नहीं पड़ा और ऐकान्तर ज्वर से मैं लगभग चार मास पीड़ित रहा और स्थिति यह आगई की स्थानान्तर होना आवश्यक प्रतीत होने लगा। इस पर भी गुरुकुल की सेवा आशा से बाहर करता रहा। समिति के सदस्यों की इस पर सहानुभूति अधिक ही बढ़ी। संगीत-अध्यापक सालिग्रामजी जो आयुर्वेद के निष्णात वैद्य हैं, वे जब गुरुकुल में अध्यापक होकर आये, उन्होंने तीन खुराक में मेरे ज्वर को सदा के लिये विलीन कर दिया। एक मास का अवकाश लेकर मैं घर आ गया। घर से जब बागरा लौटा तो शृंगाररस के जादू से मैं अभिभूत था। और वह 'रसलता' के मिस फिर उतरा। दो-चार मास फिर ऐसे-वैसे संस्था और गृहस्थ के झंझटो में व्यतीत हो गये। एक रात्रि को 'महाराणा प्रताप' ने आ घेरा। मैं बचपन से उनका श्रद्धालु था और उनको हिन्दू-कुल-गौरव-स्तम्भ मानता था। फलतः 'छत्र प्रताप' की सृष्टि हुई। तत्पश्चात् 'जैन-जगती' की चिंताओं ने आ घेरा। इन्हीं दिनो बागरा में अंजनशलाका-प्रतिष्ठोत्सव का होना निश्चत होकर गुरुमहाराज साहब का चातुर्मास भी बागरा में होना निश्चित् हो गया। गुरुकुल के छात्रों को प्रतिष्ठोत्सव के लिये संगीत और नाटक, ड्रामों में तैयार करना और उधर गुरु महाराज साहब को 'जैन-जगती' तैयार नहीं होने की स्थिति में कैसे मुंह दिखाना—दुविधा में पड़ गया। चातुर्मासार्थ वि० सं० १९९८ आश्विन पूर्णिमा को गुरुदेव का बागरा में प्रवेश महामहोत्सवपूर्वक हुआ। उसी दिन रात्रि को गुरुदेव ने पूछा, "मास्टर! 'जैन-जगती' का कितना कार्य शेष रहा है?" मैंने सविनय उत्तर दिया, "जी आप यहां विराजेंगे तब तक संभव है पूर्ण हो जावेगी। आपश्री फरमावें तो उसका सुनाना चालू किया जाय।" गुरुमहाराज बोले, "कल से ही रात्रि के समय प्रतिक्रमण-क्रिया के पश्चात्।" "जो आज्ञा।" उस दिन तक अतीत खंड के लगभग दो सौ छंद ही बन पाये थे। मैं हतोत्साह नहीं हुआ, ऐसे अवसरों पर मेरे में स्फूर्ति और उत्साह बढ़ता है। फल यह हुआ कि लगभग २५,३० छंद रोज अथवा ऐकान्तर जैसी गुरु महाराज को सुविधा होती सुना देता और उतने ही छंद न्यून या अधिक प्रायः बना लेता। प्रतिष्ठा भी होगई और फाल्गुन शु० ६ शनिश्चर वि० सं० १९९८ तदनुसार २१-२-४२ को 'जैन-जगती' भी समाप्त हो गई। पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि २५० पृष्ठ की 'जैन-जगती' के प्रारंभ करने में और उसके पूर्ण होने में गुरुदेव का प्रभाव किस सीमा तक रहा।

'जैन-जगती' बन तो गई, लेकिन उसको छपवाने की विकट समस्या उत्पन्न हो गई। एक रात्रि को तो ऐसा कुत्सित विचार किया कि इसको जला देना चाहिये। जब कि चिंताओं से मुक्त होने का अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। गुरु महाराज को मैं नित्य सवेरे वंदन करने जाता था। इस विचार के आने के पश्चात् लगभग एक सप्ताह तक मैं वंदनार्थ नहीं गया। 'जैन-जगती' को मेरी धर्मपत्नी ने अधिकार में कर लिया था। गुरु महाराज ने मुझ को किसी कारण से बुलवाया। मैं जब वहां पहुँचा, उस समय

गुरु महाराज के पास में एक वयोवृद्ध साहूकार श्री चमनाजी हुक्माजी बैठे हुये थे और अन्य कोई नहीं था। समय लगभग ग्यारह बजे दिन का था। गुरु महाराज ने मेरे चेहरे पर खिंची हुई चिंता की रेखाओं से मेरी उदासीनता के कारण को तुरन्त ही समझ लिया। मैं वंदना करके बैठ गया। गुरुदेव ने कहा, "मास्टर! 'बागरा-प्रतिष्ठोत्सव' पुस्तक शीघ्र ही छपवानी है, यह कब तक तैयार कर दोगे!" मैंने सविनय उत्तर दिया, "दस-पन्द्रह दिवसों में तैयार हो सकती है! कुछ सामग्री तो मैंने लिख ही रक्खी है, फोटो मास भर में जोधपुर से तैयार होकर आजाने चाहियें। पीढ़ी से प्रतिष्ठा संबंधी आय-व्यय का आँकडा जितना शीघ्र मिले, उतनी ही शीघ्र यह बन जाय।" कुछ देर तक इसी विषय पर वार्त्तालाप चलता रहा और फिर 'जैन-जगती' पर चर्चा चली। ज्योंही छपाई का प्रश्न चला गुरु महाराज ने कहा, "मैंने जेठमलजी खुमाजी से कह दिया है, वे तुमको इसके प्रकाशनार्थ दो सौ रुपये भेंट रूप में देंगे। आज उनसे ले आना और तब किसी अच्छे मुद्रणालय से पत्र-व्यवहार करके इसको शीघ्र छपने के लिये भेज दो। शेष रकम का फिर आगे प्रबंध होता रहेगा।" वयोवृद्ध चमनाजी, जिनको मैं 'बा' कहता था और जिनका मेरे पर पुत्र-सा स्नेह था, जिनके पुत्र डाहचंद्रजी और मेरे बीच भ्रातृत्व स्थापित हो चुका था बोले, "मास्टर साहब! आपने इस विषय में मुझको कभी भी कुछ नहीं कहा? छपाई में कुल कितनी रकम चाहिए?" मैंने कहा, "लगभग सात सौ।" "घटती रकम आप मुझ से ले जाना। पुस्तक को शीघ्र छपने भेज दीजिये।" दूसरे ही दिन तीन-चार मुद्रणालयों से पत्र व्यवहार प्रारम्भ कर दिया गया। कांति-प्रेस, आगरा से वह वि० सं० १९९९ चैत्र शु० त्रयोदशी, 'महावीर-जयन्ती' के शुभावसर पर छप कर बाहर आगई। इस प्रकार मेरी चितायें ज्वालाओं में नहीं बदल कर प्रसन्नता में बदल गईं। 'जैन-जगती' के विषय-वस्तु पर यहां कुछ कहना अप्रासंगिक है। आगे यथाप्रसँग उस विषय में कहा जायगा।

चरितनायक की बढ़ती हुई कृपा और लेखक के जीवन में साहित्यिकता की नींव

१—मुनिराज साहब विद्याविजयजी के सौजन्यपूर्ण व्यवहार के कारण उनकी पद्य-पुस्तक 'यतीन्द्रसूरि-प्रथम, भाग' की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझको ही प्राप्त हुआ और वह वि० सं० १९९५ में प्रकाशित हुई।

२—मेरी लिखी हुई 'श्री मन्मोहन विजय' वि० सं० १९९६ में प्रकाशित हुई।

३—'श्री यतीन्द्र-प्रवचन-हिन्दी' जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ की मुझ को प्रस्तावना लिखने का गौरव प्राप्त हुआ और वह मैंने ता० २१-१-४३ को लिखी और ग्रंथ तदनुसार वि० सं० २००० में प्रकाशित भी होगया।

४—'मेरी गोडवाड-यात्रा' नामक पुस्तक की रचना में चरितनायक की तत्त्वावधानता में भूति (मारवाड़) से निकले संघ का वर्णन है। यह संघ वि० सं० १९९९ में गोडवाड-प्रान्त की पचतीर्थी करने के उद्देश्य से निकला था। उपरोक्त पुस्तक में

पंचतीर्थी का ऐतिहासिक वर्णन के साथ में गोड़वाड़ के अन्य छोटे-बड़े अनेक नगर और ग्रामों का भी कुछ आवश्यकीय वर्णन है। इस ऐतिहासिक पुस्तक की प्रस्तावना लिखने का सौभाग्य भी इस कलम के चालक को प्राप्त हुआ। पुस्तक की प्रस्तावना मैंने १०-६-१९४४ को लिखी और पुस्तक वि० सं० २००१ तदनुसार ईसवी सन् १९४४ मे प्रकाशित हुई।

५—'प्राग्वाट-इतिहास का लेखन' यह कार्य मेरी साहित्यिक सेवाओं में विशेष प्रमुख है। श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिङ्ग-हाउस, सुमेरपुर के प्रमुख मंत्री श्री शाह ताराचन्द्रजी मेघराजजी आचार्यश्री के परम भक्त हैं। आप वि० सं० २००० में एक समय जब कि गुरु महाराज बागरा में विराज रहे थे, बागरा आये और गुरुमहाराज साहब ने आपको 'प्रग्वाट-इतिहास' लिखवाने के विषय में प्रेरणा की। गुरु महाराज साहब की मुझ पर पूर्ण कृपा थी ही, उन्होंने आपको मेरा परिचय दिया। फलस्वरूप श्री ताराचन्द्रजी मुझ से गुरुकुल-भवन में मिले और उनके और मेरे बीच 'प्राग्वाट-इतिहास' के लिखवाने के सम्बन्ध में ही चर्चा अधिक रूप में हुई। मैंने आपको इतिहास का महत्त्व और इतिहास जैसी शोधपूर्ण वस्तु को लिखने के योग्य लेखक की योग्यता और इतिहास लेखन में लगने वाला असीमित समय और व्यय संबंधी बातों से परिचित करवाया। बात इस ही स्तर तक होकर समाप्त होगई। गुरु महाराज और आप में इस विषय पर पत्र-व्यवहार बराबर चलता रहा और साथ ही साथ गुरु महाराज और मेरे में इस विषय पर विचार-विमर्श घटता रहा। निदान वि० सं० २००२ आश्विन् शुक्ला १२ शनिश्चर तदनुसार ता० २१-७-४५ को प्राग्वाट-इतिहास लेखन का भार गुरुमहाराज ने मेरे स्कंधो पर डाल ही दिया और उसी दिन से इतिहास का लेखन प्रारंभ हुआ जो आज तक चला आरहा है। आशा है अब थोड़े ही समय मे यह पूर्ण हो जावेगा। प्रग्वाट-इतिहास के विषय में सविस्तार आगे यथाप्रसंग लिखा जायगा।

६—'प्रकरण-चतुष्टय' नामक ग्रन्थ श्रीयतीन्द्रसूरि-साहित्य-माला पुष्प आठ जैसे शुद्ध शास्त्रीय ग्रन्थ की प्रस्तावना मुझ जैसे शास्त्रज्ञानविहीन को लिखने का संमान प्राप्त हुआ और वह वि० सं० २००५ तदनुसार ईस्वी सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ।

७—'श्री यतीन्द्र-प्रवचन-गुजराती द्वितीय भाग' की प्रस्तावना लिखने के लिये भी गुरुदेव ने मुझको आदेश दिया और वह ग्रन्थ भी वि० सं० २००५ तदनुसार ईस्वी सन् १९४८ में प्रकाशित हुआ।

८—'जैन-प्रतिमा-लेख-संग्रह' इस ग्रन्थ में उत्तर-गुजरात-थराद और अन्य छोटे मोटे नगरो के जैन मंदिरो के लगभग ३७४ शिला-लेखों का संग्रह है। गुरु महाराज का वि० सं० २००४ में चातुर्मास थराद में होना निश्चित हुआ था। आपश्री बाली (मारवाड़) से विहार करके जीरापल्लीतीर्थ की यात्रा करते हुये थराद पहुंचे थे। मार्ग में जितने नगर और ग्राम पडे, उनमें बने हुये जैन मंदिरो के आपने लेखों को शब्दान्तरित कर लिया। हमारे दुर्भाग्य से थराद में आप असहनीय बीमारी से पीड़ित हो उठे और बहुत दिनों तक अस्वस्थ रहे।

गुरु महाराज की बीमारी का समाचार श्रवण करके उनके दर्शनों के लिये दूर २ से अनेक परिवार, व्यक्ति उस वर्ष थराद भारी संख्या में पहुँचे थे। मारवाड़ से सपरिवार जाने वाले श्रावकों मे मै भी एक था।

गुरु महाराज ने 'जैन-प्रतिमा-लेख-संग्रह' के संपादन का भार मेरे पर डाला और वह मैंने सहर्ष स्वीकार किया। ग्रन्थ के विषय में तो आगे कहा जायगा। यहां इतना ही कह देना पर्याप्त है कि वह ग्रन्थ २८-६-४८ को तैयार हो चुका था और छपा ई० सन् १९५१ में।

उपरोक्त ग्रंथों से जैसा लेखक का सम्बन्ध है, पाठक सहज समझ सकते हैं कि चरितनायक उपरोक्त ग्रंथों के बहाने मुझको समाज, इतिहास, पुरातत्त्व, कविता, काव्य और धर्म जैसे विषयों का प्रभावक एवं रोचक ढंग से तत्परता एवं अविरलता से शिक्षण देते आते रहे हैं। संस्कृत भाषा का ज्ञान अगर मेरा बढ़ा अथवा घटने नहीं पाया है, तो गूर्जर-भाषा का ज्ञान जैसा मुझको हुआ है—सब आपश्री की मुझ को वत्सलतापूर्ण साहित्यिक सेवा करने के सुअवसरों को प्रदान करते रहने की ऊँची और प्रशंसनीय भावनाओं के कारण है।

इस उपरोक्त वक्तव्य से पाठक समझ गये होंगे कि गुरुदेव की मेरे पर कैसी आज तक सुदृष्टि रही। मेरा साहित्यिक कार्य अक्षुण्ण प्रगतिशील रहे और अर्थ-कष्ट से उसकी प्रगति मे रुकाव उत्पन्न नहीं हो जावे—इस पावन उद्देश्य को दृष्टि में रखकर गुरुदेव ने ता० २० मार्च सन् १९५२ को थराद नगर से पत्र लिखकर भेजा, जिसमें इस प्रकार स्वकलम से लिखा, "तुमको श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन' धामणिया (मेवाड़) द्वारा प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के प्रति प्रकाशनार्थ रु० ५०००) पांच सहस्र भेंट रूप से अर्पित करवाये जाते हैं सो स्वीकृत करना और यह निधि ग्रंथ-प्रकाशन मे ही व्यवहृत हो ऐसी हमारी इच्छा है। शुभमस्तु"। गुरुदेव ने यह अमूल्य भेंट देकर मेरा मूल्य कितना बढ़ाया, मेरे भविष्य में कितनी आशा बांधी तथा श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन की नींव कितनी सुदृढ़ की—यह सर्व सिद्ध करना अब मेरे पर निर्भर रह गया है। यहां तो पाठकों के समक्ष यह ही प्रकट करना है कि चरित-नायक के हृदय में समाज मे उदय होने वाले एवं होनहार दिखाई देते हुये युवकों के प्रति कितना गहरा झुकाव है और साहित्योन्नति के लिये आपकी कितनी ऊँची दृष्टि है।

लेखक को पांच हजार रु० की भेंट और श्री यतीन्द्र-साहित्य सदन, धामणिया की दृढ़ नींव

ऐसे महोपकारी गुरु के प्रताप से ही आज मैं सत्रह वर्षों की गुलामी से मुक्ति पाकर एकमात्र माता सरस्वती की आराधना करते हुये साहित्यिक सेवा जैसे कठोर एवं संघर्ष-स्वभावी व्रत को लेने का साहस कर सका हूँ। ऐसे महोपकारी गुरु का ऋण कभी भी पूर्णरूप से आज तक शायद ही कोई चुका सका होगा। मैं जो कुछ भी जीवन मे अच्छा कर पाऊंगा, वह सब आपश्री के मुझ पर चढ़े ऋण को चुकाने के प्रति एकमात्र होगा; परन्तु वह कितना?
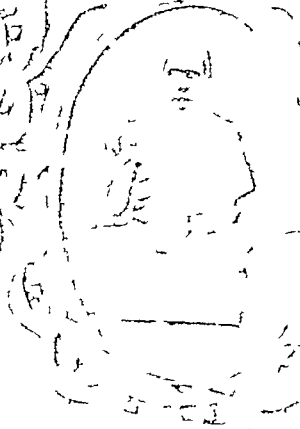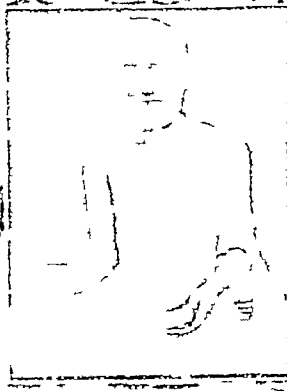
श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय त्रिस्तुतिकसम्प्रदाय-गुरु-परम्परा

श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय

संख्या	गृहस्थी नाम	साधुनाम	सूरिनाम	पिता	माता	ज्ञाति	नगर
१	रत्नराज	रत्नविजय	राजेन्द्रसूरि	ऋषभदास	केसर देवी	ओसवाल पारख	भरतपुर (स्टेट)
२	धनराज	धनचन्द्र विजय	धनचन्द्रसूरि	ऋद्धिकरण	अचला देवी	ओसवाल कंकुचोपड़ा	किशनगढ़ (मेवाड़)
३	देवीचन्द्र	दीपविजय	भूपेन्द्रसूरि	भगवानजी	सरस्वती देवी	माली	भोपाल (स्टेट)
४	रामरत्न	यतीन्द्रविजय	यतीन्द्रसूरि	व्रजलाल	चंपादेवी	ओसवाल जैसवाल	धोलपुर (स्टेट)

गुरु-परम्परा का परिचय-कोष्टक

प्रान्त	जन्म	लघु दीक्षा	बड़ी दीक्षा	उपाध्यायपद	सूरिपद	निर्वाण
राजपूताना	सं० १८८३ पौ० शु० ७ गुरु०	सं० १९०३ वै० शु० ५ शुक्र० भरतपुर	सं० १९०९ वै० शु० ३ सोम० उदयपुर (मेवाड़)	सं० १९०९ वै० शु० ३ सोम० उदयपुर (मेवाड़)	सं० १९२४ वै० शु० ५ बुध० आहोर (मारवाड़)	सं० १९६३ पौ० शु० ६ शुक्र० राजगढ़ (मालवा)
राजपूताना	सं० १९१६ चै० शु० ४ सोम०	सं० १९१७ वै० शु० ३ गुरु० धानेरा (पालनपुर स्टेट)	सं० १९२५ का० शु० ५ खाचरोद (मालवा)	सं० १९२५ मार्ग० शु० ५ खाचरोद (मालवा)	सं० १९६५ ज्ये० शु० ११ बुध० जावरा (मालवा)	सं० १९७७ भाद्र० शु० १ बागरा (मारवाड़)
मालवा	सं० १९४५ वै० शु० ३	सं० १९५२ वै० शु० ३ अलिराजपुर (मालवा)	सं० १९५५ माघ० शु० ५ गुरु० आहोर (मारवाड़)	० शुभम्	सं० १९८० ज्ये० शु० ८ जावरा (मालवा)	सं० १९९३ माघ० शु० ७ बुध० आहोर (मारवाड़)
राजपूताना	सं० १९४० का० शु० २ रवि०	सं० १९५४ आषाढ कृ० २ सोम० खाचरोद (मालवा)	सं० १९५५ माघ शु० ५ गुरु० आहोर (मारवाड़)	सं० १९८० ज्ये० शु० ८ जावरा (मालवा)	सं० १९९५ वै० शु० १० आहोर (मारवाड़)	शुभम्

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब का चातुर्मास-कोष्ठक

वि० सं० १९५४ से २०११

संख्या	संवत्	ग्राम, नगर	संख्या	संवत्	ग्राम, नगर
१	१९५४	रतलाम (मालवा)	३०	१९८३	आकोली
२	१९५५	आहोर (मारवाड़)	३१	१९८४	गुढ़ाबालोतरा
३	१९५६	शिवगंज (सिरोही)	३२	१९८५	थराद
४	१९५७	सियाणा (मारवाड़)	३३	१९८६	फताहपुरा
५	१९५८	आहोर	३४	१९८७	हरजी
६	१९५९	जालोर (मारवाड़)	३५	१९८८	जालोर
७	१९६०	सूरत	३६	१९८९	शिवगंज
८	१९६१	कुक्षी (मालवा)	३७	१९९०	सिद्धक्षेत्र पालीताणा
९	१९६२	खाचरोद (मालवा)	३८	१९९१	„ „
१०	१९६३	बड़नगर (मालवा)	३९	१९९२	खाचरोद
११	१९६४	रतलाम	४०	१९९३	कुक्षी
१२	१९६५	„	४१	१९९४	आलीराजपुर
१३	१९६६	„	४२	१९९५	बागरा
१४	१९६७	मंदसौर	४३	१९९६	भूति
१५	१९६८	रतलाम	४४	१९९७	जालोर
१६	१९६९	बागरा	४५	१९९८	बागरा
१७	१९७०	आहोर	४६	१९९९	खिमेल
१८	१९७१	जावरा	४७	२०००	सियाणा
१९	१९७२	खाचरोद	४८	२००१	आहोर
२०	१९७३	आहोर	४९	२००२	बागरा
२१	१९७४	सियाणा	५०	२००३	भूति
२२	१९७५	भीनमाल	५१	२००४	थराद
२३	१९७६	बागरा	५२	२००५	„
२४	१९७७	„	५३	२००६	बाली
२५	१९७८	रतलाम	५४	२००७	गुढ़ाबालोतरा
२६	१९७९	निबाहेड़ा	५५	२००८	थराद
२७	१९८०	रतलाम	५६	२००९	बागरा
२८	१९८१	बाग (ग्वालियर स्टेट)	५७	२०१०	सियाणा
२९	१९८२	कुक्षी	५८	२०११	आहोर

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब द्वारा की गई प्रतिष्ठा-अंजनशलाका-कोष्ठक

वि० सं० १९६१ से वि० स० २०११

वि० सं० —ग्राम, नगर —विशेष और प्रतिष्ठित बिंब

१—१९६१ फा० कृ० १ —बोरी (झाबुआ) —मू० ना० चन्द्रप्रभस्वामी बिंब की प्रतिष्ठा

२—१९६१ मार्ग० शु० ३ —गुणदी (जावरा) —मू० ना० शांतिनाथ-बिंब की प्रतिष्ठा

३—१९६४ पौ० शु० ११ —एलची (ग्वालियर) —मू० ना० पार्श्वनाथ-बिंब की प्रतिष्ठा

४—१९६७ वै० शु० ३ —मामटखेड़ा (जावरा)—मू० ना० चन्द्रप्रभस्वामी आदि तीन बिंबों की प्रतिष्ठा

५—१९७३ ज्ये० शु० १ गुरु० —सिरोडी (सिरोही) —स्वर्णदण्डध्वज की प्रतिष्ठा और आदिनाथ-चरणपादुका की अंजनशलाका

६—१९७४ मार्ग० शु० १० —उथमण (सिरोही) —पार्श्वनाथादि बिंबों की प्रतिष्ठा

७—१९७८ मार्ग० शु० ६ —संजीत (जावरा) —मू० ना० पार्श्वनाथ-बिंब की प्रतिष्ठा

८—१९८१ वै० शु० ५ भृगु० —रींगनोद (देवास) —मू० ना० चंद्रप्रभस्वामी आदि बिंबो की और गुरुचरण-पादुका की प्रतिष्ठा

९—१९८१ वै० शु० ११ गुरु० —झकणावदा (झाबुआ)—प्रतिष्ठा व अंजनशलाका

१०—१९८१ माघ शु० १० —बडीकड़ोद (धार) —श्री वासुपूज्य स्वामी आदि बिंबों की प्रतिष्ठा

११—१९८२ ज्ये० शु० ११ बुध० —कुक्षी (धार) —श्री सीमंधर स्वामी आदि पांच बिंब और स्वर्णकलशदण्डध्वज की प्रतिष्ठा

१२—१९८२ आषा० शु० १० मं०—नानपुर —श्री पार्श्वनाथ आदि बिंबों की प्रतिष्ठा

१३—१९८२ मार्ग० शु० १० बुध०—मोहनखेड़ा (ग्वालियर)—श्री राजेन्द्रसूरि-बिंब और चरण-पादुका की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

१४—१९८७ फा० शु० ३ शुक्र० —थलवाड़ (जोधपुर) — ६ जिन-बिंबों की और अधिष्ठायक, अधिष्ठायिका के बिंबों की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

१५—१९८८ माघ० शु० १० मं०—माण्डवपुर तीर्थ „ —दण्डध्वजारोहण और दो जिन बिंबों की प्रतिष्ठा

१६—१९८८ माघ० शु० १३ शुक्र० — मेंगलवा „ —दो धातु-जिनबिंबों की प्रतिष्ठा

१७—१९९४ मार्ग० शु० १० सोम० —लक्ष्मणीतीर्थ (आलीराजपुर)—चौदह जिन-बिंबों की प्रतिष्ठा और स्वर्णकलशदण्डध्वज, अधिष्ठायक, अधिष्ठायिका के बिंबों की अंजनशलाका

१८—१९९५ ज्ये० शु० १४ शनि० —हरजी (जोधपुर) —स्वर्णकलशदण्डध्वज और अधिष्ठायक, अधिष्ठायिका के बिंबों की अंजनशलाका

१९—१९९५ आषा० शु० ११ शुक्र० —डूडसी (जोधपुर) —मू० ना० नेमिनाथ आदि बिंबों की प्रतिष्ठा

२०—१९९६ वै० शु० ७ बुध० —श्री कोरटाजीतीर्थ „ —दो राजेन्द्रसूरि-बिंबों की अंजनशलाका

२१—१९९६ ज्ये० शु० २ रवि० —रोवाड़ा (सिरोही) —श्री राजेन्द्रसूरि-बिंब की प्रतिष्ठा

२२—१९९६ ज्ये० शु० ९ शनि० —फताहपुरा (जोध०)—श्री राजेन्द्रसूरि और हिम्मतविजयजी की चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

२३—१९९६ ज्ये० शु० १४ गुरु० —सलोदरिया „ —श्री पार्श्वनाथ-बिंब की प्रतिष्ठा

२४—१९९६ पौ० शु० ८ गुरु० —भूति „ —श्री राजेन्द्रसूरि-बिंब की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका

२५—१९९७ वै० शु० १४ —आहोर „ —स्वर्णकलशदण्डध्वज की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका

२६—१९९७ मार्ग० शु० १० सोम० —जालोर „ —श्री राजेन्द्रसूरि-बिंब की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका

२७—१९९८ मार्ग० शु० १० शुक्र० —बागरा „ —जिनबिंब, स्वर्णकलश-दण्डध्वज और श्री धनचन्द्रसूरि-बिंब की अंजनशलाका

२८—१९९८ फा० शु० ५ शुक्र० —सेदरिया „ —पांच जिन बिंबों की, स्वर्णकलश, दण्डध्वजादि की प्रतिष्ठा

२९—१९९९ माघ० शु० ११ सोम० —बलदूट (सिरोही) —स्वर्णकलशदण्डध्वज और अधिष्ठायकादि बिंबों की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

३०—१९९९ फा० शु० २ सोम० —ऊड़ (सिरोही) —दो जिनबिंबों की और अधिष्ठायकादि बिंबों की प्रतिष्ठा

३१—२००० वै० शु० ६ सोम० —सियाणा (जोधपुर)—दो जिनबिंबों की प्रतिष्ठा और नवीन ५४ जिनबिंबों की अंजनशलाका

३२—२००० ज्ये० शु० ६ बुध० —मंडवारिया (सिरोही)—मू० ना० पार्श्वनाथ-बिंब आदि की प्रतिष्ठा और अधिष्ठायकादि के बिंब, स्वर्ण कलश, दण्डध्वज की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका

३३—२००० फा० शु० ११ रवि० —धाणसा (जोधपुर)—मू० ना० श्री शांतिनाथ, गौडीपार्श्वनाथ आदि बिंबो की प्रतिष्ठा और अधिष्ठायकादि और गुरुबिंबो की तथा स्वर्णकलशदण्डध्वजों की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

३४—२००१ वै० शु० ७ शनि० —सेरणा „ —श्री पार्श्वनाथादि पाँच बिंबों की प्रतिष्ठा

३५—२००१ ज्ये० कृ० २ बुध० —धाणसा „ —गुरुमंदिर पर स्वर्णकलश-दण्डध्वजारोपण-प्रतिष्ठा

३६—२००१ माघ० शु० ८ कृ० —आहोर „ —जिनबिंब, गुरु-मूर्त्तियां और स्वर्णकलशदण्डध्वजों की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

३७—२००१ फा० ०५ —भेसवाड़ा „ —जिनबिंब और गुरु-मूर्त्ति की प्रतिष्ठा

३८—२००३ मार्ग० शु० ५ —भूति „ —श्री राजेन्द्रसूरि और धनचंद्रसूरि-बिंबों की प्रतिष्ठा

३९—२००५ माघ शु० ५ गुरु० —थराद (उत्तर गूर्जर)—जिनबिंबों की प्रतिष्ठा और स्वर्णकलशदण्डध्वज तथा श्री राजेन्द्र-बिंब की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका

४०—२००६ मार्ग० शु० ६ शुक्र० —वाली (जोधपुर) —नवीन-जिनबिंब और गुरु-प्रतिमा की अंजनशलाका

४१—२००७ माघ० शु० १३ —गुढ़ावालोतरा „ —जिनबिंब, गुरु-मूर्त्तियां और अधिष्ठायक-बिंबो की प्रतिष्ठा

४२—२००८ वै० शु० ५ —जालोर „ —पचीस जिनबिंब और कलशदण्डध्वज की प्रतिष्ठा

४३—२००८ माघ० शु० ५ गुरु० —थराद (उत्तर गूर्जर)—सप्तसत्तर (७७) जिनबिंब, चौदह जिनपट्ट, स्वर्णकलशदण्डध्वज, गुरु-बिंबों की अंजनशलाका

४४—२००९ ज्ये० कृ० ६ —वाली-मोरसीम (जोधपुर)—जिनबिंबों की प्रतिष्ठा

४५—२०१० ज्ये० शु० १० रवि० —भाण्डव तीर्थ „ —जिनबिंब, गुरु-प्रतिमा, अधिष्ठायक-मूर्त्तियां, स्वर्णकलशदण्डध्वज की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब की अधिनायकता में निकाले गये लघु और बृहद् संघ-कोष्ठक

वि० सं० १९८१ से वि० सं० २०११

वि० सं०	—किस स्थान से	— कहाँ के लिये	— किसकी ओर से
१—१९८१	— राजगढ़	—मण्डपाचलतीर्थ	—श्री जैन संघ, राजगढ़
२—१९८२	— राणापुर	—सिद्धाचलतीर्थ	—श्री राणापुर-संघ
३—१९८२	— पालीताणा	—गिरनारतीर्थ	—सियाणावासी काना ऊमाजी
४—१९८५	— थराद	—अर्बुदतीर्थ और गोड़वाड़-पंचतीर्थी	—श्री थराद-संघ
५—१९८६	— गुढ़ाबालोतरा	—जैसलमेरतीर्थ और ओसियांतीर्थ	—शाह लखाजी दोलाजी
६—१९९०	— पालीताणा	—गिरनारतीर्थ और कच्छभद्रेश्वरतीर्थ	—बागरानिवासी शाह प्रतापचंद्रधुड़ाजी
७—१९९३	— खाचरोद	—मण्डपाचलतीर्थ	—श्री जैन संघ, राजगढ़
८—१९९९	— भूति	—गोडवाड़-पंचतीर्थी	—शाह देवीचंद्र रामाजी

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब द्वारा की गई तीर्थ-यात्रा-कोष्ठक

वि० सं० १९८२ से वि० सं० २०११

वि० सं०	— किस स्थान से	— यात्रा-स्थान	— किन के संग
१—१९८२	— गिरनारतीर्थ	—शंखेश्वर, तारंगतीर्थ और अर्बुदतीर्थ	—साधु-मंडल के सहित
२—१९८४	— गुढ़ाबालोतरा	—कोरटाजीतीर्थ	— ,,
३—१९८४	— शिवगंज	—वरकाणातीर्थ	— ,,
४—१९८५	— थराद	—ढीमा, भोरोल	—साधु और श्रावकों के सहित

५—१९८६	— वाली	—कोटातीर्थ	—साधु-मंडल के सहित
६—१९८७	— थलवाड़	—भाण्डवपुरतीर्थ	— ,,
७—१९८८	— आहोर	— ,,	— ,,
८—१९८९	— शिवगंज	—कोटातीर्थ	— ,,
९—१९९०	— सियाणा	—सिद्धक्षेत्र-पालीताण	— ,,
१०—१९९१	— सिद्ध-पालीताणा	—केसरियातीर्थ	— ,,
११—१९९३	— आलीराजपुर	—लक्ष्मणीतीर्थ	— ,,
१२—२००४	— खिमेल	—गोडवाड़-पंचतीर्थी	— ,,
१३—२००४	— खुडाला	—जीरापल्लीतीर्थ	— ,,
१४—२००८	— गुढ़ावालोतरा	—भाण्डवपुरतीर्थ	— ,,
१५—२००९	— थराद	— ,,	— ,,

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब द्वारा किये गये श्री उपधानतप का कोष्ठक

वि० सं० १९७४ से वि० सं० २०११

वि० स०	—ग्राम, नगर	—तप कराने वाले —	तप करने वालों की सं०
१—१९७४	—सियाणा (मारवाड़)	—जैन संघ	—२०० (दो सो)
२—१९८९	—गुढ़ावालोतरा	—शाह लालचंद लखमाजी	—६१ (इकसठ)
३—१९९१	—पालीताणा	—बागरानिवासी शाह ओटमल घुड़ाजी	—५० (पचास)
४—१९९२	—खाचरोद	—श्री जैन संघ	—२५० (दो सौ पचास)
५—२००२	—बागरा	—श्री जैन संघ	—३५० (साढ़े तीन सौ)
६—२००२	—आकोली	—शाह लालचंद अभयचन्द्र	—३५० (साढ़े तीन सौ)

चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब द्वारा रचित-मुद्रित गद्य-पद्य हिन्दी-साहित्य-कोष्ठक

वि० सं० २०११

ग्रन्थ-नाम	मुद्रण सं०	पृष्ठाङ्क
१ तीन स्तुति की प्राचीनता	१९६३	१६
२ भावना स्वरूप (१२ भावना संक्षिप्त)	१९६५	१६
३ गौतम पृच्छा (केवल भावानुवाद)	१९७१	२५
४ नाकोड़ा पार्श्वनाथ (ऐतिहासिक)	१९७१	५६
५ सत्यबोध-भास्कर (प्रतिमा-पूजा-संसिद्धि)	१९७१	१६२
६ जीवन प्रभा (श्री विजयराजेन्द्रसूरीश्वर-जीवनी)	१९७२	४४
७ गुणानुरागकुलक (शब्दार्थ, भावार्थ विस्तृत विवेचनसहित	१९७४	४८४
दूसरी आवृत्ति संवर्धित डेमी ८ पेजी साइज)	१९९५	३९३
८ लघु चाणक्यनीति का अनुवाद	१९७६	६४
९ जन्म-मरण-सूतक-निर्णय	१९७८	१६
१० संक्षिप्त जीवन-चरित्र (श्री धनचन्द्रसूरिजी का)	१९८०	१७३
११-१२ जीवभेद-निरूपण और गौतमकुलक (शब्दार्थ भावार्थ)	१९८०	४८
१३-१४ पीतपटाग्रह-मीमांसा और निक्षेप-निबंध	१९८०	६२
१५ जिनेन्द्रगुणगान-लहरी (स्तवनादि संग्रह)	१९८०	१२०
१६ जैनर्षिपट्ट-निर्णय (श्वेत वस्त्र सिद्धि)	१९८१	५२
१७ रत्नाकर-पच्चीसी (शब्दार्थ-भावार्थ)	१९८२	२४
१८ श्री मोहनजीवनादर्श (मोहन विजयोपाध्याय-जीवनी)	१९८२	५६
१९ अध्ययन चतुष्टय (दशवैकालिकसूत्र के ४ अध्ययन का शब्दार्थ-भावार्थ)	१९८२	८२
२० कुलिङ्गीवदनोद्‌गार-मीमांसा	१९८३	७८
२१-२२-२३ अघटकुमार, रत्नसार, हरीबलधीवर-चरित्र (गद्य संस्कृत)	१९८४	
२४ आर्हत्प्रवचन (संग्रहीत गुजराती)	१९८५	६४
२५-२६ जीवभेद-निरूपण अने गौतमकुलक (गुजराती)	१९८५	५२
२७ श्री यतीन्द्र विहार-दिग्दर्शन प्रथम भाग	१९८६	३०५
२८ श्री कोर्टाजीतीर्थ का इतिहास	१९८७	११२
२९ श्री जगडूशाह चरित्रं गद्यम् (पत्राकार)	१९८८	४१
३० श्री कयवन्ना चरित्रं गद्यम् (पत्राकार)	१९८८	१७
३१ श्री यतीन्द्र विहार-दिग्दर्शन द्वितीय भाग	१९८८	३०९

ग्रन्थ-नाम	मुद्रण सं०	पृष्ठाङ्क
३२ बृहद्विद्वद्गोष्ठी संवर्धिता (पत्राकार)	१९८९	१३
३३ चम्पकमाला चरित्रं गद्यम् (पत्राकार)	१९९०	४१
३४ श्री राजेन्द्रसूरीश्वरजीवन-परिचय(कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी में)	१९९०	२४
३५ श्री सिद्धाचल-नवाणुंप्रकारी पूजा	१९९१	६४
३६ श्री चतुर्विंशतिजिनस्तुतिमाला (श्लोकबद्धा)	१९९१	२४
३७ श्री यतीन्द्र विहार-दिग्दर्शन तृतीय भाग	१९९१	२०८
३८ श्री राजेन्द्रसूरीश्वर अष्टप्रकारी पूजा	१९९१	३८
३९ श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन चतुर्थ भाग	१९९३	३१०
४० सविधि-स्नात्रपूजा (नवीन)	१९९३	२१
४१ मेरी नेमाड-यात्रा (ऐतिहासिक)	१९९६	८४
४२ अक्षयनिधितपविधि तथा श्री पौषधविधि	१९९९	६४
४३ श्री भाषण सुधा (सात व्याख्यानों का संग्रह)	१९९९	६२
४४ श्री यतीन्द्र-प्रवचन-हिन्दी प्रथम भाग	२०००	२९०
४५ समाधान-प्रदीप हिन्दी प्रथम भाग	२०००	२७०
४६ सूक्तिरसलता (सिंदूर प्रकर का हिन्दी पद्यानुवाद)	२००१	७९
४७ मेरी गोड़वाड़-यात्रा	२००१	१००
४८ प्रकरण चतुष्टय (जीवविचार, नवतत्त्व, दण्डक तथा लघुसंग्रहणी इन चार प्रकरणों का अन्वयार्थ-भावार्थ हिन्दी)	२००५	२३१
४९ श्री यतीन्द्र-प्रवचन गुजराती (औपदेशिक) द्वितीय भाग	२००५	५०१
५० श्री विंशतिस्थानकपद-तपविधि	२००५	९१
५१ देवसी पडिक्कमण (हिन्दी शब्दार्थ)	२००७	१७२
५२ श्री सत्यसमर्थक प्रश्नोत्तरी	२००९	४८
५३ साध्वी-व्याख्यान-समीक्षा	२०१०	२६
५४ साधुप्रतिक्रमणसूत्र-शब्दार्थ (हिन्दी)	२०११	१८०
५५ स्त्री-शिक्षा-प्रदर्शन (हिन्दी)	२०११	६९
५६ श्री सत्पुरुषों के लक्षण ('तृष्णां छिन्धि' श्लोक की व्याख्या)	२०११	—
५७ श्री तपःपरिमल	२०११	४८

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ

वंश-परिचय और चरितनायक का बाल्य-जीवनः—

जैसवाल कुल की स्थापना। ३
व्रजलालजी का चंपाकुंवर के साथ पाणिग्रहण और गृहस्थ जीवन। ५
दुल्हीचंद्र और गंगाकुमारी का जन्म। .. ६
रामरत्न का जन्म, रायसाहब की उपाधि की प्राप्ति, रमाकुंवर और किशोरीलाल का सहजन्म। ७
पुत्र और पुत्रियों की शिक्षा। ८
श्री व्रजलालजी के जीवन में परिवर्त्तन। „
भोपाल में निवास और चरितनायक की शिक्षा। ९
श्री व्रजलालजी का स्वर्गारोहण और चरितनायक के जीवन में परिवर्त्तन। ... ११
ठग की कला पर पानी फेरना। ... १३
चोर का पीछा और राज्य-मान की प्राप्ति। .. १४
नाटक का अवलोकन और नवीन दिशा का उद्‌घाटन। .. १७

वैराग्य-भावों का उद्‌भवः—

सूरिजी के दर्शन और वार्त्तालाप। १८
सम्पर्क का बढ़ना और वैराग्य-भाव की उत्पत्ति। २०
सूरिजी का विहार और चरितनायक का अनुगमन। ... २१
दीक्षा लेने का दृढ़ निश्चय और सूरिजी से प्रार्थना और उसकी स्वीकृति। २२

चारित्र का लेना—

दीक्षा का प्रस्ताव। २७
दीक्षा-महोत्सव। .... .. „

गुरु महाराज के साथ में दस चातुर्मासः—

(१) वि० सं० १९५४ में रतलाम में चातुर्मास। ... ३२
(२) वि० सं० १९५५ में आहोर में चातुर्मास। .. „
(३) „ १९५६ में शिवगंज में „ ३३
(४) „ १९५७ में सियाणा में „ .... „
(५) „ १९५८ में आहोर में „ .... „
(६) „ १९५९ में जालोर में „ ३४

विषय		पृष्ठ
(७) वि० सं० १९६० में सूरत में ,,	....	३५
(८) ,, १९६१ में कुची में ,,	....	,,
बोरी और गुणदी ग्रामो में प्रतिष्ठायें।	.	,,
(९) वि० सं० १९६२ में खाचरोद में चातुर्मास।		३६
(१०) ,, १९६३ में बड़नगर में ,,	..	३७
'अभिधान–राजेन्द्र–कोष' का सम्पादन।		४०
श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी की आज्ञा से नव चातुर्मास।	....	४३
श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी की आज्ञा से अन्य पांच चातुर्मासः—		
(१०) वि० सं० १९७३ में आहोर में चातुर्मास।		४८
(११) ,, १९७४ में सियाणा में ,,	..	५०
(१२) ,, १९७५ में भीनमाल में ,,	....	५१
श्री चमनश्रीजी की दीक्षा	.	५२
(१३) वि० सं० १९७६ में बागरा में चातुर्मास।		,,
श्री पुण्यश्रीजी की दीक्षा।	.	५३
(१४) वि० सं० १९७७ में बागरा में चातुर्मास।	....	५४
श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी और उपा० मोहनविजयजी का स्वर्गवास।		,,
मुनिराज दीपविजयजी की आज्ञा से दो चातुर्मास और जावरा में पदोत्सवः—		
(१५) वि० सं० १९७८ में रतलाम में चातुर्मास।		५५
(१६) वि० सं० १९७९ में निम्बाहेड़ा में ,,		५६
मालवदेशीय राजेन्द्र-महासभा का रतलाम में अधिवेशन और आपश्री को निमन्त्रण।	...	५७
सूरिपदोत्सवः—		
अल्पतम समय में विशालतम प्रबंध।	.	५९
जावरा-नरेश का सहयोग।		,,
(१७) वि० स० १९८० में रतलाम में चातुर्मास।		,,
श्रीमद् सागरानंदसूरिजी का शास्त्रार्थ निमित्त प्रस्ताव।		,,
श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से चातुर्मास और अन्य कार्यः—		
सम्मति-पत्रम्।	...	६४
मुनि सागरानंदविजयजी की दीक्षा।	....	६६
मुनि वल्लभविजयजी और विद्याविजयजी को बड़ी दीक्षायें।	....	,,
रींगणोद में साध्वी विमलश्रीजी की दीक्षा और जैन बिम्बों की प्रतिष्ठा।		६७

विषय पृष्ठ

झकणावदा में प्रतिष्ठा और अंजनशलाका। ६७
राजगढ़ में कुसंप का मिटाना और गुरु-मदिर की प्रतिष्ठा। .... ,,
(१८) बागरा में १८वां चातुर्मास और सागरानंदविजयजी की वड़ी दीक्षा। ६८
वड़ी कड़ोद में प्रतिष्ठा। .... ,,
मण्डपाचल तीर्थ की यात्रा। ६९
कुक्षी में रेवा-विहार की प्रतिष्ठा। ७०
अलिराजपुर में पदार्पण। ७१
नानपुर में विंव-प्रतिष्ठा। .... ,,
(१६) वि० सं० १६८२ में कुक्षी में चातुर्मास। .... ,,
कुक्षी से मोहनखेड़ा और मोहनखेड़ा से राणापुर तक श्री चरितनायक के विहार का दिग्दर्शन। ७२
राजगढ़ में गुरु-मूर्त्ति और चरण-पादुकाओं की प्रतिष्ठा। .... ,,
राणापुर के श्रीसंघ का सिद्धाचलतीर्थ की यात्रा के लिये निमन्त्रण और चरितनायक का उसे स्वीकार करना तथा यात्रा का दिन निश्चित करना ७३

तीर्थयात्रायें और अन्य कार्य:—

श्री राणापुर-संघ का राणापुर से पालीताणा तक की संघ-यात्रा का दिग्दर्शन। ७५
पुर-प्रवेशोत्सव तथा तीर्थ-दर्शन। ७७
चरितनायक का गिरनारतीर्थ की यात्रार्थ प्रस्थान। ७८
श्रीपालीताणा से गिरनारतीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन। .... ,,
श्रीगिरनारतीर्थ से शंखेश्वरतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन। ७६
श्रीशंखेश्वरतीर्थ से श्री तारंगतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन। ८१
श्री तारंगतीर्थ से श्री अर्बुदाचलतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन ८३
श्री अर्बुदाचलतीर्थ की यात्रा। .... ,,
श्री अर्बुदाचलतीर्थ से सिरोही और आहोर तक का विहार-दिग्दर्शन। ८४

श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से मरुधर में चातुर्मास और अन्य कार्य:—

(२०) वि० सं० १६८३ में आकोली में चातुर्मास। ८६
सियाणा में श्री चेतनश्रीजी और चतुरश्रीजी की लघुदीक्षा। ८८
आकोली में कुसंप का मिटाना और जिनालय की प्रतिष्ठा में आपका सहयोग। ८९
(२१) वि० सं० १९८४ में गुढ़ावालोतरा में चातुर्मास।
श्रे० जीवाजी लखाजी की ओर से चातुर्मास का व्यय वहन करना। ९०
चातुर्मास में पुण्य कृत्य। .... ,,

विषय | पृष्ठ

गुढ़ाबालोतरा से शिवगंज और श्रीवरकाणातीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन। ९१
वरकाणा से जालोर तक का विहार-दिग्दर्शन। ९२
शान्तिश्रीजी की दीक्षा। ९३
जालोर से भीनमाल तक का विहार-दिग्दर्शन। ९४
भीनमाल से धानेरा तक का विहार-दिग्दर्शन। ९५

श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से थराद में चातुर्मास और अन्य कार्यः—

धानेरा से थराद तक का विहार-दिग्दर्शन। ९६
श्री भीलड़िया तीर्थ के दर्शन करते हुये चरितनायक का थिरपद्र नगर में पदार्पण। .... "
थराद से जाणदी तक का विहार-दिग्दर्शन। ९७
(२२) वि० सं० १९८५ में थराद में चातुर्मास। ९८
भोरोलतीर्थ की यात्रा। "
वरखड़ी में श्री पार्श्वनाथ-पादुका की स्थापना। ९९
अर्बुदाचलतीर्थ और गोड़वाड़-पंचतीर्थी की लघु संघ-यात्रा का प्रस्ताव। "

श्री अर्बुदगिरितीर्थ और गोड़वाड़-पंचतीर्थी की लघु संघ-यात्रा और मरुधर में चातुर्मासः—

थराद से श्री अर्बुदाचलतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन। १००-१०२
श्री अर्बुदाचलतीर्थ से श्री राता-महावीर तीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन। १०३
बीजापुर से गोड़वाड़-पंचतीर्थी और खुडाला ग्राम तक का विहार-दिग्दर्शन १०४
बाली में छः दिन की स्थिरता। "

श्री कोर्टा तीर्थ की यात्रा और फताहपुरा में चातुर्मास व अन्य कार्यः—

बाली से प्राचीन तीर्थ श्री कोर्टाजी तक का विहार-दिग्दर्शन। १०५
(२३) वि० सं० १९८६ में फताहपुरा में चातुर्मास। १०७
अन्यत्र विहार और सायला में सुवर्णदण्ड ध्वजारोहण। १०८

श्री जैसलमेर तीर्थ की संघ-यात्राः—

गुढ़ाबालोतरा से जैसलमेर तीर्थ तक तथा श्री जैसलमेर तीर्थ से लोध्रवाजी तीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन। १०९
गुढ़ा बालोतरा से जैसलमेर तीर्थ तक में आये हुये मार्ग के प्रमुख ग्राम पुरों मे की गई नवकारशियों की सूची। १११
संघ का पुर-प्रवेश और जैसलमेर तीर्थ में संघ का दस दिवसीय कार्य-क्रम। ११३
श्री जैसलमेर तीर्थ से श्री ओसियाजी तीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन। ११६

विषय पृष्ठ

संघ का जोधपुर में स्वागत और वहां से संघ का विसर्जन। ११८

श्री ओसियांजी तीर्थ से जोधपुर तक संघ का और जोधपुर से साधु-मंडली का विहार-दिग्दर्शन। १२०

श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से मरुधर में तीन चातुर्मास और अन्य कार्यः—

(२४) वि० सं० १९८७ में हरजी में चातुर्मास। १२१

चातुर्मास के पश्चात अन्यत्र विहार और थलवाड में प्रतिष्ठोत्सव। .. १२३

भाण्डवतीर्थ की यात्रा और जालोर में ज्ञान-भण्डार की स्थापना। . १२४

आहोर में साधु-दीक्षा। ,,

(२५) वि० सं० १९८८ में जालोर में चातुर्मास। १२५

नवपदोद्यापनोत्सव का करना। ,,

जालोर में भूपेन्द्रसूरिजी के साथ में कुछ दिनों का सहवास और विहार १२८

भाण्डव तीर्थ में श्री महावीर-मंदिर पर दण्ड-ध्वजारोहण और प्रतिष्ठा तथा भाण्डव तीर्थ का कुछ परिचय। १२९

(२६) वि० सं १९८९ में शिवगंज में चातुर्मास। १३१

भाण्डव तीर्थ से विहार और जालोर में सूरिजी के दर्शन तथा उनके साथ में शिवगंज में चातुर्मास। १३२

शिवगंज से विहार और कोरंटपुर तीर्थ (कोटाजी) के दर्शन करना। १३४

गुढाबालोतरा में गुरु जयन्ती तथा उपधानतप का आराधन तथा वहीं दीक्षायें। . १३६

सूरिजी के साथ में विहार। ,,

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में २७ वां चातुर्मासः—

चातुर्मास करने की दृष्टि से विहार। १३७

सियाणा नगर से सिद्धक्षेत्र-पालीताणा तक का विहार-दिग्दर्शन। .. १३९

(२७) वि० सं० १९९० में सिद्धक्षेत्र पालीताणा में चातुर्मास। १४३

श्रीकच्छ-भद्रेश्वर तीर्थ की लघु संघ-यात्राः—

संघपति का परिचय और संघ निकालने का प्रस्ताव। १४५

लघु संघ-यात्रा का निकलना। . १४६

श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा से श्रीकच्छ भद्रेश्वरतीर्थ तक का लघु संघ-यात्रा-दिग्दर्शन। १४७

अंजार और श्री भद्रेश्वरतीर्थ में पहुँचना। १५२

श्री कच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ से सिद्धक्षेत्र-पालीताणा तक का लघु संघ-यात्रा-दिग्दर्शन। १५४

विषय पृष्ठ

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में २८ वां चातुर्मास और तत्पश्चात् मेवाड़, मालवा की ओर विहारः—

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में दूसरा २८ वां चातुर्मास। १५८
सिद्धक्षेत्र-पालीताणा से श्री केसरिया तीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन १५९
श्री केसरिया तीर्थ से डूंगरपुर, बांसवाडा, राजगढ़ होकर खाचरोद। तक का विहार-दिग्दर्शन। १६४
(२६) वि० सं० १६६२ मे खाचरोद मे चातुर्मास। १६७
चातुर्मास के पश्चात् खाचरोद से अन्य ग्रामो में विहार और पुन खाचरोद में पदार्पण तक का विहार-दिग्दर्शन। १७०

श्री मण्डपाचल तीर्थ की संघ-यात्राः— १७२

कुची की ओर विहार। तत्पश्चात् लक्ष्मणीतीथादि के दर्शन। .. १७४
खाचरोद से श्री मण्डपाचल तीर्थ और मण्डपाचल तीर्थ से कुची तक का विहार-दिग्दर्शन। १७६
(३०) वि० सं० १९९३ में कुची में चातुमास। १७८
प्रेमविजयजी की दीक्षा। ... १७९
मालवा-प्रान्त के अन्य ग्राम व नगरों मे विहार। ,,
वि० सं० १९९४ में आलीराजपुर में ३१ वां चातुर्मास और तत्पश्चात् श्री लक्ष्मणीतीर्थ की प्रतिष्ठा। १८०
चरितनायक को सूरिपद तथा गच्छ-भार अर्पित करने का संघ का निश्चय। १८१

मरुधर में पदार्पण और आहोर नगर में सूरिपदोत्सवः—

आहोर मे चरितनायक का आगमन। १८३
सूरिपद का ग्रहण करना। १८४

सूरिपद से बागरा में प्रथम चातुर्मास और तत्पश्चात् प्रतिष्ठायें एवं दीक्षायें:—

हरजी मे प्रतिष्ठा। १८७
डूडसी मे प्रतिष्ठा। ,,
मुनि न्यायविजयजी की दीक्षा। .. १८८
(३२) वि० सं० १९९५ मे बागरा मे चातुमास। १८९
लावण्यविजयजी की दीक्षा। १९०
सियाणा मे बड़ी दीक्षायें। ,,
श्री कोर्टातीर्थ मे बिंब-स्थापना एवं प्राण-प्रतिष्ठा। १९१
रोवाड़ा (सिरोही) मे गुरु-प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा। .... ,,

विषय	पृष्ठ
फताहपुरा में प्राण-प्रतिष्ठा।	१९२
सलोदरिया में प्रतिष्ठा।	"
(३३) वि० सं० १९९८ मे भूति मे चातुर्मास और गुरु-प्रतिमा की अंजनशलाका।	"
गुरु-चरण-युगल की अंजनशलाका।	१९३
(३४) वि० सं० १९९७ मे जालोर में चातुर्मास और गुरु-प्रतिमा की अंजनशलाका।	१९४

मारवाड-बागरा में ३५ वा चातुर्मास और तदनन्तर श्री प्राण-प्रतिष्ठाः—

बागरा का परिचय।	१९५
सौधशिखरी श्री पार्श्वनाथ-जिनालय।	१९६
श्री महावीर-जिनालय और समाधि-मंदिर।	१९७
श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल।	"
प्रतिष्ठा का प्रस्ताव और चातुर्मास के लिये विनती।	१९८
कार्यकारिणी प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति।	१९९
चरितनायक का चातुर्मासार्थ शुभागमन।	"
प्रतिष्ठा-समिति की बैठक और उसके अधीन कई विभागो का निर्माण।	२००
समिति की बैठक और चढ़ावे।	२०२
समिति की बैठकें और चढ़ावे।	२०३
चरितनायक का चातुमास।	२०६
चरितनायक का पुनः पदार्पण और प्रतिष्ठोत्सव का प्रारम्भ।	२०७

सेदरिया में प्रतिष्ठा और सियाणा मे उद्यापन और बड़ी दीक्षाः—

विहार और सेदरिया में प्रतिष्ठा।	२१०
सियाणा मे उद्यापन एवं ७ मुनियो की बड़ी दीक्षा एव विहार।	२११

खिमेल में ३६ वा चातुर्मास और गोडवाड़-पंचतीर्थी की संघ-यात्राः –

खिमेल में ३६ वां चातुर्मास और भूति से गोडवाड-पंचतीर्थी की यात्रा करने के लिये संघ निकालने का प्रस्ताव तथा वरलूट में प्रतिष्ठा कराने का प्रस्ताव और उसका स्वीकृत होना।	२१२
श्री गोडवाड-पंचतीर्थी की संघ-यात्रा।	२१३

सिरोही-राज्य के जोरा मगरा में विहार और प्रतिष्ठादि कार्य.—

वरलूट की ओर विहार और प्राण प्रतिष्ठा।	२१८
रूड़ में प्रतिष्ठा।	२१९

विषय पृष्ठ

मण्डवारिया और देलदर मे स्थिरता और सुधार-वृद्धि और तत्पश्चात् सियाणा में पदार्पण। २२०

सियाणा में अनेक जिन बिंबों की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा एवं तत्पश्चात् सियाणा में चातुर्मासः—

सियाणा और उसका संक्षिप्त परिचय। २२१
श्री सुविधिनाथ-जिनालय की देवकुलिकाओं में बिंबों की प्रतिष्ठा करवाने का प्रस्ताव और आचार्य महाराज से विनती। ... २२२
आचार्यश्री का नगर-प्रवेश और स्थापनोत्सव के साथ में प्राण-प्रतिष्ठोत्सव कराने का भी प्रस्ताव स्वीकृत। २२३
अंजनशलाका प्राण-प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियां। २२५
मण्डप की स्थापना। .... ,,
प्रतिष्ठोत्सव का समारंभ। २२६
आचार्यश्री राजेन्द्रसूरिजी द्वारा वि० सं० १५५८ माघ शु० १३ गुरु० को प्रतिष्ठित श्री सुविधिनाथ-जिनालय, सियाणा में चरितनायक द्वारा निम्नलिखित जिन प्रतिमाओं की स्थापना। २२७
चरितनायक द्वारा अंजनशलाका-प्रतिष्ठाकृत प्रतिमाओं की सूची। २२९
मण्डवारिया में प्राण-प्रतिष्ठा। २३१
(३७) वि० सं० २००० मे सियाणा में चातुर्मास। ... २३२

धाणसा में प्राण-प्रतिष्ठोत्सवः—

धाणसा। .. २३३
धाणसा में प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियां। २३५
आचार्यदेव का सियाणा से विहार और बागरा मे पदार्पण और आयंबिल-खाते का खुलवाना तथा धाणसा मे शुभागमन। २३६
प्रतिष्ठोत्सव का समारंभ। ... . ,,
आचार्यश्री द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का परिचय। २३८
सेरणा मे प्रतिष्ठा। २४०
स्वर्णकलश एवं दण्ड-ध्वजारोहण और धाणसा मे चातुर्मास का निश्चय। ,,

आहोर में ३८ वां चातुर्मास एवं प्राण-प्रतिष्ठा और दीक्षायें:—

आहोर में प्राण-प्रतिष्ठा। २४१
छोटी एवं बड़ी दीक्षायें ... २४३

विषय	पृष्ठ
भेसवाड़ा में प्रतिष्ठा।	२४५
बागरा में गुरुदेव का ३९ वां चातुर्मास और उपधानतपोत्सव:--	
उपधानतप की भावना।	२४७
बीस सहस्र का सराहनीय दान। ..	”
अट्ठाई-महोत्सवों की धूम-धाम। .	२४८
मिडिल स्कूल की योजना। .	२४९
दो सहस्र का सराहनीय दान। ..	२५०
मुनि हंसविजयजी का स्वर्गारोहण। ...	”
उपधानतप और उसका महत्त्व।	”
उपधानतप का महोत्सव।	२५३
आमंत्रण-पत्रिका।	२५४
मण्डप रचना। ..	”
उपधानवाहकों की व्यवस्था।	”
उत्सवारम्भ।	२५५
उपधानतप का समारम्भ और पूर्णाहुति पर्यन्त का संक्षिप्त परिचय।	”
आकोली (मारवाड़) में उपधानतप और दीक्षा:--	२०६
आकोली में श्री देवेन्द्रश्रीजी की दीक्षा।	२६२
बागरा और हरजी में दीक्षायें:--	
बागरा में दो दीक्षायें—	
श्री कुसुमश्रीजी की दीक्षा। ...	२६३
श्रीकुमुदश्रीजी की दीक्षा।	”
हरजी में तीन दीक्षायें—	”
मुनि सौभाग्यविजयजी की दीक्षा। ...	२६४
मुनि शान्तिविजयजी की दीक्षा। .	”
श्री क्षमाश्रीजी की दीक्षा।	”
भूति में ४० वा चातुर्मास और पाठशाला की स्थापना तथा प्रतिष्ठा-महोत्सव और दीक्षा:--	
भूति में ४० वा चातुर्मास और पाठशाला की स्थापना का प्रस्ताव।	२६५
भूति में प्रतिष्ठोत्सव।	२६६
देवेन्द्रविजयजी की दीक्षा।	२६७
कौशीलाव में शान्ति-स्नात्र। .	”

विषय पृष्ठ

श्री गोडवाड़-पंचतीर्थ के लिये लघु संघ-यात्रा और तत्पश्चात् थराद में ४१ वाँ चातुर्मासः— २६८

लघु संघ-यात्रा की समाप्ति, थराद में चातुर्मास होने का निश्चय और थराद के लिये विहार। २६९

जीरापल्लीतीर्थ से थराद पर्यन्त विहार-दिग्दर्शन। २७०

थराद में ४१ वां एवं ४२ वां चातुर्मास, आपश्री का अतिशय बीमार पड़ना, समाज में खलबली का मचना और थराद मे हुई प्रतिष्ठाञ्जनशलाकाः—

(४१) वि० सं० २००४ में थराद में चातुर्मास। २७२

चरितनायक का अति बीमार होना और श्री 'जैन प्रतिमा लेख संग्रह' का सम्पादन। २७४

(४२) वि० सं० २००५ में थराद में चातुर्मास—

मुनि सागरानन्दविजयजी का बीमार होना और थराद में ही चातुर्मास का निश्चय और जय। २७५

एक पाखण्डी जैन साधु का गुरुदेव का अनिष्ट करने के लिये छल छमन्द करना और उनकी निष्फलता। . २७६

थराद के राज्य में विहार। २७७

अंजनशलाका और दीक्षायें। .... ,,

मुनि रसिकविजयजी की लघु भागवती-दीक्षा। २७८

मरुधर की ओर विहार। .... ,,

बाली में ४३ वां चातुर्मास और प्राण-प्रतिष्ठोत्सवः—

बाली में अंजनशलाका प्राण-प्रतिष्ठोत्सव। . २८०

बाली से विहार और शेषकाल में कई महत्त्वशाली कार्य—

खिमेल में वीशस्थानकतप-उद्यापन। . २८३

गुढ़ा में ज्ञान-भण्डार की स्थापनार्थ भवन का निर्माण। ,,

बागरा मे महाशान्ति स्नात्रपूजा। .. . ,,

सियाणा मे दो वीशस्थानकतप-उद्यापन। ,,

गुढ़ाबालोतरा में ४४ वां चातुर्मास और श्री यतीन्द्र जैन ज्ञान-भण्डार की प्रतिष्ठा एवं अन्य कई धर्म कृत्यः—

श्री यतीन्द्र जैन ज्ञान-भण्डार मन्दिर का निर्माण। २८५

अन्य धर्मकृत्य। ,,

चरितनायक की वेदना। २८६

विषय पृष्ठ

गुढ़ा से श्री भाण्डवपुर तीर्थ की यात्रार्थ विहार और तीर्थ का परिचय तथा भैसवाड़ा में उद्यापन और जालोर में प्रतिष्ठाः—

भैसवाड़ा में उद्यापन। .. २८७
जालोर में प्रतिष्ठा। .... ,,
गुढ़ाबालोतरा से भाण्डवपुर तीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन ... ,,
गुरुदेव का श्री भाण्डवपुर तीर्थ में पदार्पण और श्री भाण्डवपुरतीर्थ का इतिहास की दृष्टि से वर्णन। . २८८
श्री भाण्डवपुर तीर्थ से थराद तक का विहार-दिग्दर्शन। २९१

थराद में ४५ वां चातुर्मासार्थ विहार और विहार में किये गये उल्लेखनीय कार्य एवं थराद में अजनशलाका प्रतिष्ठा का होनाः—

थराद के लिये चातुर्मासार्थ विहार। २९३
वागोडा और मोरसिम के संघो के बीच में पड़े हुये ७० वर्ष पुराने झगडे का शान्त करना। २९४
साचोर में विश्राम। २९५
(४५) वि० सं० २००८ में थराद में चातुर्मास। २९६
थरादनगर में प्रतिष्ठा-अजनशलाका-महोत्सव। . २९७
चरितनायक का बीमार होना और संघ की सराहनीय सेवा। ३०२
मरुधर-देश की ओर विहार। ३०२
लेखक को पांच हजार रु० की भेंट और श्रीयतीन्द्र-साहित्य-सदन धामणिया की दृढ़ नींव। ३०३
थराद से श्री भाण्डवपुर तीर्थ और वहाँ से बागरा तक का विहार-दिग्दर्शन। .... ,,
चातुर्मास के लिये विनतियां और बागरा की ओर विहार। ३०६

बागरा में ४६ वां चातुर्मास और चरितनायक को मूत्रावरोध की बीमारीः—३०७

चरितनायक का बीमार पड़ना और बागरा-संघ की सराहनीय सेवा ३०८

श्री भाण्डवपुर तीर्थ में चैत्री पूर्णिमा का मेला और प्रतिष्ठोत्सवः— ,,

सियाणा में ४७ वा चातुर्मास, मुनि वल्लभविजयजी का देहावसान और दो मुनि-दीक्षायें:—

'प्राग्वाट-इतिहास द्वितीय भाग' के लिखाने का निश्चय। ३१५
मुनि वल्लभविजयजी का बीमारी से ग्रस्त होना। आचार्यदेव का

विषय	पृष्ठ
सियाणा में रुकाव। बीमार मुनि का देहावसान।	३१७
सियाणा मे दो दीक्षा और तत्पश्चात् विहार।	"

चरितनायक का विहार-वर्णन और आहोर में ४८ वां चातुर्मासः--

बागरा मे श्रीमद् 'राजेन्द्रसूरि-अर्ध-शताब्दी' पर विचार।	३२०
आहोर की ओर विहार और चातुर्मास की जय। ...	३२१
वीशस्थानकतप।	३२२
श्री केसरियाजी तीर्थ के लिये संघ की यात्रा।	"
श्री यतीन्द्रसूरि-साहित्य-मंदिर की प्रतिष्ठा।	३२३
कवलातीर्थ की यात्रा।	३२४
(४८) वि० सं० २०११ में आहोर मे चातुर्मास	"
वीशस्थानकतप—उद्यापन।	३२५
उपसंहार.—	३२८
चातुर्मास। ...	३३०
विहार।	"
लघु और बृहद् संघ—यात्रायें तथा स्वयात्रायें।	३३१
तीर्थ-सेवायें।	३३२
अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें और उपधानतप।	"
आचार्यश्री और उनका साहित्य। ...	३३३
अष्टक	३३९

गुरु-चरित

वंशवृक्ष

- अमरपाल
  - संतलाल
    - मीठालाल
      - देवचन्द्र
    - सौभाग्यचन्द्र
      - टेकचन्द्र
        - वसंतलाल
        - रोड़ीमल
      - जमनालाल
        - कालुजी
        - देवकी
      - व्रजलाल [चम्पाकुंवर]
        - दुल्हीचंद्र
        - गंगाकुंवर
        - रामरत्न
        - रमाकुंवर
        - किशोरीलाल
    - जीवराज
      - शिवराज
    - कानमल
      - जयचन्द्र
      - वालजी

लेखक

दौलत सिंह लोढा 'अरविंद' बी० ए०

सरदारचंदजी जैन बुकसेलर्स
वालों की ओर से सादर भेंट

श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरि—जीवन-चरित
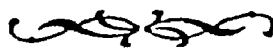
वंश-परिचय और चरितनायक का बाल्यजीवन

●

मध्य युग में काश्यपगोत्रीय जैसपाल नामक एक राजपुत्र क्षत्रिय मरुधर-प्रान्त की ऐतिहासिक एवं अति प्राचीन नगरी भिन्नमाल से निकल कर अवधराज्य के वर्तमान रायबरेली प्रगणा में आये हुये सालान-विभाग में अपने नाम से जैसपालपुर बसा कर आस-पास की जमीन को जीतकर वहां का राजा बना था। धीरे २ उस नरसिंह ने अपने भुजबल से एक अच्छा राज्य स्थापित कर लिया और सुख एवं शान्तिपूर्वक अपने राज्य का शासन चलाने लगा। विहार करते हुये श्रीमद् जज्जगसूरि नामक महा प्रभावक आचार्य जैसपालपुर मे पधारे। राजा जैसपाल जैनधर्म के प्रति अति श्रद्धालु था। वह सन्त एव साधुगणों का सदा आदर-सत्कार करता था। नगर में महाप्रभावक जैनाचार्य्य का पदार्पण श्रवण करके राजा भी उनके दर्शनार्थ पहुँचा और सम्मानपूर्वक एव सविनय वन्दना करके कर जोड़ कर आचार्यश्री के समक्ष बैठा। पास में अनेक श्रीमत श्रेष्ठि, राज्य के सामन्त और बडे-बड़े पदाधिकारी भी यथास्थान बैठे हुये थे।

जैसवाल कुल की स्थापना

आचार्यश्री की तेजस्वी एव दयापूर्ण आकृति से राजा अत्यन्त ही प्रभावित हुआ और सोचने लगा कि इन आचार्य के समक्ष अपने दुःख को व्यक्त करना चाहिए, सम्भव है ये भविष्य की बात बतला सकें। आचार्यश्री ने राजा को गम्भीर चिन्तन में देख कर तथा उसके चहरे पर तिरते हुये

गम्भीर विचारों के प्रभाव को अनुभव करके समझ लिया कि राजा कुछ अपने दुःख-सुख की बात कहना अथवा पूछना चाहता है। आचार्यश्री ने सम्बोधन करके राजा से गम्भीर विचारों में लीन होने का कारण पूछा। राजा चमका, क्योंकि वह यह नहीं समझ रहा था कि आचार्यश्री उसकी स्थिति का अनुभव कर रहे हैं। राजा ने विनम्रता से निवेदन किया कि भगवन्! गुरुदेव की कृपा से मेरे घर और राज्य में सर्व प्रकार का आनन्द और सुख-शान्ति है; परन्तु मेरे एक भी पुत्र नहीं है, यह दुःख मुझ को और मेरी प्रजा को सदा चिन्तित करता रहता है। क्या मेरे भाग्य में पुत्र का लालन-पालन करना लिखा भी है अथवा नहीं? आचार्यश्री ने उत्तर दिया, 'राजन्!' जगत् में धर्म ही सर्व सुखों का मूल कारण है। धर्म में जैनधर्म मोटा धर्म है। उसके पालन करने से सर्व मनोरथ सिद्ध होते हैं। वैसे दुनियां के सर्व धर्म अच्छे हैं और सर्व ही मोक्ष के एवं सुख-शान्ति के देने वाले हैं, परन्तु जैनधर्म से प्राणिमात्र को सुख पहुँचता और प्राणियों के शुभाशीर्वाद एवं शुभोच्छ्वासों से कठिन एवं असंभव कार्य भी संभव और सरल हो जाते हैं। अगर तुम जैनधर्म का पालन करना स्वीकार करो तो तुम्हारा मनोरथ अवश्य सिद्ध हो जायेगा। राजा ने आचार्यश्री से जैन-धर्म अंगीकार किया और श्रावक-व्रत लेकर वह जैनधर्मी बना। इस प्रकार आचार्यश्री ने राजा जैसपाल के परिवार को ओस-ज्ञाति में परिगणित करके जैन शासन की भारी सेवा की तथा राजा का मनोरथ पूर्ण किया।

योग्य अवसर प्राप्त होने पर राजा जैसपाल के पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम जिनपाल रक्खा। जिनपाल जब राजा बना, वस्तुतः जिनपाल अर्थात् इन्द्रीयजीत सिद्ध हुआ। उसके राज्य में कीट से लगाकर हाथी तक को सुख-शान्ति से रहने और विचरने की स्वतन्त्रता थी। दुष्ट और पापियों का उपशमन सा ही हो गया था। राजा जिनपाल की सातवीं पीढ़ी में राजा अमरपाल हुआ। यवन–आक्रमणकारियों ने जैसपालपुर पर आक्रमण करके राजा अमरपाल से जैसपालपुर का राज्य छीन लिया। राजा अमरपाल राज्यच्युत होकर अपने परिवार के सहित बुन्देलखण्ड की राजधानी धौलपुर में जा बसे। वहाँ राजा अमरपाल ने व्यापार करना प्रारम्भ किया

और थोड़े ही समय में अच्छा द्रव्य उपार्जित कर लिया। जैसपालपुर से आने के कारण उनका धौलपुर की समाज में जैसवालगोत्र स्थापित हो गया। राजा अमरपाल के सतपाल नामक महा प्रभाविक श्रावकव्रतपालक पुत्र हुआ। उसने दिगम्बर पण्डित से धर्म का अभ्यास किया था, अतः आगे जा कर उसने दिगम्बरमत स्वीकार किया और तब से जैसवाल-जाति दिगम्बर-आम्नायानुयायी है।

श्रे० सतलाल के मीठनलाल, सौभाग्यचंद्र, जीवराज और कानमल नामक चार पुत्र हुये। इनमें सौभाग्यचंद्र जी अच्छे पंडित और धर्मशास्त्रों के ज्ञाता हुये। ये अधिक लोकप्रिय होने के कारण 'भाई जी' नाम से पुकारे जाते थे। पं० सौभाग्यचंद्र जी के टेकचंद्र, जमनालाल और व्रजलाल नामक तीन पुत्र पैदा हुये। तीन भ्राताओं में व्रजलाल जी अधिक प्रख्यात हुये। इन्होंने दिगंबर-शास्त्रों का अच्छा अध्ययन किया था। इन्होंने अपने पिता के सर्व गुणों को द्विगुणित करके धारण किया था। पिता की भांति ये भी 'भाईजी' कहे जाते थे।

योग्य वय प्राप्त होने पर श्री व्रजलाल जी का पाणिग्रहण आगरानिवासी श्रेष्ठि रामदास जी की सुन्दर, सुशीला सुपुत्री चंपाकुंवर के साथ में हुआ।

व्रजलालजी का चंपाकुंवर के साथ पाणीग्रहण और गृहस्थ जीवन

व्रजलाल जी और चंपाकुंवर की जोड़ी बड़ी ही भली और मनोहारिणी थी। व्रजलालजी पुष्ट शरीर, मध्यम ऊंचाई और गेहूंवर्ण थे। चंपाकुंवर ऊंचाई में समान और गौरवर्ण और तन्वंगी थी। दोनों के नामों में भी पौराणिकता है। 'व्रजलाल' श्रीकृष्ण के अनेक नामों में से एक नाम है। 'चंपाकुंवर' सती एवं साध्वी स्त्रियों का पर्यायवाची शब्द है। चंपा की लता पर षट्पदों का सत्कार नहीं। चंपाकुंवर पतिपरायणा, सुशीला और अत्यन्त कुलीना वधू थी। इस प्रकार यह कृष्ण-राधा-सी जोड़ी गृहस्थाश्रमव्रत को स्वीकार कर लोकनीति और धर्म-व्यवहार का पालन करती हुई सुखपूर्वक रहने लगी। श्री व्रजलालजी के पिता एक कुशल व्यापारी और सम्पन्न घर के थे। वे भी वैसे ही व्यापार-कुशल एवं श्रीमतहृदय के थे। चंपाकुंवर सुशिक्षिता थी और विवाह के पश्चात्

भी उसने अध्ययन में अपनी रुचि कम नहीं पड़ने दी। परिणाम यह आया कि थोड़े वर्षों में ही उसने शास्त्रज्ञ पति की सहायता से दिगंबर जैन शास्त्रों की प्रमुख २ बातों से अवगति प्राप्त कर ली। अनेक कथायें और कहानियां उसको याद हो गईं। फलतः धौलपुर की जैन नारी-समाज में चंपाकुंवर की अतिशय प्रतिष्ठा बढ़ चली और वह भी अपने पांडित्य का लाभ जिज्ञासु स्त्रियों को समय २ पर कराने लगी।

चंपाकुंवर नित्य प्रातः कुलीना स्त्रियों की भांति ब्रह्ममुहूर्त्त में उठती और सर्व प्रथम अपने वृद्ध सास-श्वसुर को प्रणाम करके अपने नित्य-कर्म से निवृत्त होती और मंदिर में देवदर्शन करने जाती। देवदर्शन करके घर में आकर अपने कर्म में लग जाती। संपन्न घर की होती हुई भी समस्त दिन भर कुछ न कुछ कार्य करती ही रहती। रात्रि को स्वाध्याय करती। शयन के पूर्व सास-श्वसुर की सेवा करती और उनकी आज्ञा लेकर शयन-कक्ष में जाती। सास-श्वसुर ऐसी पुत्र-वधू को पाकर तथा श्री व्रजलालजी ऐसी पति-परायणा, सुशीला, सेवापरायणा, गृहकर्मदक्षा धर्मपत्नी पाकर अपने सद्-भाग्य पर फूले नहीं समाते थे। चंपाकुंवर सचमुच लक्ष्मी ही थी। जब से चंपाकुंवर सौभाग्यचंद्र जी के घर में पुत्र-वधू के रूप में आई धन और वैभव में अति वृद्धि हुई।

वि० संवत् १९३२ के आरम्भ में चंपाकुंवर ने गर्भ धारण किया। सास-श्वसुर को जब इसका पता लगा, वे अत्यन्त ही आनंदित हुये और दिन २ नव-नव पुण्यकार्य करने लगे। देव-पूजन में बहुत द्रव्य व्यय किया गया। इस प्रकार आनन्द के पारावार में पौष शु० ३ की अर्ध रात्रि को चंपाकुंवर की कुक्षी से दुल्हीचंद्र नामक पुत्र और गंगाकुंवर नामक एक पुत्री का युगलरूप में जन्म हुआ। घर में मंगलाचार होने लगे और नगर में संबंधी जनों के यहां बधाइयां दी गईं। दुल्हीचंद्र सचमुच दुलारा चंद्र ही था। वह अति मनोहर और सुहा-वना था। उसके जन्म के तीन वर्ष पश्चात् व्रजलालजी का भाग्य और अधिक चमका और उनकी समाज और राज्य में प्रतिष्ठा बढ़ी। धौलपुर-नरेश गुणी-

दुल्हीचंद्र और गंगाकुमारी का जन्म वि० सं० १९३२

पुरुषों के प्रेमी थे। व्रजलालजी के गुणों की प्रशंसा जब उनके कानों तक पहुँची तुरन्त व्रजलालजी को मानपूर्वक बुला कर उनको एक ऊँचे राज्यपद पर प्रतिष्ठित कर दिया। व्रजलालजी ने भी थोड़े ही समय में राजा का अति विश्वास प्राप्त कर लिया और जनता का प्रेम। व्रजलालजी की उनकी कृतज्ञतापूर्ण सेवाओं से राज्य-सभा और प्रजा में अति प्रतिष्ठा स्थापित हो गई।

वि० सं० १९४० में रामरत्न का जन्म, रायसाहब उपाधि की प्राप्ति. रमाकुंवर और किशोरीलाल का वि० सं० १९४४ में सहजन्म

वि० सं० १९४० का० शु० २ रविवार को अर्द्धरात्रि में सौभाग्यवती चंपाकुंवर की कुक्षी से चरित्रनायक का जन्म हुआ। ये इतने सुन्दर और पुष्टतन थे कि सम्बन्धी जनों को भी बड़े ही सुहावने लगते थे। इनका नाम रामरत्न रक्खा गया। रामरत्न के जन्म के थोड़े ही समय पश्चात् बीकानेर-नरेश ने व्रजलालजी को उनकी कर्त्तव्यपरायण सेवाओं से मुग्ध होकर 'रायसाहब' की उपाधि प्रदान की। रायसाहब व्रजलालजी इस समय पर अपने भाग्य के ऊँचे शिखर पर आसीन थे। घर में माता-पिता की उपस्थिति और सम्पन्नता, समाज में प्रतिष्ठा, राज्यसभा में मान और प्रजा में स्थिरता और दो पुत्र और एक पुत्री के पिता और इन सबके ऊपर लक्ष्मीस्वरूपा चंपाकुंवर के पति-पद को प्राप्त— समस्त सुख उनके चरणों पर लोट रहे थे। रामरत्न बड़े ही भाग्यशाली प्रतीत होते थे। भाल इनका उन्नत और प्रशस्त था, शरीर अत्यन्त पुष्ट और गौरवर्ण था। शरीर पर एक तेज कान्ति-सी छायी प्रतीत होती थी। वृद्धजन कहते थे कि यह पुत्र आगे जाकर वंश को उज्ज्वल करेगा और धर्म की सेवा करने वाला होगा।

चरित्रनायक के जन्म पश्चात वि० सं० १९४४ श्रावण शुक्ला ५ को रात्रि के तृतीय प्रहर में रमाकुंवर और किशोरीलाल नामक एक पुत्री और एक पुत्र का युगलरूप में शुभ जन्म हुआ। इस प्रकार व्रजलालजी को तीन पुत्रों और दो पुत्रियों की प्राप्ति हुई।

जिस घर में पिता सज्जन और माता विदुषी हो, उस घर में पलने वाले शिशुओं के संस्कार और संस्कृति से शंका कैसी और फिर वहाँ सर्व

पुत्र और पुत्रियों की शिक्षा

सुविधायें उपस्थित हों वहाँ फिर शुभयोग में बाधायें कैसी ! विदुषी चंपाबाई ने ज्येष्ठ पुत्र और पुत्री को अच्छा अक्षरज्ञान घर पर ही करवाया और तत्पश्चात् स्कूलों में उनको भर्ती करवाये। चंपाकुँवर चरित्रनायक को भी इसी प्रकार घर पर ही शिक्षा देने लगी। परन्तु विधि से यह अधिक सहन नही हुआ।

वि० सं० १९४६ में ब्रजलालजी के माता और पिता का स्वर्गवास हुआ और एक वर्ष पश्चात् चंपाकुँवर भी अकस्मात् रुग्ण होकर देवगति को

श्री ब्रजलालजी के जीवन में परिवर्त्तन वि० सं० १९४६

प्राप्त हो गई। श्री ब्रजलालजी का गृहस्थ जीवन जो सुखरूपी वसंत की बहार ले रहा था, एकदम मुर्झा गया। काल की क्रूरता का यहीं अन्त नहीं हुआ। चम्पाकुँवर की मृत्यु के पन्द्रह दिवस पश्चात् कनिष्ठ पुत्र किशोरीलाल भी कृतांत का कवल हो गया। थोड़े ही समय में ब्रजलालजी पर कृतांत के ऐसे कुठाराघातों को देखकर नगर में हा-हाकार छा गया। जो उनके भाग्य से ईर्षा करते थे, उनको भी उनकी इस दयावह स्थिति पर करुणा आने लगी। परन्तु यमराज के आगे किसका सामर्थ्य आज तक चला है। ब्रजलालजी के समक्ष पुनः विवाह करने के प्रस्ताव आये, लेकिन वे तो चंपाकुंवर जैसी लक्ष्मी के एक बार स्वामीपद को भोग चुके थे, अब दुर्दिनों में वैसी ही रूप-गुण-सम्पन्ना की आशा उनका जैसा बुद्धिमान् और धर्मज्ञ कैसे कर सकता था, उन्होंने सर्व प्रस्तावों को अस्वीकृत किया और अन्त में धौलपुर छोड़ने का विचार कर लिया। अब धौलपुर-नरेश भी वे नही रहे थे, उनके पुत्र राज्य कर रहे थे। यद्यपि वे भी सुशासक और गुणीजनों का सम्मान करने वाले थे; परन्तु दुर्दिन में श्री ब्रजलालजी एक दम वैभव और संसार से उदासीन हो उठे और राज्य-कर्मचारीपद का त्याग करके अपने परिवार को लेकर भोपाल चले गये और वहीं रहने लगे। ब्रजलालजी जैसे शास्त्रज्ञ एवं बुद्धिमान् सज्जन के धौलपुर छोड़कर जाने पर समाज, सम्बन्धी एवं नगरजनों को अत्यन्त ही दुःख हुआ। उनको अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करके रोकना भी चाहा, लेकिन उनका मन अब धौलपुर में चैन ही नही पा रहा था वे कैसे ठहरते ! और चंपाकुँवर

के साथ में व्यतीत किये वे सुख और उल्लास भरे दिवसों का विस्मरण कैसे कर पाते और कैसे धैर्य धरकर अर्धाङ्गिनीहीन अवस्था में अपनी कुल की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण रख पाते !

भोपाल मे निवास और चरितनायक की शिक्षा वि० सं० १९४७

सुख के दिनों में मातृनगरी में भाई-बन्धु के बीच रहना आनन्द-दायी होता है; परन्तु दुःख के आने पर वही शूलकारी हो जाता है, ऐसा आज तक देखा, सुना और प्राचीन ग्रंथों में पढ़ा गया है। स्थान-परिवर्त्तन करने से दुःख अत्यन्त हल्का हो जाता है और कभी २ उसका बढ़ना सर्वथा रुककर उसका अंत प्रारम्भ हो जाता है। सीता ने अपने दुःख के दिन वन में निकाले, नल और दमयन्ती दुःख के आने पर राज्य, प्रासाद तजकर वन को चले गये, पाण्डवों ने वन में ही दुःख के दिनों को व्यतीत किया, महाराजा हरिश्चन्द्र ने दुःख के आने पर अपनी प्यारी प्रजा को त्याग कर काशी की ओर प्रयाण किया और श्मशान की सेवा की। श्री ब्रजलालजी भी तो पण्डित और शास्त्रों के ज्ञाता थे; वे भला दुःख को कम करने वाले मार्ग को ग्रहण कैसे नहीं करते। वे अपने बच्चों सहित भोपाल में जाकर रहने लगे। संसार से विरक्त हो उन्होंने धर्म-ध्यान में और बच्चों को शिक्षण देने में ही अपनी अवशिष्ट आयु व्यतीत करने का दृढ़ निश्चय-सा कर लिया। पण्डित वही है जो दुःख में धैर्य धरे, वीर वही है जो दुःख से पार उतरने का प्रयत्न करे, सुखी वही है जो अपनी स्थिति में संतोष करे, धनी वही है जो विरक्ति ग्रहण करे, मानी वही है जो धर्म की आराधना करे, प्रबुद्ध वही है जो भावी के प्रति सावधान रहे, भाग्यशाली वही है जो आने वाले भव के लिये संबल तैयार करे, मानव वही है जो आश्रितों, असहायों के प्रति मानवता धारण करे, पिता वही है जो पुत्रों को सुशिक्षित सुसंस्कृत बनावे, संरक्षक वही है जो शरणागतों का दुःख-दैन्य मिटावे। वैसे ब्रजलालजी प्रारम्भ से ही सुसंस्कृत, धार्मिक प्रवृत्ति के दिगवर विद्वान् थे; परन्तु अपनी धर्मपत्नी के स्वर्गारोहण के पश्चात् उन्होंने अपने ये दो ही कार्य बना लिये थे—धर्म-ध्यान और पुत्रों का शिक्षण। भोपाल का जलवायु उनके ज्येष्ठ पुत्र

दुल्हीचन्द्र को अनुकूल नहीं पड़ा, निदान वह अपने काका के घर धौलपुर में पुनः लौट आया। अपने पंडित पिता के द्वारा प्राप्त होने वाले अमूल्य शिक्षण के लाभ से वह वंचित ही रहा। चरितनायक इस समय सात वर्ष के हो चुके थे। वि० सं० १९४७ में उनको श्री दिगम्बर जैन पाठशाला में प्रविष्ट करवाया गया। चरितनायक पाठशाला के समय पाठशाला में पढ़ते और घर आने पर पिता ब्रजलालजी खाते, पीते, विश्राम करते, भ्रमण करते उनको उनकी मस्तिष्क शक्ति के अनुसार कुछ न कुछ नित्य-प्रति नवीन २ बातें, शिक्षायें और हितोपदेश दिया करते। प्रातःकाल उनको धर्म-सूत्रों का अभ्यास करवाते, रात्रि को धार्मिक कहानियाँ मनोरंजक ढंग से कहते। इसका परिणाम यह आया कि चरितनायक ने अपने योग्य पिता की निश्रा में रहकर तथा पाठशाला में कुशाग्र और प्रतिभासम्पन्न होने के कारण गुरुजनों के प्रियभाजन रहकर नववर्ष की वय प्राप्त होने तक पंचमंगलपाठ, २ तत्त्वार्थसूत्र, ३ रत्न-करण्डश्रावकाचार, ४ आलापपद्धति, ५ द्रव्यसंग्रह, ६ देवधर्म-परीक्षा, ७ नित्य-स्मरण-पाठ ग्रंथों को कंठस्थ और इनका अर्थ सहित पठन कर लिया। अतिरिक्त इनके भक्ताम्बर, मंत्राधिराज, विषापहार, कल्याणमंदिर और जिन-दर्शनस्तोत्रों को भी कंठस्थ कर लिया तथा इनको अर्थसहित समझ लिया। जब २ इनकी कक्षा की परीक्षायें हुईं ये सदा प्रथम आये। जैन समाज में दिगंबर संप्रदाय में अन्य संप्रदायों की अपेक्षा बच्चों को प्रारंभ से धर्म-शिक्षण देने की विशेषता रही है। बहुत थोड़ी वय में ही इस संप्रदाय के कुशाग्र और परिश्रमी बच्चे अनेक स्तोत्रों को कंठस्थ कर लेते हैं तथा अनेक ग्रंथों का सार्थ अध्ययन कर लेते हैं, जिनके अध्ययन को देखकर भले २ शिक्षक दाँतों अंगुली दबाते तथा वाह-वाह करते नहीं थकते हैं। चरितनायक को तो घर और पाठशाला दोनों ओर एक ही वस्तु मिलती थी। परिणाम यह आया कि (९) नव वर्ष के भी वे पूरे नही हो पाये थे कि उपरोक्त लिखा अभ्यास वे पूर्ण कर चुके। पाठशाला का इतना ही अभ्यास था। निदान वे राजकीय पाठशाला में प्रविष्ट करवाये गये। थोड़े ही दिनों में अपनी कक्षा के समस्त विद्यार्थियों में वे प्रथम गिने जाने लगे। यहाँ इन्होंने मुख्यतया व्याव-हारिक शिक्षण प्राप्त किया। चरितनायक में एक विशेष गुण था, जो अन्य

विद्यार्थियों में बहुत कम देखने में आता है। उधर ये राजकीय पाठशाला में व्यावहारिक शिक्षण प्राप्त करते थे और घर आकर अपने मोहल्ले के जैन लडकों को धार्मिक अभ्यास नियमित रूप से करवाते थे। इस गुण से इनकी वाचनशक्ति प्रबल तथा अभिव्यंजनाशक्ति बालायु को देखते हुये आश्चर्य-कारक हो उठी और ये अपने भावों का अच्छा व्याख्यान करने लगे। श्रीव्रजलालजी रामरत्न जैसे पुत्र को पाकर सर्व दुःखों को विस्मृत कर चुके थे तथा व्रजलालजी सा पिता पाकर रामरत्न जैसे अध्ययनशील और परिश्रमी विद्यार्थी को प्यारी माता का वियोग तनिक भी नहीं खला था। परन्तु चरितनायक के भाग्य में पिता का यह सुन्दर योगदान और पिता व्रजलालजी के भाग्य में होनहार पुत्र का अभ्युदय अधिक समय तक देखना नहीं लिखा था। दुर्दैव से यह सहन नही हो रहा था।

श्री व्रजलालजी का स्वर्गारोहण और चरितनायक के जीवन में परिवर्त्तन वि० सं० १९५२

पिता और पुत्र बड़े आनन्द से दिन व्यतीत कर रहे थे। वे अपने समस्त दुःखों को भूले हुए थे। श्री व्रजलालजी बड़े सवेरे उठते और शौचादि से निवृत्त हो कर धर्म-ध्यान में लग जाते, देव-दर्शन करते, चरितनायक को सदुपदेश एवं धार्मिक शिक्षण देते तथा उनकी व्यावहारिक शिक्षा में भी सहायता करते, स्कूल का समय होने पर चरितनायक स्कूल चले जाते। इस अंतर में श्री व्रजलालजी शास्त्रों का अध्ययन, वाचन करते तथा संबंधीजनों से मिलते। चरितनायक जब पाठशाला से लौट आते, वे उनको बड़े प्यार से बुलाते तथा उनकी रुचि के अनुसार वर्त्तते। सायंकाल को दोनों पिता-पुत्र एक-साथ भोजन करते। रात्रि को चरितनायक को अच्छी अच्छी बातें बतलाते। इस प्रकार सुखपूर्वक इनके दिवस व्यतीत हो रहे थे। वि० संवत् १९५२ वैशाख शुक्ला १ को दिन के अतिम भाग में श्री व्रजलालजी का मन दुःखी होने लगा और लगभग एक प्रहर रात्रि के व्यतीत होते-होते उनके हृदय की गति रुक गई। चरितनायक पर यह असह्य दुःख का पर्वत एक दम टूट पड़ा। श्री व्रजलालजी के निधन को भोपाल एवं धौलपुर में बड़े दुःख से सुना। कृतांत के आगे सम्राट् एवं बड़े २ चिकित्सकों, वैद्यों

को नतमस्तक होना ही पड़ता है। वहां किसी का वश नहीं चलता। अहिल्या को तारने वाले रामचन्द्र को, कुरुक्षेत्र में क्रीड़ावत् युद्ध करने वाले अर्जुन और कृष्ण को, मेरु को कंपित करने वाले भगवान् तीर्थंकरों को भी जिनमें अनंत बल, वीर्य्य एवं पराक्रम था कृतांत के आदेश को अगर वे भी टालने का प्रयास करते तो उनको भी असफलता ही यहां तो प्राप्त होती। चरितनायक के मामा ठाकुरदास जो भोपाल में व्यवसाय करते थे, उनको अपने घर ले गये और उनकी देख भाल करने लगे। ठाकुरदास के भी कोई संतान नहीं थी। वे इन्हें बड़ा प्यार करते और इन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देते। धौलपुर से भी इनके काका इनको लेने के लिये आये, परन्तु इनके मामा ने भेजने से अस्वीकार किया। वैसे चरितनायक को कोई असुविधा और कष्ट भी नहीं था, इसलिये इनके काका ने इनको ले जाने के लिये अधिक आग्रह भी नहीं किया। ठाकुरदास दुकान करते थे। दुकान अच्छी चलती थी। दुकान पर इनकी सहायता करने वाला कोई अन्य नहीं था। कभी २ चरितनायक भी दुकान पर बैठने लगे। जिस दिन ये दुकान पर बैठते उस दिन ग्राहकों को भी विशेष सुविधा रहती और फलतः बिक्री भी अधिक ही होती। चरितनायक प्रारंभ से ही निरालसी, बुद्धिमान् एवं स्फूर्तिमान् थे। घंटों का सौदा मिनटों में निपटा देते। इनके मामा को लोभ लगा और उसका परिणाम यह आया कि इनको पाठशाला छोड़ कर दुकान पर आसन जमाना पड़ा। इस समय इनकी आयु केवल तेरह वर्ष की ही थी। परन्तु ये इतने कुशल एवं चतुर सिद्ध हुए कि इनसे अधिक आयु वाले भी व्यापार में इनकी संमति लेने लगे। इस प्रकार इनके मित्र और परिचितों की संख्या बढ़ने लगी। रात्रि को दुकानें बंद करके इनके मित्र और इष्टगण इनकी दुकान पर आ बैठते और बहुत रात्रि तक गप्प शप्प चला करती। इनके मामा को यह बुरा लगने लगा, परन्तु वे इन पर मुग्ध थे, अतः इनको कुछ नहीं कहते थे। चरितनायक जैसे व्यापार में कुशल थे, व्यवहार में चतुर थे, उसी प्रकार समय पर साहस एवं निडरता का परिचय देने वाले भी थे। चरितनायक के बाल्य-जीवन की कई-एक साहसभरी घटनायें हैं, उनमें से एक या दो घटनायें यहाँ दी जा रही हैं।

एक रात्रि को ये दुकान बन्द करके अपने इष्टमित्रो से वार्त्तालाप कर रहे थे, उस समय लगभग रात्रि के १२ बजे होगे। गर्मी का मौसम था।

ठग की कला पर पानी फेरना

इनके पास की हलवाई की दुकान पर स्त्री-वेष मे एक ग्राहक मिठाई लेने आया। ग्राहक अजनबी एवं मुख से पुरुष एवं ठग-सा प्रतीत होता था। वह चरितनायक की दुकान के सामने से होकर हलवाई की दुकान पर पहुँचा था। उस अजनवी ग्राहक के निकल जाने के कुछ क्षणो पश्चात् दस-ग्यारह वर्ष की आयु का एक बालक भी उनकी दुकान के पास होकर निकला। चरितनायक को इन दोनों पर पूर्ण शंका उत्पन्न हो गई। ये अपने मित्रो से वार्त्तालाप भी करते जा रहे थे और उधर पास ही हलवाई की दुकान पर पहुँचे हुये उस प्रथम गये व्यक्ति को भी तिर्छी दृष्टि से देख रहे थे। इन्होंने देखा कि वह बालक उस प्रौढ़ व्यक्ति के पैरो में जा कर बैठ गया। दुकान ऊंचे चतुष्क पर थी, अतः मिठाई तोलनेवाला उस बैठे हुये बालक को नहीं देख रहा था। इतने में देखते हैं कि वह बालक कुछ लेकर बड़ी त्वरितता से बैठे २ आगे को बढ़ा और दो-तीन दुकान पार करके उठ कर बड़े वेग मे भागा। चरितनायक मित्रों को छटका कर एक दम उस बालक के पीछे दौड़ पड़े। इनके भोले मित्र अवाक् से रह गये और वे एक दम क्यों भागे का कुछ भी रहस्य नहीं समझ सके। रात्रि अंधियारी थी। बालक गलियों में घुस गया, परन्तु चरितनायक ने उसका पीछा नहीं छोड़ा और अन्त मे उसको पकड़ ही लिया। बालक को पकड़ कर हलवाई की दुकान पर आये।

उधर जब ये उस बालक को लेकर हलवाई की दुकान पर पहुँचे तो हलवाई और ग्राहक मे बड़ा जोरो का झगड़ा हो रहा था। इनके मित्र भी वहीं जमा हो रहे थे। झगड़े का रहस्य किसी के समझ में नहीं आ रहा था। हलवाई कहता था मैंने तीन रुपये की मिठाई दी है और ग्राहक कहता था मैंने पाव भर ही मिठाई ली है। परन्तु ज्योंही चरितनायक उस बालक को लेकर दुकान पर पहुँचे वह ग्राहक चकित-सा रह गया। झगडे का अन्त हो गया। इतने में पुलिस के सिपाही भी झगड़े की आवाज सुन कर वहाँ आ पहुँचे और दोनों ग्राहकों को पकड़ कर पुलिस में ले गये। हलवाई.

इनके मित्र और पुलिसमैन बहुत दिनों तक चरितनायक के साहस की ठौर २ प्रशंसा करते रहे। इस घटना से चरितनायक का साहस अधिक खुल गया। उन दिनों भोपाल में ठगों का प्राबल्य था। चरितनायक को ठग भयभरी दृष्टि से देखने लगे और इनकी दुकान के आस-पास की दुकानों पर अपना कौशल दिखाने से हिचकिचाने लगे। चरितनायक ने इससे भी बढ़कर अन्य एक घटना में अधिक साहस और प्रबल पराक्रम का परिचय दिया। वह भी यहाँ लिखना उचित समझता हूँ।

दुकान बन्द कर के अपने मित्रों के साथ गप्प-शप्प लगाना इनका नित्य कार्य हो गया था। बहुत रात्रि जाते ये अपने मामा के घर सोने जाते। मामा इनकी यह बढ़ती हुई आदत देख कर मन ही मन कुढ़ता और जलता था। कभी २ मामा भाणेज में झड़प भी हो जाती थी। फिर भी मामा का इन पर अधिक प्यार था, वह अपना क्रोध निकाल कर कुछ ही क्षणों में शाँत हो जाता और फिर मामा भाणेज में बहुत समय तक व्यापार की तथा अन्य प्रेम भरी चर्चायें होती रहतीं।

एक रात्रि को ये अपने मित्रों से दुकान पर बैठे हुये बाते कर रहे थे। समय बारह बज कर भी ऊपर हो चुका था। बातों में सब को आनंद आ रहा था। इतने में सामने की शर्राफ वाली दुकान की ऊपर की मंजिल की एक खिड़की के कपाटों की खुलने की ध्वनि इनके कानों में पड़ी। उधर देखा तो खिड़की खुल चुकी थी। उस दुकान की खिड़किया

चोर का पीछा और राज्यमान की प्राप्ति

रात्रि को बंद ही रहती थी; अतः इन सब को खिड़की खुली देख कर शंका उत्पन्न हुई और ये सब वार्त्तालाप बन्द कर के उधर ही देखने लगे। खिड़की दुकान के वाम पक्ष की दीवार में थी और दुकान के वाम पक्ष पर गली थी। कुछ मिनट व्यतीत होने पर उस खिड़की में से एक पुरुष उतरा। इन्होंने उसको देख लिया। उसकी पीठ पर एक ग्रंथी बंधी थी। चरितनायक तुरन्त ही चोर-चोर करके चिल्ला उठे। चोर हक्-बका गया, परन्तु भाग निकला। चरितनायक उसके पीछे पड़ गये। इनके मित्र वहीं देखते खड़े रह गये। परन्तु चोर २ की ध्वनि दूर २ तक प्रसारित हो गई। घरों में से मनुष्य

निकल आये और राज्य के सिपाही भी आ पहुँचे। सब परस्पर चर्चा, विवाद, पूछ-ताछ करने लगे; परन्तु चोर के पीछे दौड़ने का विचार और साहस किसी में भी नहीं हुआ। राज्य के सिपाही अवश्य जिस दिशा में चोर और उसका पीछा करते हुये चरितनायक दौड़े थे, उसी दिशा में दौड़े परन्तु वे अधिक दूर तक नहीं दौड़ कर रुक गये। भोपाल की गलियाँ तंग और टेढ़ी-मेढ़ी हैं। चोर इन गलियों में पड़ कर इधर-उधर अपने को बचाता हुआ भाग रहा था। चरितनायक भागने में बहुत ही तेज थे और इसके ऊपर उनमें अदम्य साहस जो था। वे तुरन्त ही चोर के पास पहुँच गये। इतने में राज्य के अन्य सिपाही कहीं से आ पहुँचे। आगे चोर दौड़ रहा था, पीछे चरितनायक दौड़ रहे थे और सब से पीछे राज्य के सिपाही चोर को पकड़ने के उद्देश्य से बेतहाशा दौड़ रहे थे। चोर घबरा चुका था, वह एक पत्थर की ठोकर खा कर नीचे गिर पड़ा। चरितनायक ने चोर पर दो-तीन बड़े २ पत्थर फेंके जो उसके सीधे बदन पर पहुँचे। चोर को उठने में विलम्ब लग गया। वह उठने भी नहीं पाया था कि चरितनायक उसके ऊपर जा पड़े। इन्होंने चोर को ऊपर से कटिभाग से पकड़ लिया। दोनों में उलटा-पलटी होने लगी। इतने में राज्य के सिपाही भी आ पहुँचे। उन्होंने चोर को पकड़ लिया। सिपाहियों को चरितनायक ने संक्षेप में समस्त घटना कह सुनाई। सिपाहियों के हाथों में हण्टर थे। चोर की पीठ पर वे तडातड़ पड़ उठे। सिपाही चरितनायक को धन्यवाद देकर तथा उनके साहस एवं पराक्रम की प्रशंसा करते हुये चोर को पकड़ कर पुलिश-थाने में ले चले।

रात्रि के एक बजने पर चरितनायक जयमाला का हार पहिन कर, प्रशंसाओं की पीठिका लेकर अपने मित्र और नगर के एकत्रित हुये जनों में से अनेक के साथ जो उनकी वीरता, निडरता और साहसिकता पर मुग्ध थे मामा के घर पहुँचे। उधर मामा भी आज तुला बैठा था। ज्योंही उन्होंने द्वार पर जा कर आवाज दी मामा तपा हुआ बैठा ही था, इनकी आवाज सुन कर भभक उठा और बाहर होते कोलाहल से वह और अधिक बिगड़ा और भीतर से ही इनको लगा झाड़ने उल्टा-सीधा। चरितनायक ने अपने

मित्रों एवं अन्य जनों को समझा-बुझा कर उनके घरों को भेज दिया और वे भी समझ गये कि उनकी उपस्थिति आहुति में घी का कार्य कर रही है; अतः वे भी अधिक कुछ बिना कहे-सुने चले गये। चरितनायक ने अपने मामा से बहुत अनुनय-विनय की। आगे से कभी इतना विलंब करके आने से शपथ भी खाई, परन्तु मामा को एक भी नहीं लगी। उसने किवाड़ नही खोले। चरितनायक आखिर हताश हो कर मकान के बाहर के चतुष्क पर ही सो गये। प्रातःकाल मामा अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ समय से पहिले उठा और द्वार खोलकर बाहर आया। चरितनायक को चतुष्क पर सोता देखकर भी वह कुछ नही बोला और अपने नित्यकर्म में सदा की भांति लग गया। सूर्योदय होने पर जब उसने अपने भाणेज की वीरता, निडरता, साहसिकता भरी आबाल वृद्ध के मुंह से प्रशंसायें सुनीं, उसको अपनी करणी एवं ऐसे होनहार भाणेज के साथ किये गये निर्मम व्यवहार पर अत्यन्त ही पश्चात्ताप हुआ। उसने भाणेज को छाती से लगा लिया। दोनों मामा भाणेज पूर्ववत् प्रेमपूर्वक परस्पर फिर बोलने चालने लगे।

उधर चोर को ले जाकर सिपाहियों ने थाने में एक कोठरी में बन्द किया। कोतवाल साहब ने जब ग्रंथी खोल कर देखी तो उसमें लगभग तीन सहस्र के आभूषण और पाँच सौ रुपये रोकड़ थे। न्यायाधिकरण में चोरों पर अभियोग चला और उसको योग्य दंड मिला तथा चरितनायक को इस अधिवेशन के अवसर पर न्यायाधीश ने उनकी भूरि २ प्रशंसा करते हुये धन्य-वाद के साथ राज्य की ओर से दस रुपयों का परितोषिक दिये जाने की घोषणा की। चरितनायक अल्पायु होकर भी भोपाल की जनता और राज्य में इस प्रकार सम्मान पाने के अधिकारी हुये। योग्य पिता की संतान भी योग्य ही होती है का प्रमाण यहाँ देखने में आता है। विश्रुत कुल को पड़ती दशा में से निकाल कर उसको पुनः गौरवान्वित करने वाले ऐसे ही पुत्र होते हैं।

पाठक मेरे उक्त कथन की सत्यता तब समझेंगे जब वे चरितनायक के इस प्रस्तुत चरित को आद्योपांत पढ़ने का कष्ट करेंगे।

एक रात्रि को चरितनायक अपने मित्रों के साथ में नाटक देखने को गये और अधिक रात्रि व्यतीत होने पर लौटे। अधिकतर अधिक रात्रि जाने पर ही ये घर या दुकान से घर लौटा करते थे। इनका मामा इनकी इस आदत से अत्यधिक तंग आ चुका था। अन्य अवसरों की अपेक्षा वह आज अत्यन्त ही आग-बबूला हुआ बैठा था। आज की रात्रि चरितनायक को नवीन दिशा देने के लिये ही संकल्प करके पड़ी थी। ज्योंही चरितनायक नाटक देखकर लौटे कि मामा इनको उल्टी-सीधी सुनाने लगा। मामा के ये शब्द 'यह ही स्वभाव रहा तो भिक्षा मांगोगे। जो मैं नहीं होता तो रखड़-रखड़ कर मरना पड़ता' चरितनायक के वक्षस्थल में सचमुच अर्जुन के गाण्डीव-धनुप से छूट कर लगने वाले तीक्ष्ण बाणों से भी अधिक प्राणहर लगे और वे एकदम मुड़कर चल पड़े।

नाटक का अवलोकन और नवीन दिशा का उद्घाटन

दूसरे दिन चरितनायक ने अपने एक मित्र की दुकान पर जो हलवाई का कार्य करता था नवकरी करली और अपनी बहिन गंगाकुमारी के घर पर भोजन करने और रहने लगे। गंगाकुमारी का विवाह भोपाल-निवासी भंवरलालजी सोहाणी के साथ में हुआ था। परन्तु भोपाल अब चरितनायक की उदासीनता एवं ग्लानि को मिटाने में असमर्थ और असफल ही सिद्ध हुआ। इनके अप्रसन्न होकर चले जाने पर फिर तो मामा को अत्यन्त ही दुःख हुआ। मामा और मामी दोनों ने इनको बहुत समझाया कि घर चलो, परन्तु इन्होंने एक नही सुनी और मामा के घर जाना स्वीकार नहीं किया। भोपाल इनको एकदम अपरिचित-सा और आकर्पणविहीन-सा लगने लगा। ये कहीं बाहर जाने का विचारने लगे। इतने में तो (उज्जयन्ती) उज्जैन नगरी में भरने वाला सिंहस्थ मेला आ गया। भोपालनिवासी ओसवाल-ज्ञातीय पारखगोत्रीय श्रेष्ठि केसरीमलजी का प्रेमदास नामक एक ब्राह्मण-ज्ञातीय अर्थनवकर सिंहस्थ का मेला देखने को उज्जैन जा रहा था। चरितनायक भी उसके साथ हो लिये और उज्जैन पहुँचे। सिंहस्थ का मेला मध्यभारत के समस्त मेलों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। महाराजा चक्रवर्त्ती सम्राट् विक्रमादित्य की राजधानी उज्जैन में भरने के कारण इसका

और अधिक महत्त्व बढ़ा हुआ है। चरितनायक ने सिंहस्थ का मेला देखकर मक्षी-पार्श्वनाथ-तीर्थ की यात्रा की और वहाँ से वे इन्दौर राज्यान्तर्गत महेंदपुर नाम नगर को गये।

क्रियोद्धारक, महातपस्वी, विद्वद्शिरोमणि श्रीमद् विजय-राजेन्द्रसूरीश्वरजी के दर्शनों का लाभ और वैराग्य-भावनाओं का उद्भव

महेंदपुर में इन दिनों में श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज अपने शिष्य-मण्डल एवं साधुसमुदाय के सहित विराजमान थे। श्रीमद् विजय-राजेन्द्रसूरि विक्रमीय बीसवी शताब्दी में हुये जैनाचार्यों में एक अग्रगण्य आचार्य हो गये हैं। इन्होंने जैन-समाज में फैले हुये पाखण्ड और मिथ्याडम्बर को अनेक स्थलों पर नष्ट किया; अनेक नगर, पुर, ग्रामों में श्री-संघों में पड़े हुये प्राचीन कुसम्पों का अंत किया, शुद्ध साध्वाचार का प्रचार करके त्रयस्तुतिकमत का पुनः प्रबल प्रचार किया, अनेक प्रसिद्ध ग्रंथों का प्रणयनं किया। जैसे आप शुद्धाचारी, कठोर तपस्वी थे; वैसे ही प्रखर पंडित एवं संस्कृत, प्राकृत के धुरंधर विद्वान् एवं व्याख्यान देने में निष्णात थे। आपकी कीर्त्ति एवं प्रतिष्ठा समस्त भारत में बसनेवाली जैन-समाज में प्रसारित हो रही थी। ऐसे सरस्वती-पुत्र एवं शुद्ध चरित्रधारी जैनाचार्य के दर्शनो का लाभ चरितनायक को सहज एवं अकस्मात् प्राप्त हुआ। सूरिजी के शिष्यमंडल में मुनि श्रीलक्ष्मीविजयजी और मुनिश्री दीपविजयजी नाम के दो बाल-साधु चरितनायक से परिचित थे। इन दो बाल-साधुओं के परिचय के कारण चरितनायक को सूरिजी के दर्शन करने तथा उनसे वार्त्तालाप करने के लिये सुअवसर सहज प्राप्त हो गया।

सूरिजी के दर्शन और वार्त्तालाप वि० सं० १९५३

देवसी-प्रतिक्रमण करके सूरिजी महाराज नियमित रूप से धर्मशाला के

ऊपर के महालय में विराजते थे और अधिक रात्रि तक श्रावक एवं वैयावच्च करने वाले साधुगण वहीं आपश्री के पास बैठे रहते थे। जब प्रतिक्रमण समाप्त हो चुका तो चरितनायक भी अपने परिचित दोनों बाल-साधुओं के सग सूरिजी के दर्शन करने को गये। इस समय सूरिजी अपने ध्यान से निवृत्त हो चुके थे और वैयावच्च करने वाले साधु एवं श्रावकों को वार्त्तालाप करने का लाभ दे रहे थे। ज्योंही बाल-साधुओं के संग चरितनायक सूरिजी के समक्ष पहुँचे, इन्होंने वंदन किया। चरितनायक का जन्म दिगम्बर-सम्प्रदाय में हुआ था। श्वेताम्बरविधि से गुरुवंदन करना इनको कैसे आता ? फिर भी वंदन करने में जो विनय, भक्ति एवं तत्परता और तन्मयता होती है, आपने इन सब तत्त्वों से पूर्ण वन्दना की। सूरिजी महाराज इनके वंदन पर से समझ गये कि बालक जैन है और कोई श्रेष्ठ कुल का तथा स्वयं सद्गुणी एवं विनयी है। चरितनायक से सूरिजी ने प्रथम उनका नाम एवं जन्म-स्थान पूछा और तत्पश्चात् उनसे ज्ञाति, धर्म, सम्प्रदाय, उपास्यदेव, गुरु, स्वाध्यायसम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर चरितनायक ने सविनय भली भांति दिया तथा भक्ताम्बर, कल्याण-मन्दिर के पांच २ श्लोक सुनाये, तत्त्वार्थसूत्र के कतिपय सूत्र और द्रव्य-संग्रह की गाथायें सुनाईं और उनका अर्थ भी किया। सूरिजी चरितनायक की स्मरणशक्ति, प्रतिभा से अधिक प्रभावित हुये और उनके विनय, सभ्यता तथा धर्म-प्रेम पर अत्यन्त ही मुग्ध हुये और बोले—'दिगम्बर-संप्रदाय में बालकों पर बचपन से ही कैसे अच्छे धार्मिक सस्कार डाले जाते हैं—यह इस प्रसंग से भली भाँति समझा जा सकता है।' सूरिजी के यह प्रसंशा भरे वाक्य श्रवण कर चरितनायक के आह्लाद का पार नहीं रहा, वे अत्यन्त ही आन्दित हुये।

सूरिजी महाराज साहब एवं चरितनायक में जो प्रश्नोत्तर हुये वे बड़े ही महत्त्व के एवं आकर्षक थे; अतः पाठकों के विनोदार्थ वे यहां दिये जाते हैं।

आचार्यश्री—'तुम्हारा रहना कहाँ है' ?

चरितनायक (रामरत्न)—'प्रथम तो हमारा निवासस्थान धौलपुर था; परन्तु वर्तमान में हम भोपाल में रहते है।'

आ०—'तुम्हारी ज्ञाति क्या है ?'

राम०—'यों तो हमारी ज्ञाति मनुष्य पंचेन्द्रिय है; परन्तु व्यवहार-पक्ष को लेकर हम ओसवाल हैं; लेकिन जैसवाल नगर से धौलपुर में आ बसने के पश्चात् लोग हमको जैसवाल अथवा जाइसवाल संबोधित करते हैं।'

आ०—'तुम्हारा धर्म कौन है !'

राम०—'जैन दिगम्बर।'

आ०—'तुम्हारा उपास्यदेव कौन है ?'

राम०—'श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत चौवीस तीर्थङ्कर और सामान्य केवली जो अज्ञानादि १८ अट्ठारह दोषों से रहित, प्रशमरसनिमग्न और कामिनीशून्य अंकवाले हों हमारे उपास्यदेव हैं। इनके अतिरिक्त सांसारिक देव हमारे उपास्यदेव नहीं हैं।'

आ०—'गुरु किसको कहते हैं ?'

राम०—'पंचमहाव्रत के धारक, कंचन और कामिनी के त्यागी, सांसारिक वासनाओं से रहित, अट्ठारह अंतराय दोषों के टालक गुरु कहलाते हैं। ऐसे ही गुरुओं की सेवा से आत्मकल्याण होता है।'

आ०—'धर्म किसको कहते हैं ?'

राम०—'हिंसादि दोषों से रहित, आप्त-प्रणीत और सद्गति को देने वाला धर्म कहलाता है। इस लक्षण से शून्य शेष सर्व अधर्म हैं और वे मोक्षसुख के दाता नहीं।

सम्पर्क का बढ़ना और वैराग्य-भाव की उत्पत्ति

चरितनायक को महेंदपुर में और वह भी साधु-संग में चित्त की व्याकुलता विलीन होती अनुभव हुई। यहाँ उनको विश्रान्ति के दर्शन-से हुये। वे नित्य सूरिजी महाराज साहब के व्याख्यान का लाभ लेने लगे। आचार्य महाराज का व्याख्यान अत्यन्त मार्मिक ओजस्वी एवं सारगर्भित होता था। उनके व्याख्यान में विशेषतः मानव-जीवन, मानव का अन्य प्राणियों से संवंध, मानवधर्म, दुर्लभ मानवदेह की प्राप्ति, संसार की असारता तथा जीवन, यौवन, मान, वित्त, पद, आयु,

वैभव की महामेघ के मध्य में स्थित एक क्षुद्र एवं चंचल और अस्थिर जल-बिंदु के समान क्षणभंगुरता आदि विषय प्रमुख रहते थे। चरितनायक भी ऐसी ही अनुकूल स्थिति में थे कि सूरिजी के व्याख्यानों का इन पर सचोट एवं अमिट प्रभाव पड़ने लगा। मामा से ये रुष्ट होकर आये थे। माता-पिता स्वर्गस्थ हो ही चुके थे। बचपन में प्राप्त शास्त्रीय अभ्यास, पंडित पिता की सुशिक्षायें, विदुषी एवं धर्मपरायणा माता के द्वारा डाले गये संस्कार इन सब ने भी सुसंस्कृत चरितनायक में जन्म लेती हुई विरक्ति एवं वैराग्य-भावनाओं के लिये आलवाल का काम किया। वैराग्य का अंकुर फूटने लगा। इसका पता इनके परिचित दोनों बाल-साधुओं को लगने में विलंब नहीं हुआ। सूरिजी महाराज के कर्णों तक भी इसकी चर्चा साधारण रूप से पहुँच ही गयी। चरितनायक प्रातः व्याख्यान श्रवण करते, दिन में साधु-संग का लाभ लेते और फिर अवशिष्ट अवकाश में श्वेताम्बर-धर्म-ग्रंथों का अध्ययन करते। सूरिमहाराज के समस्त शिष्यमंडल एव साधुमण्डल से चरितनायक का पूर्ण परिचय स्थापित हो गया था। इसका परिणाम हो रहा था संसार से उदासीनता और संन्यास से निकटता की स्थापना में। सुसंस्कृत एवं सुसस्कारी हृदय में वैराग्यभाव सहज एवं सुगमता से आरोपित हो सकते हैं, जन्म ले सकते है तथा विकसित हो कर फलान्वित होते हैं का विशद प्रमाण स्वयं चरितनायक हैं आगे जा कर ये पूरे २ सिद्ध होंगे।

सूरिजी का विहार और चरितनायक का अनुगमन

महेंदपुर से सूरि महाराज का अपनी मण्डली के सहित जावरा में पदार्पण हुआ और वहाँ से खाचरौद। सूरि महाराज जैसा ऊपर कहा जा चुका है प्रखर पंडित ही नहीं शुद्ध साध्वाचारी थे। चरितनायक के सुसंस्कारी हृदय पर विहारकाल में उनके क्रियाकाण्ड का, उनकी दैनिक जीवनचर्य्या का अद्भुत एव अमिट प्रभाव पडा। वे सोचने लगे कि धन्य है इन साधुओं को महापंडित होते हुये भी ये कीर्त्ति के इच्छुक नहीं हैं जैन एव जनसमुदाय की भक्ति एवं श्रद्धा के पात्र होकर भी डगर-डगर उप्पट-खप्पट एव विषम मार्गों मे क्षुधा, प्यास एवं अनेक शारीरिक कष्ट, यातनायें सहन करते हुये अपने भक्त एव अनुयायियों का ही नहीं,

वरन् समस्त मानव और प्राणी-समाज का ग्राम-ग्राम में, नगर-नगर में, पुर और राजधानियों में जा २ कर कल्याण करते हैं, उनको धर्म का उपदेश देते हैं, उनके अवगुणों को, दोषों को जिनके कारण प्राणी दुःखी, अशान्त, संतप्त, अस्थिरचित्त, विभ्रममति, दिग्मूढ़ रहते हैं दूर करते हैं। आप कष्ट सहते हैं और अन्य को सुख पहुँचाते हैं। चरितनायक को निश्चय हो गया कि यह ही मार्ग सचमुच कल्याणकारी है, इसी मार्ग में आत्मकल्याण है। पर कल्याणविहीन मार्ग अव्यवहारी ही नहीं, कैसा भी मनभावन एवं प्रिय हो जघन्य एवं स्वार्थपूर्ण है। उसी मार्ग का पकड़ना स्तुत्य और प्रशंसनीय है, जिसमें दूसरे हीन-मार्गगामियों को भी सहाय और बल पहुँचाया जा सके। चरितनायक ने भी अपना आत्मकल्याण इसी मार्ग में चल कर करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। इस प्रकार चरितनायक के मस्तिष्क में नवीन विचारों का और हृदय में नवीन भावनाओं का जन्म होकर उनके द्वारा संन्यास लेने के सकल्परूप में वैराग्य पिण्डरूप को प्राप्त हुआ।

दीक्षा लेने का दृढ निश्चय और सूरिजी से प्रार्थना और उसकी स्वीकृति

भारतीय वाङ्मय ही नही, परन्तु संसार के धर्मग्रन्थ और संन्यास लेने वाले महापुरुषों के जीवन-चरितों से सिद्ध होता है कि जिस व्यक्ति पर एक बार वैराग्यरस का रंग चढ़ जाता है, अथवा जो व्यक्ति वैराग्य का स्वाद चख लेता है उस व्यक्ति को वैरागी बनकर ही चैन और शान्ति मिलती है। बात भी तर्कसिद्ध है। वैराग्य के अंकुरित होने के पूर्व वैरागी होने वाले व्यक्ति के हृदय में से स्नेह, मोह, माया, ममता, राग, द्वेष, काम, क्रोध जैसे विकारी भावों का अंत होना प्रारम्भ होता है, उसके हृदय में ज्ञान का जागरण प्रारम्भ होता है, मस्तिष्क में शुभ विचारों का उदय होता है। शरीर का सदुपयोग करना इस प्रकार के विचारों एवं भावों के प्रादुर्भाव से उत्पन्न स्तर पर ही समझ में आ सकता है यह एक निश्चित् सत्य है। इस स्तर पर कोई पहुँच कर जब कि वह इस स्तर पर राग-विराग को, माया-त्याग को, स्वार्थ-परार्थ को क्रोध-शान्ति को, काम-संयम को, लोभ-निग्रह को अपने श्रम और अपनी योग्यता एवं अनुभव तथा अनुभूति से तथा गुरु, साधु, सज्जन, परोपकारी मानवों के

कथन, व्याख्यान, जीवनों के आधार पर भलीविध समझ कर पहुँचा है पुनः प्रत्यावर्त्तन कैसे कर सकता है? जो प्रत्यावर्त्तन कर जाते हैं, तथा अनेकों को हमने और अनेकों ने पुनः संन्यास-वेष का परित्याग करके गृहस्थाश्रम को लौटते देखा है और पुस्तकों में पढ़ा है, वे सर्व ऊपर वर्णित स्तर पर वस्तुतः नहीं पहुँचे थे, परन्तु किन्हीं कारणों से अथवा किन्हीं आकर्षणों, लोभ प्रलोभनों में फस कर अथवा ऋण, पारिवारिक कष्टों, सांसारिक झंझटों जैसे दैन्यता, निर्धनता, गृहकलह, अपमान आदि से व्याकुल हो कर साधु-दीक्षा लेने को तैयार हुये थे। और फिर ऐसों में साधुजीवन में होने वाले असंख्य कष्टों को, मानापमानों को, क्षुधा-तृषा को सहन करने की तथा वैभव, इन्द्रियसुखों की लालसाओं को दमन करने की अमोघ शक्ति कैसे आ सकती है। ऐसे ही जन सन्यासवेष छोड़ कर गृहस्थ बनते देखे और पढ़े तथा सुने गये हैं। चरितनायक अल्पायु में ही वैभव का सुख, सुयोग्य माता और पिता का प्यार, भ्राता एवं भगिनियों का सौहार्द, मामा एवं मामी का दुलार तथा फिर वैभव का अन्त; प्रिय माता-पिता का निधन, भ्राता का मरण, मामा और मामी द्वारा किया गया तिरस्कार देख चुके थे।

प्रश्न अब केवल काम और लोभ का रह जाता है। सुसंस्कृत, सुसंस्कारी और ब्रह्मचारी को काम नहीं ठग सकता है। काम उसी को खलता है जो उसी के अनुकूल वातावरण में पलता है और उसका एक बार हो चुका होता है। लोभ का जहां प्रश्न उठता है, वहा चरितनायक किस कारण से लोभ के अधीन होते? माता और पिता स्वर्गस्थ हो चुके थे। भ्राता और भगिनियों के भरण तथा पोषण की कोई चिन्ता नहीं थी। इस प्रकार चरितनायक को काम और लोभ जैसे घातक विकार छू भी नहीं पाये थे। ज्योंही इन पर वैराग्य का रंग चढा वह मजीठ हो कर ही रहा और वे आचार्य महाराज साहब से दीक्षा लेने की भावनाओं को उनके समक्ष प्रकट करने के सुअवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

इस संकल्प की प्रतिष्ठा पर चरितनायक चिन्तनशील और चिन्तामग्न, प्रसन्नचित्त और उद्विग्न, तेजस्वी एवं म्लानमुख, निश्चित एवं आतुर रहने लगे और उनकी मस्तिष्क एवं हृदय की इस प्रकार की गतिविधि

साधुमण्डल से अज्ञात नहीं रह सकी और वे इसका रहस्य समझ भी गये। परन्तु सूरिमहाराज साहब के अनुशासन में रहना कितना कठिन एवं साहस का कार्य है वे भलीविध जानते ही नहीं थे, वरन् अनुभव भी कर रहे थे; अतः चरितनायक के मन में उत्पन्न तथा बाहर झलकते इस भाव का प्रस्ताव सूरिजी के समक्ष करने का साहस न तो किसी साधु में ही था और स्वयं चरितनायक भी हिचकते थे कि कैसे कहूँ, किन शब्दों में कहूँ, कब कहूँ और फिर प्रार्थना स्वीकृत भी होगी अथवा नहीं। ऐसे ही अनेक विचार और भाव इनकी इस अस्थिरता में पलने वाली इस महत्वाकांक्षा को आन्दोलित कर रहे थे।

एक रात्रि को चरितनायक की व्यग्रता चरमता पर पहुँच गई। कोई भी वस्तु जब चरमता पर पहुँचती है, तब ही वह दूसरे पक्ष को स्पर्श भी कर पाती है और दूसरे पक्ष के दर्शन भी तभी संभव होते हैं और उसके लाभ का अवसर भी तत्पश्चात् ही खुलता है। ये रात्रि भर संसार की असारता पर, संसार के व्यवहार पर, संसार में घटने वाली घटनाओं और उनके प्रभाव और परिणामों पर विचार करते रहे। कभी यह सोचकर रोने लगते कि कोई मार्ग नहीं मिल रहा है और कभी हँसने लगते कि इस साधुसंग के प्राप्त होने का कुछ अच्छा रहस्य है। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में तो ये संसार पर फुंफकारे छोड़ने लगे कि हे संसार! अब तेरे ये स्वार्थभरे दयाचार और लिपे-पुते सदाचार और तेरी यह टीम-टाम मुझको छल नहीं सकती। तू मुझको अब छल नहीं सकेगा यह मैं तुझको बतला दूँगा—रज को केवल रज मत समझ। रज का भी कुछ विशेष महत्त्व होता है। संसार तू पापी है, निस्सार है और तेरे कर्मों से मैं भलीविध परिचित हूँ, तेरे कर्मों का मैं कटुफल भोग चुका हूँ, तेरे कुकृत्यों का भूत और वर्त्तमान का लेखा क्या कहूँ मैं उनके भावी परिणामों से भी परिचित हूँ। मृगतृष्णाओं के ये नित्य के नव-नव नृत्य, प्रतिपल की काट-छांट, रात-दिन के परिवर्त्तनों को मैं कब तक सहता रहूँ। तू माया और मत्सर का आकर है, भोग और रोग का महदाकर है, पुण्यनाशक और पापफलाकर है। धिक्कार है तेरे इस मायावी वेष को। तेरे बाहर और भीतर सर्वत्र विग्रह चल रहा है। जिधर देखा उधर ही परिग्रह दृष्टि में आता है जो

महादुःखों का कारण है। उपग्रह सदा लगे ही रहते हैं। आधि और व्याधि के क्लेश निरन्तर चलते रहते हैं। धन अस्थिर है, तन भंगुर है, यौवन चंचल है, संबन्ध सभंग है। मेरे मन को अब तू और तेरे ये सहचर नहीं डिगा सकेंगे। मैं संन्यास ग्रहण करूँगा ही, मस्तक मुंडाऊंगा ही, शीत-वायु-आतप के यंत्रण, जरा-मृत्यु के कुत्सित मंत्रण, जब मैं संन्यासी बन जाऊँगा मेरे पर प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। आज तक तूने अनेक भोले और सुकोमल प्राणियों को फंसाया है, ग्लस्त किया है, लोभ, लाभ, धरा, धन, देकर उनकी आत्मा का घात किया है। वैभव मेरा नष्ट हो गया है। राग–द्वेष जैसा कुत्सित विकार मेरे बालक-हृदय को छू भी नही पाया है। संन्यास (दीक्षा) लेने का मैंने दृढ़ संकल्प कर लिया है और तब इनकी एक नही चलेगी। तेरे ये राव-रंग के भेदभाव, मित्रशत्रु के चाह और उच्छेद, मानापमान के हर्ष-खेद ऊंच-नीच के कुभाव मुझको अब लुभा अथवा सशंकित नहीं कर सकते। क्षुधा और तृषा, विषय और वासना, कषाय और ईर्ष्या मुझको अब खल नहीं सकेंगी। संसार ले, अब तुझको आज ही छोड़ रहा हूं और तत्क्षण। लहर भग्न हुई और देखा तो प्रातः हो चुका था और देवदर्शन और गुरुदर्शन का समय आ चुका था। चरितनायक उठे और देवदर्शन करके सीधे गुरुदर्शन को चल दिये। सूरिजी महाराज अन्य दिवसों की अपेक्षा आज कुछ अधिक मनोहारिणी मुद्रा में विराजमान थे। साधु एवं शिष्यगण इधर-उधर सविनय खड़े अथवा बैठे थे। चरितनायक ने जाकर सविनय सविधि वंदन किया। चरितनायक की समस्त रात्रि भर जागने के कारण पलकें भारी पड़ी हुई थी तथा रोने के कारण नेत्रों में रक्तिमा आ गई थी—यह उनकी स्थिति किसी से छिपी नही रही। सूरिजी महाराज साहब ने सौहार्द भरे शब्दों में चरित-नायक को वन्दन करते समय 'धर्मलाभ' दिया। वन्दन करके चरितनायक ने बड़ी सभ्यता, स्थिरता तथा निश्चित शब्दों में अपनी दीक्षा लेने की भावना को आचार्य महाराज साहब के समक्ष प्रार्थनारूप में इस प्रकार व्यक्त की कि गुरुदेव ! मुझको शिष्यरूप में स्वीकार कीजिये। इस पर गुरुदेव ने चरितनायक को कहा कि अभी तुम्हारी आयु केवल चौदह वर्ष की ही है और साधु-जीवन का पालन खड्ग की दुधारा पर चलने से भी अधिक कठिन

है आदि अनेक दृष्टान्त देकर चरितनायक को समझाया। चरितनायक ने अंत में गुरुदेव को अपने किये हुये संकल्प से परिचित किया कि मैं संसार से ऊब चुका हूँ और संसार की असारता का भलीविध दर्शन और अनुभव कर चुका हूं। मैं अब साधु-दीक्षा लेकर अपना आत्मकल्याण करना चाहता हूँ। संसार त्याग कर ही मैं आत्मकल्याण कर सकता हूं। धर्मोपदेश श्रवण करने मात्र से सुख और शांति कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती और नहीं आज तक किसी को हुई भी है। मैं धर्म के सिद्धान्तों पर जीवन में चलना चाहता हूँ। आप सिवाय मुझको इस कार्य में सहाय करने वाला समर्थ और करुणानिधि नहीं दीख रहा है। गुरुदेव ! मुझको स्वीकार कीजिये। इस प्रकार चरितनायक के हृदय के सच्चे उद्‌गार और उनकी संन्यास लेने के लिये अपेक्षित योग्यता को देखकर गुरुदेव ने कहा, "रामरत्न ! तुम रत्न हो और समय पर उसका मूल्य भी होगा। योग्य अवसर के आने पर और जब हम तुमको दीक्षा देने के पूर्ण योग्य समझलेंगे तुमको साधु-दीक्षा देदी जावेगी।" चरितनायक का मन गुरुदेव का विचार श्रवण करके अत्यन्त हल्का पड़ गया। अब वे आल्हादित होकर साधुसंग में बेहिचक मिलने और झुलने लगे। उधर साधु और शिष्यों का भी चरितनायक के प्रति पहिले से भी अधिक झुकाव हो गया। चरितनायक अब स्तोत्रों का तीव्रता से अध्ययन करने लगे, दीक्षा प्राप्त करने की योग्यता बढ़ाने लगे, साध्वाचार का ज्ञान प्राप्त करने लगे तथा उनका तत्परता से भलीविध पालन करने लगे। संयम और साधुमर्यादा को अपने जीवन में इस प्रकार बड़े तेज उत्साह के साथ भरने लगे।

चारित्र का लेना

कतिपय दिवसों तक महेंदपुर में विराज कर श्रीमद् विजयराजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराज अपने शिष्यसमुदाय एवं साधुमण्डल सहित जावरा होते हुये खाचरौद आये। चरितनायक भी साथ में ही थे।

दीक्षा का प्रस्ताव वि० सं० १९५४

चरितनायक के सौम्य स्वभाव एवं विद्याध्ययन की लग्न से गुरु महाराज इनसे अति ही प्रभावित थे और चरितनायक की मुखाकृत्ति से उनको विश्वाश हो चुका था कि यह बालक भविष्य में तेजस्वी एवं धर्मध्वज को वहन करने के योग्य सिद्ध होगा। गुरुमहाराज को लगभग दो मास के सहवास में चरितनायक का समय २ पर भलीविध परीक्षण-निरीक्षण करने का अवसर प्राप्त होता रहा था, फलतः जब एक रात्रि को चरितनायक ने गुरुमहाराज से चारित्र प्रदान करने की सविनय प्रार्थना की वह तुरन्त ही स्वीकृत हो गई और खाचरौद में ही दीक्षा देने का निश्चय किया गया। यह शुभ समाचार एक कर्ण से दूसरे कर्ण को पहुँच कर समस्त नगर में फैल गया। प्रत्येक बालक, युवक, वृद्ध पुरुष एवं स्त्रीजनों को अपार आनन्द हुआ। श्री खाचरौद के श्रीसंघ ने महा-महोत्सवपूर्वक दीक्षामहोत्सव करने का आयोजन किया। दीक्षालग्न शुभाशुभ का पूर्ण विचार करके वि० सं० १९५४ आषाढ़ कृ० २ सोमवार का करना निश्चित करके अनेक समीप, दूरवर्त्ती नगर, ग्रामों में दीक्षा–कुंकुम-पत्रिकायें भेजी गई।

खाचरौदपुर के श्री संघ में दीक्षामहोत्सव के कारण अपार उत्साह एवं आनन्द छा गया। आठ दिनों तक अठाई-महोत्सव की धूम-धाम रही।

दीक्षामहोत्सव वि० स० १९५४

वरघोड़ों की शोभा अद्भुत थी। निकट एवं दूर के नगर, पुर, ग्रामों के जैन जैनेतर जन इन वरघोड़ों की अपार शोभा को देख कर मुग्ध होते थे। दीक्षा का समाचार दूर २ तक फैल गया था। 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'। किसी ने इस आशय की कि एक अबोध, अनाथ लड़के को बलात्कारपूर्वक जैनदीक्षा

खाचरौद में दी जा रही है राज्यसभा में प्रार्थना की। इस पर राज्य के खाचरौद में रहने वाले प्रमुख राज्याधिकारीगणों ने दीक्षा को रोकने का प्रयत्न किया। गुरुदेव के प्रचण्ड तेज के आगे उनके समस्त प्रयास निष्फल रहे। जब इन राज्याधिकारियों ने चरितनायक से प्रश्न किये तो नवदीक्षार्थी चरितनायक ने ऐसे अचूक उत्तर दिये कि उनको निरुत्तर और षड्यन्त्रकारियों को निरुपाय हो कर शान्त होना पड़ा। राज्याधिकारियों और चरितनायक में हुये प्रश्नोत्तर लिखने योग्य हैं; अतः उनकी संक्षिप्त झलक यहां देना अनावश्यक एव अवांछनीय नही है।

राज्याधिकारी—-आपका क्या नाम है ?

चरितनायक—-जिस नाम को परिवर्त्तित करने जा रहा हूँ, अब उसको कहना कर्मबन्ध का कारण होता है; अतः कहने में असमर्थ हूँ।

रा०—-आपके पिता का नाम तो बतलाइये।

च०—-यह भी वैसा ही प्रश्न है। असमर्थ हूँ।

रा०—-आपकी ज्ञाति और ग्राम तो कम से कम बतलाइये।

च०—-मुझको आप लोगों की कुन्ठित बुद्धि पर दया आती है, जो बार २ एक से ही प्रश्न करती हुई नहीं संभल रही है।

रा०—-हम आपको दीक्षा नहीं लेने देंगे।

च०—-यह अड़चन मेरे माता और पिता एवं संरक्षक ही डाल सकते हैं। अन्य नहीं।

रा०—-उनकी अनुपस्थिति में राज्य को अधिकार है।

च०—-राज्य की सत्ता नियम-खन्डन पर चलती है। अन्यत्र नहीं।

रा०—-बालदीक्षा देना क्या अनुचित नही ?

च०—-प्रौढ़वय के पुरुषों के मुंह से ऐसे प्रश्नों का किया जाना देश एवं धर्म का अपमान है। सर्व अनर्थों के मूल बालविवाह की सम्मति और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की संप्राप्ति में सहायक एवं गुणकारी बालदीक्षा का विरोध। जिस राज्य अथवा देश में धर्म की उन्नति एवं

प्रचार में क्षति का आना प्रारम्भ हो जाता है वह राज्य और देश धर्मभ्रष्ट और संस्कृतिविहीन होकर मिट जाता है। धर्म धर्माचार्योंका क्षेत्र है, राजा और उसके अधिकारियों को उसमें हस्तक्षेप करने का कोई नियम से अधिकार नहीं है। मैं जाग्रत हूँ, मेरा धर्म जैन है और मैं जैनधर्म की सेवा करने को ही कमर कस रहा हूँ, फिर ऐसी स्थिति में कोई अधिकारी मुझ को कैसे रोक सकता है एक विचारणीय प्रश्न है।

राज्याधिकारी एवं षड्यन्त्री निरुत्तर होकर गुरु महाराज साहब से क्षमा मांग कर तथा नवदीक्षार्थी की प्रशंसा करते हुये चलते बने।

वि० संवत् १९५४ आषाढ़ कृ० २ सोमवार को अपार जन-मेदिनी के मध्य जिसमें अनेक नगर-ग्रामों के श्री संघ सकुटुम्ब एवं परिवार जैन और जैनेतर सम्मिलित थे प्रखर विद्वान् श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष के प्रणेता श्रीमद् गुरुदेव के करकमलों से चरितनायक को शुभ मुहूर्त्त में पारमेश्वरी दीक्षा*

---

* चरितनायक की श्रीदीक्षाङ्गम् (दीक्षालग्न कुंडली)
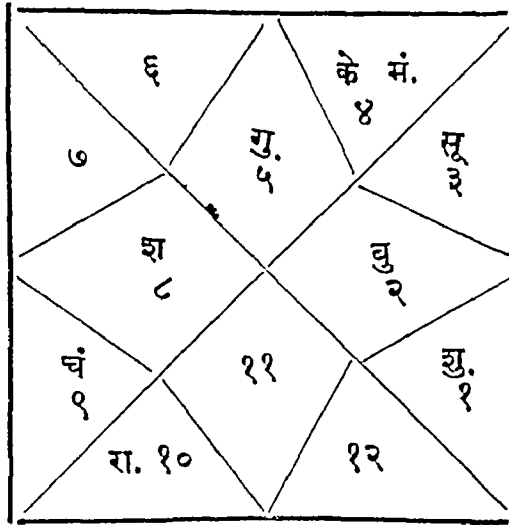
स्वस्ति श्री ऋद्धिवृद्धिजयौ मंगलाभ्युदयश्चेति।

श्री विक्रमादित्य सं० १९५४ तत्र श्रीमद्भूपतिशालिवाहनकृतशाके १८१९ तत्र भानुरुत्तरायणे गते श्री सूर्ये ग्रीष्मर्त्तौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे मासे शुभकारके आषाढमासे शुभे कृष्णपक्षे तिथौ २ घट्यः २९।५२, सौम्यवासरे पूर्वाषाढानक्षत्रे घट्य. ३६।३३, ब्रह्मायोगे घट्यः ५०।२३, तैतिलकरणे घट्यः १२।८ दिनमानम् ३४।८, रात्रिमानम् २५।५२, दिनार्धं १७।४, रात्र्यर्ध ४७।४, धनराशिस्थिते चन्द्रे राशिनवमांशे ७ सप्तमे, मेषाद्ये तुलाख्ये भृगुदैवते वानरयोनौ मनुष्यगणे क्षत्रियवर्णे मूषकवर्गे मध्यनाडीस्थिते श्रीफणीश्वरचक्रे परभागयुंजायां, एवमा-

प्रदान की गई और उनका नाम मुनियतीन्द्रविजयजी रक्खा गया। चरित-नायक का नवजीवन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने अपना सम्पूर्ण समय गुरुनिश्रा में रहकर शास्त्राभ्यास करने में लगाने का निश्चय किया। जैसी इच्छा होती है, वैसी सुविधायें समय-समय पर आपों-आप जुटती चली जाती हैं और एक दिन वह इच्छा पूर्ण हो जाती है। होनी चाहिए उद्देश्य की प्राप्ति में पूर्ण लग्न और एकनिष्ठ तत्परता।

चरितनायक के गुरु महाराज के साथ में दस चातुर्मास व आप पर प्रभाव और विद्याभ्यास तथा शास्त्राध्ययन और अनुभव की प्राप्ति

वि० सं० १९५४ सं वि० से० १९६३

साधुवेष धारण करना जितना सरल है, उतना साधुपन धारण करना सरल नहीं है। गुरु महाराज राजेन्द्रसूरिजी अति तपस्वी, शुद्धसाध्वाचारी थे। ऐसे सच्चे साधु की तत्त्वावधानता में रहने के लिये रहने वाले में सच्चे साधु बनने की लग्न हो तभी संभव था। गुरु महाराज तनिक भी शैथिल्य अपने साधु एवं शिष्यों में देखने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अपने कर-कमलों से चुन २ कर लगभग अढ़ाईसौ साधु सवं साध्वियों को दीक्षायें दी थी, परन्तु, उनके कठोर अनुशासन का पालन करने में एक चतुर्थ भी समर्थ सिद्ध नहीं हुये। गुरु महाराज बड़े ही परिश्रमी थे। रात्रि में केवल एक प्रहर निद्रा लेते थे। दिन में कभी भी शयन नहीं करते थे। व्यर्थ संभाषण करना उनके

दिपञ्चागशुद्धावत्र दिने भास्करोदयादिष्टनाड्य' १२।५ स्पष्टार्कराश्यादि २।२।०६।८, स्पष्टलग्नं राश्यादि ४।७।२०।३३, एतत्समये सिंहलग्नाङ्गोदयेऽस्या शुभग्रहावलोकितकल्याणवतिवेलायां निखिलगुणगणमण्डितश्रेयमार्गदर्शकशुद्धाचारपालकश्रीयतीन्द्रविजयमुनिपुङ्गवस्य दीक्षासमयः। पूर्वापाढाभे ३ तृतीचरणस्तेन फकाराक्षरोपरि अकारस्वरेणाभिधान ज्ञेयम्। अपरं च यथारुचिः स्थापनीयम्। रतलामनगरे पलभा ५।८ चरखण्डा ५१।४१।१७, स्वदेशोदयाः २२७।१५८।३०६। ३४०।३२९ समीपवर्त्ती खाचरोदपत्तनस्यैव। श्रीशुभमस्तु।

स्वभाव में था ही नहीं। ध्यान और स्वाध्याय तथा ग्रंथ-रचना में ही उनका अधिकांश समय व्यतीत होता था। चातुर्मास व्यतीत होते ही दूर २ के ग्रामों को स्पर्शते थे। नगर के बाहर, जंगल अथवा पार्वत्यभाग जहाँ भी संध्या हो जाती वहीं रात्रि-विश्राम कर लेते थे। मार्ग में श्रावक और श्राविकाओं को जैसा हम आज देखते हैं, अपने साथ में नहीं चलने देते थे। ऐसे कठोर तपस्वी का अनुशासन भी कितना कठोर हो सकता है सहज समझा जा सकता है।

घर और स्कूल में रहकर कोई उतना अच्छा नहीं बनता, जितना अच्छी संगत में रहकर बनता है। चरितनायक सुसंस्कारी एवं सुसंकृत तो थे ही, फिर भाग्य से ऐसे प्रखर महाविद्वान् एवं शुद्धसाध्वाचार के पालक महा-तपस्वी, विचक्षण बुद्धिशाली गुरु की निश्रा में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, फिर क्या कमी रही। बस आप शुद्धसाध्वाचार का पालन करने लगे और स्वाध्याय में रात और दिन तल्लीन रहकर अपनी उन्नति करने लगे। दैव की कुकृपा से गुरुमहाराज का स्वर्गारोहण वि० सं० १९६३ पौष शुक्ला ७ को राजगढ़ में हो गया। चरितनायक को इन दस वर्ष की अल्प अवधि में गुरु की निश्रा में रहकर अपनी उन्नति करने का, अनुभव प्राप्त करने का एवं बढाने का सद्भाग्य से जो अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ था, उस थोड़े समय में भी आपने गुरु महाराज के संग मेवाड़, मारवाड, मालवा, नेमाड़ और गुज-रात-प्रान्तों का भ्रमण किया, छोटे-बडे अनेक प्रसिद्ध अप्रसिद्ध स्थानों में विहार किया, गुरु महाराज साहब के करकमलों से की गई अनेक बड़ी २ प्रतिष्ठाओं में रस लिया तथा प्रतिष्ठायें करवाने की क्षमता प्राप्त की, अनेक ग्राम, नगरों के श्री सघों में पड़े कुदलों को गुरु महाराज के तेज प्रताप से विलय होते देखा और शांति स्थापित होती देखी। गुरु महाराज ने अनेक ज्ञान-भण्डारों की स्थापना की, तपों के उद्यापन करवाये और प्राचीन एवं प्रसिद्ध अनेक जिनालयों का जीर्णोद्धार करवाया गुरुदेव के इस प्रकार के धर्म, द्रव्यकार्यों से चरितनायक को सर्वतोमुखी अनुभव एवं ज्ञान प्राप्त हुआ। गुरुदेव के साथ में आपने श्रीमक्षीतीर्थ, अर्बुदतीर्थाधिराज, कोरटातीर्थ, गोडवाडपंच-तीर्थी की यात्रायें कीं। प्रशंगवशात् इस दसवर्षीय काल एवं इन दस वर्ष के

चातुर्मासों की संक्षिप्त सूची देना कोई अनुचित नहीं है। और फिर चरितनायक के चरित में भी तो इस दसवर्षीय काल का प्रमुख और महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये ही दस वर्ष इनके आज के जीवन की भव्य अट्टालिका की सुदृढ़ एवं गहरी और अडिग नींव भी हैं।

गुरुमहाराज के संग दसवर्षीय सहवास—

(१) वि० सं० १९५४ में रतलाम में चातुर्मास:—

चातुर्मास में संस्कृत-व्याकरण का अभ्यास किया, साधुक्रिया के सूत्रों का अध्ययन किया और गुरुमहाराज के व्याख्यान में 'सूत्रकृतांगसूत्र' और भावनाधिकार में 'पांडव-चरित' का श्रवण किया। चातुर्मास पश्चात् खाचरौद-निवासी श्रेष्ठी चांदमलजी के अत्याग्रह से गुरुमहाराज अपने शिष्य एवं साधुवर्ग के सहित खाचरौद पधारे और वहां से खाचरौद श्रीसंघ के साथ में श्रीमक्षीतीर्थ की वि० सं० १९५५ चैत्र कृ० १० को श्री पार्श्वनाथ भगवान् की दिव्य प्रतिमा के दर्शन करके यात्रा सफल की।

(२) वि० सं० १९५५ में आहोर में चातुर्मास:—

श्री मक्षीतीर्थ की यात्रा करके लगभग तीन सौ मील का अंतर पार करके गुरुमहाराज अपने समुदाय-सहित आहोर (मरुधर) में पधारे और चातुर्मास किया। चातुर्मास के पश्चात् आहोर में माघ शु० ५ गुरुवार को चरितनायक को तथा मुनि दीपविजयजी, लक्ष्मीविजयजी और हिम्मतविजयजी तथा अनेक साध्वियों को बड़ी दीक्षा दी और उपस्थापना-महोत्सव बड़े ही उत्साह एवं आनन्द के साथ मनाया गया। फाल्गुन कृ० ५ गुरुवार को सौधशिखरी-बावन जिनालय की चिरस्मरणीय रहने वाली प्रभावक एवं विशाल आयोजन पर अंजनशलाका-प्रतिष्ठा की और नव सौ जिनबिंबों को प्रतिष्ठित किया। इस प्रतिष्ठोत्सव के अन्तिम दिन में लगभग पचास हजार जनता एकत्रित हुई थी। सैकड़ों वर्षों में हुई अनेक प्रतिष्ठाओं में मरुधर-प्रान्त में इतनी बड़ी प्रतिष्ठा सर्वप्रथम यह ही थी।

(३) वि. सं. १९६६ में शिवगंज में चातुर्मास—

वर्तमान कलियुग में प्रसरित हुये अनादर्श एवं असाधुपन से बचने की दृष्टि से गुरुमहाराज ने अपने सम्प्रदाय के साधु एवं साध्वियों के लिये ३५ बोल की समाचारी विनिर्मित की, जो कठोर सत्य, अनुशासन एवं जैन-साधु का आचार कैसा होना चाहिए का इस कलियुग में भी स्थापना करने वाली है। इस समाचारी को शिवगज के श्रीसंघ के मध्य गुरुमहाराज ने अपने उपस्थित समस्त साधु एवं साध्वियों को पढ़कर सुनायी और जो साधु एवं साध्वी दूर २ नगरों में थे, उनको उसकी प्रतिया भेजी गई।

गोड़वाड़ के प्रसिद्ध नगर वाली में चातुर्मास के पश्चात् गुरुदेव और पं० हेतविजयजी तूर्यक में वाद हुआ। उसमें हेतविजयजी परास्त हुये। गुरुदेव तथा उनकी शिष्य एवं साधुमण्डली के पाडित्य और साध्वाचार से वे अति प्रभावित हुये। गुरुमहाराज के तेज और पाडित्य की प्रशंसा करते हुये उन्होंने क्षमा माग कर अन्यत्र विहार किया। तत्पश्चात् गुरुमहाराज ने अपनी मण्डली-सहित अर्बुदाचलतीर्थ की संघ-सहित अक्षय तृतीया को यात्रा की। यात्रा करके जब गुरुमहाराज खराड़ी नामक प्रसिद्ध ग्राम में पधारे, वहा सिरोही-नरेश केसरसिंहजी साहब ने अपने अमीर एवं प्रतिष्ठित पदाधिकारियों के सहित गुरु महाराज के दर्शन किये और इन से बातचीत करके अत्यन्त ही प्रभावित एवं मुग्ध हुये।

(४) वि सं १९६७ में सियाणा में चातुर्मास—

सियाणा में गूर्जरसम्राट् कुमारपाल का बनवाया हुआ एक विशाल जिनालय है। गुरुमहाराज ने उसका जीर्णोद्धार करवाने का श्रीसघ को उपदेश दिया और जीर्णोद्धार चातुर्मास के पश्चात् प्रारम्भ भी हो गया। चातुर्मास में गुरुमहाराज के दर्शनार्थ मालवा, मारवाड़ के लगभग सौ से ऊपर छोटे-बड़े ग्राम नगरों से श्रीसघ और परिवार आये।

(५) वि० सं० १९६८ में आहोर में चातुर्मास—

इस चातुर्मास में आहोर में अनेक धर्म-कृत्य किये गये थे तथा चातुर्मास के पश्चात् उपधानतप का विशाल आयोजन किया गया था। उपधान-

तप करवाकर जब गुरु महाराज सियाणा पधारे, उस समय तक महाराजा कुमारपाल के जिनालय का जीर्णोद्धार समाप्त होने को था। प्राचीन शृंगार-चौकी सहित मंदिर में चौवीस तीर्थंकरों की देवकुलिकायें बनवाई गईं। माघ शुक्ला त्रयोदशी को शुभ मुहूर्त्त में इन कुलिकाओं में तथा मन्दिर में नव-नूतन प्रतिमायें सविधि महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठित की गईं। गुरु महाराज के सदुपदेश से जैन विद्यालय की भी स्थापना हुई।

(६) वि० सं० १९५९ में जालोर में चातुर्मास—

शिवगंज से उत्तर में कोर्टा-तीर्थ लगभग ५ मील के अन्तर पर आया हुआ है। यह तीर्थ दो सहस्र वर्ष प्राचीन है। जैन मन्दिरों एवं तीर्थों के इतिहास में इसका गौरवशाली स्थान है। वहाँ पर वहाँ के श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय करके एक विशाल जिनालय बनवाया था। गुरु महाराज ने इसी वर्ष उस मन्दिर की वैशाख शु० पूर्णिमा को महामहोत्सवपूर्वक अञ्जन-शलाका-प्रतिष्ठा करके उसमें भगवान् आदिनाथ की अति मनोहर प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित की। इस प्रतिमा के दोनों पक्षों पर विनिर्मित कायोत्सर्गस्थ दो प्रतिमाओं पर वि० सं० ११४३ का श्रावक रामा जरुक का प्रतिष्ठापन-लेख है। जिसमें उसकी स्त्री मनातु के द्वारा इसको स्थापित करने का उल्लेख है। कोर्टा से गुरुमहाराज अपनी मण्डली के सहित चातुर्मासार्थ जालोर पधारे। जालोर में ओसवालज्ञातीय मोदीगोत्र के कुटुम्बों में भारी कुसंप पड़ा हुआ था। गुरु महाराज ने उसका अन्त किया। चातुर्मास समाप्त करके आप आहोर पधारे और वहाँ पर 'राजेन्द्रज्ञान-भण्डार' की श्वेत संगमरमर के बने हुये एक सुन्दर सुदृढ़ कक्ष में स्थापना की तथा इसी कक्ष के ऊपर एक सुन्दर कुलिका में धातुमय तीन जिनेश्वर-मूर्त्तियां शास्त्रविधि से सोत्सव प्रतिष्ठित की। मरुधर-प्रान्त में इस युग में विद्यमान् ज्ञान-भण्डारों में आहोर का यह ज्ञान-भण्डार अधिक समृद्ध एवं विख्यात है। इसमें प्राचीन, अर्वाचीन अनेक हस्तलिखित एवं मुद्रित ग्रंथों तथा ४५ जिनागमों का बड़ी लग्न से संग्रह किया गया है।

चातुर्मास के पश्चात् गुरुमहाराज गुड़ा में पधारे और वहाँ माघ शु० ५ को श्रीधर्मनाथादि जिनेश्वर-प्रतिमाओं की सोत्सव स्थापना की।

वहाँ से आप शिवगज पधारे और वहाँ पर शातमूर्त्ति दिव्यात्मा मुनि मोहनविजयजी को महोत्सवपूर्वक पन्यास-पद प्रदान किया ।

शिवगज से वाली नगर में पधारे और वहाँ पर तीन श्रावकों को छोटी साधुदीक्षा प्रदान की । तत्पश्चात् आप अपने शिष्य एव साधुवर्ग के साथ मे श्री केसरिया-तीर्थ, भोयणी, सिद्धाचल महातीर्थ की यात्रा करते हुये व्यापार एव कलादृष्टि से प्रसिद्ध नगर सूरत मे पधारे ।

(७) वि० सं० १९६० में सूरत में चातुर्मास:—

यहाँ जैनधर्म के सर्व संप्रदायों के मनुष्य रहते हैं । यहाँ के लोग कुशल व्यापारी एवं श्रीमंत होने से बोलने में चतुर एवं चालाक हैं । गुरु महाराज का नाम सूरतवासी कई वर्षों से श्रवण कर रहे थे । उन्होंने गुरु-प्रवेश बडी धाम-धूम से करवाया । चातुर्मास पर्य्यन्त धर्म-कथाओं, धर्म-चर्चाओं एवं वादों का अच्छा तांता रहा । जो विरोधी, द्वेषी थे वे भी गुरु-महाराज के प्रखर पाडित्य एवं साधु-तेज से मुग्ध होकर विनयी हो गये । गुरुदेव ने सूरत-चातुर्मास पर दृष्टि रख कर 'श्री राजेन्द्र-सूर्योदय' नामक पुस्तक लिखी ।

(८) वि० सं० १९६१ में कुक्षी में चातुर्मास:—

इस चातुर्मास में गुरुदेव ने 'प्राकृतव्याकृति' नामक ग्रंथ लिखा । चातुर्मास के पश्चात् झाबुआ-नरेश श्री उदयसिंहजी बहादुर के निमंत्रण पर आप अपने समुदायसहित झाबुआ पधारे । राजा एवं प्रजा दोनो ने गुरु-प्रवेश बडे ही ठाट से करवाया । गुरु महाराज का धर्मरसपूर्ण एवं विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान श्रवण करके राजा एवं नागरिक जन अति ही मुग्ध हुये । राजा ने कई प्रतिज्ञायें ली तथा अनेक देवस्थानों पर होते पशुवध को रोकने के आदेश निकालने की भी शपथ ग्रहण की । गुरुमहाराज ने रंगपुरा, मड़ावदा, कड़ोद, टाडा, झाबुआ, रम्भापुर आदि अनेक नगर, ग्रामों में अजनशलाका-प्रतिष्ठायें करवाई तथा चरितनायक को बोरीग्राम (झाबुआ) और गुणदी (जावर)

बोरी और गुणदी नामों में प्रतिष्ठायें

ग्राम में भेज कर वि० सं० १९६१ फा० कृ० १ और मार्ग शु० १० सोमवार को क्रमशः प्रतिष्ठायें करवाईं।

(९) वि० सं० १९६२ में खाचरौद में चातुर्मास:—

मालवा में चीरोला एक प्रसिद्ध ग्राम है। एक बार एक कन्या के माता और पिता दोनों के द्वारा अलग २ सगाई कर देने के कारण कन्या के साथ विवाह करने के लिये दो वर, एक सीतामऊ से और दूसरा रतलाम से बरात सजा कर आ गये थे। कन्या सीतामऊ से आये वर के साथ विवाही गई थी। इस घटना को लेकर रतलाम के श्रीसंघ ने जो मालवा में अधिक प्रभावशाली एवं सम्मानित संघ है चीरोला के संघ को ज्ञाति से बहिष्कृत कर दिया। इस घटना को लगभग अढ़ाई सौ वर्ष से भी ऊपर हो चुके थे। चीरोला-संघ ने ज्ञाति में आने के लिये अनेक बार प्रयत्न किये थे, लाखों रुपयों का व्यय भी सहन किया था, अच्छे २ आचार्य एवं प्रभाविक पुरुष परिश्रम करके थक गये थे; परन्तु रतलाम-संघ ने अब तक किसी की नहीं मानी थी। रतलाम-संघ के विरोध में मालवा के अन्य नगरों के संघ भी कुछ करने का साहस नहीं कर सकते थे। गुरुमहाराज को महाप्रभाविक समझ कर चिरोला-संघ गुरु-सेवा में उपस्थित हुआ और अपनी दुःखभरी कथा कह सुनाई। गुरुमहाराज ने चीरोला-संघ को आश्वासन दिया और अपने व्याख्यान में चीरोला-संघ के ऊपर महा ओजस्वी भाषण दिया। खाचरौद के संघ के ऊपर गुरुमहाराज के प्रभावशाली भाषण का अति ही प्रभाव पड़ा और समस्त दुःखों को झेल कर भी वह चीरोला के संघ को ज्ञाति में लेने को तैयार हो गया। उसने मालवा-प्रान्त के सम्बन्धित संघों को अपनी सम्मति एवं निश्चय से पत्र लिख कर अवगत किया। कई एक ग्राम, नगरों के संघों की अनुकूल सम्मतियां प्राप्त हो गईं। इस प्रकार मालवा-प्रान्त के प्रायः सर्व श्री संघों की सम्मति पर ही यह संगठन हुआ। सारे मालवा के संघ की सम्मति मिला कर संगठन किया। बस क्या था, गुरुमहाराज ने उत्तम अवसर देख कर चीरोला-संघ के हाथों से खाचरौद संघ को मिश्री दिलवा दी और खाचरौद के प्रतिष्ठित पुरुष शाह नन्दलालजी कावड़िया ने और चुन्नीलालजी मुणोत ने चीरोला-संघ को प्रीतिभोज देकर अपूर्व साहस एवं ज्ञातिसेवा का कार्य किया। चीरोला-

'श्री अभिधान राजेन्द्र-कोश' के प्रणेता महापंडित श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज अपने प्रियतम शिष्यों के साथ.

दायें से बायें

ऊपर—श्रीमद् विजयधनचंद्रसूरिजी और उपा० मोहनविजयजी

पक्ष पर—श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी और श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरिजी

नीचे—वयोवृद्धमुनि लक्ष्मीविजयजी और हर्षविजयजी

श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज
अपने प्रिय शिष्यों के साथ

दायें से बायें
ऊपर—मुनि श्री दानविजयजी और कल्याणविजयजी
नीचे—मुनि श्री चरित्रविजयजी और तत्वविजयजी

श्रीमद् विजयधनचंद्रसूरीश्वरजी महाराज
अपने प्रिय शिष्यों के साथ

दाये से बायें
उपा०—गुलाबविजयजी और मुनिराज हंसविजयजी

संघ की ओर से आठ दिन तक प्रीति भोज हुये, जिनमें आस-पास के ग्रामों के समस्त श्री संघ खाचरौद-श्री संघ के आग्रह से सम्मिलित हुये। गुरुमहाराज का यश इस महत्त्वशाली कार्य से समस्त मध्यभारत मे प्रसारित हो गया और तत्पश्चात् विहार में आप जिन ग्रामों में होकर निकलते थे वहाँ के श्री संघ आपका अतीव ही सत्कार करते और बड़ी ही भक्तिभावनाओं से सेवा करते। इसी वर्ष गुरुमहाराज साहब की निश्रा में मुणोत चुन्नीलालाजी ने श्रीमक्षी-तीर्थ के लिये खाचरौद से संघ निकाला। चैत्र कृ० १० को गुरुमहाराज ने श्री संघ एवं अपने साधुमण्डल सहित श्रीमक्षी-पार्श्वनाथबिंब के भक्तिभाव-पूर्वक दर्शन किये।

(१०) वि० सं० १९६३ में बड़नगर में चातुर्मासः—

चातुर्मास के अन्तिम दिनों में गुरु महाराज को स्वांस का रोग हुआ और वह बढता ही गया। स्वांस का रोग बढ रहा था, फिर भी आप दयालु श्री ने बड़नगर के संघ की माण्डवगढ़ की यात्रा करने की भावनाओं को मान देकर शुभ मुहूर्त में प्रयाण किया। १५ शिष्य एवं साधुओं का उस समय आपश्री के संग में समुदाय था। मार्ग में अनेक साध्विया भी आकर संग में सम्मिलित हो गई थीं। स्वास बढ़ता ही गया और ज्वर भी आना प्रारम्भ हो गया। फिर भी गुरु महाराज संघ के साथ यात्रा करते रहे। राज-गढ़ जब संघ पहुँचा गुरु महाराज को तीव्रतर स्वांस और तीव्रतर ज्वर ने आ घेरा। उस समय तक 'राजेन्द्रकोप' का लेखन-कार्य भी समाप्त हो चुका था; परन्तु उसका प्रकाशन अवशिष्ट था। कोप के विचार ने गुरु महाराज को अधिक पीड़ित कर रखा था। मुनि श्रीदीपविजयजी तथा चरितनायक ने गुरु महाराज के दुःख का कारण समझ लिया। बैठे हुये संघ के समक्ष दोनों मुनिराजों ने कोप के प्रकाशन का भार प्रतिज्ञापूर्वक स्वीकार किया। बैठे हुये संघ ने भी भरसक आर्थिक सहयोग देने की प्रतिज्ञा की। इससे मरणासन्न गुरुदेव की आत्मा को सन्तोप हुआ और उसके तीन दिनों के पश्चात् सुख-पूर्वक उन्होंने देह का त्याग किया। सोलह वर्षों में पूर्ण होने वाले महाविशाल 'अभिधान-राजेन्द्रकोप' के भगीरथ प्रणेता गुरुदेव का निदान वि० सं० १९६३ पौप शु० ६ को स्वर्गवास हो गया। बड़नगर-संघ अनाथ सा हो गया।

राजगढ़-संघ और आस पास के ग्रामों, नगरों के जैन संघों में गुरुदेव*के स्वर्गवास से भारी हाहाकार मच गया। धारानरेश ने भी जब यह दुःखद समाचार सुना तो उन्होंने भी संवेदना प्रकट की और राज्य का लवाजमा भेजा। लगभग पचास से ऊपर ग्राम, नगरों के श्रीसघों ने मिलकर गुरुदेव का दाह-संस्कार किया।

ऐसे महान् पण्डित एवं तेजस्वी गुरुदेव का संग, सहवास, स्नेह, साहचर्य्य पाकर कौन कंकर शंकर नही बनेगा। चरितनायक तो जिज्ञासु, विनयी, सुसंस्कृत, प्रतिभासम्पन्न, परिश्रमी, गुरु-आज्ञापालक थे ही। आप गुरु महाराज की निश्रा में बराबर उनके स्वर्गारोहणकाल पर्यंत बने रहे और स्वाध्याय, विद्याभ्यास में अति उन्नति की। उपधानतप, प्रतिष्ठायें करवाने में प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया। अनेक यात्रायें कीं तथा उनके साथ में छोटे-बड़े ग्राम-नगरों को स्पर्श कर दूर २ श्रीसंघों का अध्ययन किया। 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का कार्य गुरु महाराज विहार और चातुर्मासों में एवं रोग, व्याधि आदि अनेक विघ्न, बाधा, उपद्रवों को सहन करके भी अविरल और अक्षुण्ण गति से करते रहते थे। गुरु महाराज के इस महत् परिश्रम का प्रभाव चरितनायक पर अमिट और गहरा पड़ा, जो मैं अपने बारह वर्ष के परिचय में प्रत्यक्ष देखता आ रहा हूँ। आपश्री जब लिखने बैठ जाते हैं, तो अनेक

---

* श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी—

जन्म—वि० सं० १८८३ पौष शु० ७ गुरुवार।

जन्म-स्थान और वंशपरिचय—भरतपुर (राजस्थान) ओसवालज्ञातीय पारीक्षक गोत्रीय पिता ऋषभदासजी, माता केसरीबाई। मूलनाम—रत्नराज।

लघुदीक्षा—वि० स० १९०३ वैशाख शु० ५ गुरुवार को मुनि हेमविजयजी के कर-कमलों से।

बडीदीक्षा और उपाध्याय-पद—वि० सं० १९०९ वैशाख शु० ३ सोमवार को उदयपुर में।

पन्यास-पद—उदयपुर में।

श्रीपूज्य-पद—वि० स० १९२४ वैशाख शु०५ बुधवार को आहोर नगर (मरुधरप्रान्त) मे श्री विजयप्रमोदसूरिजी के कर-कमलो से और विजयराजेन्द्रसूरिजी नाम रक्खा गया।

क्रियोद्धार—वि० स० १९२५ आषाढ कृ० १० बुधवार को जावरा मे।

निर्वाण—वि० सं० १९६३ पौष शु० ६ शुक्रवार की रात्रि को आठ बजे राजगढ़ (मालवा) में स्वर्गवास हुआ।

घण्टे बीत जाते हैं; परन्तु आप की लेखनी नहीं रुकती। पाठकगण को मेरे कथन की सत्यता आगे के पृष्ठों से ज्ञात होगी।

गुरु महाराज चरितनायक पर सदा प्रसन्न रहते थे तथा इनकी बढ़ती हुई योग्यता एवं शक्ति पर अति मुग्ध रहते थे। वि० सं० १९६१ फाल्गुन कृ० १ को झाबुआ-स्टेट के बोरी नामक ग्राम में और मार्गशीर्ष शु० १० सोमवार को जावरा-स्टेट के गुणदी नामक ग्राम में चरितनायक ने गुरु आज्ञा से प्रतिष्ठायें करवाई थीं। इन प्रतिष्ठाओं में चरितनायक ने अपनी दक्षता एवं योग्यता का अच्छा परिचय दिया था। गुरु महाराज को इन उक्त अवसरों से इन से अति सन्तोष प्राप्त हुआ था, ऐसा कहा जा सकता है। चरितनायक ने वि० स० १९६३ में 'तीन स्तुति की प्राचीनता' नामक पुस्तक लिखकर अपनी तर्कशक्ति एवं पाण्डित्य का भी विशद् परिचय दिया था। इस पुस्तक को पढ़कर सम्प्रदाय एवं साधुमण्डल दोनों को चरितनायक के होनहार होने का भी अच्छा परिचय मिल गया था। यह पुस्तक १६ पृष्ठ की है तथा वि० स० १९६३ में ही 'श्री श्वेताम्बराभ्युदय राजेन्द्र जैन युवक मंडल', जावरा की ओर से प्रकाशित हुई है। आपने जैनागमों के उद्धरण तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रथों के प्रमाण देकर त्रिस्तुतिसिद्धात की प्राचीनता पर इस में प्रकाश डाला है तथा तीनस्तुति तुर्यस्तुति से प्राचीन है इसमें सिद्ध किया है। पुस्तक छोटी होकर भी निर्णयात्मक दृष्टि से महत्त्व की है एवं पठनीय है। यह स्व० गुरुदेव की जीवितावस्था में ही प्रकाशित हो चुकी थी और उनके शुभाशीर्वाद को ग्रहण कर चुकी थी।

———

'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का संशोधन, संपादन और प्रकाशन

वि० स० १९६४ से वि० सं० १९७२

●

स्व० गुरुमहाराज श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी ने सियाणा (मरुधर-प्रान्त) में वि० सं० १९४६ में 'अभिधान राजेन्द्र-कोष' की रचना प्रारम्भ की और वह उन्होंने अथक परिश्रम उठाकर, अनेक विघ्न-बाधाओं को सहन करके वि० सं० १९६० सूरत नगर में हुये चातुर्मास में समाप्त की। यह कोष जैन-वाङ्मय में तो साहित्यमणि है ही; परन्तु भारतीय साहित्य में ही नही, संसार के साहित्य में उपलब्ध कोषों में आकार प्रकार से अद्वितीय एवं बहूपयोगी है। इस कोष में समस्त जैन-शास्त्र एवं आगम तथा आचार्यों के विरचित प्रामाणिक एवं उपयोगी ग्रंथों का समावेश किया गया है। कोष की संकलना इस प्रकार की गई है कि प्रथम प्राकृतसंबन्धी शब्द लिखकर उसका संस्कृतरूप दिया गया है; तत्पश्चात् उसके लिंग, व्युत्पत्ति दिये गये हैं और फिर उसके होने एवं मिलने वाले अनेक अर्थ सप्रयोग-आधार, अध्ययन तथा उद्देश्यों के अकनसहित आगमों के ग्रन्थांतरों के उदाहरणसहित अवतरण दिये हैं तथा व्याख्यादि बड़ी ही कुशलता एवं योग्यतापूर्वक दी गई हैं। जहाँ २ शब्द के विस्तृत एवं बहु अधिकार आये हैं, वहाँ २ सूची दी गई है। फलतः कोई विषय और शब्द और उनका अर्थ तथा उनका भिन्न ग्रथ में भिन्न २ दृष्टियों से प्रयोग और प्रयोजन को समझने देखने में पाठकों को अति ही सरलता एवं सुगमता उत्पन्न हो गई है। समस्त जैन-धर्म-साहित्य इस कोप में प्रतिष्ठित हो गया है। इस कोष को जैन साईक्लोपीडिया भी कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी; क्योंकि इसी एक कोष को लेकर कोई विद्वान् जैनागमों का महत्त्वशाली एवं महोत्तम ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

ऐसे महाशब्दार्णव कोष का जितना लिखना कठिन था, उतना ही उसका प्रकाशन भी सरल नहीं था। गुरुमहाराज का स्वास्थ्य भी गिरना

श्रीमद् उपाध्याय मोहनविजयजी महाराज और मुनिमण्डल

खड़े हुओं में —
१ लक्ष्मीविजयजी
२ दानविजयजी
३ हंसविजयजी
४ अमृतविजयजी
५ गुलाबविजयजी

बैठे हुओं में —
६. यतीन्द्रविजयजी
७ दीपविजयजी

प्रारम्भ हो गया था तथा सूरत के चातुर्मास के पश्चात् आप केवल तीन वर्ष ही जीवित रहकर वि० सं० १९६३ में स्वर्ग सिधार गये और फलतः कोष के प्रकाशन के लिये जैसी संतोषजनक व्यवस्था बन जानी चाहिए थी, वह इतने अल्प तीन वर्ष के काल में नहीं बन पाई। गुरुमहाराज में मालवा, मारवाड़ तथा गूर्जर-काठियावाड़ के इन समस्त नगरों के श्रीसंघों की अपार भक्ति एवं श्रद्धा थी। ज्योंही गुरुमहाराज ने अपना स्वर्गगमन निकट समझा, उन्होंने कोष का प्रकाशन का भार सुयोग्य मुनि दीपविजयजी और चरित-नायक पर वि० सं० १९६३ की पौष शु० तृतीया को बड़नगर एवं राजगढ़ के श्रीसंघों के समक्ष डाला और वे सुखपूर्वक तीन दिवस पश्चात् पौ० शु० ६ को स्वर्ग सिधारे। ज्योंही गुरुदेव के दाह-संस्कार से संघ निवृत्त हुये, सर्व संघों ने एकत्रित होकर गुरुमहाराज के महापरिश्रम से बने 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' को मुनि श्री दीपविजयजी एवं चरितनायक के सम्पादकत्व में तुरन्त प्रकाशित करवाने का विचार किया। इस अवसर पर चरितनायक का गुरु-महाराज के जीवन, उनके साहित्य एवं विशिष्ट रूप से कोष पर लम्बा एवं सारगर्भित भाषण भी हुआ। गुरुमहाराज के निधन का तार, समाचार पाकर अनेक नगर, ग्रामों के संघ भी एकत्रित हो गये थे। सभी उपस्थित ग्रामों के श्रीसंघों ने यथाशक्ति कोष के प्रकाशन के लिये अर्थ-सहायता देने के वचन दिये। निदान कोष के प्रकाशन का प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ और सम्पादकत्व का भार मुनि श्री दीपविजयजी एवं चरितनायक को अर्पण किया गया।

तत्पश्चात् वि० सं० १९६४ में पं० मोहनविजयजी, मुनिमण्डल और चरितनायक का चातुर्मास मालवा के प्रसिद्ध नगर रतलाम में हुआ। चातु-र्मास-व्याख्यान में मुख्य वाचन 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का ही रहा तथा उसके प्रकाशन का प्रश्न बराबर चर्चा जाता रहा। निदान श्रावण शु० ५ को 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष-प्रकाशक' कार्यालय की स्थापना शुभ मुहूर्त्त में पं० मोहनविजयजी की निश्रा में चरितनायक की अविरल प्रेरणा एवं लग्न से हुई और चातुर्मास के पश्चात् 'श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस' भी तुरन्त ही स्वतन्त्र रूप से खोला गया और कोष के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ किया गया।

चरितनायक और मुनि श्री दीपविजयजी दोनों अथक परिश्रमी मुनियों ने मिलकर कोष के प्रकाशन का कार्य वि० सं० १९७२ में समाप्त कर दिया। इन नव वर्षों के नव ही चातुर्मास तथा अन्य मासों में दोनों ही मुनिवर मुख्यतया कोष के प्रकाशन के कार्य को ही करते रहे और कोष जैसा अद्वितीय एवं उपयोगी था, वैसा ही उसका सुन्दर एवं प्रामाणिक ढ़ग से सम्पादन करके उसको प्रकाशित किया। कोष का मुद्रण ग्रेट और पाई के टाइपों में बहुत बढ़िया रॉयल चार पेजी पत्र पर हुआ। कोष को वर्णों के अनुक्रम से विभक्त करके उसे सात भागों में निकाला गया। सात ही भागों के कुल पृष्ठ मिलाकर १०७४९ हैं, जिनका मूल्य भागक्रम से निम्नवत् है।

भाग	वर्ण	पृष्ठ संख्या	मूल्य
प्रथम	अ	१०३६	रु० २५ ० ०
द्वितीय	आ	११९२	,, ३५ ० ०
तृतीय	इ से छ	१३७९	,, ३५ ० ०
चतुर्थ	ज से न	२७९६	,, ३६ ० ०
पञ्चम	प से भ	१६३६	,, ३० ० ०
षष्ठ	म से व	१४६६	,, ३८ ० ०
सप्तम	श से ह	१२४४	,, ३८ ० ०
७ भाग	पूर्ण वर्णमाला	१०७६	रु० २३७ ० ०

इस प्रकार 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के मुद्रण का कार्य वि० सं० १९७२ में समाप्त हो गया। यह जानकर पाठकों को आश्चर्य होगा कि इतने ही वर्ष अर्थात् नव वर्ष इस महाकोष के बंधारण में लग गये। वि० सं० १९८१ चैत्र कृष्णा मंगलवार को यह कोष पुस्तकाकार रूप में सर्व प्रकार से पूर्ण हो कर कई एक विद्वानों के कर-कमलों में पहुँचा और उनके मस्तिष्क, हृदय और नेत्रों के आनन्द को बढाने में सफल हुआ। इस समय इस का मूल्य घटाकर सर्वानुमति से रु० १५५) कर दिया है, जो अत्यल्प है।

रतलाम चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० १९६४

'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' को देखकर कोई भी विद्वान उसकी सम्पादन-शैली, छपाई, सुन्दरता, आकर्षण की मुग्ध कंठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। पट कैसा भी बहुमूल्य एवं सुन्दर क्यों नहीं हो, उसकी वस्तुतः सच्ची कीमत और उपयोगिता तो कुशल कारीगर के चातुर्यपूर्ण व्यवहार एवं श्रम पर ही अवलम्बित है। ठीक इसी प्रकार 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का संकलन स्व० गुरुमहाराज के प्रखर पाण्डित्य, अनन्त उत्साह, अथक श्रम का परिणाम तो है ही, परन्तु चरितनायक एवं उनके सहयोगी सम्पादक मुनि श्री दीपविजयजी की तत्परतापूर्ण कुशलता तथा योग्यतापूर्ण सम्पादकत्व पर भी निर्भर है।

———

श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी[1] की आज्ञा से साहित्यसेवी चरितनायक के नव चातुर्मास तथा कोष-कार्य और इस नववर्षीय काल में स्वरचित पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय

वि० सं० १९६४ से वि० सं० १९७२

●
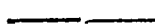
१—आपने वि० सं० १९६४ में रतलाम में पण्डित मोहनविजयजी[2] के साथ में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में कोष का प्रकाशन-कार्य सोत्साह महोत्सवपूर्वक प्रारम्भ किया गया तथा चरितनायक ने अपना समस्त समय

---

१. श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी—

जन्म—वि० सं० १८९६ चैत्र शु० ४ सोमवार।

जन्मस्थान और वंश—किशनगढ़ (मेदपाट) ओसवालज्ञातीय कुचेरियागोत्रीय श्रेष्ठि ऋद्धिकरणजी, माता अचलादेवी जी। मूलनाम-धनराज।

यतिदीक्षा—वि० सं० १९१७ वैशाख शु० ३ गुरुवार को धानेरा (पालनपुर-स्टेट) में पं० श्री लक्ष्मीविजयजी के चर-कमलों में।

दीक्षोपसंपद् (क्रियोद्धारत्व)—वि० सं० १९२५ आषाढ़ शु० १० बुधवार को श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी के चर-कमलों में।

रतलाम चातुर्मास के अवसर पर वि० स० १९६४

'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' को देखकर कोई भी विद्वान् उसकी सम्पादन-शैली, छपाई, सुन्दरता, आकर्षण की मुग्ध कंठ से प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। पट कैसा भी बहुमूल्य एवं सुन्दर क्यों नहीं हो, उसकी वस्तुतः सच्ची कीमत और उपयोगिता तो कुशल कारीगर के चातुर्य्यपूर्ण व्यवहार एवं श्रम पर ही अवलम्बित है। ठीक इसी प्रकार 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का संकलन स्व० गुरुमहाराज के प्रखर पाण्डित्य, अनन्त उत्साह, अथक श्रम का परिणाम तो है ही, परन्तु चरितनायक एवं उनके सहयोगी सम्पादक मुनि श्री दीपविजयजी की तत्परतापूर्ण कुशलता तथा योग्यतापूर्ण सम्पादकत्व पर भी निर्भर है।

श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी[1] की आज्ञा से साहित्यसेवी चरितनायक के नव चातुर्मास तथा कोष-कार्य और इस नववर्षीय काल में स्वरचित पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय

वि० सं० १९६४ से वि० सं० १९७२

●

१—आपने वि० सं० १९६४ में रतलाम में पण्डित मोहनविजयजी[2] के साथ में चातुर्मास किया। इस चातुर्मास में कोष का प्रकाशन-कार्य सोत्साह महोत्सवपूर्वक प्रारम्भ किया गया तथा चरितनायक ने अपना समस्त समय

---

१. श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी—

जन्म—वि० सं० १८९६ चैत्र शु० ४ सोमवार।

जन्मस्थान और वंश—किशनगढ़ (मेदपाट) ओशवालज्ञातीय कंकुचोपड़ागोत्रीय श्रेष्ठि ऋद्धिकरणजी, माता अचलादेवी जी। मूलनाम-धनराज।

यतिदीक्षा—वि० सं० १९१७ वैशाख शु० ३ गुरुवार को धानेरा (पालनपुर-स्टेट) में पं० श्री लक्ष्मीविजयजी के कर-कमलों से।

दीक्षोपसंपद् (क्रियोद्धाररूप)—वि० सं० १९२५ आषाढ कृ० १० बुधवार को श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से।

सामग्री-संशोधन, प्रूफ का संशोधन तथा अन्य ऐसे ही कोष-सम्बन्धी कार्यों में बड़ी तत्परता एवं रुचि से लगाया। वर्ष का अवशिष्ट समय भी आपश्री ने रतलाम के निकटवर्त्ती ग्रामों में ही विहार करके व्यतीत किया, जिससे कोष के प्रकाशन में आपकी सहायता और देखरेख का लाभ सुलभ रहे। श्रीमद् उपा० मोहनविजयजी की आज्ञा से एलचीग्राम (ग्वालियर-राज्य) में इसी वर्ष पौ० शु० ११ को श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा की गृहजिनालय में आपश्री ने प्रतिष्ठा की।

२—आपने वि० सं० १९६५ में रतलाम में ही मुनि दीपविजयजी के साथ में दूसरा चातुर्मास किया। दोनों ही मुनिवरों ने अपने स्तुत्य सहयोग से कोष के प्रकाशन में अति ही सर्वाङ्गीण प्रगति की। चरितनायक ने 'भावनास्वरूप' नामक सुपर-रॉयल १६ पृष्ठ की एक पुस्तक इसी संवत् में लिखी, जिसको इसी संवत् में ही श्री जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम में छपवाकर 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष-कार्यालय, ने प्रकाशित की। इस पुस्तक

वड़ी दीक्षा—वि० सं० १९२५ कार्त्तिक शु० ५ खाचरौद में।

उपाध्यायपद—वि० सं० १९२५ मार्गशीर्ष शु० ५ ,, ।

सूरिपद—वि० स० १९६५ ज्येष्ठ शु० ११ बुधवार जावरा में तथा श्रीमद् धनचंद्र-सूरि नाम रखा गया।

स्वर्गारोहण—वि० सं० १९७७ भाद्र शु० १ को बागरा (मरुधर) में।

श्रीमद् उपा० मोहनविजयजी—

जन्म—वि० सं० १९२२ भाद्र कृ० २ बुधवार।

जन्मस्थान और वंश—सावुझा (मरुधर) ब्राह्मणज्ञातीय पुरोहितशाखीय पिता वृद्धिचंद्रजी, माता लक्ष्मीदेवी। स्वनाम—मोहनचद्र।

लघुदीक्षा—वि० स० १९३३ माघ शु० २ गुरुवार को जावरा मे-नाम मोहनविजयजी।

वडीदीक्षा—वि० स० १९३९ मार्ग कृ० २ कुक्षी (मालवा) मे।

पन्यासपद वि० सं० १९५९ फाल्गुन शु० २ शिवगज (सिरोहीस्टेट) मे।

उपाध्यायपद—वि० स० १९६६ पौष शु० ८ बुधवार को राणापुर (झाबुआस्टेट) मे श्रीमद् धनचद्रसूरिजी के कर-कमलों से।

स्वर्गारोहण—वि० स० १९७७ पौष शु० ३ बुधवार को कुक्षी (नेमाड़-मालवा) में।

चरितनायक मुनि श्री यतीन्द्रविजयजी महाराज

रतलाम चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० १९६५

में अनित्यादि बारह भावनाओं का अत्यल्प स्वरूप अच्छा वर्णित किया गया है। वैराग्य विषय पर यह एक अच्छी पुस्तक है। चातुर्मास के पश्चात् भी आपश्री निकटवर्त्ती स्थानों में ही विचरण करते रहे और कोष के प्रकाशन की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखा। आपने शेष सप्त चातुर्मास निम्नवत् किये।

३—वि० सं० १६६६ में रतलाम में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

४—वि० सं० १६६७ में मन्दसौर में चातुर्मास स्वतन्त्र रूप से किया।

५—वि० सं० १९६८ में रतलाम में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

६—वि० सं० १६६६ में बागरा (मरुधर) में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

७—वि० सं० १६७० में आहोर (मरुधर) में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

८—वि० सं० १९७१ में जावरा में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

९—वि० सं० १९७२ में खाचरौद में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

उपरोक्त नव चातुर्मासों में कोष का कार्य ही मुख्यतया आपश्री करते रहे। फिर भी योग्यवर्य मुनि श्री दीपविजयजी के साहचर्य्य से तथा पं० मोहनविजयजी के सुखद एवं शांतिपूर्ण सम्पर्क से आपश्री को मालवा एवं मारवाड़ के नगरों तथा उनके श्रीसंघों का सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वि० सं० १९६७ वै० शु० ३ को आपश्री ने उपा० मोहनविजयजी की आज्ञा से मामटखेड़ा (जावरा) में मू० ना० श्री चन्द्रप्रभस्वामी आदि तीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। चरितनायक की तत्त्वावधानता में आहोर में वि० स० १९७१ में प० सा० मानश्रीजी ने भिन्नमालवास्तव्य

में अनित्यादि बारह भावनाओं का अत्यल्प स्वरूप अच्छा वर्णित किया गया है। वैराग्य विषय पर यह एक अच्छी पुस्तक है। चातुर्मास के पश्चात् भी आपश्री निकटवर्त्ती स्थानों में ही विचरण करते रहे और कोष के प्रकाशन की धारा को अक्षुण्ण बनाये रखा। आपने शेष सप्त चातुर्मास निम्नवत् किये।

३—वि० सं० १९६६ में रतलाम में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

४—वि० सं० १९६७ में मन्दसौर में चातुर्मास स्वतन्त्र रूप से किया।

५—वि० सं० १९६८ में रतलाम में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

६—वि० सं० १९६९ में बागरा (मरुधर) में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

७—वि० सं० १९७० में आहोर (मरुधर) में चातुर्मास पं० मोहनविजयजी के साथ में किया।

८—वि० सं० १९७१ में जावरा में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

९—वि० सं० १९७२ में खाचरौद में चातुर्मास मुनि दीपविजयजी के साथ में किया।

उपरोक्त नव चातुर्मासों में कोष का कार्य ही मुख्यतया आपश्री करते रहे। फिर भी योग्यवर्य मुनि श्री दीपविजयजी के साहचर्य्य से तथा पं० मोहनविजयजी के सुखद एवं शांतिपूर्ण सम्पर्क से आपश्री को मालवा एवं मारवाड़ के नगरों तथा उनके श्रीसंघों का सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वि० सं० १९६७ वै० शु० ३ को आपश्री ने उपा० मोहनविजयजी की आज्ञा से मामटखेड़ा (जावरा) में मू० ना० श्री चन्द्रप्रभस्वामी आदि तीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। चरितनायक की तत्त्वावधानता में आहोर में वि० सं० १९७१ में प० सा० मानश्रीजी ने भिन्नमालवास्तव्य

मल्लाणीगोत्रीय ताराचन्द्रजी की धर्मपत्नी केसरबाई को जैन दीक्षा प्रदान की और मगनश्री नाम रक्खा। तत्पश्चात् आपश्री ने मालवा की ओर विहार किया।

चरितनायक ने वि० सं० १६७१-७२ में चार पुस्तकें 'गौतम-पृच्छा' 'श्री नाकोड़ा-पार्श्वनाथ' 'सत्यबोधभास्कर' और 'जीवनप्रभा' नामक लिखकर प्रकाशित करवाईं।

गौतम-पृच्छाः—रचना सं० १९७०, आकार डेमी १२ पृष्ठ, पृ० स० २४, प्रतियां १००० इस पुस्तक को 'श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय जैन-संघ', रतलाम ने जैन-प्रभाकर प्रेस, रतलाम में छपवाकर वि० सं० १९७१ में प्रकाशित की। 'गौतम-पृच्छा (प्राकृत)' का यह हिन्दी-भाषानुवाद है। इस छोटे से ग्रंथ में फलाफल पर विचार करके कर्मों का पता बताया गया है। जैसे कोई मनुष्य कुबड़ा, अंधा, अपंग, दीन, दुःखी, दरिद्र आदि हैं अथवा धनी, यशस्वी, सुखी, बहुपरिवारी, स्वस्थ, सम्पन्न है–किन पूर्व कृत्यों का यह परिणाम है का इस ग्रंथ में अच्छा विवेचन है। द्वितीय आवृत्ति में इसकी ४००० प्रतियां जासेलगढ़वास्तव्य श्रे० स्वरूपचन्द्र हुक्माजी की ओर से और तृतीयावृत्ति में १००० प्रतियां पुनः 'श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय जैन-संघ', रतलाम की ओर से प्रकाशित हुईं। पुस्तक की उपयोगिता इसी से सिद्ध हो जाती है।

श्री नाकोड़ा-पार्श्वनाथ—रचना सं० १९७०, आकार डेमी १२ पृष्ठ, पृ० सं० ६०, प्रतियां ७००। यह पुस्तक सियाणा (मरुधर-राजस्थान) वास्तव्य श्रे० शा० वनेचन्द्र धूपाजी पूनमचन्द्र की ओर से 'श्री जैन-प्रभाकर-प्रेस' रतलाम में वि. सं. १९७१ में छपकर प्रकाशित हुई। 'श्री नाकोड़ापार्श्व-नाथ' नामक तीर्थ जोधपुर-स्टेट के मालानीप्रदेश में बालोतरा रेल्वे-स्टेशन के निकट में अति प्राचीन एवं गौरवशाली है। इस पुस्तक में इसी तीर्थ का इतिहास एवं पुरातत्त्व की दृष्टि से वर्णन है। इतिहास-सामग्री को एकत्रित करने की इच्छा रखने वालों के लिये यह उपयोगी पुस्तक है।

श्री सत्यबोधभास्कर—रचना सं० १६७०, आकार डेमी १२ पृष्ठ, पृ. सं. १६२। यह पुस्तक वि. सं. १९७१ में 'श्री जैन प्रभाकर-प्रेस', रतलाम में छपकर बागरा (मरुधर-राजस्थान) वास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय श्रे. जवानमल नथमल राजाजी की ओर से प्रकाशित हुई। यह पुस्तक मूर्त्तिपूजा-विषयक है। मूर्त्तिपूजा शास्त्रोक्त ही नहीं, वरन् ज्ञानप्राप्ति की अनेक कक्षाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है—सिद्ध किया गया है। खण्डनकर्त्ताओं के लिये इसमें अच्छी शिक्षायें हैं। अतिरिक्त इसके शास्त्राभ्यास, व्याकरण-ज्ञान की आवश्यकता और शास्त्रार्थ के उद्देश्य पर भी इसमें अच्छा विवेचन है।

जीवनप्रभा—रचना सं. १९६९, आकार-क्राउन १६ पृष्ठ, पृ. सं. ४४, प्रतियाँ १५००। यह पुस्तक अति बढ़िया कागज पर श्री निर्णयसागर प्रेस, बम्बई में बागरावास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय शाह. जवानमल चमनाजी गुलबाजी धूड़ाजी, वृद्धिचन्द्र समर्थमल की ओर से वि. सं. १९७२ में प्रकाशित हुई है। इसमें विद्वद्शिरोमणि, भगीरथप्रयत्नकर्त्ता, 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के प्रणेता, समयज्ञ, क्रियोद्धारक, महातपस्वी श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं तथा उनकी साहित्यिक रचनाओं, कथा-कोषों का, सामाजिक एव धार्मिक सेवाओं का तथा उनके धार्मिक एवं तपस्वी जीवन का वर्णन है। श्रीमद् राजेन्द्रसूरि महाराज ने जैन-समाज में फैली हुई तथा जड़ जमाई हुई मिथ्या देवी, देवियों की उपासना, पूजा का घोर विरोध करके शुद्ध ईश्वरोपासक मार्ग का प्रचार किया था तथा पुनः त्रिस्तुति का प्रचार किया था आदि उनके जीवन से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं और विशेषताओं का इसमें संक्षेप में चरितनायक ने अच्छा वर्णन दिया है।

उपरोक्त पुस्तकों के रचना-संवत् एवं प्रकाशन-संवतों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ज्यों २ 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का प्रकाशन-कार्य समाप्ति पर आने लगा, त्यों २ चरितनायक के मस्तिष्क में रचना करने के भाव जाग्रत होने लगे। भाषा में पुष्टता एवं विचारों में शुद्धता तथा भावों में सरलता जो आज आपकी समस्त रचनाओं में देखी जाती है—इन सब का जन्म अथवा

पोषण 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के संपादन-कार्यकाल में ही हुआ ऐसा माना जाना भी असंगत नही है। 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' जैसे भगीरथकार्य में सहयोग देना और वह भी एक नवीन, अननुभवी विद्वान् के लिये प्रथम अनधिकार चेष्टा अथवा प्रयास ही कहा जा सकता है; परन्तु जब ऐसा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ऐसे कठिन कर्म में पार हो जाता है, तब वह शोभा, कीर्त्ति, यश का प्राप्त करने वाला मात्र ही नहीं होता, वरन् महान् परिश्रमी, विविध विषयों का ज्ञाता, ज्ञान और अनुभव का भण्डार बन जाता है, ऐसा मानना भी असत्य नहीं है। चरितनायक की साहित्यिक सेवाओं से आगे जा कर यह मत अधिक सिद्ध हो जावेगा।
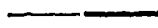
आचार्य धनचंद्रसूरिजी एवं उपाध्याय श्रीमद् मोहनविजयजी की आज्ञा से चरितनायक के पांच चातुर्मास

वि० सं० १९७३ से १९७७ पर्यन्त

१०— वि० सं० १९७३ में आहोर में चातुर्मास—

खाचरौद में चातुर्मास पर्य्यन्त निवास करके चरितनायक ने मरुधर-भूमि की ओर प्रयाण किया। मार्ग में अनेक ग्राम, नगरों को पावन करते हुये सिरोही-राज्य के सिरोड़ी ग्राम में ज्ये० शु० १ गुरुवार को श्री पार्श्वनाथ-जिनालय और बामनबाड़-जिनालय के स्वर्णदण्डध्वजों की प्रतिष्ठा और श्रीआदिनाथ-चरण-युगलों और चक्रेश्वरीदेवी तथा अंबिकादेवी की प्रतिमाओं की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा की। सिरोही-राज्य से आपश्री मरुधर-भूमि में पधारे। आहोर में आपश्री का चातुर्मास हुआ। इस चातुर्मास में आपश्री के सदुपदेश से आहोर में अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक कार्य हुयेः—

आहोर जोधपुर-राज्य के प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगरों मे से हे। यहाँ राठोड़वंशीय क्षत्रियो का भूमित्व है। जागीर की राजधानी स्वयं आहोर है।

यहाँ जैनियों के लगभग ६५० घर हैं। अधिकांश जैन बम्बई और उसके आसपास के नगरों में बड़ी २ फर्मों के स्वामी हैं।

(क) श्रे० मुथा चमनमल डूंगाजी ने रु० २७००) के मूल्य से स्व० श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि महाराज की संगमरमर-प्रस्तर की स्मारक-छत्री बनवाना स्वीकृत किया।

(ख) श्री बावनजिनालय-गोड़ी-पार्श्वनाथ में चाँदी का रथ और रूपा के स्वप्न बनाने के निमित्त प्राग्वाटज्ञातीय शा० नथमल लाला जी ने रु० ५८००) प्रदान किये।

(ग) स्थानीय देवपीढ़ी को श्री पर्यूषणपर्व के शुभावसर पर चरितनायक के सुप्रभाव से रु० १७०००) की आय हुई।

अतिरिक्त इन उपरोक्त धर्मकृत्यों के नगर में ८० (अस्सी) अट्ठाइयां हुईं। जिनमें अट्ठाई करनेवालों के माता, पिता, पति एवं संरक्षकों ने सहस्रों रुपयों का सद्व्यय किया। आंबिल, उपवास, बेला, तेला आदि तपस्यायें, छोटी-बड़ी पूजायें और नवकारशियां तो अनेक हुईं।

चरितनायक ने व्याख्यान में 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का तृतीय भाग और भावनाधिकार में 'पाण्डव-चरित' का वाचन किया।

गुणानुरागकुलक की टीकाः—अवकाश में आपश्री ने श्री जिन-हर्षगणीकृत 'गुणानुरागकुलक' नामक प्रसिद्ध प्राकृत ग्रन्थ की संस्कृत छाया के साथ उसका शब्दार्थ और भावार्थ तथा विस्तृत विवेचन लिखा। इस ग्रन्थ का आकार चरितनायक की लेखनी को पाकर कई गुणा बढ़ गया है। वैसे ग्रन्थ भी जैन साहित्य के प्रसिद्ध ग्रन्थों में से है। मनोविकार एवं मानसिक संतापों से मुक्ति पाने के लिये यह ग्रन्थ अचूक औषध का कार्य करता है। इस ग्रंथ के विवेचन एवं सम्पादन को देखकर चरितनायक की ठोस योग्यता एवं बढ़ती हुई साहित्य-सेवा-रुचि का विशद् आभास मिलता है। चातुर्मास पूर्ण होने पर आपश्री अनेक ग्राम, नगरों में विचरे और भाविक जनों को अपने सदुपदेशों से अति लाभ पहुँचाया।

११—वि० सं० १९७४ में सियाणा में चातुर्मास—

इस वर्ष का चातुर्मास सियाणा नगर में हुआ। सियाणा जागीर की राजधानी है। यहाँ भी राठोड़-क्षत्रियों का भूमित्व है। नगर की जन-संख्या लगभग चार सहस्र है। जैन घरों की संख्या लगभग चार सौ है। सर्व ही जैन समृद्ध एवं कुशल व्यापारी हैं। मालवा, मध्यभारत, बम्बई और दक्षिण के प्रान्तों के प्रसिद्ध नगरों में इनकी दुकानें हैं। तात्पर्य यह है कि सियाणा अपने धन और वैभव के लिये अधिक प्रसिद्ध है। यहां के श्रीसंघ ने चातुर्मास में द्रव्य का अच्छा व्यय किया। बागरा, आकोली, डूडसी, जालोर, बाकरा, मोदरा, भीनमाल के संघ चरितनायक के दर्शनार्थ आये, उनकी मिष्टान्न भोजनादि से अच्छी सुश्रुसा की। चरितनायक ने व्याख्यान में 'श्री सूयगडांगजीसूत्र (सटीक), तथा भावनाधिकार में 'विक्रमपञ्चदण्डचरित' का वाचन करके श्रोतागणों को संसार की असारता, धर्म और उसका स्वरूप, मुक्ति और उसका मार्ग आदि विभिन्न विषयों को समझाये। चातुर्मास में हुये धर्म-कृत्य निम्न प्रकार हैः—

(क) महाश्रुतस्कंधोपधानतपाराधन-इस अवसर पर निकट एवं दूर के अनेक ग्रामों, नगरों से आये हुये लगभग २०० व्यक्तियों ने तपाराधन किया। सियाणा के श्रीसंघ ने बड़ी तत्परता एवं भक्ति से उन सब का धार्मिक विधि-विधानानुसार रहने-सहने, खान-पानादि का सुप्रबन्ध किया। इसमें लगभग रु० १५०००) (पन्द्रह सहस्र) का व्यय हुआ। तपस्वियों की ओर से अनेक प्रकार के बर्त्तनों आदि की प्रभावनायें हुईं।

(ख) सियाणा के श्रीसंघ ने कोषमुद्रण-कार्य में रु० ३६००) की आर्थिक सहायता प्रदान की।

चातुर्मास के पश्चात् सियाणा से आपश्री विहार कर के अनुक्रम से सिरोही-राज्य में विचरे? इसी वर्ष विजयधनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से आपश्री ने मार्ग शु० १० को उथमणग्राम में एक छोटे जिनालय में श्री पार्श्वनाथादि बिंबों की प्रतिष्ठा की। शिवगंजनिवासिनी सदीबाई श्राविका ने यह महोत्सव उजमा था।

गुणानुरागकुलक का प्रकाशनः—इसी वर्ष चरितनायक द्वारा लिखी गई 'गुणानुरागकुलक' नामक पुस्तक का बागरावास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय शा० मोतीजी दलाजी की ओर से श्री जैनप्रभाकर प्रेस, रतलाम में प्रकाशन हुआ। पुस्तक का आकार क्राउन १६ पृष्ठीय, पृ० सं० ४८४ और प्रतियां ५००।

इसकी द्वितीय आवृत्ति सियाणावास्तव्य शा० भीमाजी छगनलाल ने 'श्री आनन्द प्रिंटिंग प्रेस', भावनगर से वि० सं० १९८५ में प्रकाशित कीं। आकार डेमी अष्टपृष्ठीय, पृष्ठ सं० २९६, सजिल्द, प्रतियाँ ५००।

१२—वि० सं० १९७९ में भीनमाल में चातुर्मास:—

इस वर्ष का चातुर्मास मरुधर-प्रदेश के अति प्राचीन एवं प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर भीनमाल में हुआ। भीनमाल के पुष्पमाल, रत्नमाल, श्रीमाल आदि अनेक ऐतिहासिक नाम हैं। प्रत्येक नाम का ऐतिहासिक एवं पौराणिक महत्त्व है। यह नगर सैकड़ों वर्षों से पूर्व भी भारत के अति प्रसिद्ध नगरों में गिना जाता है इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। इस नगर का अनेक बार विध्वंस हुआ। आज यह नगर यद्यपि खण्डित एवं दुरावस्था में है, फिर भी इसकी प्राचीनता एवं इसके प्राचीन गौरव और इसकी प्राचीन प्रतिष्ठा को सिद्ध करने वाले अनेक स्थल, धर्मधाम, खण्डहर आज भी विद्यमान् हैं।

चरितनायक ने व्याख्यान में 'उत्तराध्यननसूत्र' (लक्ष्मीवल्लभीटीका) और भावनाधिकार में 'चन्द्र-चरित्ररास' का वाचन किया। थराद, धानेरा, दूधवा, धाणशा, बागरा, सियाणा, जालोर, आहोर आदि नगरों से श्रीसंघ चरितनायक के दर्शनार्थ आये। अनेक स्वामीवात्सल्य, प्रीतिभोज, पूजा, प्रभावनायें हुईं। भीनमाल के श्रीसंघ ने कोष-मुद्रण के कार्य में रु० १८००) की आर्थिक सहायता प्रदान की।

लघुचाणक्यनीति का हिन्दी-अनुवाद—इस वर्ष के अवकाश-समय में चरितनायक ने 'लघुचाणक्यनीतिग्रंथ' का हिन्दी में अनुवाद किया। चाणक्यनीति वैसे जगत्-प्रसिद्ध है। अनुवाद करके चरितनायक ने उसकी उपादेयता को अधिक व्यापकता प्रदान की।

भीनमाल में चातुर्मास पूर्ण करके चरितनायक उसके आस-पास के ग्रामों में विचरण करते रहे। एक समय भीनमाल के आस-पास का प्रदेश जांगल कहलाता था। इस प्रदेश के निवासियों का रहन-सहन और खान-पान सरल, साधारण और नगरों की चमक-दमक से दूर है। अधिकांश लोग अपढ़ हैं। धर्म के तो ये बड़े श्रद्धालु होते हैं, परन्तु धर्म-सम्बन्धी दैनिक क्रियाओं के पालन करने में सरल एवं भोले हृदय के हैं। देव-देवियों में इनकी अधिक आस्था रहती है। चरितनायक ने उनको धर्म-सम्बन्धी दैनिक क्रियाओं का सच्चा स्वरूप समझाया तथा देव-देवियों की कतिपय मिथ्या मान्यताओं के विरुद्ध प्रचार कर के शुद्ध जिनेश्वरभक्ति की स्थापना की।

श्री चमनश्रीजी की दीक्षा

बीजापुर (गोड़वाड़-मरुधर) नगरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय श्रे० रायचन्द्रजी की धर्मपत्नी केसरबाई को जो बीजापुरवास्तव्य प्रा० ज्ञातीय खुशालचन्द्रजी की पत्नी जसीबहिन की कुक्षी से उत्पन्न हुई थी चरितनायक ने वि. सं. १९७५ फाल्गुण शु० ३ के दिन बीजापुर में लघुदीक्षा दी और चमनश्री नाम रक्खा तथा उनको पूज्यामानश्रीजी की शिष्या बनाया गया।

१३—वि० सं० १९७६ में बागरा में चातुर्मासः—

इस वर्ष का चातुर्मास श्रीमद् विजयधनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से बागरा (मरुधर) में हुआ। बागरा जोधपुर-राज्य के जालोर (जाबालीपुर) प्रगणा में अति प्रसिद्ध पुर है। यहाँ की कुल जन-संख्या लगभग ३००० है। जैन-घरों की उपस्थिति लगभग २५० घरों की है। सर्व ही जैनवन्धु सम्पन्न हैं। दक्षिण भारत के गोदावरी-जिले में अधिकाश जनों की बड़ी २ दुकानें हैं। बागरा श्रीमंतों का ग्राम है। 'दिल्ली में आगरा, जालोरी में बागरा', दूर २ तक यह कहावत प्रसिद्ध है।

चरितनायक ने व्याख्यान में 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' और भावनाधिकार में 'विक्रमपंचदण्डचरित' का वाचन किया। तप, व्रत, उपवास, अट्ठाईया अधिक सख्या मे हुई। प्रीतिभोज, पूजा, प्रभावनाओं की सराहनीय धूम रही।

बागरा के श्रीसंघ ने कोष-मुद्रण-कार्य में रु.१००००) की आर्थिक सहायता देना स्वीकार किया ।

बागरा में स्व० वजिंगजी सद्दाजी कर्मग्रन्थ के अच्छे ज्ञाता थे । उन्होंने 'कर्मबोध-प्रभाकर' नामक एक ग्रंथ लिखा है । कर्मविषयसम्बन्धी ग्रन्थों में इनके ग्रंथ का भी अच्छा ऊँचा स्थान है । चरितनायक ने उपरोक्त ग्रन्थ की प्रेस-कापी तैयार करने में तथा उसके प्रूफ-सशोधन में भूरि २ सहायता दी । 'लघुचाणक्यनीति' की प्रथमावृत्ति भी इसी सम्वत् में बागरावास्तव्य प्राग्वाट-ज्ञातीय श्री० डालचन्द्र चमनाजी की तरफ से प्रकाशित हुई । आकार डेमी १२ पृष्ठीय, पृ० सं० ६४, प्रतियां १००० ।

चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री बागरा से विहार करके ग्रामों में विचरते हुये सिरोही पधारे । सिरोही देवड़ावंशीय राजाओं की राजधानी है । सिरोही-रियासत राजस्थान की अति गौरव एवं सम्मानित रियासतों में से है । यहाँ जैनियों की आबादी लगभग ५०० घरों की है । चरितनायक की दिव्य प्रतिभा, प्रखर कांति एवं कुशल व्याख्यान-शैली तथा पाण्डित्यपूर्ण विषय-प्रतिपादन से वहाँ के श्रावक अति मुग्ध हुये । उनकी परम भक्ति के कारण चरितनायक को सिरोही में ढाई मास पर्य्यन्त ठहरना पड़ा । इस समय में चरितनायक ने अनेक श्रावकों को सामायिक, प्रतिक्रमण के सूत्र और विधि-विधान याद करवाये । आगामी चातुर्मास के लिये भी वहाँ के सर्व जनों का अत्याग्रह रहा; परन्तु बागरा में श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी के अति रुग्ण होने के ज्योंही आपश्री को अशुभ समाचार प्राप्त हुये, सिरोही से बागरा के लिये विहार करना पडा और आपका वि० सं० १९७७ का चातु-र्मास भी बागरा में ही हुआ ।

श्री पुण्यश्रीजी की दीक्षा

चरितनायक सिरोही से बागरा लौटे, उसके कुछ दिनों पश्चात् श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी का स्वास्थ्य कुछ कुछ आशाजनक प्रतीत होने लगा था । सूरिजी ने चरितनायक को भेसवाडा में हरजीनगर-वास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय अचलदासजी की पत्नी भली बहिन जो भेसवाड़ा-

वास्तव्य प्रा० ज्ञातीय ईदाजी की पत्नी भूतिबहिन की कुक्षी से उत्पन्न हुई थी को लघुदीक्षा देने के लिये भेजा। आपश्री ने भेसवाड़ा को पदार्पित करके वि० सं० १९७७ वैशाख शु० २ को शुभ मुहूर्त्त में भली बहिन को लघुदीक्षा प्रदान की और पुण्यश्री नाम रख कर उसको पू० मानश्रीजी की शिष्या बनाया। इस कार्य से निवृत्त हो कर आपश्री पुनः बागरा पधारे।

१४—वि० सं० १९७७ में बागरा में चातुर्मास:—

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी महाराज के रोगी होने के कारण इस वर्ष भी चरितनायक को बागरा में ही चातुर्मास करना पड़ा। चरितनायक ने रुग्ण आचार्य की तन-मन से सेवा-सुश्रूषा की। परन्तु भवितव्यता को कौन मिटा सकता है। अनेक कुशल वैद्यों, मरुधर के प्रसिद्ध राजकीय डाक्टरों के प्रयत्न भी निष्फल सिद्ध रहे और अंत में १९७७ के भाद्रपद शु० १ के रोज रात्रि के आठ बजे वे स्वर्ग को सिधार गये। श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी महाराज अपने निर्मल व्यवहार एवं मोहिनी वाणी के लिये अधिक प्रसिद्ध थे। इन गुणों के कारण वे धर्म की सेवा करने में अधिक सफल हो सके थे। 'श्रीधनचंद्रसूरि-जीवन-चरित्र में' आपकी सेवाओं का विशद् वर्णन है। इसी वर्ष कुक्षीनगर (मालवा) में उपाध्याय मोहनविजयजी का पौष शु० ३ बुधवार को स्वर्गवास हो गया। चरितनायक को इन दोनों मृत्युओं से बड़ा भारी आघात पहुँचा। श्रीसंघ की क्षति तो अवर्णनीय है ही। दोनों स्वर्गस्थ मुनिवरों की आपश्री पर अति ही कृपाभरी दृष्टि थी।

श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी और उपा० मोहनविजयजी का स्वर्गवास वि० सं० १९७७

———

मुनिराज दीपविजयजी की आज्ञा से दो चातुर्मास और जावरा में पदोत्सव

वि० सं० १९७८ से वि० सं० १९८१ पर्यन्त

●

१५——वि० सं० १९७८ में रतलाम में चातुर्मास—

श्रीमद् राजेन्द्रसूरि महाराज के साधु-समुदाय में से श्रीमद् धनचंद्र-सूरिजी और उपा० मोहनविजयजी के थोड़े २ अन्तर पर घटे निधनों से सम्प्रदाय में एकदम निराशा छा गई।

मुनिराज दीपविजयजी और चरितनायक पर सम्प्रदाय का समस्त भार आ पड़ा। चरितनायक बागरा से विहार करके अनेक ग्राम, नगरों के निराशागत श्रीसंघों को सान्त्वना और सदुपदेश देते हुये मालवा-प्रान्त में पधारे। मालवा की ओर विहार करने का कारण यह था कि अब 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का मुखपृष्ठसंबन्धी कार्य प्रारम्भ होने वाला था। ऐसे महान् कोष के मुख-बंधारण के समय अनुभवी एवं कुशल विद्वान् का उपस्थित रहना आवश्यक है। एतदर्थ आपश्री का इस वर्ष का चातुर्मास रतलाम में ही हुआ। चातुर्मास में आपश्री कोष-सम्बन्धी कार्य का निरीक्षण करते रहे। चातुर्मास के पश्चात् आपश्री मालवा के ग्रामों में विचरे। मुनिराज दीप-विजयजी की आज्ञा से इसी वर्ष आपश्री ने जावरा-राज्य के संजीत ग्राम में मार्ग० शु० ६ को मू० ना० श्री चिन्तामणि-पार्श्वनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की।

जन्ममरणसूतक-निर्णयः——इस ग्रंथ का नाम और रचनाकाल तथा उपरोक्त दोनों निधनों का समय और उनसे घटे सम्प्रदाय में शोक और उदासीनता पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ को लिखने की भावनायें चरितनायक के मस्तिष्क में इन दोनों असह्य निधनों के कारण उत्पन्न हुई और वे पुस्तकरूप में बहिर्गत हुईं। पुस्तक की रचना

वि० सं० १९७८ में हुई और 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कार्यालय', रतलाम की ओर से उसी वर्ष प्रथम बार प्रकाशित भी हो गई। चरितनायक ने जन्म-मरण-सूतक-विषय का अध्ययन श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी से ही किया था। उसी अध्ययन के आधार पर इसकी रचना हुई है।

१६—वि० सं० १९७९ में निम्बाहेडा में चातुर्मास—

मुनिराज दीपविजयजी के आदेश से इस वर्ष का चातुर्मास चरितनायक का निम्बाहेड़ा नामक प्रसिद्ध नगर में हुआ। यह नगर मेवाड़ और मालवा की संधि पर बसा हुआ है और टोंक-राज्य के अन्तर्गत है। यहाँ जैनियों की घर-संख्या लगभग १२५ है। वैसे नगर में पाँच हजार घरों की आबादी है। चरितनायक उत्साही एवं कर्मठ साधु हैं। आपश्री ने सम्पूर्ण चतुर्मास भर अपने व्याख्यान बाजार में दिये। इससे जैनेतर जनता पर भी बहुत ही सराहनीय और गहरा प्रभाव पड़ा। विशेषकर जैन युवकों पर तो आपश्री के जीवन और उपदेशों का अति ही गहरा प्रभाव पड़ा। व्याख्यान में आपश्री ने 'उत्तराध्ययनसूत्र' और भावनाधिकार में 'विक्रम-पंचदण्डचरित्र' का वाचन किया। आपश्री के प्रभाव से निम्न रचनात्मक कार्य हुये:—

(१) श्रीयतीन्द्र-जैन-युवक-मंडल की स्थापना। इस मंडल का प्रमुख उद्देश्य था जैन-समाज में संगठन पैदा करना, फैली हुई कुरीतियों एवं घातक रूढ़ियों का अंत करना।

(२) श्रीयतीन्द्र-जैन-पाठशाला की स्थापना हुई।

(३) श्रीराजेन्द्र-संगीत-मण्डली नामक एक संस्था खोली गई। इस संस्था द्वारा जैन-युवकों को पूजापूर्त्ति संगीत की शिक्षा मिलने लगी।

(४) श्रीयतीन्द्र-सार्वजनिक-पुस्तकालय और राजेन्द्रसूरि-ग्रंथमाला की बड़ी धूम-धाम से स्थापना हुई।

उपरोक्त चारों संस्थाएं आज भी यथावत् अपने २ उद्देश्यों के अनुसार कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं से जैन-युवकों को संगीत-ज्ञान,

श्री यतीन्द्र जैन युवक–मण्डल, निम्बाहेड़ा

श्री यतीन्द्र जैन पाठशाला, निम्बाहेड़ा
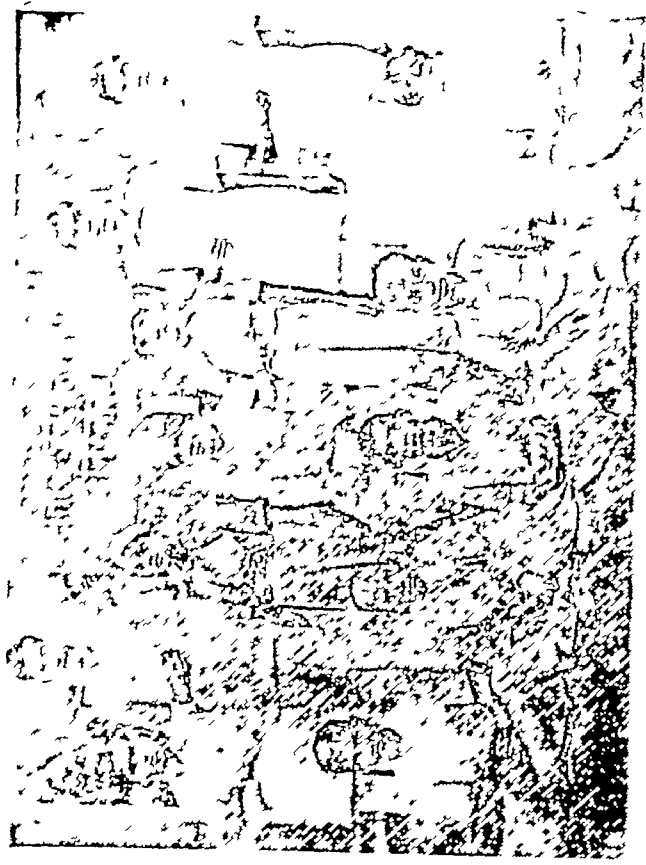
कुछ विद्यार्थियो के साथ कार्यकर्त्तागण

बच्चों को शिक्षण, संगीत, धर्मशिक्षा प्राप्त करने का निःशुल्क अवसर प्राप्त हुआ। आज निम्बाहेडा के युवकों मे जो शिक्षा का प्रभाव और जैनधर्म के प्रति दृढ़ श्रद्धा दिखाई देती है, अधिक श्रेय इन संस्थाओं को और इनके सुयोग्य संचालकों को है।

पौप शु० ७ को स्व० श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज की जयन्ती विशाल ढ़ंग पर मनाई गई। उसमें जैन, जैनेतरों ने भारी उत्साह से भाग लिया। पूजा, प्रभावना, व्याख्यान आदि का समस्त दिन भर एवं रात्रि को कार्य-क्रम रहा। इसी दिन संगमरमर प्रस्तर की गुरु-स्मारक-छत्री बनवाने के उद्देश्य से पाया—स्थापन क्रिया की विधि भी बड़ी धूम-धाम से शुभ-मुहूर्त्त में की गई।

इस प्रकार छोटे-बड़े अनेक धर्मकृत्य इस चातुर्मास में किये गये। तप, उपवास, व्रत, अठ्ठाइयां, पूजा, प्रभावनाओं का भी अति ही ठाट रहा। चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक ने अन्य ग्रामों में अपना विहार प्रारंभ किया।

मालवदेशीय राजेन्द्र-महासभा का रतलाम में अधिवेशन और आपश्री को निमन्त्रण

वि० सं० १९८०

श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी के निधन से सम्प्रदाय और साधुमण्डल गच्छ-नायकविहीन हो गया था तथा शांतमूर्त्ति दिव्यात्मा उपा० मोहनविजयजी के निधन से समाज को असहनीय क्षति पहुँची थी। समस्त सम्प्रदाय इन दोनों सार्थवाहों के अभाव से अति उदासीन एवं निराश हो रहे थे। रतलाम के श्रीसंघ ने सम्प्रदाय में फैले हुये इस उदासीन वातावरण का अन्त करने का दृढ निश्चय किया और फलतः उसने वहां मालवदेशीय 'राजेन्द्र-महासभा' का रतलाम में अधिवेशन बुलाने का एक आम-सभा करके प्रस्ताव पास किया। तदनुसार वैशाख शु० १, २, ३ के दिन महासभा के अधि-वेशन भरने के दिवस निश्चित किये गये और समस्त सम्प्रदाय के निकट एवं

दूर के नगर, ग्रामों के श्रीसंघों को और समस्त साधु-साध्वियों को कुंकुम-पत्रिकायें भेज कर निमंत्रित किया गया ।

अधिवेशन में मालवाप्रान्त के अनेक नगर, ग्रामों के श्रीसंघों ने सोत्साह भाग लिया । जावरा, खाचरौद, निम्बाहेड़ा, कुक्षी, धार आदि नगरों के संघों के प्रतिनिधि आये तथा सम्प्रदाय के अधिक से अधिक साधु एवं साध्वीगणों का पदार्पण हुआ । रतलाम के श्रीसंघ ने बड़ी भक्ति एवं प्रेम से अधिवेशन में आने वाले प्रतिनिधियों का आदर-सत्कार किया । चरितनायक इस अधिवेशन के प्रमुख अधिष्ठाता थे । आपश्री की तत्त्वावधानता में ही अधिवेशन के तीनों दिवसों का कार्यक्रम सानन्द एवं सोत्साह पूर्ण हुआ । निम्न तीन प्रस्ताव सर्वानुमति से पास हुएः—

१—महाराज श्रीधनचंद्रसूरिजी के पट्ट पर मुनि श्री दीपविजयजी को वि० सं० १९८० ज्येष्ठ शु० ८ के दिन जावरा नगर में अधिष्ठित करना तथा मुनि श्री यतीन्द्र-विजयजी को उपाध्याय-पद से अलंकृत करना ।

२—आचार्यपदोत्सव का समस्त विधि-विधान मुनि श्री यतीन्द्र-विजयजी के कर-कमलों से सम्पादित करवाना तथा सम्प्रदाय के समस्त साधु, साध्वियों को उपरोक्त शुभावसर पर निमंत्रित करके बुलाना और संघ में ऐक्यता एवं सौहार्द बने और बढ़ता रहे—इस दृष्टि एवं उद्देश्य से नियम बनाना और उनको कार्यान्वित करना ।

३—आचार्यपदोत्सव जावरा के श्रीसंघ की ओर से ही मनाया जायगा । सम्प्रदाय के निकट, दूर के नगर, ग्रामों के श्रीसंघों को कुंकुम-पत्रि-कायें भेज कर साग्रह निमंत्रित करना ।

सूरिपदोत्सव

पाठक स्वयं देख सकते हैं कि वि० सं० १९८० वैशाख शु० ३ को तो रतलाम में अधिवेशन समाप्त हुआ और एक मास पश्चात् पदोत्सव का जावरानगर में करना निश्चित हुआ। मालवा, निमाड़, मेवाड़, मारवाड, गुजरात, काठियावाड़ के नगरों में कुंकुमपत्रिकायें भेजना, आने वाले संघों के लिये भोजन का प्रबन्ध करना, पद-विधि-क्रिया करने के लिये सभा-मण्डप का निर्माण करना, समारोह के लिये सजावट एवं शोभा-सामग्री का एकत्रित करना आदि इतने अत्यल्प समय में इन सर्व की संतोषजनक व्यवस्था कर लेना महान् साहस एवं अति द्रव्य-व्यय का कार्य था। अधिवेशन समाप्त करके सर्व प्रतिनिधि तुरन्त अपने २ नगरों को लौट गये और भावी कार्यक्रम से अपने २ संघों को सूचित किया। जावरा के श्रीसंघ ने 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-छापाखाने' में कुंकुमपत्रिकायें प्रका-शित करवा कर सम्प्रदाय के समस्त नगरों के श्रीसंघों को तुरन्त ही भेज दीं तथा वह पदोत्सवसम्बन्धी योग्य व्यवस्था करने में लग गया। रतलाम में एकत्रित हुआ साधु एवं साध्वी-समुदाय रतलाम से विहार करके जावरा की ओर चल पड़ा।

अल्पतम समय में विशालतम प्रवन्ध

जावरा-नरेश श्रीमद् राजेन्द्रसूरि महाराज के परम भक्त थे ही। अतः रियासत की ओर से सर्व प्रकार की यथोचित सहायता एवं सहयोग प्राप्त हो गया। ज्येष्ठ शु० ६ से श्रीसंघों का आना प्रारम्भ हो गया। प्रमुख दिन ज्ये० शु० ८ को बाहर के श्रीसंघों के व्यक्तियों की संख्या दस सहस्र तक पहुँच गई। राज्य, प्रजा एवं जैनसमाज के संगठित प्रयत्नों से भोजन, निवास की सराहनीय व्यवस्था हो गई। आने वाले श्रीसंघ भी इतने से अल्प समय में ऐसी सुन्दर व्यवस्था को पा कर आश्चर्यान्वित रह गये। सम्पत्ति और संगठन जहाँ हों, वहाँ क्या नहीं होता है?

जावरा-नरेश का सहयोग

शुभ मुहूर्त्त में लगभग १५००० सहस्र जनमदेनी अपनी समक्षता में मुनिराज दीपविजयजी को 'सूरिपद' तथा चरितनायक को 'उपाध्यायपद' से अलंकृत करने के लिये निर्दिष्ट स्थान की ओर चलने लगी।

राजकीय बैण्ड, हाथी, कुन्तल, घुड़सवारदल, पायदल की उपस्थिति तथा इन्द्रध्वज, मेघाडम्बर, ध्वजा एवं पताकायें, अनेक वाद्यंत्रों की विद्यमानता से, मण्डलों के संगीत, कार्य-क्रम तथा नारियों के मंगल गीतों से उत्सव का दृश्य नयनाभिराम हो उठा। निर्दिष्ट स्थान पर जाकर समारोह रुक गया। मुनिराज दीपविजयजी एवं चरितनायक समुचित स्थानों पर विराजमान किये गये। ठीक समय शुभ मुहूर्त्त में पद-प्रदान-क्रिया प्रारंभ हुई। चरितनायक का उपाध्यायपद ग्रहण करने से पूर्व एक लम्बा भाषण हुआ, जिसमें आपने उपाध्यायपद ग्रहण करने से यह कहते हुये अस्वीकार किया कि मेरे में अभी जैसी योग्यता चाहिये, नहीं है और अनुभव तथा आयु की योग्यता भी उपाध्यायपद की शोभा को सम्हाल सके, मेरे में वैसी नहीं है। परन्तु सर्वानुमति से जावरा के अग्रगण्य श्रावक टेकचन्दजी ने खड़े होकर उपस्थित संघों को सम्बोधित करते हुये इस प्रकार प्रस्तावित एवं सम्मानित वक्तव्य पढ़कर सुनाया।

'आज जावरानगर में मालवा, मारवाड़, मेवाड़, गुजरात, काठियावाड़ के पधारे हुये प्रतिनिधियों एवं अन्य समाजमान्य प्रतिष्ठित श्रावकों की सम्मति से मुनिराज दीपविजयजी को सूरिपद और मुनिराज यतीन्द्रविजयजी को उपाध्यायपद उपस्थित श्रीसंघ की ओर से भेंट करने में आता है। आशा है सर्व संघ इसका अनुमोदन करेंगे तथा मनोनीत नवाचार्य एवं मनोनीत उपाध्याय से समस्त उपस्थित संघ प्रार्थना करता है कि वे हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करके पदों को ग्रहण कर संघ की शोभा बढ़ावेंगे और साथ में उनसे यह उपस्थित सर्वसंघ आशा करता है कि वे श्री सम्प्रदाय की उन्नति करने में एवं गौरव और प्रतिष्ठा बढ़ाने में पूर्ण तत्परता एवं सद्यत्नों का उपयोग करेंगे।'

वक्तव्य के समाप्त होते ही आकाशमण्डल जय-ध्वनि से गूंज उठा।

चरितनायक उपा० श्रीमद् यतीन्द्रविजयजी महाराज

जावरा [illegible]

का

ात्सव

।

। इस पुस्तक

सौजन्य एवं

और उनके

उत्सव का स्थल हर्ष-भाव से अनुप्राणित हो उठा । कुछ क्षणों के पश्चात् निम्न प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने क्रमशः उठ-उठ कर उपरोक्त प्रस्ताव का अनुमोदन किया ।

(१) श्री साहित्याचार्य मथुराप्रसादजी ।
(२) ,, रतलामनिवासी सेठ मथुरालालजी ।
(३) ,, ,, शाह भागीरथजी प्यारचन्दजी ।
(४) ,, ,, निहालचन्द्रजी अग्रवाल ।
(५) ,, बड़नगरनिवासी चौधरी बाबूलालजी ।
(६) ,, राजगढ़निवासी खजाञ्ची लालचन्द्रजी ।
(७) ,, झाबुआनिवासी सेठ माणकचन्द्रजी ।
(८) ,, कुक्षीनिवासी सेठ चंपालालजी ।
(९) ,, खाचरौदनिवासी सेठ चांदमलजी ।

उपरोक्त अनुमोदकों के सारगर्भित एवं संक्षिप्त भाषणों को श्रवण करके संघ में भारी उत्साह लहराता प्रतीत हुआ और जनमेदिनी ने करतल-ध्वनि एवं जयध्वनि करके उपरोक्त अनुमानित प्रस्ताव का समर्थन किया । तत्पश्चात् पद-प्रदान-क्रिया का विधि-विधान किया गया । उत्सवं सानन्द समाप्त हुआ । जावरा के श्रीसंघ के साहस एवं श्रम तथा भाव-भक्तिपूर्ण उत्सव के आयोजन की प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने भूरी २ सराहना की तथा नवाचार्य एव नवोपाध्याय चरितनायक ने अपनी अमूल्य देशनाओं से संघ को संतोषित किया और जावरा के संघ की उसके अपार श्रम के लिये सुन्दर शब्दों में सराहना की तथा रतलाम के श्रीसंघ को, जिसने ही प्रारम्भ में यह सब करने का भाव प्रत्यक्ष किया था अनेकानेक धन्यवाद दिये । इस प्रकार यह महोत्सव पूर्ण हुआ । चरितनायक का इसमें पूर्ण और प्रमुख श्रमयोग लगा ।

जीवभेदनिरूपण का प्रकाशनः—रचना सं० १९७६ । इस पुस्तक की रचना निम्बाहेडा के चातुर्मास में हुई थी । चरितनायक के सौजन्य एवं पाण्डित्य से दिगम्बर-संप्रदाय के अग्रगण्य व्यक्ति भी कितने मुग्ध और उनके

कैसे भक्त थे का उदाहरण इस पुस्तक का प्रकाशन है। इस पुस्तक की १००० प्रतियां दिगम्बर सम्प्रदायानुयायी श्रे० जसराजजी ने इसको मुद्रित करवाकर प्रकाशित करवाईं। पुस्तक हिन्दी-भाषा में लिखी गई थी, अतः जनता को यह अधिक लाभदायक सिद्ध हुई। इसकी द्वि० आवृत्ति साथुग्रामवास्तव्य (मरुधर-राज्य) श्रे० अमीचन्द्र चैनाजी की ओर से निकली। प्रतियां ५००। पृष्ठ ५२।

पीतपटाग्रहमीमांसा और निक्षेपनिबंधः—रचना सं० १९७९। इसको निम्बाहेड़ा के श्रीयतीन्द्र जैन युवक-मण्डल ने छपवाकर प्रकाशित किया। प्रतियां ५००। क्राऊन १६ पृष्ठीय। यह पुस्तक जैन प्रभाकर-प्रेस, रतलाम में मुद्रित हुई। पृ० सं० ६२। इस पुस्तक के नाम से ही पाठक अनुमान लगा सकेंगे कि इसकी रचना का सम्बन्ध चरितनायक और श्री सागरानन्दसूरिजी के मध्य पीतवस्त्र-विषय को लेकर हुये विवाद में अंत में जुडा है, जो वि० सं० १९८० में रतलाम में हुआ है।

इस पुस्तक में उन सब युक्तियों, यत्नों का भी यथासम्भव वर्णन है, जो पूर्वभूत वादियों ने अपने को परास्त होते समझ कर कार्य में ली हैं।

निक्षेप-निबन्ध एक अलग निबंध है। इसमें निक्षेपों का स्वरूप बड़ी उत्तमता से दिया गया है। यह निबन्ध वी० सं० २४३८ वि० सं० १९६९ के शाह हर्षचन्द्र भूराभाई द्वारा सम्पादित 'जैन-शासन' (साप्ताहिक) के दीपावली अंक में पृ० ४४-४७ पर प्रकाशित हुआ है। 'पीतपटाग्रह' के साथ इसका भी शामिल प्रकाशन किया गया है, अतः पुस्तक का नाम 'पीतपटाग्रह-मीमांसा और निक्षेप निबन्ध' है।

श्री जिनेन्द्रगुणगानलहरी—रचना सं० १९७९। प्रथमावृत्ति पृ० सं० १२१। क्राऊन १६ पृष्ठीय। सजिल्द। प्रतियां ५००। आहोरग्रामवास्तव्य (मरुधर-राज्य) ओसवालज्ञातीय श्रे० रतनाजी भूताजी, मूथागोत्रीय श्रे० नथमल चुन्नीलालजी और हेमाजी पन्नाजी ने जैन-प्रभाकर प्रेस, रतलाम में मुद्रित करवा कर इसको प्रकाशित किया।

इसमें विश्वपूज्य चौवीस जिनेश्वरों के चैत्यवंदन सं० ८८, स्तुतियों

चरितनायक मुनि श्री यतीन्द्रविजयजी महाराज

रतलाम वि० सं० १९८०

२२, स्तवन ७०, गुरुगुणगर्भित-स्तवन ११ और ५ उत्तम कोटि की गुंहालियाँ हैं। जिनेश्वरों के गान और कीर्त्तन तथा गुरुओं के गुणगान करने के लिये यह पुस्तक अति ही ग्राह्य एवं उपादेय है।

१७ - वि० सं० १९८० रतलाम में चातुर्मासः—

इस वर्ष का चातुर्मास श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से चरितनायक ने रतलाम में किया। अभिधान-राजेन्द्र-कोष का कार्य भी इसी वर्ष सर्व प्रकार पूर्ण होने को था। एतदर्थ चरितनायक का चातुर्मास वहाँ ही होना अनिवार्यतः आवश्यक प्रतीत हुआ।

व्याख्यान में श्री 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के 'तित्थयर' शब्द का वाचन और विवेचन किया तथा भावनाधिकार में 'श्रीचन्द्रर्षिराजचरित' (संस्कृत)' को वांचा।

श्रीमद् सागरानंदसूरिजी का शास्त्रार्थ निमित्त प्रस्ताव

श्रीमद् सागरानंदसूरि जैनाचार्यों में आगमज्ञान के प्रखर धारक माने गये हैं। वि० सं० १९८० में चरितनायक का चातुर्मास जब रतलाम में था, आपका भी रतलाम में था। दोनों अपने प्रखर पाण्डित्य एवं दिव्य तेज के लिये विश्रुत थे। सागरानन्दसूरिजी को चरितनायक की शोभा अपने से छोटी आयु में ही अतिशय बढ़ती हुई सहन नहीं हो रही थी। उन्होंने चरितनायक के साथ में शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव रक्खा। शास्त्रार्थ का विषय था, 'जैन श्वेताम्बर साधुओं को श्वेत वस्त्र धारण करने चाहिये या पीत।'

संस्कृत, प्राकृत, व्याकरण, न्यायशास्त्रों के बड़े २ विद्वानों, नगर के जैनेतर प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं दोनों ओर के प्रतिष्ठित वयोवृद्ध अनुभवी सज्जनों की साक्षी में दोनों मुनिराजों के बीच अधिकतर मुद्रित पत्रों के द्वारा शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ और सात मासपर्य्यंत यह शास्त्रार्थ चलता रहा। श्री सागरानन्दसूरिजी का हठाग्रह चरितनायक के आचाराङ्गादि अनेक आगमों के प्रमाणों से युक्ति-युक्त तर्क के आगे अंत में निंदा का कारण बनने लगा।

फल यह हुआ कि एक रात्रि को दिन निकलने के बहुत पूर्व ही बिना अपने पक्ष के श्रावकों को सूचित किये ही रतलाम से श्री सागरानन्दसूरिजी विहार कर गये। प्रातः वायुवेग से यह समाचार समस्त रतलामनगर में फैल गया। चरितनायक की कीर्त्ति उसी वेग से फैली और सर्वत्र इनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की प्रशंसा होने लगी। दिन में शास्त्रार्थ में रहे हुये साक्षीजनों की सभा हुई और उन्होंने संस्कृत में प्रमाणपत्र लिखकर तथा अपने हस्ताक्षरों से उसको प्रमाणित करके चरितनायक को सादर समर्पित किया।

सम्मति-पत्रम्

विदितमेवैतत्सर्वेषां सुधीमतां यदत्र रत्नपुर्यां (रतलाम-नगरे) श्रीमान् व्याख्यानवाचस्पतिर्यतीन्द्रविजयमुनिपुङ्गवः श्रीमताऽऽडम्बरचुञ्चुना सागरानन्दसूरिणा सार्कं श्वेतपीतपटविषयमवलम्ब्य सप्तमासिकं यावच्छास्त्रार्थं कृतवान्। तत्र श्रीमद्यतीन्द्रविजयमुनिवरदर्शिताऽऽचाराङ्गाद्यनेकजैनागमीयप्रमाणपटलं पश्यद्भिरस्माभिः प्रणीयते यज्जैनश्रमणानां श्रमणीनाञ्च श्वेतमानोपेतजीर्णप्राय-वसनधारणमेव सनातनं शिष्टाचरितञ्चास्तीति।

सागरानन्दसूरिणा तु प्रकाशितेषु मुद्रिताऽमुद्रित (हेण्डबिल) पत्रेषु जैनसाधुनां पीतवस्त्रधारणमागमासिद्धमिति कक्षीकृत निजपक्षसिषाधयिषया शास्त्रीयमेकमपि प्रमाणं नाऽऽदर्शि, किन्त्वाश्विनमासीयामावास्यायां प्रकाशित-पत्रे स्वयमप्यसौ सागरानन्दसूरिर्निजपक्षस्थापनक्षमाऽऽगमोक्त प्रमाणमलभ-मानो जैनश्रमणानां श्वेताम्बरमेव शास्त्रमर्यादोपेतमित्यङ्गीकृतवान्। तत एव तत्पक्षः सर्वथा शास्त्रविरुद्धो निष्प्रमाणः स्वकपोलकल्पित एव प्रतिभाति। अतः सकलैरपि जैनसाधुभिः साध्वीभिश्च जैनशास्त्रानुसारतो वस्त्रस्य वर्णपरावर्त्तनं भ्रमादपि कदापि नैव विधातव्यमिति यतीन्द्रविजयमुनिवरस्य साधीयान् पक्षः संमन्यते विद्वद्वरैरिति शम्। सकल जैनसाधुभिः श्वेतं मानोपेतं जीर्णप्राय वसनमेव धार्यमित्येयं सम्मतिरेतेषां विद्वद्वराणां जागर्त्ति—

प्रमाणकर्त्तागणानां हस्ताक्षराणि:—

१. सदानन्द शर्मा

नाथद्वारीय—गोवर्द्धन संस्कृत पाठशाला प्रधानाध्यापकः
न्यायव्याकरणतीर्थलब्धधौतप्रतिष्ठ.

२. मधुसूदन मिश्रः श्रोत्रियः

लब्धधौतप्रतिष्ठव्याकरणकाव्यतीर्थः

३. रामेश्वर शर्मा मैथिलः

व्याकरण काव्यतीर्थरत्नोपाधिकप्राप्तधौतप्रतिष्ठः

४. व्रजनाथ शर्मा

व्याकरणतीर्थभूषणः

५. पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

व्याकरणाचार्यः, महाविद्यालय इन्दौर (मालवा)

६. पं० छोटेलाल शास्त्री जैनः

जैनपाठशालाध्यापकः वड़नगर (मालवा)

७. बालशास्त्री भट्टः

राजकीय वेदशाला प्रधानाध्यापक. इन्दौर (मालवा)

८. पं० श्रीधर शास्त्री, इन्दौर (मालवा)

९. दुर्लभराम शास्त्री

झाबुआनरेशाश्रितो विद्याभूषण, झाबुआ (मालवा)

१०. पं० सदाशिव दीक्षितः

साहित्याचार्य, एफ० ए० बनारस (काशी)

११. पन्नालाल शास्त्री

भारतधर्ममहामण्डलस्य महामहोपदेशको रतलामनरेशाश्रितश्च, रतलाम (मालवा)

पाठकगण उपरोक्त संमतिपत्र को पढ़ कर तथा वैसे श्वेताम्बर-सम्प्रदाय पद का अर्थ विचार कर भी बुद्धि से सहज समझ सकते हैं कि जैन साधुओं को श्वेत अथवा पीत वस्त्र धारण करने चाहिए ?

सम्मति-पत्र में साक्षीधरों ने लिखा है कि व्याख्यान वाचसपति यतीन्द्रविजय मुनिपङ्गव द्वारा आचाराङ्गादि अनेक जैनागमों के प्रमाणपटलों से हम सर्वजनों को प्रतीति करवादी गई कि जैन साधु एवं साध्वियों के निकट श्वेतवस्त्र धारण करना ही उनका सनातन शिष्टाचार है। सागरानन्दसूरिजी अपने मत, 'पीतवस्त्र धारण करना आगमसिद्ध है' की पुष्टि में एक भी शास्त्रीय प्रमाण नही दिखा सके; किन्तु आश्विन मास की अमावस्या को अपने प्रकाशित पत्र में जैन आगमों के प्रमाणों के अभाव में उन्होंने स्वीकार किया कि जैनसाधुओं का श्वेत-पट धारण करना ही शास्त्रीय मर्यादा है।

मुनि सागरानन्दविजयजी की दीक्षा

चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक रतलाम से विहार करके निकट के ग्रामों में विचरने लगे। रतलाम के श्रीसंघ के आग्रह से आप श्री पुनः रतलाम में पधारे और वि० सं० १६८० मार्गशीर्ष शु० ५ को शुभ मुहूर्त में राजगढ़-वास्तव्य(ग्वालियर) धूलियाराठोड़गोत्रीय ओसवालज्ञातीय बृहद्शाखीय जबरचन्द को बड़ी धूम-धाम से लघु दीक्षा दी और मुनि सागरानन्दविजय नाम रक्खा। आपका जन्म वि० सं० १९५० चैत्र कृष्णा ६ को श्रे० पूनमचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमती मोतीबाई की कुक्षी से हुआ था। आप से बड़े भ्राता केसरीमलजी और लघु भ्राता चंपालालजी और बागमलजी थे तथा गेंदीबाई, मैनाबाई, छोटीबहिन, हर्षूबाई और मिश्रीबाई नाम की आपकी पाँच भगिनियाँ थी।

मुनि वल्लभविजयजी को और विद्याविजयजी को बड़ी दीक्षायें

रतलाम के श्रीसंघ के अत्याग्रह से आपश्री ने बालमुनि वल्लभविजयजी को और विद्याविजयजी को वि० सं० १९८० माघ शु० ५ को शुभ मुहूर्त में महोत्सवपूर्वक बड़ी दीक्षायें दी।

चरितनायक मुनि श्री यतीन्द्रविजयजी महाराज और साधु-मण्डल
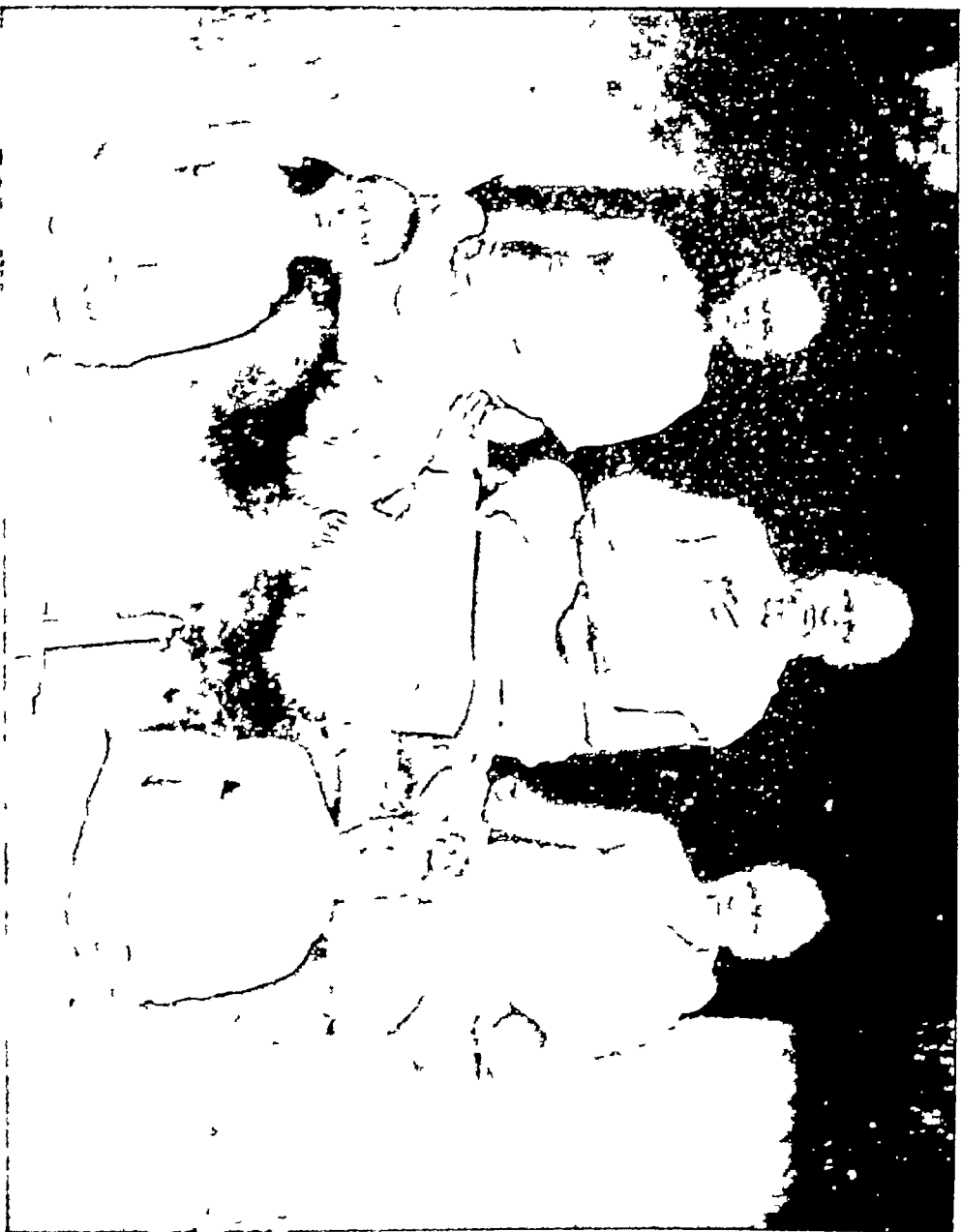
रींगणोद में साध्वी विमलश्रीजी की दीक्षा और जैन बिंबों की प्रतिष्ठा

वि० सं० १९८१

तत्पश्चात् चरितनायक स्वशिष्यमण्डली के सहित रतलाम से विहार करके राजगढ़ होते हुये तथा मोहनखेड़ातीर्थ के दर्शन करते हुये रींगणोद पधारे।

रींगणोद के श्रीसंघ के अत्याग्रह से चरितनायक वहाँ कुछ दिनों के लिये ठहरे और झाबुआवास्तव्य ओसवालज्ञातीय श्रे० नरथमलजी की भार्या वरधी बहिन की कुक्षी से उत्पन्न रणीबहिन को, जिसका विवाह झाबुआ-वास्तव्य मोदीगोत्रीय श्रे० चुन्नीलालजी के सुपुत्र नथमलजी के साथ में हुआ था वि० सं० १९८१ चैत्र शु० २ के दिन शुभ लग्न में लघुदीक्षा दी और विमलश्री उसका नाम रक्खा।

वैशाख शु० ५ भृगुवार को स्थिरलग्न में मूलनायक श्री चन्द्रप्रभ आदि जैन प्रतिमाओं की महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की।

झकणावदा में प्रतिष्ठा और अंजनशलाका

वि० स० १९८१

रींगणोद से आपश्री विहार करके झकणावदा (झाबुआ) में पधारे। वि० सं० १९८१ वैशाख शु० ११ को महामहोत्सवपूर्वक श्री आदिनाथ-प्रतिमा की प्रतिष्ठा (बिंबस्थापना) की और शीतलनाथ और अनंत-नाथ प्रभु के नूतन बिंबों की अंजनशलाका (प्राण-प्रतिष्ठा) की। झकणावदा के श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय किया और महामहोत्सवपूर्वक बिंबों की प्रतिष्ठायें करवाईं।

राजगढ़ में कुसंप का मिटाना और गुरु-मंदिर की प्रतिष्ठा

वि० सं० १९८१

राजगढ में स्व० श्रीमद्राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का स्मारक-मंदिर बनकर तैयार तो हो गया था; परन्तु संघ में कुसंप था, अतः उसकी प्रतिष्ठा

अभी तक नहीं हो सकी थी। झकणावदा से चरितनायक राजगढ़ पधारे और कुसंप को मिटाने का पूर्ण प्रयत्न किया। चरितनायक के तेज और आदर्श के आगे कुसंप के कुछ पोषकों की कुछ नहीं चली और अन्त में राजगढ़ के समस्त श्रीसंघ ने एकत्रित होकर चरितनायक के समक्ष अपने २ उद्‌गारों को निकालकर, अंत में मेल कर ही लिया। संघ में जब मेल हो गया तो चरितनायक ने गुरु-समाधि-मन्दिर की प्रतिष्ठा के प्रश्न को छेड़ा।

वि० सं० १९८१ को आचार्य श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से चरितनायक ने गुरु-समाधि-मंदिर और गुरुबिंब की प्रतिष्ठांजन-शलाका करवाई।

बाग में १८ वां चातुर्मास और सागरानन्दविजयजी की बड़ी दीक्षा

वि० सं० १९८१

इस वर्ष का चातुर्मास ग्वालियर-राज्यान्तर्गत ग्राम बाग में हुआ। व्याख्यान में श्री 'उत्तराध्ययनसूत्र' का और भावनाधिकार में 'विक्रमादित्य-पंचदंडचरित्र' का वाचन किया।

ज्ञान-पंचमी के शुभ दिवस पर मुनि सागरानन्दविजयजी को बडी धूम-धाम के साथ बड़ी दीक्षा प्रदान की। इस अवसर पर तप, जप, पूजा, प्रभावना का अद्वितीय ठाट रहा। स्थानीय श्रीसंघ ने आये हुये दर्शकों एवं भक्तगणों का अति ही श्रद्धा एवं भक्ति से सत्कार किया।

बड़ी कड़ोद में प्रतिष्ठा

वि० सं० १९८१

बाग से चातुर्मास पूर्ण करके चरितनायक अपने शिष्यों सहित टाडा, रींगणोद, लेटा, दशाई होते हुये बड़ी कड़ोद पधारे। यहां इसी वर्ष माघ शु० १० को शाह खेता वरदाजी द्वारा विनिर्मित सौधशिखरी जिनमंदिर में मूलनायक श्री वासुपूज्यबिंब और अन्य बिंबों की दृष्टि सुधार करके महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की।

मण्डपाचलतीर्थ की यात्रा
वि० सं० १९८१

बड़ी कड़ोद से विहार करके आपश्री अपनी साधुमण्डली के सहित धामणदा, कानून, बड़नगर, खरसोद, रूणीजा आदि ग्रामों में विहार करते हुये, वहाँ के श्रावकों एवं श्राविकाओं को जैन-धर्म का उपदेश करते हुये श्रीमद् भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के दर्शनार्थ रतलामनगर में पधारे।

रतलाम में आपश्री का आगमन श्रवण करके राजगढ का श्रीसंघ आया और उसने मण्डपाचलतीर्थ की यात्रा चरितनायक के अधिनायकत्व में करने की तीव्र इच्छा प्रगट की। सूरीश्वरजी महाराज ने राजगढ़-श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार की और चरितनायक को उपरोक्ततीर्थ की यात्रा करने की आज्ञा प्रदान की।

मण्डपाचलतीर्थ, जिसको मण्डपदुर्ग, माण्डु और माण्डवगढ भी कहते हैं, मालवप्रान्त के अति प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं समृद्ध और प्राचीन नगरों में से है। यहा बादशाही काल में सदा जैनियों का प्रभुत्व रहा है। मण्डपदुर्ग आज यद्यपि अपनी उस शोभा और कान्ति से विहीन है, परन्तु फिर भी प्राचीन खण्डहर और ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान आज भी उसकी भूत समृद्धि और उसके गौरव को जगविदित करने में पूर्ण सक्षम हैं। जैन समाज के अति प्रसिद्ध श्रीमंत एव प्रभावक पुरुप गद्धाशाह, भैंसाशाह, रामाशाह, पेथड़शाह, झाझणशाह इसी दुर्ग मे हो गये हैं।

यहाँ अनेक जैन-मदिर और जैन-उपाश्रय बने हुये हैं। इस तीर्थ के अधिनायक पूर्व तो श्री पार्श्वनाथ प्रभु थे। परन्तु वर्तमान में उपरोक्त बिंब के स्थान मे श्रीशातिनाथबिंब विराजमान हैं और वह भी अति ही दर्शनीय एवं चमत्कारी है।

चरितनायक के अधिनायकत्व में यह सघ-यात्रा बडे ठाट-बाट एवं सुख-शान्ति के साथ सम्पूर्ण हुई।

जैनर्षिपट-निर्णय (हिन्दी) का प्रकाशन—रचना स० १९८०।

अभी तक नहीं हो सकी थी। झकणावदा से चरितनायक राजगढ़ पधारे और कुसंप को मिटाने का पूर्ण प्रयत्न किया। चरितनायक के तेज और आदर्श के आगे कुसंप के कुछ पोषकों की कुछ नहीं चली और अन्त में राजगढ़ के समस्त श्रीसंघ ने एकत्रित होकर चरितनायक के समक्ष अपने २ उद्‌गारों को निकालकर, अंत में मेल कर ही लिया। संघ में जब मेल हो गया तो चरितनायक ने गुरु-समाधि-मन्दिर की प्रतिष्ठा के प्रश्न को छेडा।

वि० सं० १९८१ को आचार्य श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से चरितनायक ने गुरु-समाधि-मंदिर और गुरुबिंब की प्रतिष्ठांजन-शलाका करवाई।

बाग में १८ वां चातुर्मास और सागरानन्दविजयजी की बड़ी दीक्षा

वि० सं० १९८१

इस वर्ष का चातुर्मास ग्वालियर-राज्यान्तर्गत ग्राम बाग में हुआ। व्याख्यान में श्री 'उत्तराध्ययनसूत्र' का और भावनाधिकार में 'विक्रमादित्य-पंचदंडचरित्र' का वाचन किया।

ज्ञान-पंचमी के शुभ दिवस पर मुनि सागरानन्दविजयजी को बडी धूम-धाम के साथ बड़ी दीक्षा प्रदान की। इस अवसर पर तप, जप, पूजा, प्रभावना का अद्वितीय ठाट रहा। स्थानीय श्रीसंघ ने आये हुये दर्शकों एवं भक्तगणों का अति ही श्रद्धा एवं भक्ति से सत्कार किया।

बड़ी कड़ोद में प्रतिष्ठा

वि० सं० १९८१

बाग से चातुर्मास पूर्ण करके चरितनायक अपने शिष्यों सहित टांडा, रींगणोद, लेटा, दशाई होते हुये बड़ी कड़ोद पधारे। यहां इसी वर्ष माघ शु० १० को शाह खेता वरदाजी द्वारा विनिर्मित सौधशिखरी जिनमंदिर में मूलनायक श्री वासुपूज्यबिंब और अन्य बिंबों की दृष्टि सुधार करके महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की।

मण्डपाचलतीर्थ की यात्रा

वि० सं० १९८१

बड़ी कडोद से विहार करके आपश्री अपनी साधुमण्डली के सहित धामणदा, कानून, बड़नगर, खरसोद, रूणीजा आदि ग्रामों में विहार करते हुये, वहाँ के श्रावकों एवं श्राविकाओ को जैन-धर्म का उपदेश करते हुये श्रीमद् भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के दर्शनार्थ रतलामनगर मे पधारे।

रतलाम में आपश्री का आगमन श्रवण करके राजगढ का श्रीसंघ आया और उसने मण्डपाचलतीर्थ की यात्रा चरितनायक के अधिनायकत्व में करने की तीव्र इच्छा प्रगट की। सूरीश्वरजी महाराज ने राजगढ़-श्रीसंघ की प्रार्थना स्वीकार की और चरितनायक को उपरोक्ततीर्थ की यात्रा करने की आज्ञा प्रदान की।

मण्डपाचलतीर्थ, जिसको मण्डपदुर्ग, माण्डु और माण्डवगढ भी कहते हैं, मालवप्रान्त के अति प्रसिद्ध ऐतिहासिक एवं समृद्ध और प्राचीन नगरों में से है। यहां बादशाही काल में सदा जैनियों का प्रभुत्व रहा है। मण्डपदुर्ग आज यद्यपि अपनी उस शोभा और कान्ति से विहीन है, परन्तु फिर भी प्राचीन खण्डहर और ऐतिहासिक दर्शनीय स्थान आज भी उसकी भूत समृद्धि और उसके गौरव को जगविदित करने में पूर्ण सक्षम हैं। जैन समाज के अति प्रसिद्ध श्रीमंत एव प्रभावक पुरुष गद्धाशाह, भैंसाशाह, रामाशाह, पेथड़शाह, झांझणशाह इसी दुर्ग में हो गये है।

यहाँ अनेक जैन-मंदिर और जैन-उपाश्रय बने हुये हैं। इस तीर्थ के अधिनायक पूर्व तो श्री पार्श्वनाथ प्रभु थे। परन्तु वर्तमान मे उपरोक्त बिंब के स्थान में श्रीशातिनाथबिंब विराजमान है और वह भी अति ही दर्शनीय एवं चमत्कारी है।

चरितनायक के अधिनायकत्व मे यह सघ-यात्रा बड़े ठाट-बाट एवं सुख-शान्ति के साथ सम्पूर्ण हुई।

जैनर्षिपट-निर्णय (हिन्दी) का प्रकाशन—रचना स० १९८०।

क्राउन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० ५२। निमाड़प्रान्तीय निसरपुरवास्तव्य ओसवालज्ञातीय श्रे० सौभागमलजी धन्नालालजी सुराणा की धर्मपत्नी भूरिबाई की ओर से श्री आनन्द-प्रिंटिंग-प्रेस, भावनगर से अति उत्तम कागज पर वि० सं० १९८१ में प्रकाशित। पुस्तक के नाम से ही पुस्तक का विषय स्पष्ट हो रहा है। चरितनायक ने जैनागमों के और बहुश्रुताचार्यों के रचित प्रमाणिक ग्रंथरत्नों के एकावन ५१ अकाट्य प्रमाण दे कर सिद्ध किया है कि जैन साधु एवं साध्विओं को श्वेत, मानापेत और जीर्णप्रायः अल्पमूल्यीय वस्त्र धारण करना ही शास्त्रानुसार है, रंगीन नहीं।

लघुचाणक्यनीति (सानुवाद) की द्वितीय-तृतीय आवृत्तियां—द्वितीय आवृत्ति में मारवाड़ी-व्यापारी-मंडल, भींडी बाजार, बम्बई की ओर से १००० प्रतियां और तृतीय आवृत्ति में सिरोही-राज्यान्तर्गत फूगणी-वास्तव्य शा० जेताजी जेसाजी की तरफ से १००० प्रतियां सं० १९८१ में प्रकाशित हुईं। क्राउन १६ पृष्ठीय।

कुक्षी में रेवाविहार की प्रतिष्ठा वि०सं० १९८२

श्रीमण्डपाचलतीर्थ की यात्रा से सकुशल लौटकर चरितनायक अपने शिष्य एवं साधुमण्डल के सहित कुक्षी पधारे। कुक्षी का श्रीसंघ आपश्री के दर्शनों के लिये बहुत समय से लालायित था तथा वहाँ चरितनायक के कर-कमलों से रेवाविहार नामक प्रसिद्ध सौधशिखरी जिनालय की प्रतिष्ठा भी करवाने का अति इच्छुक था, फलतः चरितनायक का पुर-प्रवेश अति सज-धज एवं महान् भक्ति-भावनापूर्ण करवाया गया।

रेवाविहार जिनालय प्राग्वाटज्ञातीय पारीखगोत्रीय शाह चतराजी जवेरचन्द ने बहुत द्रव्य व्यय करके विनिर्मित करवाया था। चरितनायक ने वि० सं० १९८२ ज्येष्ठ शुक्ला ११ बुधवार को शुभ मुहूर्त्त में उपरोक्त सौधशिखरी मन्दिर की महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की और उसमें श्रीसीमंधर स्वामी की मूलनायक प्रतिमा और अन्य प्रतिमायें प्रतिष्ठित करके विराजमान कीं। यहाँ कुछ दिवस ठहर कर चरितनायक अपने साधु-मण्डल के सहित अलिराजपुर पधारे।

अलिराजपुर में पदार्पण

अलिराजपुर के श्रीसंघ ने पुर-प्रवेश अत्यन्त ही सराहनीय विधि और स्मरणीय शोभा के साथ करवाया। यहाँ आपश्री कुछ दिवस विराजे। अलिराजपुर के श्रीसंघ ने खटाली ग्राम के जीर्ण मन्दिर के उद्धारार्थ रु० ८००) देना स्वीकृत किया। यहाँ से आपश्री विहार करके नानपुर की ओर पधारे।

नानपुर में विंबप्रतिष्ठा वि० सं० १९८२

नानपुर में वहाँ का श्रीसंघ विंबप्रतिष्ठा करवाना चाहता था। श्रीसंघ की भक्ति चरितनायक के प्रति अति अगाध थी। श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी से नानपुर के श्रीसंघ ने चरितनायक के हाथों विंबप्रतिष्ठा करवाने की आज्ञा प्राप्त करली थी और इसकी सूचना यथासमय चरितनायक को भी भेज दी गई थी। चरितनायक ने वि० संवत् १९८२ आषाढ़ शु० १० मंगलवार को शुभ स्थिर लग्न में श्री पार्श्वनाथ आदि प्राचीन ९ (नव) जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। नानपुर के श्रीसंघ ने इस उत्सव में आये हुये दर्शकगणों एवं भक्तों की सराहनीय सेवा-सुश्रूषा की।

१९—वि० सं० १९८२ में कुक्षी में चातुर्मास—

वि० सम्वत् १९८२ का चातुर्मास श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से चरितनायक ने श्रीसंघ-कुक्षी के अत्याग्रह पर कुक्षी में किया। व्याख्यान में आपश्री ने 'श्री स्थानांगजीसूत्र-सटीक' और भावनाधिकार में 'शुभशीलगणिकृत विक्रमादित्यचरित्र' का वाचन किया। धर्म-ध्यान, तप, व्रत, उपवास और पूजा, प्रभावनाओं का पूरे चातुर्मास अच्छा ठाट रहा। अलिराजपुर, बाग, टाडा आदि अनेक नगर, ग्रामों के श्रीसंघ और जैनकुल दर्शनार्थ आये, जिनकी श्रीसंघ—कुक्षी ने अच्छी सेवा-सुश्रूषा की। चातुर्मास समाप्त करके आपश्री यहाँ से विहार करके अनुक्रम से राजगढ़ पधारे और फिर वहां से मोहनखेडा आदि स्थानों में होकर राणापुर पधारे, जैसा विहार-दिग्दर्शन से ज्ञात हो जावेगा।

———

कुक्षी से मोहनखेड़ा और मोहनखेड़ा से राणापुर तक श्री चरितनायक के विहार का दिग्दर्शन

वि० सं० १९८२

●

ग्राम	अंतर (कोश में)	जैन घर	मन्दिर	तारीख
कुक्षी	....	१३०	६	नवंबर १९२५
रामपुरा	३	०	०	,, ७
बाग	३	१८	१	८-१२
टांडा	६½	३५	१	१३-१६
रीगणोद	६¼	३५	१	१७-१८
भोपावर (तीर्थ)	१	०	१	१९
राजगढ़	२	२२५	४	१९ से जन० १७ (१९२६)
मोहनखेड़ा	१	०	३	,,
छड़ावद	२	०	०	१८
पीथनपुर	५	०	०	०
पारां	२	४०	१	१९-२०
राणापुर	४	४५	२	२२-२५

राजगढ़ में गुरुमूर्त्ति और चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा वि० सं० १९८२

श्रीमद् साहित्यशिरोमणि, पंडितमुकुटमणि, 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के प्रणेता श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी महाराज का स्वर्गवास राजगढ़ में हुआ था। राजगढ़ के अति ही निकट मोहनखेड़ा नामक अति ही छोटा ग्राम है। वहाँ का श्रीसंघ स्वर्गस्थ आचार्य का स्मारक बनाने का विचार कई वर्षों से कर रहा था। निदान श्रीसंघ ने बहुत द्रव्य व्यय करके श्वेत संगमरमर प्रस्तर का भव्य स्मारक विनिर्मित करवाया। इस गुरु-समाधि-मन्दिर के अर्थ श्रीसंघ—राजगढ़ गुरु-प्रतिमा अर्पण करना चाहता था। गुरु-प्रतिमा जब बन कर तैयार हो गई तो उसकी

प्रतिष्ठा राजगढ़ में करवाने का आदेश श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी महाराज ने चरितनायक को प्रदान किया और उसे पाकर आपश्री कुक्षी में चातुर्मास पूर्ण करके तुरन्त ही राजगढ़ पधारे। श्रीसंघ-राजगढ़ ने आपश्री का अत्यन्त ही भव्य स्वागत किया। वि० सं० १९८२ मार्गशीर्ष शु० १० बुधवार को शुभ मुहूर्त्त में गुरुप्रतिमा की और पूर्णिमा को गुरुचरणपादुका की प्रतिष्ठांजनशलाका की। तत्पश्चात शुभ दिवस एवं शुभ मुहूर्त्त में गुरुप्रतिमा को मोहनखेडा के गुरु-समाधि-मन्दिर में पुनर्स्थापित की।

राणापुर के श्रीसंघ का सिद्धाचलतीर्थ की यात्रा के लिये निमंत्रण और चरितनायक का उसे स्वीकार करना तथा यात्रा का दिन निश्चित करना

वि० सं० १९८२

मोहनखेडा में चरितनायक को श्रीसंघ-राणापुर का विनय और भक्ति भावों से भरा एक निमन्त्रण प्राप्त हुआ। पाठकों के पठनार्थ वह यहाँ दिया जाता है। पत्र यहाँ देने का एक मात्र कारण यही है कि आज से पहिले के श्रावक कितने सरल हृदय और उनकी लिखा-पढ़ी कितनी आडम्बर एवं अलंकारविहीन होती थी का यह पत्र एक अच्छा उदाहरण है।

'पूज्य मुनिराज साहब !,

'अमारा सघमाना केटलाक श्रावक श्राविकाओं ने आपश्रीना साथ छहरी पालता अने पगे चालतां सिद्धगिरिनी यात्रा करवाना भाव छे, माटे कृपाकरीने अत्रे पधारीने अमोने यात्रा करावानो लाभ आपशो।'

विनतीपत्र पढ़ते ही उसी दिवस चरितनायक ने राणापुर के लिये तुरन्त प्रस्थान कर दिया और मोहनखेडा, पीथनपुर, पारा होते हुये माघ शुक्ला ९ को आपश्री शिष्य एवं साधुमण्डलसहित राणापुर में पधारे। राणापुर के श्रीसंघ ने चरितनायक का पुर प्रवेश अति ही भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक किया। सिद्धाचलतीर्थ के लिये यात्रा करने का शुभ दिवस माघ शु० १३ को निश्चित किया गया।

सिद्धाचल-यात्रा का वर्णन लिखने के पूर्व चरितनायक की इस वर्ष में प्रकाशित पुस्तकों का परिचय देना तथा कुक्षी से राणापुर तक के विहार का दिग्दर्शन कराना अधिक संगत है।

रत्नाकर-पच्चीसी का हिन्दी-अनुवाद—हिन्दी-अनुवाद सं० १६८२। क्राउन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० ५४। सं० १९८२ में कुक्षीवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय शाह जबरचन्द्र बूदरजी ने इसको श्रीजैन-प्रभाकर प्रेस, रतलाम में इसकी ५०० प्रतियां छपवाकर प्रकाशित किया। 'रत्नाकर-पच्चीसी' श्री रत्नाकर-सूरिरचित वसन्ततिलकावृत्त में पच्चीस श्लोकों का अत्यधिक सारगर्भित, वैराग्यभावपूर्ण, कोमल और मनोहर पद्यबद्ध जिनप्रभु का प्रार्थना-स्तोत्र है। जैन समाज में इस स्तोत्र का घर-घर प्रचार है। ऐसे स्तोत्र का हिन्दी-अनुवाद कितना उपादेय एवं लाभकारी है, लिखने की आवश्यकता नही।

श्री मोहन-जीवनादर्श—रचना-सं० १६८२। क्राउन १६ पृष्ठीय। पृष्ठ सं० ५६। सं० १९८२ में श्रीसंघ-अलिराजपुर ने श्रीजैन-प्रभाकर प्रेस, रतलाम में छपवाकर प्रकाशित किया। प्रतियां १०००। स्वर्गीय उपाध्याय मोहनविजयजी की चरितनायक पर अगाध कृपा थी। उस कृपा का चढ़े ऋण को चुकाने के प्रति चरितनायक का उनकी जीवनी लिखकर उनके आदर्श जीवन को वाच्य बनाने का यह एक प्रयास है। स्व० उपाध्यायजी जैन समाज में अधिक पूज्य एवं मान्य थे। उनके जीवन को लिखकर चरितनायक ने उनके श्रद्धालुओं के प्रति सुन्दर एवं स्तुत्य कार्य किया है।

अध्ययनचतुष्टय—रचना-सं० १९८०। क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० ८२। प्रतियां ५००। राजगढ़वास्तव्य रायसाहब पन्नालालजी खजान्ची की पत्नी माणक बहिन ने श्रीआनन्द-प्रेस, भावनगर में छपवाकर प्रकाशित किया। श्रुतकेवली श्री शय्यम्भवसूरिजीकृत 'दशवैकालिकसूत्र' के प्रथम चार अध्यायों का इसमें हिन्दी में अनुवाद किया गया है। प्रथम मूल श्लोक तत्पश्चात् शब्दार्थ और फिर भावार्थ दिया गया है। ग्रंथ साध्वाचार-विषयक होने से इसका हिन्दी में अनुवाद नवदीक्षित साधु एवं साध्वियों को अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। जैन-धर्म के ४५ पचतालीस आगम मुख्य हैं। यह उन आगामों में से एक है।

लघुचाणक्यनीति का हिन्दी-अनुवाद और तृतीय आवृत्ति— हिन्दी-अनुवाद इतनी सुबोध एवं सरल भाषा में है कि दो आवृत्तिया तुरन्त ही समाप्त हो गईं। फलतः तृतीय आवृत्ति की आवश्यकता प्रतीत हुई और वह फूंगणीवास्तव्य शाह जेताजी जेसाजी की ओर से निकली। पुस्तक का परिचय पूर्व दिया जा चुका है।

तीर्थयात्रायें और अन्य कार्य

श्री सिद्धाचलजी की संघ-यात्रा

वि० सं० १६८३ माघ शु० १३ को शुभ मुहूर्त्त में चरितनायक ने अपने शिष्य एवं साधु-मण्डल के साथ में ६० श्रावक और श्राविकाओ के सहित सिद्धाचलतीर्थ की यात्रा के लिये राणापुर से प्रस्थान किया। साथ में आठ साध्वियें भी थीं। राणापुर का संघ चरितनायक की तत्त्वावधानता में मार्ग में आने वाले छोटे-मोटे ग्रामों में एक-एक दिन का विश्राम- लेता हुआ, मार्ग में आने वाले तीर्थों का दर्शन करता हुआ तथा श्रद्धा एव शक्ति के अनुसार जिनालयों में पूजा, प्रभावना कराता हुआ, जीर्णोद्धार आदि श्रेष्ठ कर्मों के निमित्त अर्थदान देता हुआ चैत्र कृ० ५ (फाल्गुण कृ० गुजराती) को प्रातः काल नव बजे पालीताणा पहुँचा।

श्री राणापुर-संघ का राणापुर से पालीताणा तक की संघयात्रा का दिग्दर्शन

वि० सं० १९८२

ग्राम. नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	सन्	१९-२६
राणापुर		४५	२	जन०	२२-२५
कुन्दनपुर	४	२	०		२६

गमलां	५	०	०		२७
दाहोद	३	२०	१		२८-२९
बलूंदी	६	०	०		३०
पीपलोद	६	०	०		३१
ओरवाड़ा	५	०	०	फरवरी	१
गोधरा	६।	७०	२		२
टूवा	५।।	०	०		३
टिम्बारोड़	२	१	०		,,
सेवालिया	२	६	०		,,
अंगाड़ी	२	६	१		४
ठासरा	२।।	२	१		,,
डाकोरजी	३	०	०		५-६
उमरेठ	३	५	१		,,
भालेज	४	१२	१		७
बोरियादी	५	५	१		,,
वरताल	१।।	१५	१		८-९
मेलाप	३	१०	१		१०-११
सोजीत्रा	४	४	०		१२
ईसरवाड़ा	४	४	०		१३
वरसड़ा	५	१	०		१४
वटामण	४	२०	०		१५
बोरु	७	१०	०		१६
बोलाद	२	६	०		०
पीपली	३	७	१		,,
आमली	४	४	१		१७
धोलेराबंदर	३	१३०	१		१८
एवदपुर	६	५	०		१९
वेलावदर	५	२	०		२०

रतनपुर	५	२	०		२१
वला (वल्लभी)	४	१००	१		,,
चमारडी	२	४	१		२२
कादेज	६	०	०		,,
वरतेज (तीर्थ)	१	३०	१		२३
भावनगर	३	१०००	६		२४-२५
अखवाड़ा	२	३	०		२६
गोवाबंदर	५	७५	३		२७
तणसा	८।।	४०	१		,,
त्रापज	३	६०	१		२८
तलाजा (तीर्थ)	३	६०	४	मार्च	१-२
देवली	२	२	१		,,
टाणेच	५।।	५	०		३
पालीताणा	४	७००	९		४-३१
	१६६।।।	२४७३	४६	एक मास और आठ दिन	

पुर-प्रवेशोत्सव तथा तीर्थ-दर्शन

चरितनायक का राणापुर-संघ के साथ में जब पालीताणा में संस्थापित 'श्री आनन्दजी कल्याणजी' की पीढ़ी ने श्रीसिद्धाचलतीर्थ की यात्रार्थ शुभागमन सुना उसने हर्ष एवं आनन्द के साथ में बड़ी विशाल भक्ति-भावनाओं से पुर-प्रवेश की व्यवस्था की और गज-शाही सज-धज से चरितनायक का प्रवेश करवाया। युवक चरितनायक का तेज एवं तप तथा प्रभाव देखकर और तेजस्वी देशनाको श्रवण कर श्रोता एवं दर्शकगण को अपार आनन्द हुआ। राणापुर का संघ वहां द्वितीय चैत्र कृष्णा १ तक ठहरा और प्रतिदिन जप-तप-ध्यान करता हुआ वह श्री सिद्धाचलतीर्थ के दर्शन-स्पर्शन करता रहा।

इन्हीं दिनों सियाणा (मरुधर-राजस्थान) वासी शाह खांडपीया

कान्ना उमाजी भी श्री सिद्धाचलतीर्थ की यात्रार्थ सपरिवार आये थे। उन्होंने चरितनायक से प्रार्थना की कि वे चरितनायक की अधिनायकता में पालीताणा से श्री गिरनारतीर्थ को संघ निकालना चाहते हैं। चरितनायक ने विनती स्वीकार करली और द्वितीय चैत्र कृष्णा २ को श्री गिरनारतीर्थ के लिये यात्रा शुभ मुहूर्त्त में प्रारम्भ करने के निश्चय से संघपति को सूचित किया।

चरितनायक का गिरनारतीर्थ की यात्रार्थ प्रस्थान

द्वितीय चैत्र कृ० २ को पालीताणा से चरितनायक ने अपने साधु एवं शिष्यसमुदाय के साथ सियाणावास्तव्य शाह काना उमाजी द्वारा निष्काशित संघ के साथ में गिरनारतीर्थ की यात्रा करने के लिये शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान किया। पालीताणा से गिरनारतीर्थ लगभग ५२ कोस के अन्तर पर है। श्रीसंघ को यह अन्तर पार करने में लगभग बारह दिवस लगे। पालीताणा से संघ १ अप्रैल को रवाना हुआ था, जो गिरनारतीर्थ की तलहटी में अप्रैल १२ को पहुँचा।

पालीताणा से गिरनारतीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८२

ग्राम-नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
घेटी	२	१५	१	अप्रैल १
परवड़ी	४	१०	१	२
चारोड़िया	५	६	०	३
गारियाधार	३	४५	१	,,
छोटालीलिया	२	०	०	,,
मोटालीलिया	१	२०	०	४
अमरेली	४	१५०	२	५
आकड़िया	४	०	०	६
कूकावाव	५	३०	०	,,

चूडा	५	२५	०	७
राणपुर	५	६०	१	८
वडाल	६	६२	१	९
जूनागढ़	३	२५०	२	१०-११
गिरनारतलहटी	२	१	१	१२
गिरनार (तीर्थ)	१½	०	२१	"
	५२½	६७४	३१	१२ दिन

संघ चरितनायक के अधिनायकत्व में उपरोक्त ग्राम, नगरों में होता हुआ, जिन मन्दिरों के दर्शन करता हुआ, पूजा-प्रभावनाओं का लाभ लेता हुआ अप्रैल १० को जूनागढ़ पहुँचा। वहाँ दो दिन का विश्राम किया और ता० १२ को गिरनार की तलहटी में पहुँच कर ऊपर चढ़ा और तीर्थ के दर्शन किये। संघपति काना उमाजी की ओर से पूजा-प्रभावनायें हुईं। संघ नेमिनाथ प्रभु की प्रतिमा के दर्शन करके और सहस्राम्रवन आदि पवित्र-स्थानो को भेंट कर अति आनन्दित हुआ।

चरितनायक ने जूनागढतीर्थ से स्वतत्र रूप से शंखेश्वर, तारंगा और अर्बुदतीर्थों की यात्रा करते हुये मरुधर-देश की ओर प्रयाण करने का निश्चय किया। दूसरे दिन चरितनायक अपने शिष्य एवं साधु-समुदाय के साथ में शंखेश्वरतीर्थ की यात्रार्थ चल पड़े।

श्री गिरनारतीर्थ से शंखेश्वरतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८३

ग्राम, नगर	अंतर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
जूनागढ़	३॥	२५०	२	अप्रैल १३-१६
वडाल	३	६२	१	१७
जेतपुर	६	३४०	१	१८
वीरपुर	४	१	०	"

गोमटा	२	१०	०	१९
गोंडल	६	४६०	१	२०-२१
बीलीयारु	२	०	०	,,
रीषड़ा	४	१०	०	२२
कोठारियु	३	०	०	०
राजकोट	३	११५०	·	२३-२७
खोराणा	५	३	०	२८
सीधावदर	४	०	०	२९-३०
बांकानेर	३	२५०	२	मई १-३
जाली	३	०	०	,,
लूणासिरी	४	११	,,	४
दाधोड़ियुं	५	२	०	,,
सरा	२	२३	१	५
कोंढ़	५	४३	१	६-८
नीबा	३	८	१	०
ध्रांगध्रा	५	८३०	२	९-१०
गाला	४	४	१	११
भरड़ा	२	०	०	,,
देहग्राम	३	८	०	१२
ओडुं	५	१२	१	१३-१४
झीझुवाड़ा	५॥	१००	१	,,
धामा	२	७	०	१५
आदरयाणुं	२	३६	१	,,
शंखेश्वरतीर्थ	४	६	१	१६-२०
	१०३	३६२६	१७ एक मास एक सप्ताह	

मार्ग में जैसा विहार-दिग्दर्शन से भी सूचित होता है जेतपुर, गोंडल राजकोट, वाकानेर, ध्रागध्रा जैसे प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर पड़े। राजकोट में

आपश्री पूर्णिमा-पर्य्यन्त विराजे । चैत्र शु० ७ को राजकोट में आपश्री का पुर-प्रवेश हुआ । स्थानीय संघ ने सराहनीय विधि से आपश्री का स्वागत किया । स्थानीय संघ की ओर से चैत्र शु० त्रयोदशी को श्री महावीर-जयन्ती-महोत्सव मनाये जाने को था, अतः संघ के अत्याग्रह पर आपश्री ने वहां जयन्ती-महोत्सव मना कर जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी । चरितनायक के अधिनायकत्व मे जयन्ती-महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया गया । आपश्री ने लगभग एक घन्टापर्यन्त चरम तीर्थंकर भगवान् महावीर के महोपकारी जीवन पर देशना दी और उसी रोज जैन पाठशाला के बालक और बालिकाओं की परीक्षा भी ली ।

राजकोट से विहार करके छोटे-बड़े ग्रामों में यथा-समय और यथा-सुविधा विश्राम करते हुये आपश्री मई १६ को श्री शंखेश्वरतीर्थ पहुँचे । इस १०० कोस की यात्रा मे आपश्री को पूरा एक मास और एक सप्ताह लगा । यहाँ आपश्री पांच दिवसपर्य्यन्त विराजे और श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा के दर्शन करके अति ही आनन्दित हुये । यहाँ से आपश्री ने तारंगगिरितीर्थ की ओर विहार किया ।

श्री शंखेश्वरतीर्थ से श्री तारंगाजीतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८३

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मन्दिर	तारीख
मुजपुर	४	३०	२	मई २१
हारिजरोड	५	१५	१	२२
जमणपुर	३	१०	१	,,
अड़िया	३	२०	१	२३
कुणघेर	३	१०	१	,,
पाटण (अणहिलपुर पत्तन)	२	२०१५	११२	२४-२८
सागोडियो	२	०	०	,,

कल्याण	५	१५	१	२९
मेत्राणा (तीर्थ)	२	४	१	३०
सिद्धपुर	५	१५	२	,,
समोड़ा	२	५	०	३१
लूणवा	३	२०	१	जून १
बीढ़ोड़ी	२	०	०	,,
कोदराम	२	२०	२	,,
चाणशूल	२	३२	१	,,
डभाड़	।	३५	१	२
वरठा	३	०	०	३
श्री तारंगातीर्थ	४	०	५	४-७
	५२।	२२४६	१३२	१८ दिन

शंखेश्वरतीर्थ की यात्रा करके आपश्री अपने समुदाय के सहित श्री तारंगातीर्थ की यात्रा करने के लिये मई २१ को चल निकले। शंखेश्वर और तारंगातीर्थ के अन्तर में आने वाले ग्राम एवं नगरों में पत्तन (अणहिलपुर) बडा नगर आता है। वहाँ आपश्री ता० २४ को पहुँचे और मई २८ तक अर्थात् ६ दिवसपर्य्यंत वही विराजे। पत्तन में इतने दिन ठहरने का एक कारण यह भी था कि वहाँ श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब विराज रहे थे। यहाँ चरितनायक ने सर्व जिन मन्दिरों के दर्शन किये और चौदह ज्ञान-भण्डारों का अवलोकन किया। मई २६ को आपश्री ने पत्तन से विहार किया और मार्ग में आये हुये ग्रामों में यथावकाश और यथासुविधा एक-एक दिन और कहीं कुछ घंटों का विश्राम करते हुये आपश्री जून ४ को श्रीतारंगाजी-तीर्थ को पहुँचे। श्रीशंखेश्वरतीर्थ से श्रीतारंगाजी का यह यात्रा-मार्ग लगभग ५२ कोस के अन्तर का था। इस अन्तर को काटने में आपश्री को १४ दिवस लगे।

श्रीतारंगातीर्थ पहुँचकर चरितनायक ने अपने साधु एवं शिष्यमण्डल के सहित दादा अजितनाथ के दर्शन किये और अन्य पवित्र स्थानों के भी दर्शन

करके कृत कृत्य हुये । यहाँ चरितनायक ने तीन दिन का विश्राम किया और इस समय में तीर्थसम्बन्धी कितनी ही ऐतिहासिक सामग्री आपश्री ने प्राप्त की । जून ७ को आपश्री ने यहाँ से श्री अर्बुदाचलतीर्थ की ओर प्रस्थान किया ।

श्री तारंगाजीतीर्थ से श्री अर्बुदाचलतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८३

ग्राम, नगर	अंतर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
टीम्बा	३	५	१	जून ७
भालूसण	३	२०	१	८
ऊमरी	२॥	६	१	,,
नागरमोरिया	३॥	२५	१	९
दाताभगवानगढ	५	१२	१	१०
कुंभारियातीर्थ	१२	०	५	११-१२
अंबाजी	॥	,,	,,	,,
खराड़ी	९	२०	१	१३-१४
चौकी	२॥	०	०	१५
आबुकेम्प	७	०	०	,,
देलवाडा	२	०	६	१६-२०
अचलगढतीर्थ	३॥	१	३	२१
ओरिया	१	०	१	,,
	५४॥	८९	२६	१४ दिन

श्रीअर्बुदाचलतीर्थ की यात्रा

चरितनायक अपनी साधु-मण्डली के सहित श्री तारंगाजीतीर्थ से जून ७ को चले और योग्य ग्रामों में एक-एक दिन का विश्राम करते हुये तथा श्रावक एवं श्राविकाओं को धर्म का यथासमय एवं यथा-सुविधा उपदेश देते हुये जून ११ को प्रसिद्ध एवं अति प्राचीन तीर्थ श्री कुंभारियाजी पधारे । वहाँ दो

दिवस का विश्राम किया और जून १३ को प्रातःकाल वहाँ से चल पड़े। खराड़ी ग्राम को आपश्री ता० १३ को ही संध्यासमय पहुँचे। वहाँ भी दो दिन ठहरे। ता० १५ जून को आबुकेम्प और ता० १६ जून को देलवाड़ा ठहरे। इस यात्रा में आपश्री को १४ दिन लगे और ५४ कोस का अन्तर पार करना पड़ा। आपश्री देलवाड़ा पहुँच कर गूर्जरसम्राट् प्रथम भीमदेव के गूर्जरमहाबलाधिकारी दंडनायक विमलशाह द्वारा वि० सं० १०८८ में विनिर्मित विमलवसतिकाख्य श्री आदिनाथ-जिनालय और गूर्जरयुवराज धवलक्कपुराधीश वीरधवल के महामात्य एवं दंडनायक वस्तुपाल तेजपाल द्वारा वि० सं० १२७६ में प्रतिष्ठित श्री लूणसिंहवसतिकाख्य श्री नेमिनाथ-चैत्यालय के दर्शन करके अति ही आनन्दित हुये। उपरोक्त दोनों मन्दिर जैन-समाज में ही नहीं, संसार भर के अद्वितीय मन्दिरों में से हैं। इनको अनुपम भी कहा जाय तो भी आश्चर्य नहीं। चरितनायक वहाँ जून २० तक विराजे और तत्पश्चात् उन्होंने जून २१ को अचलगढ़तीर्थ और ओरियाजी के जि० मंदिर के दर्शन करके सिरोही की ओर विहार किया।

श्री अर्बुदाचलतीर्थ से सिरोही और आहोर तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८३

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
अनादरा	३॥	४०	१	जून २२
पालरी	३	५	१	,,
सिरोड़ी	२	७०	२	२३-२५
मेड़ा	३	२०	१	२६
हमीरगढ़ (तीर्थ)	२॥	०	३	,,
सन्दरुट	२	१५	१	,,
सिरोही (तीर्थ	-	५००	१७	२७-२८
सनवाड़ा		१०	१	,,

वीरवाड़ा	२	५०	२	३०
ऊदरा	१	०	१	,,
ब्रामनवाड (तीर्थ)	१	,,	१	जुलाई–३
नादिया (तीर्थ)	३॥	४०	२	,,
सिरोही	७	५००	१७	४
गोयली	१	२५	१	,,
ऊड	३	२५	१	,,
जावाल	१	२००	४	५
वलदूठ	१	१००	२	,,
सवणा (तीर्थ)	४	,,	१	६
आकोली	४	८०	१	७-१०
वागरा	२	२५०	१	,,
दूडसी	१	३०	१	,,
सियाणा	३	३२५	२	११
मायलावास	२	,,	,,	,,
मेडा	४	,,	,,	१२
झीपरवाडा	२	०	०	,,
आहोर	१	६००	५	१३-१५
	५४॥	३१७५	७३	२४ दिन

आबूपर्वततीर्थ से २४ दिनों मे ६४½ मील का अन्तर पार करके चरित्रनायक अपने शिष्यसमुदाय एवं साधुमण्डल के सहित जुलाई १३ को आहोर पधारे। आहोर के श्रीसंघ ने चरितनायक का पुर-प्रवेश अति ही उत्साह से करवाया। इस यात्रा में आये हुये प्रमुख उल्लेखनीय नगर सिरोही, जावाल, सियाणा और वागरा हैं। इनका वर्णन यथावसर इस जीवन-चरित मे आना निश्चित है, अतः इनके विषय में यहां कुछ भी लिखना असंगत तो नहीं, परन्तु उपेक्षणीय अवश्य मानता हूं। इस यात्रा में उल्लेखनीय बात यह हुई कि जब चरित्रनायक सिरोही से विहार करते हुये आकोली पधारे तो आकोली

के श्रीसंघ ने चरितनायक का आगामी चातुर्मास आकोली में ही कराने के निमित्त अत्याग्रह किया। चरितनायक ने श्रीसंघ का अत्याग्रह देखकर आकोली में चातुर्मास करने की जय बुलवादी। तत्पश्चात् आपश्री सियाणा और फिर वहाँ से आहोर पधारे। आपश्री के सदुपदेश से श्रीसंघ-सियाणा ने श्रीमोहनखेड़ातीर्थोद्धार के निमित्त रु० २४००) अर्पण किये। आहोर के श्रीसंघ ने इसी पुण्य-कार्य के अर्थ रु० २६००) का दान दिया। तत्पश्चात् चातुर्मास के प्रयोजन से आपश्री पुनः आकोली पधारे।

मरुधर में चातुर्मास और अन्य कार्य

●

२०—वि० सं० १९८३ में आकोली में चातुर्मास—

श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से चरितनायक ने जैसा ऊपर संकेत हो चुका हैं वि० सं० १९८३ का चातुर्मास आकोली (मरुधर-प्रान्त) में किया। व्याख्यान में 'उत्तराध्ययन-सूत्र' और भावनाधिकार में 'विक्रमादित्य-चरित्र' का वाचन किया। चातुर्मासपर्य्यंत धर्मक्रियाओं एवं तपस्याओं, पूजा-प्रभावनाओं का सराहनीय ठाट रहा और निम्नवत् तपस्यायें हुईं।

९३० नीवि, आयंबिल और एकासना, १४० प्रभावना, ५०० उपवास, ३०१ बेला, १०१ अट्ठम, ५१ चौला, २१ पांचा, २ पचरंगी तप, १ नवरंगी तप, ११ अट्ठाई, ५ चौवीस-भक्त (अग्यारह उपवास)।

चरितनायक के दर्शनार्थ सियाणा, बागरा, साथू, बाकरा, मोदरा, भीनमाल, रेवतड़ा, जालोर, धाणसा आदि अनेक ग्रामों के कुटुम्ब और संघ आये। इनमें से निम्न सज्जन एवं संघों ने नवकारशियाँ करवाईं।

नवकारशियां

१—रेवतड़ावास्तव्य शाह हांसाजी की तरफ से कार्त्तिक शु० ६

२—श्रीसंघ—धाणशा ,, कार्त्तिक शु० ७

३—श्रीसंघ—सांथू की तरफ से कार्तिक शु० ८
४-५— ,, —बागरा ,, कार्तिक शु० १२,१३
६-७-८— ,, —सियाणा ,, मार्गशीर्ष कृ० २,५,६

९—आहोरवास्तव्य शाह चंदा तिलोकचंदजी की ओर से मार्गशीर्ष शु० ९ को नवकारशी के साथ में श्रीफल की प्रभावना भी हुई ।

इनके उपरान्त भीनमाल, सांथू, माडवला, जालोर, माडोली, बलदूट के श्रीसंघो की ओर से श्रीफल और एक सेर शक्कर की प्रति घर प्रभावना दी गई थी । इस प्रकार आकोली के चातुर्मास में अति ही ठाट रहा ।

आकोली में चरित्रनायक शर्दकाल के मध्य तक विराजे । तत्पश्चात् आपश्री वहां से विहार करके सियाणा पधारे और वहां आपश्री ने अपने कर-कमलों से साध्वीजी श्री चेतनश्रीजी और चतुरश्रीजी को दीक्षित किया ।

कुलिंगिवदनोद्गारमीमांसा (हिन्दी) का प्रकाशन—रचना सं० १९८३ । क्राउन १६ पृष्ठीय । पृ० सं० ७४ । प्रतियाँ ५०० । जावरा-वास्तव्य ओसवालज्ञातीय शाह० के० आर की ओर से श्री आनंद-प्रेस, भावनगर में प्रकाशित । पुस्तक के नाम से ही उसके विषय की प्रकृति एवं लेखक के उद्देश्य का कुछ २ आभास वैसे ही मिल जाता है । रतलाम में श्री चरित्रनायक और सागरानन्दसूरिजी के मध्य में विवाद चला था और उस विवाद में सागरानन्दसूरिजी को नीचा देखना पड़ा था और उसका विस्तृत वर्णन पूर्व दिया जा चुका है । श्रीमद् सागरानन्दसूरिजी प्रसिद्ध आगमोदय-समिति के नियंता एवं जैनागमों के धुरंधर पंडित माने जाते रहे हैं । उपरोक्त विवाद को लेकर उन्होंने 'यतीन्द्रमुखचपेटिका' नामक एक क्षुद्र-शीर्षक वाहिनी और ऐसे ही निम्नभाववाहिनी छोटी पुस्तक प्रकाशित की । चरित्रनायक ने उपरोक्त पुस्तक के उत्तर में कुलिंगिवदनोद्गारमीमांसा (हिन्दी) नामक पुस्तक निकाली । इसमें आपश्री ने बड़ी सभ्यता एवं साधु के योग्य भाषा का प्रयोग करते हुये अकाट्य युक्तियों एवं अनर्घ्य प्रमाणों से अपने मत की पुष्टि की । इस पुस्तक का प्रचार सागर की लहर की भांति जैन-समाज में हुआ और श्रीमद् सागरानन्दसूरिजी को बहुत नीचा देखना पड़ा

सियाणा में श्री चेतनश्रीजी और चतुरश्रीजी की लघुदीक्षा

वि० सं० १९८३

चेतनश्रीजी का गृहस्थ नाम जम्मुबाई था। इनका जन्म टांडा (मालवा) में वि० सं० १९४९ में हुआ था। इनके पिता का नाम धन्नालालजी और माता का नाम सकमाबाई था। श्री धन्नालालजी ओसवालज्ञातीय श्रेष्ठी थे। जम्मुबाई का विवाह रींगनोदनिवासी ओसवालज्ञातीय श्रे० कुं० जड़ावचन्द्रजी के साथ में वि० स० १९६३ माघ शु० ५ को हुआ था। दुर्दैव की कुदृष्टि से इनके पति का स्वर्गवास अल्पायु में ही वि० सं० १९६८ की भाद्रपद शु० १० को ही हो गया। जंमुबाई एक दम अनाथ हो गई। धीरे २ संसार से इनको उदासीनता होने लगी और निदान सियाणा (मारवाड़) में चरितनायक के करकमलों से वि० सं १९८३ माघ शु० ६ को इन्होंने गुरुणीजी श्री भावश्रीजी के सदुपदेश से भागवतीदीक्षा ग्रहण की। चरितनायक ने इनका नाम चेतनश्रीजी रक्खा तथा इनको भावश्रीजी की ही शिष्या बनाई।

चतुरश्रीजी का गृहस्थ नाम मिश्रीबाई था। इनके पिता का नाम लूणाजी और माता का नाम वरदी बाई था। इनके पिता भी ओसवालज्ञातीय थे। मिश्रीबाई का जन्म वि० सं० १९५६ फाल्गुण शु० ७ के दिवस हुआ था और विवाह राजगढ़निवासी ओसवालज्ञातीय हेमराजजी के साथ में वि० सं० १९६८ माघ कृ० ४ के दिन हुआ था। यह आठ वर्ष का सौभाग्य देखकर वि० सं० १९७६ श्रावण शु० ७ को विधवा हो गई। सियाणा में चरितनायक के करकमलों से इन्होंने भी वि० सं १९८३ माघ शु० ६ को चेतनश्रीजी के साथ में साध्वीदीक्षा ग्रहण की और चतुरश्री नाम धारण किया तथा गुरुणीजी श्री भावश्रीजी की शिष्या वनी।

इस दीक्षाकार्य से निवृत्त होकर चरितनायक अपनी शिष्य एवं साधुमण्डली के सहित आहोर पधारे और वहाँ कुछ दिवस विराजे तथा वहाँ से फिर गुढ़ाबालोतरा पधार कर पुनः प्रतिष्ठोत्सव के पूर्व आकोली पधार गये।

श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से मरुधर में चातुर्मास की.

आकोली में जैन घरों की संख्या लगभग अस्सी है दुर्भाग्य के कारण इतने छोटे से समुदाय में कई वर्षों से कुसंप था और उसका परिणाम यह हुआ कि अब तक आकोली में कुसंप के जिनालय की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई थी। चरित्रनायक ने अपने चातुर्मासकाल में ही अपनी ओजस्वी व्याख्यान-शक्ति से आकोलीवासियों के मानसों की ग्रंथियों को खोल डाला था। इस समय अन्त में चरित्रनायक संप करवाने में सफल हुये। आकोली का समस्त श्रीसंघ चरित्रनायक के इस सराहनीय प्रयत्न से अति ही आनंदित हुआ और उसने जिनालय की प्रतिष्ठा कराने का निश्चय किया। एक दिन चरित्रनायक के अधिनायकत्व में आकोली का श्रीसंघ एकत्रित हुआ और प्रतिष्ठार्थ १८०००) अठ्ठारह सहस्र रुपयों का चंदा तत्काल लिखा गया। श्रीसंघ ने भूपेन्द्रसूरिजी महाराज साहब को जो थराद में विराज रहे थे, आकोली के सद्-गृहस्थों को भेज कर निमंत्रित किया और उनके कर-कमलों से वि० सं० १९८४ वैशाख शु० ५ शुक्रवार को अष्टाह्निकामहोत्सवपूर्वक बहुत धाम-धूम एवं सज-धज से जिनालय की प्रतिष्ठा शुभ मुहूर्त में करवाई।

को मिटाना और जिनालय की प्रतिष्ठा में आपका सहयोग वि० सं० १९८४

प्रतिष्ठा-कार्य से निवृत्त हो कर चरित्रनायक सियाणा पधारे और फिर सियाणा से आहोर पधारे।

२१—वि० सं० १९८४ में गुड़ाबालोतरा में चातुर्मास.—

वि० सं० १९८४ का चातुर्मास श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से चरित्रनायक ने गुड़ाबालोतरा (मरुधर-प्रान्त) में किया।

व्याख्यान में 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष' का 'तित्थयर' शब्द और भावनाधिकार में शुभशीलगणिरचित 'विक्रमादित्यचरित्र' का वाचन किया। गुड़ाबालोतरा में प्राग्वाटज्ञातीय जैनियों की अच्छी बस्ती है।

चरित्रनायक का यह वि० सं० १९८४ का चातुर्मास श्रीमंत शाह

श्रे० जीवाजी लखाजी की ओर से चातुर्मास का व्यय वहन करना

जीवाजी लखाजी की ओर से करवाया गया था। ये यहाँ की जैन समाज में अग्रणी और अधिक श्रीमंत श्रावक हैं। ये जैसे श्रीमंत हैं, वैसे ही धर्म और समाज के प्रति सुधार एवं धर्म-कार्यों में अपने द्रव्य का सदुपयोग करने वाले भी हैं। बम्बई में इनकी दुकान है और वहाँ की प्रसिद्ध शाहूकारी दुकानों में इनकी दुकान की गणना है। 'श्री जैन-श्वेताम्बर-पाठशाला' नाम से गुढ़ाबालोतरा में इनकी ओर से विद्यालय चलता है। इस विद्यालय में धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षण दिया जाता है। चातुर्मास का सम्पूर्ण व्यय इन्होंने ही किया था। चरितनायक के दर्शनार्थ आये हुये श्रीसंघों को इन्होंने तीन-तीन दिन तक रोका और उनका अतिशय आदर-सत्कार किया। आये हुये संघों में उल्लेखनीय आहोर, बागरा, जालोर, हरजी, तख्तगढ़, शिवगंज और कोशीलाव के बृहद् संघ थे।

चातुर्मास में पुण्य-कृत्य

तप, व्रत, उपवास, आंबिल आदि अनेक तप हुये तथा बाहर के ग्राम एवं नगरों से आये हुये श्रीसंघों की ओर से अट्ठारह नवकारशियाँ तथा श्रीफल और मिश्री की ५० पचास प्रभावनायें हुईं। स्वर्गीय गुरुदेव श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी, विजयधनचन्द्रसूरिजी, विजयभूपेन्द्रसूरिजी, उपा० मोहनविजयजी और चरितनायक की सैकड़ों रुपयों का व्यय करके भक्तजनों ने दर्शनीय स्नेहिल (Oil paint) चित्र करवाये, जिनका विवरण निम्न है।

१. स्व० गुरुराज विजयराजेन्द्रसूरिजी, विजयधनचंद्रसूरिजी, विजय-भूपेन्द्रसूरिजी, उपा० मोहनविजयजी और व्याख्यान वाचस्पति उपा० श्रीयतीन्द्रविजयजी (चरितनायक) का सम्मिलित एक स्नेहिल चित्र श्रे० जीवाजी लखाजी ने ३०"×२४" इञ्ची करवाया और उसको धर्मशाला में स्थापित किया।

२. स्व० गुरु महाराज श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी का एक स्नेहिल चित्र ३०"×२४" शा० लालचन्द्र लखमाजी ने करवाकर धर्मशाला में स्थापित किया।

गुढ़ा से चरितनायक का सहमुनि-मण्डल विहार
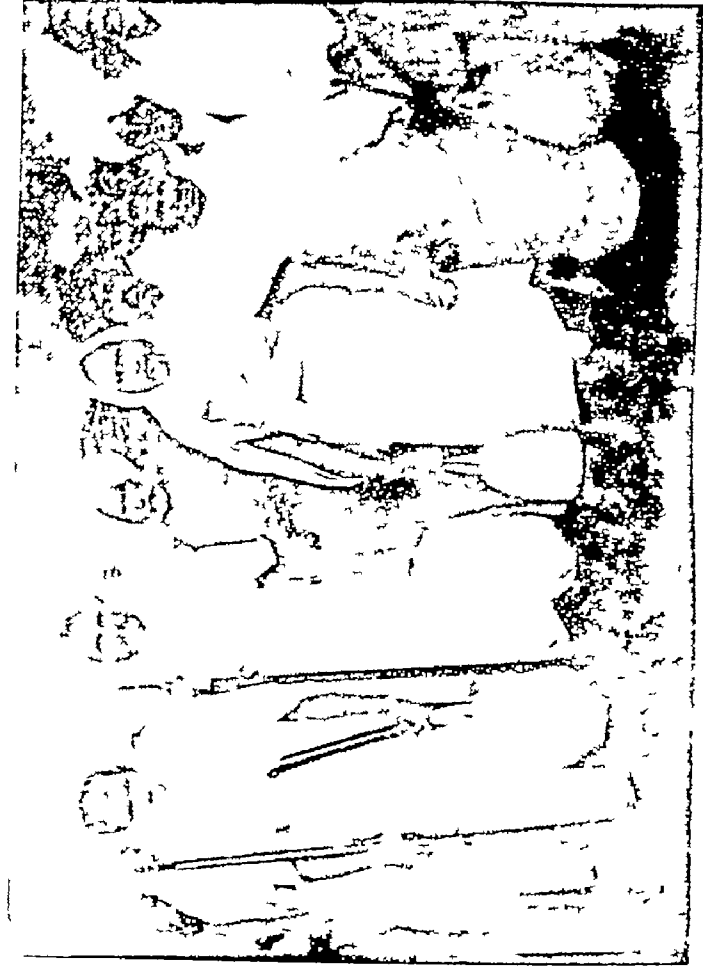
चातुर्मास की समाप्ति पर. वि० सं० १९८४

३. स्व० श्रीमद् विजयधनचन्द्रसूरिजी का एक स्नेहिल चित्र ३०"×२४" शाह छोगमल भूताजी ने करवाकर धर्मशाला में स्थापित किया।

४. स्व० उपा० श्री मोहनविजयजी का एक स्नेहिल चित्र ३०"×२४" शा० मगाजी ने करवाकर धर्मशाला में स्थापित किया।

५. स्व० श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी का एक स्नेहिल चित्र ३०"×२४' शाह० मोतीजी हाँसाजी ने करवाकर धर्मशाला में स्थापित किया।

६. व्याख्यान-वाचस्पति उपा० मुनि श्रीयतीन्द्रविजयजी (चरित-नायक) का एक स्नेहिल चित्र ३०"×२४" शा० सांकलचन्द्र धुलाजी ने करवा कर धर्मशाला मे प्रतिष्ठित किया।

७-८. स्व० गुरुमहाराज श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी महाराज का तथा चरितनायक का एक-एक और स्नेहिल चित्र क्रमशः ३०"×२४", १४"×१२" आहोरनगरवासी शा० तिलोकचन्द्र चन्दाजी ने करवा कर धर्म-शाला में प्रतिष्ठित किये।

चातुर्मास पूर्ण करके आपश्री ने गोडवाड-प्रान्त के छोटे-मोटे ग्रामों में विहार किया और छोटे-मोटे तीर्थों के दर्शन किये। फिर जालोर तथा भीनमाल की ओर का अत्याग्रह होने से आपश्री अपनी मण्डली के सहित उधर के छोटे-मोटे ग्रामों में विचरते हुये धानेरा पहुँचे।

गुढ़ाबालोतरा से शिवगंज और श्री वरकाणातीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० स० १९८४

ग्राम, नगर	अंतर (कोसमें)	जैन घर	जैन मंदिर	तारीख
अगवरी	॥	१००	२	नवंबर १२
सेदरिया	३	५०	१	२२-२६
पावटा (तीर्थ)	।	२५	१	,,

नोवी	।।।	१००	२	२६
छोटालखमावा	।।	२	१	,,
मोटालखमावा	।।	१०	१	,,
कोरटा (तीर्थ)	१	६०	४	२७-३१
कानपुरा	१।।	१५	१	,,
शिवगंज	२	६२५	७	दिसंबर १-९
ऊंदरी	।।	१२	१	,,
नेतरा	२।।	०	०	१०
सांडेराव	३।।	३००	२	११-१४
खिमेल	३	२००	२	१५-१६
वरकाणा (तीर्थ)	२।।	०	१	१७-१८
	२२	१४९९	२६	एक मास एक सप्ताह

वरकाणातीर्थ से जालोर तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८४

ग्राम, नगर	अंतर (कोसमें)	जैन घर	मंदिर	तारीख
राणी (स्टेशन)	२	५०	१	सन्१९२७दि०१६-२३
राणीग्राम	१	१५०	१	,,
बाली	३	३५	१	,,
खिमाड़ा	२	३०	१	२४-२६
कोशिलाव	।।	२३०	२	दि०२७सेसन्१९२८ज.४
वाबाग्राम	।।	३५	१	५-६
पावा	२	३५	१	७-११
भूति	२	९५	२	१२-१८
कवला	१	६	१	,,
रोड़ला	२	१२	१	,,

तखतगढ़	४	५७५	५	१९-२२
जुआणा	४	४	०	,,
भारुंदा	।।	९०	२	,,
फताहपुरा	१।।	३५	१	२३-२५
जोयला	१।।			,,
जोगापुरा	१।।	४०	१	२६
रोवाड़ा	३	३५	,,	२७-३१
आलावा	१।।	१२	,,	,,
हरजी	२।।	२७५	२	फरवरी १-१०
बूड़तरा	२	१०	०	,,
थावरा (रा)	१	४०	१	,,
भेंसवाड़ा	२	७२	२	११-१३
सकराणा	१।।	०	१	,,
लेटा	२	३०	,,	,,
जालोर (तीर्थ)	१	८५५	१३	१३-२४
	४५।।	२७५१	४३	दो मास बारह दिन

पावा के संघ में फूट थी। उसको मिटाकर आपश्री ने संघ में ऐक्यता स्थापित की। यहा आपश्री पाच दिवसपर्यन्त विराजे।

भूति में आपश्री सात दिवसपर्यंत ठहरे। यहाँ भी सघ में फूट थी। आपश्री ने नित्य व्याख्यान देकर एवं ऐक्यता के महत्त्व पर विशेष प्रभाव डाल कर वहाँ के संघ में पड़ी हुई फूट को नष्ट किया और फूट के कारण जो प्रतिष्ठाकार्य रुका हुआ था, उसके करने का आयोजन निश्चित करवाया।

शांतिश्रीजी की दीक्षा

आहोर में आपश्री ने साध्वीजी श्री शातिश्रीजी को विधिपूर्वक भागवती-दीक्षा वि० सं० १९८४ फाल्गुण कृ० ५ को प्रदान की। इन साध्वीजी को

साध्वीजी श्री सोहनश्रीजी ने जावाल में साध्वी के वस्त्र परिधान करवा दिये थे; परन्तु विधिपूर्वक दीक्षा फिर आहोर में चरितनायक के हाथों हुई। शांतिश्रीजी का गृहस्थ नाम रूपी बहिन था। इनके माता-पिता आकोली के रहने वाले थे। पिता का नाम शाह सूजा था और माता का नाम बालीबाई था। इनका जन्म वि० सं० १९६१ मार्गशीर्ष कृ० १२ को हुआ था। इनका विवाह वि० सं० १९७६ आषाढ़ कृ० ८ मी को मांडोलीनिवासी ओसवालज्ञातीय श्रेष्ठी केसरीमलजी के साथ में हुआ था। परन्तु दुर्भाग्य से केसरीमलजी विवाह के कुछ समय पश्चात् ही स्वर्गस्थ हो गये। पति के स्वर्गस्थ होने पर यह एक दम संसार से उदासीन हो गईं और साध्वी-सग में रह कर अपना जीवन व्यतीत करने लगीं। निदान साध्वीजी श्री सोहनश्रीजी ने जैसा ऊपर कहा गया है, इनके अत्यधिक आग्रह पर इनको जोयला में साध्वीवस्त्र धारण करवा दिये।

जालोर से भीनमाल तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८४

ग्राम, नगर	अंतर (कोसमें)	जैन घर	मंदिर	तारीख
मांडवला	४॥	११०	१	फर्वरी २५
ऐलाणा	२	४०	१	,,
गोल	१	२००	२	२६-२७
खरल	॥	७	०	२८
ओटवाड़ा	१॥	२५	१	२९
आलापण	१	३१	१	,,
सायला	१॥	१२८	२	मार्च १-३१
चोराऊ	४	२४	१	अप्रैल १—३
भांडवा (तीर्थ)	५	०	१	४—६
मेंगलवा	१॥	८६	१	७
आणा	६	१५	१	८—९

ऊनड़ी	३	३०	१	१०
पाथेड़ी	३	३०	१	११
दासपा	२	८०	१	१२-१३
पादरा	३	३०	०	१४
नरता	२	११	०	१५
भीनमाल	३॥	४५१	७	१६-२५
	४५	१२९८	२२	दो मास

भीनमाल से धानेरा तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८४

ग्राम, नगर	अंतर (कोसमें)	जैन घर	मंदिर	तारीख
रोपी	३	१	०	अप्रेल २६
सीलाण	३॥	९	१	२७
छोटाराणीवाड़ा	५	१५	१	२८
मोटाराणीवाड़ा	॥	४०	०	,,
जाखड़ी	५	२०	१	२९
रतनपुर	१	०	०	,,
भाटी	४	३	०	,,
जड़िया	१॥	७	०	३०
धानेरा	४	१८८	२	मई १-१०
	२७॥	२८३	५	पन्द्रह दिन

श्री संघ-धानेरा ने चरितनायक का स्वागत बड़ी ही धूम-धाम से किया। यहाँ आपश्री १० दिवसपर्यंत विराजे। आपश्री ने व्याख्यानों से शास्त्रश्रवण के प्यासे भव्य प्राणियों के हृदयों को संतृप्त किया। आपश्री के सदुपदेश से यहां के संघ ने 'श्री यतीन्द्र-जैन शिक्षा-प्रचारक-मण्डल' की स्थापना की। यहा से फिर आपश्री ने सीधा थराद के लिये प्रयाण किया।

धानेरा से थराद तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८४

ग्राम, नगर	अंतर (कोसमें)	जैन घर	मंदिर	तारीख
रामसेण	४	१५	१	मई ११
वरण	४	६	१	१२
वरनोड़ा	२	५	०	१३
भीलड़िया (तीर्थ)	५	४	३	१४
नेहड़ा	२	१८	१	१५
वात्यम	७	१८	१	१६-२१
वाहणा	२	२५	१	२२
लुआणा	३	३५	१	२३-२४
जेतड़ा	३	१८	१	२५-२६
पावड़	२	४	०	"
मलूकपुर	१॥	०	०	२७
थराद	१॥	३८५	११	२८ से दिस० २७
	३७	५३३	२१	अट्ठारह दिन

श्री भीलड़ियाजीतीर्थ के दर्शन करते हुए चरितनायक का स्थिर-पद्रनगर में पदार्पण

धानेरा से विहार करके आपश्री प्राचीन जैनतीर्थ श्री भीलडियाजी पधारे। वहाँ जिनेश्वर-प्रतिमा के दर्शन करके आपश्री ने थराद (थिरपुर. स्थिरपद्र, थराद्री) की ओर प्रस्थान किया। मार्ग के ग्रामों में सदुपदेश देते हुये थराद पधारे। थराद के श्रीसंघ ने आपश्री का पुर-प्रवेश अति उत्साह, श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण भावनाओं से किया। नगर को सजाया गया, स्थान-स्थान पर सौभाग्यशालिनी श्राविकाओं ने स्वस्तिक, गुंहली की रचना करके तथा रूप्यकनाणादि से आपश्री के स्वागत को वधाया। दर्शकजनों की अपार भीड़ जमा होगई। जब आपश्री श्री जैन धर्मशाला में पहुँचे तो दर्शकों की भीड़ के कारण

तिल धरने को स्थान नहीं मिला। ऐसी अपार भीड़ के मध्य आपश्री ने गुरुपट्ट पर विराजमान् होकर अतिशय गुणकारी देशना प्रदान की। श्रावक-गण में से अनेक भक्तों ने गुरुगुणगर्भित गान गाये। वहाँ आपश्री कुछ दिन विराजे और फिर थराद के निकट के ग्रामों में विहार करने लगे। श्रीसंघ-थराद की इच्छा चरितनायक का आगामी चातुर्मास थराद में करवाने की थी। श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी महाराज के पास में श्रीसंघ-थराद के चुने हुये श्रावक पहुँचे और थराद में आपश्री के नाम चातुर्मास करने की आज्ञा लेकर आनन्दित होकर लौटे।

थराद से जाणदी तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८४

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
इडाटा	५	७	०	दिसम्बर २८
ढ़ीमा	३	४०	१	२९-३१
भोरोल (तीर्थ)	४	२१	१	स०१९२९ज०१-२
गणेशपुरा	१	३	०	,,
वामी	१॥	५	०	३-६
दूधवा	१	२०	०	७
जाणदी	१	२	०	८
	१६॥	९८	२	ग्यारह दिन

वि० सं० १९८५ के चातुर्मास का वर्णन लिखूं, इसके पूर्व वि० सं० १९८४ में आपश्री द्वारा लिखी गई पुस्तकों का वर्णन करना अधिक संगत है।

श्रीगुरुदेवगुणतरंगिणी—रचना० सं० १९८४। क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० १७०। इसमें गुरुभक्ति से भरे उत्तम २ गीतों का संग्रह है। सियाणावास्तव्य शाह मूलचन्द्र डाहा जेरूपचन्द्र छोगमल जेठाजी ने इसकी पाँच सौ ५०० प्रतियाँ प्रकाशित करवाईं।

अघटकुमार-चरित्र, रत्नसार-चरित्र और हरिबलधीवर-चरित्र का सम्मिलित प्रकाशन—रचना सं० १९८५। सुपररॉयल १२ पृष्ठीय। पृष्ठ सं० ७८। सियाणावास्तव्य शा० सुरतिंगजी जीवराज, उमाजी खांडपिया ने इनकी अढ़ाइ सौ (२५०) प्रतियाँ एक सम्मिलित ग्रंथ के रूप में 'आनन्द-प्रेस', भावनगर से प्रकाशित करवाई।

श्री जगडूशाह और कयवन्नाचरित्र—साधु एवं साध्वियों के लिये यह ग्रंथ अधिक उपयोगी है। ये दोनों ग्रथ संस्कृत गद्य में हैं। इनका लेखन भी इसी वर्ष हुआ। जैन-साहित्य में इन दोनों ग्रंथों का अधिक महत्त्व है।

२२—वि० सं० १९८५ में थराद में चातुर्मास:—

वि० सं० १९८५ का चातुर्मास थराद में हुआ। व्याख्यान में श्री 'उत्तराध्ययनजी' लक्ष्मीवल्लभीटीकासहित और भावनाधिकार में श्री चारित्रमंदिरगणिरचित 'कुमारपाल-महाकाव्य' का वाचन किया। चातुर्मास में मुनिश्री विद्याविजयजी और श्री सागरविजयजी के सदुपदेश से स्थानीय श्री श्राविकासंघ ने गुरुमहाराज श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी, विजयधनचंद्रसूरिजी, उपा० मोहनविजयजी, विजयभूपेन्द्रसूरिजी और चरितनायक का एक सम्मिलित स्नेहिल चित्र ३६"×३०" तैयार करवाया तथा इनमें से प्रत्येक को अलग-अलग स्नेहिल चित्र ३०"×२४" भी तैयार करवा कर धर्मशाला और श्री महावीर-चैत्यालय में स्थापित किये। पूजा, प्रभावनाओं का तथा व्रत, उपवास, आंबिल आदि तपों का अति ही सराहनीय ठाट रहा।

भोरोलतीर्थ की यात्रा

वि० सं० १९८५

थराद में चातुर्मास पूर्ण करके चरितनायक अपने साधुमण्डल और स्थानीय अनेक श्रावकगण के सहित ढीमा और भोरोलतीर्थ की यात्रा को पधारे। यात्रा से लौट कर आपश्री पुनः थराद-श्रीसंघ के अत्याग्रह से थराद ही पधारे। पौष शु० ७ को स्व० गुरुमहाराज श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी

चरितनायक उपा० श्रीमद् यतीन्द्रविजयजी महाराज
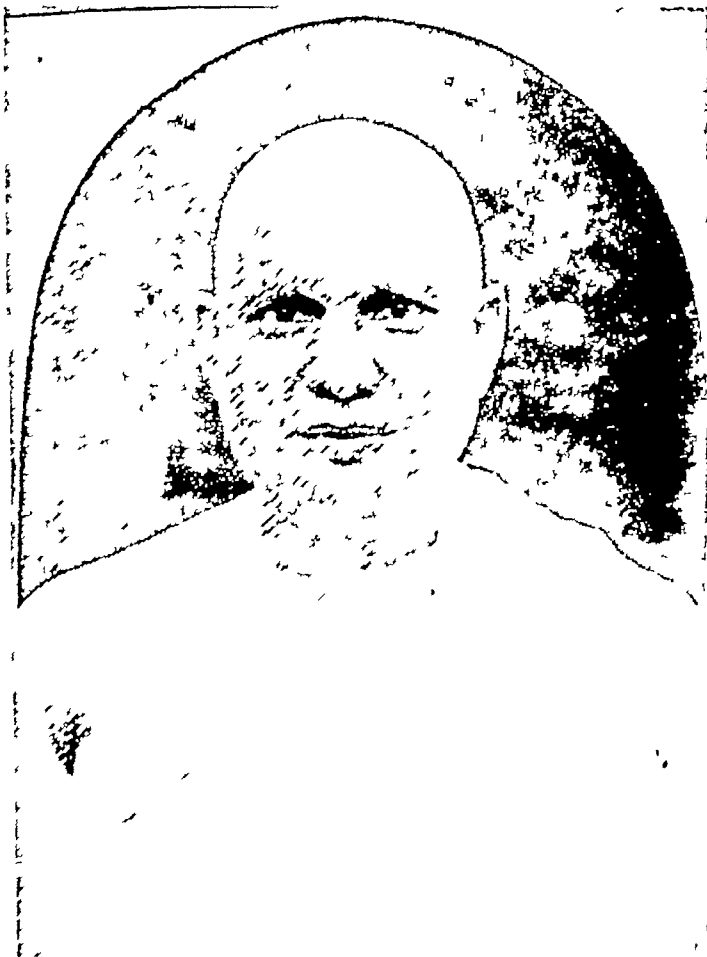
थराद चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० १९८५

का जयन्ती-महोत्सव थराद-श्रीसंघ ने चरितनायक की तत्त्वावधान में बड़े
ही उत्साह एवं भक्तिभाव से मनाया ।

वरखड़ी में श्री पार्श्वनाथपादुका की स्थापना

वि० सं० १९८९

थरादनगर के बाहर थोड़े ही अन्तर पर श्री वरखड़ी नामक एक
अति प्राचीन धर्मस्थान है । वहाँ पर श्रीगोडीपार्श्वनाथ भगवान् की पादुका
प्रतिष्ठित थी । परन्तु स्थान एकदम खण्डित होने से उपेक्षित सा था ।
चरितनायक के सदुपदेश से उसका जीर्णोद्धार करवाया गया और नव चबूतरे
पर सुन्दर वैदिका बनवा कर वि० सं० १९८५ पौष शु० १५ शुक्रवार को
चरितनायक ने श्रीगोडीपार्श्वनाथ के चरणयुगल को विधि सहित पुनः
स्थापित किया । और इस प्रकार वहाँ होतीं और बढ़ती हुई आशातनायें
रुक गईं ।

अर्बुदाचलतीर्थ और गोडवाड़पंचतीर्थी की लघुसंघ-यात्रा का प्रस्ताव वि० सं० १९८९

व्याख्यान देते समय एक दिन चरितनायक ने छहरी पालते हुये
यात्रा करने से होने वाले लाभ पर सारगर्भित विस्तृत रूप से शास्त्रों के
आधार पर कहा । इसका प्रभाव श्रोतागण पर भारी
पड़ा । व्याख्यान की समाप्ति पर कुछ श्रावकों ने श्री
अर्बुदतीर्थ और गोड़वाड़पंचतीर्थी की छहरी पालते
हुये यात्रा चरितनायक के अधिनायकत्व में करने की
भावना उसी समय पर प्रकट की । चरितनायक ने भी आशा-
प्रद एवं उत्साहवर्धक उत्तर दिया । तत्काल यात्रा करने
की दृढ़ भावना रखने वालों की सूची तैयार की गई
और पैंतीस नाम सूची में आये । इस पर यात्रा करने का दिन फा० शु०
२ भी निश्चित कर लिया गया ।

श्री अर्बुदगिरितीर्थ और गोडवाड़-पंचतीर्थी की लघुसंघ-यात्रा और मरुधर में चातुर्मास

वि० सं० १९८५-८६

●

सं० १९८५ फाल्गुण शु० २ को छहरी पालते हुये चालीस (४०) श्रावकों के साथ में चरितनायक ने अपनी साधुमण्डली के सहित थराद से शुभ मुहूर्त्त में यात्रा प्रारम्भ की। छोटे-मोटे ग्रामों में होते हुये तथा यथासुविधा उनमें विश्राम लेते हुए, धर्मोपदेश करते हुये चरितनायक सं० १९८६ चैत्र शु० ४ को श्री अर्बुदाचलतीर्थ को* पधारे। देलवाड़ा में आपश्री पूरे एक सप्ताह विराजे और विमलवसति एवं लूणवसति जैसे शिल्पशास्त्र की दृष्टि से जगत् में अनुपम मंदिरों के दर्शन कर अति ही आनंदित हुये। इन मंदिरों की बनावट ही ऐसी मनोहर एवं उत्तम कोटि की है कि मनुष्य अपने जीवन में इनके अनेक बार दर्शन करके भी नहीं अघाता है। आपश्री ने अचलगढ़तीर्थ और ओरिया के मंदिरों के भी दर्शन किये। तत्पश्चात् वि० सं० १९८६

---

*अर्बुदाचलतीर्थ—अर्बुदाचल पर देलवाडा नामक ग्राम है, जो नीचे से लगभग ४००० फीट की ऊंचाई पर स्थित है। इस ग्राम में चार जैन मंदिर एक ही छोटी टेकरी पर बने हैं:—

१. श्री आदिनाथ-जिनालय, २. श्रीनेमिनाथ-जिनालय ३. भीमाशाह का श्री आदिनाथ-मंदिर ४. चौमुख श्री शांतिनाथ–जिनालय।

इन चारों मंदिरों में सर्वप्रथम आदिनाथ-जिनालय को गूर्जरसम्राट् भीमदेव प्रथम के महाबलाधिकारी दंडनायक मंत्री विमलशाह ने लगभग १८००००००) रुपया व्यय करके वि० सं० १०८८ में बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया है।

दूसरा श्री नेमिनाथ–मन्दिर गूर्जरमहामात्य वस्तुपाल के लघुभ्राता गूर्जरमहाबलाधिकारी दण्डनायक तेजपाल की देखरेख में उसके पुत्र लूणसिंह की कीर्त्ति को अमर करने के लिये वि० सं० १२८७ में बनकर प्रतिष्ठित हुआ है। इसमें १२५६०००००) रुपया व्यय हुआ है। दोनों मन्दिर शिल्प की दृष्टि से अखिल भूमण्डल पर अद्वितीय हैं।

तीसरा मंदिर भीमाशाह द्वारा विनिर्मित है। इसमें भगवान् आदिनाथ की उस समय के तोल से १०८ मन की सर्वधातुविनिर्मित प्रतिमा है। जो अत्यंत सुन्दर एव भव्य है।

चौथा मंदिर तीन मंजिला है और कला की दृष्टि से यह भी अपने स्थान पर अद्वितीय है।

चैत्र शु० १२ को आपश्री वहां से विहार करके अनादरा, सिरोड़ी और शिरोही होते हुये श्रीवामनवाड़जीतीर्थ* पधारे। यहाँ आपश्री तीन दिन ठहरे। यहाँ से विहार करके आपश्री ने श्री नांदियातीर्थ, लोटाणातीर्थ, दयाणा, अजारी और पिंडवाड़ा के जैन मंदिरों के दर्शन किये और उनकी ऐतिहासिक एवं पुरातत्त्वसम्बन्धी सामग्री एकत्रित की। यहाँ से आप चामुण्डेरी नामक ग्राम में पधारे। चामुण्डेरी के श्रीसंघ ने चरितनायक और यात्रियों का अति ही सराहनीय स्वागत किया तथा आगामी चातुर्मास चामुण्डेरी में करने की चरितनायक से प्रार्थना की। चातुर्मास निकट आ रहा था और अभी गोड़वाड़-पंचतीर्थी की यात्रा करना भी अवशिष्ट था, अतः चरितनायक को चातुर्मास करने की प्रार्थना अस्वीकार करनी पडी। चामुण्डेरी से विहार करके आपश्री ने नाणा, बेड़ा, रातामहावीर, सेवाडी और सोमेश्वर नामक मारवाड़ की छोटी पंचतीर्थी और श्रीराणकपुरतीर्थ, श्री महावीर-मुछाला, नडूलाई, नाडोल और वरकाणातीर्थ नामक मारवाड की मोटी पंचतीर्थी की यात्रायें कीं। यात्रियों ने प्रत्येक छोटी-मोटी पंचतीर्थी में सेवा, पूजा का अच्छा लाभ लिया। इस प्रकार गोडवाड़ की दोनों प्रकार की पंचतीर्थियों की यात्रा सकुशल एवं उत्साह एवं भक्ति भावों के सहित करके चरितनायक अपनी साधु-मण्डली और यात्रियों के सहित खुडाला पधारे। श्रीसंघ-खुडाला ने पुर-प्रवेश अति ही सराहनीय ढंग से करवाया। यात्रियों का अतिशय आदर-सत्कार किया। पंचतीर्थी की यात्रा पूर्ण करके खुडाला से थराद के यात्रीगण थराद को लौटे और आपश्री वहाँ से बाली पधारे।

विशेष वर्णन के लिये १ श्रीयतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन या २ श्रीमुनि जयंतविजयजी-कृत आबू भा० १ तथा ३. प्राग्वाटइतिहास, प्रथम भाग खण्ड २ में पढिये।

*बामनवाडजीतीर्थ—यह अर्बुदाचल की पंचतीर्थी में एक तीर्थ है। इस समय यह सिरोही-राज्य में है और पिण्डवारा स्टेशन से सिरोही को जानेवाली सडक पर बायें हाथ की दक्षिण दिशा में बना है। यहाँ श्री भगवान् महावीर स्वामी का सौधशिखरी बांवन-जिनालय बना है और इसी मन्दिर के कारण यह स्थान तीर्थ कहलाता है। मंदिर बडा सुन्दर, प्राचीन और विशाल है। यहाँ प्रति वर्ष फाल्गुन शु० ७ से शु० १४ तक बडा भारी मेला लगता है। मेले में दूर २ के यात्री और दुकानदार आते हैं।

थराद से श्री अर्बुदाचलतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८५-८६

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मन्दिरं	तारीख
वड़ग्रामड़ा	३	३	०	सं०८५फा० शु०२
भोरड़ु	३	३	०	४
उन्दराणा	१॥	११	०	५
खेंगारपुरा	१॥	१	०	,,
राह	३	५	०	६
डुआ	४	४०	१	७-८
धारवा	३	२१	१	९-१०
धानेरा	३	१५०	२	११से० चै कृ. ६
वोड़ा	४॥	३	०	१०
खीमत	३	१०८	२	११
भाटरांम	४	४	०	१२
भांडोतरा	३	२०	१	,,
मढ़ार	३	२५०	२	१३-१४
मगरीवाड़ा	३	३	०	०
वरमाण	२	१	१	०
जीरावला (तीर्थ)	२॥	१५	१	सं. ८६चै० शु० १
मवालो	१॥	०	०	०
जोलपुर	१	०	०	०
सेलवाड़ो	१॥	२६	१	२
अनादरा	२	३०	१	३
देलवाड़ा (अर्बुदतीर्थ)	४	०	५	४-६
ओरिया (अर्बुदतीर्थ)	२	०	१	०
अचलगढ़ (अर्बुदतीर्थ)	१	०	३	१०-११
	६०	४६४	२२	एक मास दस दिन

श्री अर्बुदाचलतीर्थ से श्री राता-महावीरतीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८६

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	तारीख
कायद्रा	४	२०	१	चै० शु० १२
काचोली	२	४०	१	१३
नीतोरा	१	५०	१	१४
दयाणा (तीर्थ)	२	०	१	३०
लोटाणा (तीर्थ)	१॥	०	१	वै० कृ० १
नांदिया (तीर्थ)	२	३०	२	२-३
रीछी	१	०	१	०
अन्जारी (तीर्थ)	३	४०	१	०
पिंडवाड़ा	२	२००	२	०
झाड़ोली	१	४५	१	०
वामनवाड़जी (तीर्थ)	१॥	०	१	४-५
उन्दरा	१	०	१	०
सीवेरा	१	०	१	०
मालनुँ	२	०	१	०
नाणा (तीर्थ)	२॥	९०	२	६
चामुण्डेरी	१॥	६०	१	७
भन्दर	१॥	२०	१	०
बेड़ा (तीर्थ)	१॥	१२५	१	८
भाटून	३	७	०	०
रातामहावीर (तीर्थ)	२	०	१	०
बीजापुर	१	१००	...	९-१०
	३८	८२७	२२	चौदह दिन

बीजापुर से गोड़वाड़-पंचतीर्थी और खुडाला ग्राम तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८६

ग्राम, नगर	अंतर (कोस में)	जैन घर	मन्दिर	तारीख
सेवाड़ी	२	२२५	२	वै० कृ० ११
लुणावा	१॥	२१०	२	०
लाठारा	२	३०	१	१२
राणकपुर (तीर्थ)	४	०	३	१३-१४
सादड़ी	३	७००	२	३०
घाणेराव	३	४००	....	वै०शु० २-३
मुछाला-महावीर	२	०	१	०
देसूरी	२	२००	१	०
सोमेश्वर (तीर्थ)	२	०	१	०
नडूलाई (तीर्थ)	२	६०	१२	४-५
नाडोल (तीर्थ)	३	२००	६	६
वरकाणा (तीर्थ)	३	०	१	७
धणी	३	२०	१	०
खुडाला	२	२५०	१	८-१५
	३४॥	२२९५	३४	बीस दिन

वाली में ६ दिन की स्थिरता

वाली खुडाला से पांच मील के अन्तर पर उससे पूर्व दिशा में एक समृद्ध और प्राचीन नगर है। वाली में चरितनायक छः दिन पर्य्यंत विराजे। व्याख्यान का अच्छा ठाट रहा। खिमेल, राणी आदि ग्रामों के अनेक श्रावक दर्शनार्थ आये। वाली के श्रीसघ ने आगामी चातुर्मास वाली में करने के लिये अत्याग्रह किया, परन्तु चरितनायक का विचार अभी सेसली, कोर्टा-

तीर्थादि की यात्रा करने का था और चातुर्मास के प्रारम्भ होने में इतने दिन शेष नहीं थे जो उपरोक्त तीर्थों की शांति एवं भक्तिपूर्वक यात्रा करके पुनः वाली लौट आते; अतः चरितनायक ने वाली में चातुर्मास करने की विनती को अस्वीकार किया और वहाँ से विहार किया।

श्री कोर्टातीर्थ की यात्रा और फताहपुरा में चातुर्मास व अन्य कार्य

वि० सं० १९८६

वाली से सहमुनिमण्डल विहार करके आपश्री सेसलीतीर्थ पधारे और भगवान् पार्श्वनाथ की दिव्य एवं चमत्कारी प्रतिमा के दर्शन किये। वहाँ से कोलीवाड़ा, सुमेरपुर होते हुये शिवगंज पधारे और संघ का अत्याग्रह होने से आपश्री वहाँ आठ दिन तक विराजे। शिवगंज से विहार करके पोमावा, भारुंदा होते हुये अति प्राचीन श्री कोर्टाजीतीर्थ पधारे।

वाली से प्राचीन तीर्थ श्री कोर्टाजी तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९८६

ग्राम, पुर	अंतर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	दिनांक
वाली	२	४९०	३	ज्ये० कृ० १-५
सेसली (तीर्थ)	१	०	१	०
पेरवा	४	२१	१	६
कोलीवाड़ा	३	२५	१	०
सुमेरपुर	१	२२	१	७-१२
उन्द्री	।	१५	१	३०
शिवगंज	।।	६००	३	ज्ये० शु० १-८

वडग्राम	१	४०	१	ज्ये० शु० ८
पोमावा	२॥	४५	१	९-१०
खिवाणदी	२	२६०	२	११-१२
वांकली	१	१२१	१	१३
सेदरिया	३	५०	१	ज्ये० शु० १४-३०
गुढ़ाबालोतरा	३॥	३२५	३	आषाढ़ कृष्णा १-५
हरजी	१॥	३००	२	०
रोवाड़ा	३॥	२५	१	६-८
नोवी	१	१००	२	०
भारुंदा	२	१००	२	६-११
जोयला	२	६०	१	०
आलपा	२	३०	१	१३-१५
कोर्टाजीतीर्थ	२	६७	४	आ० शु० १-५
	३८॥।	२७२६	३३	एक मास बीस दिन

प्राचीनता के कारण से कोर्टाजीतीर्थ भारत के अति प्राचीन तीर्थों में है। भगवान् महावीर के निर्वाण से ७० सत्तर वर्ष पश्चात् श्री पार्श्वनाथ-संतानीय श्रीमद् रत्नप्रभाचार्य ने अपने कर-कमलों से श्री महावीर-मंदिर की प्रतिष्ठा की थी और उसमें भगवान् महावीर की सुन्दर प्रतिमा स्थापित की थी। कोर्टाजीतीर्थ पश्चिम रेल्वे (बी.बी. एण्ड-सी. आई) के एरणपुर स्टेशन से पश्चिम दिशा में बारह (१२) माइल के अंतर पर है। चरितनायक ने तीर्थ की ऐतिहासिक उपलब्ध सामग्री प्राप्त की और अति परिश्रम करके 'श्री कोर्टाजी-तीर्थ का इतिहास' नामक एक सुन्दर ऐतिहासिक पुस्तक की आगामी वि० सं० १९८७ में रचना प्रारम्भ की। कोर्टाजीतीर्थसम्बन्धी प्रामाणिक सामग्री के लिये उपरोक्त पुस्तक अधिक ग्राह्य एवं प्रामाणिक है। यहाँ से आपश्री विहार करके लखमावा, नोवी, सेदरिया, पावटा, गुढ़ा आदि छोटे-मोटे ग्राम, नगरों में विहार करते हुये, धर्मोपदेश का लाभ भक्त एवं श्रोतागण को पहुँचाते हुये फताहपुरा पधारे। इस वर्ष की आपश्री की साहित्य-सेवा अग्रवत् है।

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक की तत्त्वावधानता में फताहपुरा से श्री कोर्टा तीर्थ के लिये निष्क्रमित संघ

फताहपुरा वि० सं० १९८६

श्री अर्हत्-प्रवचन का प्रकाशन--रचना सं० १९८५ । सुपररॉयल ३२ पृष्ठीय । पृ० सं० ६४ । इसको श्री राजेन्द्र-जैन-सेवा-समाज, थराद ने प्रकाशित करवाया । इसमें 'आचारांगादि' उत्तम ग्रंथों के अत्यन्त प्रसिद्ध एव व्याख्यान और भाषणों में कहे जाने वाले उत्तम और प्रभावक वाक्यों का संग्रह है । यह सम्पूर्ण ग्रंथ कंठस्थ करने योग्य है ।

अतिरिक्त इसके 'यतीन्द्रविहार-दिग्दर्शन भाग प्रथम', 'जीवभेद निरूपण' अने 'गौतम कुलक' (गुजराती) और श्री 'चंपकमालाचरित्र' इन तीन पुस्तकों की रचना की गई । तथा 'श्री जीवभेदनिरूपण अने गौतम कुलक' नामक पुस्तक श्री थराद-संघ की ओर से इसी वर्ष प्रकाशित भी हो गई । पृ० ५२ । प्रतियां ५०० । क्राऊन १६ पृष्ठीय ।

२३—वि० सं० १९८६ में फताहपुरा में चातुर्मास:—

श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी की शुभ आज्ञा से वि० सं० १९८६ का चातुर्मास जैसा ऊपर लिखा जा चुका है फताहपुरा में हुआ । व्याख्यान में 'श्री उपासकदशांगजी' (सटीक) और भावनाधिकार में 'विक्रमादित्य-चरित्र' का वाचन किया । चातुर्मास में कुणीपट्टी के २७ सत्ताईस ग्रामों के संघ तथा आहोर, गुढ़ा, भेंसवाड़ा, जालोर, भीनमाल, सायला, सीयाणा, हरजी आदि ग्रामों के श्रावक और श्राविका भारी संख्या में आते रहे । श्रीसंघ-फताहपुरा ने भी आगन्तुक संघों और श्रावकों को तीन-तीन दिन रोका और भोजनादि से उनकी सराहनीय सेवायें कीं । आगन्तुक संघों एवं प्रतिष्ठित श्रीमंत श्रावकों की ओर से अनेक पूजायें, श्रीफल और शक्कर की प्रभावनायें हुईं । फताहपुरा में तप, पूजा प्रभावनाओं का अच्छा ठाट रहा । ग्राम के जैनियों में दो पक्ष थे, चरितनायक के उपदेश से वे दोनों एक हो गये और इस प्रकार कुसंप से बढ़ती हुई हानियों का अंत हो गया ।

चातुर्मास के पश्चात् आपश्री ने सायला के प्रति प्रयाण किया । मार्ग में नोवी, सेदरिया, गुढ़ा, आहोर, वाधनवाड़ी, तीखी, मांडवला आदि

अन्यत्र विहार और सायला में सुवर्ण-दण्डध्वजारोहण वि० सं० १९८६

ग्रामों को स्पर्शते हुये तथा धर्मोपदेश देते हुये आपश्री सायला पधारे। वि० सं० १९८६ मार्गशीर्ष शु० ११ को अट्ठाई-महोत्सवपूर्वक सविधि श्री पार्श्वनाथ स्वामी के जिनालय के ऊपर सुवर्णदण्डध्वजारोहण की शुभ मुहूर्त्त में प्रतिष्ठा की और अंत में मोटी शान्ति-स्नात्र पूजा करवाई। इस प्रतिष्ठोत्सव के आठों ही दिन में ग्राम के श्रीसंघ की ओर से नवकारशियाँ हुई। प्रतिष्ठा सम्बन्धी सर्व कार्य से निवृत्त होकर आपश्री ने अपने शिष्य एवं साधु-मण्डल के सहित पौष कृ० १ को विहार करके गोल, ऐलाणा, बेठु होते हुये आहोर में पद-धारण किया। पौष कृ० सप्तमी को आपश्री की निश्रा में श्रीराजेन्द्र-जयन्ती-महोत्सव महाडंबर एवं पूजा-प्रभावनाओं के ठाट से श्रीसंघ की ओर से मनाया गया।

श्री जैसलमेरतीर्थ की संघ-यात्रा

वि० सं० १९८६-८७

●

चरितनायक आहोर में कुछ दिवस ठहरे। इन्हीं दिनों में वि० सं० १९८४ का गुढ़ा (बालोतरा) में चातुर्मास कराने वाले सेठ शाह जीवाजी लखाजी श्री चरितनायक के दर्शनार्थ वहां आये। इनके साथ में और भी कई-एक गुढ़ा के धनी, मानी श्रीमंत थे। सुअवसर देख कर हाथ जोड़ कर श्री जीवाजी लखाजी ने चरितनायक के समक्ष आज्ञा लेकर जैसलमेरतीर्थ की संघ-यात्रा करने की शुभेच्छा निवेदित की और साथ में चरितनायक को संघ-यात्रा में चलने की विनती भी की। चरितनायक ने सेठ जीवाजी लखाजी की हार्दिक इच्छा देख कर जैसलमेरतीर्थ को उनकी ओर से संघ-यात्रा करने की प्रार्थना को मान दिया और फाल्गुण शु० ३ सोमवार को संघ-यात्रा प्रारम्भ करने का शुभ मुहूर्त्त भी उसी समय निश्चित कर दिया।

सिद्धगिरि और अर्बुदतीर्थों की यात्रायें तो भावुकजन अपने जीवन

में यथाश्रद्धा और शक्ति कर भी लेते हैं, लेकिन जैसलमेर की संघ-यात्रा बहुत कम की गई सुनी गई है। शाह जीवाजी लखाजी की ओर से जैसलमेर-संघ-यात्रा में सम्मिलित होने के लिये दूर-दूर सधर्मी बन्धुओं एवं श्री संघों को कुंकुम-पत्रिकायें और सूचनायें योग्य समय पर भेज दी गईं। संघयात्रा की अतिशय भक्ति एवं उत्साह से तैयारियाँ होने लगीं। यात्रा के निश्चित दिन के तीन-चार दिवस पूर्व से ही आहोर, हरजी, सियाणा, बागरा, चरली, दयालपुरा, तखतगढ़, सेदरिया, चांदराई, खिमेल, सादड़ी, गोल, सायला, भैंसवाड़ा, काचोली, भावरी, वेदाणा, केशल, वाड़मेर, भाडका आदि मारवाड़-राज्य और सिरोही-राज्य के ग्रामों से भावुक यात्रियों का आना प्रारम्भ हो गया था। वि० सं० १९८६ फाल्गुण शु० ३ सोमवार को शुभ लग्न में चरितनायक के अधिनायकत्व में गुढ़ाबालोतरा से चतुर्विध-श्रीसंघ ने मंगल गीतों, सुन्दर स्तवनों से गुंजित होते हुये नगर की सेरियों और वाद्यंत्रों के कलनिनादों से पूरित निर्मल नील गगन की विखरती रजत्-किरणों के मध्य प्रयाण किया। संघ की सुरक्षा के लिये पैदल और घुड़सवारों का प्रबन्ध संघपति की ओर से किया गया था। गाड़ी, घोड़े और ऊँट आदि सवारियों का प्रबन्ध, जल, इंधन, तेल, रोशनी का प्रबंध भी संघपति की ओर से ही था। मार्ग में तेतीस (३३) ग्राम, पुरों में यथासुविधा विश्राम लेता हुआ, धर्मक्रियाओं को जैसे, पूजा, प्रभावनायें और नवकारशियां जिनकी योग्य सूची आगे दी जायगी करता हुआ संघ सकुशल वि० सं० १९८७ चैत्र शु० १ को प्रातः मंगल वेला नव बजे जैसलमेर पहुँचा।

गुढ़ाबालोतरा से जैसलमेरतीर्थ तक तथा श्री जैसलमेरतीर्थ से लोध्रवाजीतीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन

ग्राम, नगर	अंतर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	दिनाक
आहोर	३	५००	५	सं०१९८६ फा०शु०३
मीठडी	३	१	१	,,
देवावस	२	२५	१	४-५
रायथल	४	३०	१	६

मांकलेसर	३	१६०	१	फा० शु० ७
सवानागढ़	४	५००	१	८-९
(दशमी को सायंकाल का भोजन करके विहार किया)				
कुइप	२	१०	०	९-१०
आउतरा	५	२५	१	११
जसोल	३	५०	०	„
नाकोड़ाजी (तीर्थ)	३	०	३	१२-१५
(चैत्र कृ० १ को नवकारसी के पश्चात् विहार हुआ)				
तीलवाड़ा	४	०	०	चैत्र कृ० १-२
गोल	३॥	०	०	„
भीमरलाई	४	०	०	२ (रात्रि-विश्राम)
वाएतु	४	५०	०	३
(४ को प्रातः विहार)				
वाणियासंघाधोरा	४	०	०	४
(मध्यान्ह को विहार)				
कवास	४	१	०	४
उत्तरलाई	३	०	०	५
(६ प्रातः विहार)				
वाड़मेर	३	४००	७	६-८
जालीयो	३	०	०	६
कपूरड़ी	३	०	०	„
भाड़को	३	२०	१	१०
(११ को प्रातः विहार)				
नीमला	२	०	०	११
निम्बासर	३	०	०	„
शिव	२	०	०	११ (रात्रि-विश्राम)

(१२ को प्रातः विहार)

गूँगा	२	०	०	चै० कृ० १२
राजराड़	३	०	०	१२ (रात्रि-विश्राम)
खोडाल	१	०	०	द्वि० १२
बीजोराई	४	०	०	द्वि० १२(रात्रि-विश्राम)

(१३ को प्रातः विहार)

भीलाणी	३	०	०	१३
देवीकोट	५	१५	१	,,

(१४ को प्रातः विहार)

छोड़	२	०	०	१४
पड़िमाली	२	०	०	१४ (रात्रि-विश्राम)
डामला	४	०	०	१५ (मध्याह्न तक)
जैसलमेर	४	१००	१७	सं०१९८७ चै०शु०१
अमरसागर	१	०	३	२
लोध्रवाजी	४	०	१	३-४
अमरसागर	१	०	३	५ (प्रातः)
जैसलमेर	१	१००	१७	५-१०

गुढ़ाबालोतरा से जैसलमेरतीर्थ तक में आये हुये मार्ग के प्रमुख ग्राम, पुरों में की गई नवकारशियों की सूची

स्थान	दिनांक		नवकारशीकर्त्ता
आहोर	वि०सं०१९८६ फा०शु०	३	संघपति (दोनों समय)
देवावस	,,	५	श्री जैनसंघ, देवावस
मांकलेसर	,,	७	वापणा शाह प्रतापचन्द किशनाजी (प्रातः)

मांकलेसर	वि० सं० १९८६ फा०शु०	७	हरिया मयाराम मगाजी(सायं.)
सवानागढ़	,,	८	चौधरी नत्थूजी अचलाजी
,,	,,	९	जिंदाणी पन्नाजी लक्ष्मीचंद
नाकोड़ाजी तीर्थ	,,	१२	सादड़ीवासी शाह इन्द्रमलजी पूनमचंद्रजी तथा आहोर-वासी शाह रूपचंद्र गौड़ी-दासजी (संमिलित)
,,	,,	१५	मगराजजी जयरूपजी चुन्नी-लालजी नवाजी वालाजी वृद्धिचंद्रजी (संमिलित)
तीलवाड़ा	,,	चैत्र कृ० १	मियाचंद्रजी दानाजी (प्रातः)
गाल	,,	,,	बागरानिवासी किसनाजी जेताजी (सायं)
भीमरलाई	,,	२	बागरानिवासी हीराचंद्रजी जेताजी
वाणियासंधाधोरा	,,	४	आहोरवासी हीराचंद्रजी भूताजी
उत्तरलाई	,,	५	आहोरवासी मानाजी केराजी
वाड़मेर	,,	६	सेदरीयानिवासी केसरी-मलजी धनराजजी
,,	,,	७	तख्तगढ़निवासी ताराचंद्रजी चन्द्रभानजी (प्रातः)
,,	,,	,,	वाढ़मेरनिवासी माधोमल व्रजलालजी (सायं)

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है संघ जैसलमेर प्रातः नव वजे पहुँचा। जैसलमेर के जैन वंधुओ को इस संघ के विषय में पूर्व ही सूचना मिल चुकी

संघ का पुर-प्रवेश और जैसलमेरतीर्थ में संघ का दसादिवसीय कार्य-क्रम

थी; अतः स्थानीय जैन-संघ ने भारी धूम-धाम और उत्साह एवं श्रद्धा, सम्मान से आगत संघ का पुर-प्रवेश करवाया। श्री जैसलमेर के महारावलजी साहब ने भी राजकीय समारोह के योग्य शोभा के उपकरण प्रदान करके संघ के प्रति मान प्रकट किया। चैत्र शु० २ मंगलवार को प्रातः संघपति जीवाजी लखाजी ने चतुर्विध-संघ और अपने परिजनों के सहित राजदुर्ग में विनिर्मित आठ जिनालयों के और नगर के नव जिनालयों के भक्ति-भावपूर्वक दर्शन किये। दुर्ग और नगर के उपरोक्त सर्व जिनालयों में दिन के समय पूजाओं का आयोजन रहा। संघपति की ओर से सायंकाल को नवकारशी की गई, जिसमें स्थानीय समस्त जैन-संघ भी निमंत्रित था। रात्रि को समस्त मन्दिरों में आंगी की रचना करवाई गई।

चैत्र शु० ३ और ४ को संघ ने जैसलमेर के सामीप्य में आये प्राचीन लोद्रवातीर्थ के दर्शन किये और वहाँ प्रातः पूजन, दिन में पूजायें और रात्रि में आंगी-रचनायें करके समस्त संघ ने भारी पुण्योपार्जन किया। संघपति जीवाजी लखाजी की ओर से नवकारशी की गई।

चै० शु० ५ को संघ लौटकर अमरसागर में ठहरा और वहाँ आहोर-वासी छोटमलजी किशनाजी की तरफ से समस्त संघ को नवकारशी दी गई। भोजन करके संघ पुनः जैसलमेर आगया।

शु० ६ को संघ के व्यक्तियों ने प्रातः पूजन-कीर्त्तन करके अपनी यात्रा को सफल किया। दिन में नगर के एवं दुर्ग के कई मन्दिरों में संघ में सम्मिलित विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विविध पूजायें बनाई गई तथा प्राचीन ज्ञानभण्डारों के दर्शन किये गये। रात्रि को नगर और दुर्ग के समस्त मंदिरों मे सुन्दर आंगी-रचनायें करवाई गई।

चैत्र शु० ७ को गुढाबालोतरावासी शाह गुलाबचन्द्र अचलाजी और शाह हजारीमलजी गमनाजी की ओर से नवकारशी की गई इसमें स्थानीय जैन-संघ को भी निमंत्रित किया गया। दिन को प्रमुख मन्दिरों में

और रात्रि को नगर और दुर्ग के समस्त मन्दिरों में नवकारशीकर्त्ताओं की ओर से आंगी-रचनायें की गईं ।

चै० शु० ८ को प्रातः सात बजे जैसलमेरतीर्थ के शिरोमणि-मंदिर श्री चिंतामणि-पार्श्वनाथ-जिनालय में जैन-संघ-जैसलमेर ने समस्त चतुर्विध-श्रीसंघ को आमंत्रित किया । योग्य स्थान पर चरितनायक के अपने साधु-मण्डल और साध्वीमण्डल के साथ विराज जाने पर संघपति-मालार्पण का कार्य प्रारम्भ किया गया । प्रथम चरितनायक का तीर्थ और तीर्थयात्रा पर सारगर्भित महत्त्वशाली व्याख्यान हुआ । इस व्याख्यान में जैसलमेर-तीर्थ का ऐतिहासिक और धार्मिक दृष्टियों से महत्त्व समझाया गया । जैसलमेर में स्थित ज्ञानभण्डारों के गौरव एवं इतिहास पर चरितनायक ने भूरि २ प्रशंसात्मक प्रकाश डाला और उनके प्रति वर्त्तमान भारतीय जैनसमाज की उपेक्षणीय वृत्ति से होने वाली भारी साहित्यिक भावी हानि से उपस्थित जैन-बन्धुओं को सावधान किया । तत्पश्चात् चरितनायक ने श्री शाह जीवाजी लखाजी का संघ को परिचय दिया और उनकी धर्म-भावनाओं की सराहना की तथा इसी अवसर पर जैन-साहित्य में वर्णित भूतकाल में हुये अनेक संघपतियों के चरित्रों का संक्षेप में वर्णन करके उनके प्रति श्रद्धांजलियां अर्पित करते हुये श्रोतागण को जैन संघपतियों और उनके द्वारा निकाले गये अतुलनीय संघों के इतिहासों से परिचित करवाया । तत्पश्चात् विविध वाद्यंत्रों की कल ध्वनियों और कोकिलकंठी सुन्दरांगनाओं के मनोहर स्तवनों और गीतों से पूरित वायु के मध्य श्रीमंत एवं दानी सेठ जीवाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्रे० रामचन्द्रजी को संघमाल अर्पित की गई और उन्होंने कल ध्वनियों के मध्य उसे स्वीकार कर आभार प्रदर्शित किया । इस मालार्पणोत्सव को समाप्त करके समस्त यात्रियों ने प्रभु-सेवा-पूजा का लाभ लिया । दिन में विविध पूजायें बनवाईं और रात्रि को नगर और दुर्ग के समस्त मन्दिरों में संघपति की ओर से आंगी-रचनायें की गईं । इस दिन नवकारशी संघपति की ओर से ही की गई थी, जिसमें स्थानीय श्रीसंघ भी निमंत्रित था ।

चै० शु० ९ को विविध प्रभु-पूजा, आंगी-रचनाओं का कार्यक्रम

हरजीवासी जवानमल किशनाजी की ओर से था तथा इन्हीं की ओर से नवकारशी भी की गई थी।

चै० शु० १० को संघ जैसलमेर से प्रयाण करने की तैयारियां करने लगा और दूसरे दिन चै० शु० ११ बुधवार को मंगल मुहूर्त्त में प्रातः ओशियांतीर्थ की यात्रा करने के निमित्त उस ओर उसने प्रयाण किया।

अनुक्रम से संघ मोकलाई, भोजकां, चांदण, लाठी, ओढ़ाणिया, पोहकरण आदि ग्रामों में विश्राम लेता हुआ, जिन मंदिरों में पूजा-प्रभावनाओं का तथा अर्थदान का लाभ लेता हुआ वैशाख कृ० ५ शुक्रवार को प्रातः नव बजे फलोधी पहुँचा। फलोधी में सात सौ जैनघरों की वस्ती है। अधिक घर सम्पन्न और समृद्ध हैं। यहाँ के अनेक जैन जैन-समाज के अधिक प्रतिष्ठित पुरुषों में से हैं। श्री संघ-फलोधी ने अति मान एवं श्रद्धापूर्वक इस संघ का स्वागत किया। फलोधी-संघ के अत्याग्रह से यह संघ वहां तीन दिन ठहरा। चरियनायक के अति शिक्षात्मक व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा। श्री संघ फलोधी ने जो संघ की भोजन-शयन-व्यवस्थादि से सेवा, सुश्रूषा की वह अवश्य सराहनीय एवं अनुकरणीय है। संघपति ने फलोधी के सर्व जैन मन्दिरों में विविध पूजायें तथा बड़ी पूजायें वनवाई, आंगी-रचनायें करवाईं और लड्डुओं की प्रभावना तथा व्याख्यान में श्रीफल की प्रभावना देकर कीर्त्ति प्राप्त की।

चारों दिन नवकारशियाँ निम्न व्यक्तियों ने कीं:—

वै० कृ० ५ को काचोलीवासिनी श्राविकाओं की ओर से

,, ,, ६ को सादड़ीवासी चंदनमल पूनमचंद्रजी की ओर से

,, ,, ७ को गुढ़ाबालोतरावासिनी श्राविका बाई पन्नी, चुन्नी, अेजी और फुली (सायं)

,, ,, ८ को फलोधीवासी फूलचंदजी नेमीचंद्रजी मुलेच्छा (प्रातः)

अतिरिक्त इन नवकारशियों के विभिन्न २ ग्रामों के भिन्न २ पुरुषों की

ओर से श्रीफल, लड्डू, बर्फी आदि अनेक वस्तुओं की प्रभावनायें दी गईं तथा मंदिरों में केसर, पूजन के अर्थ अनेक प्रकार की अर्थ सहायतायें दी गईं। वैशाख कृ० ८ को तृतीय प्रहर में संघ ने ओशियाँजीतीर्थ की ओर प्रस्थान किया और मार्ग में छोटे-मोटे ग्राम, पुरों में विश्राम करता हुआ जिन मंदिरों में यथाशक्ति अर्थ सहायता का दान देता हुआ, पूजा-प्रभावनाओं का लाभ लेता हुआ मान-सम्मान स्वीकार करता हुआ अनुक्रम से वैशाख कृ० द्वादशी (१२) को प्रातः ९ बजे प्राचीन एवं भारत-विख्यात प्रसिद्ध जैन तीर्थ श्री ओशियांजी पहुँचा। इस यात्रा में लोहावट के श्री संघ ने जो संघ का सराहनीय स्वागत किया वह सराहनीय है। फलोधी से संघ प्रयाण करके वै० कृ० ६ को लोहावट पहुँचा था। लोहावट के संघ ने आगंतुक संघ का श्रद्धापूर्वक भारी स्वागत किया था तथा अत्याग्रह करके उसको दो दिन तक रोका था और भोजन-शयन आदि की स्तुत्य व्यवस्था करके संघ-सत्कार से होने वाले महा पुण्य का उपार्जन किया था। वै० कृ० १० को नवकारशी लोहावट-संघ की ओर से की गई थी। संघपति की ओर से लोहावट के जिनालय में अतिशय समारोह के साथ सिद्धचक्र-पूजा बनवाई गई थी तथा पूजा में और तत्पश्चात् ग्राम में श्रीफलों की प्रभावनायें दी गई थीं।

श्री जैसलमेर तीर्थ से श्री ओशियांजी तीर्थ तक का संघ-यात्रा-दिग्दर्शन

ग्राम नगर	अन्तर (कोस में)	जैन घर	मंदिर	दिनांक
मोकलाई	६	०	०	चै० शु० ११
भोजकां	६	०	०	१२
चांदण	३	०	०	१३
लाठी	६	०	०	१४
ओढ़ालिया	६	०	०	१५
पोहकरण	६	६	३	वै० कृ० १-२
सुथारांवेरी	३	०	०	,,
उगरास	४	०	०	३

होपारड़ी	५	०	०	वै० कृ० ४
फलोधी	४	७००	७	५-७
चील्हा	४॥	०	०	८
लोहावट	४॥	१००	२	९-१०
पली (स्टेशन)	३	०	०	०
हरलायां	४	०	०	११
भीकमकोट	३	०	०	०
श्री ओशियांजी तीर्थ	५	०	१	१२-१३
	७३	८०६	१३	अट्ठारह दिन

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है संघ ओशियाँजी तीर्थ को वै० कृ० १२ प्रातः ९ बजे पहुँचा। श्री ओशियाजी तीर्थ के कर्मचारियों और 'श्री ओशियां वर्धमान जैन बोर्डिङ्ग-हाऊस' के अध्यापक तथा छात्रों को ज्योंही उक्त संघ के शुभागमन की सूचना प्राप्त हुई सर्व सोत्साह संघ का स्वागत करने के लिये उस दिशा में, जिधर से संघ नगर में प्रवेश करने को था बढ़े। संघ का भारी स्वागत किया गया। संघ जब विद्यालय के भवन में पहुँचा चरितनायक और साधु-मण्डली ने विशिष्ट स्थान ग्रहण किया और चरितनायक ने संघ और दर्शकगण को देशना दी। श्री ओशियांजी तीर्थ का जैन-समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण स्थान है इस पर तथा इसकी ऐतिहासिक गौरव-गरिमा एवं प्राचीनता पर चरितनायक का सविस्तार व्याख्यान हुआ। व्याख्यान में आपश्री ने ऐसे महत्त्वशाली और प्राचीन एवं ऐतिहासिक तीर्थस्थान में विद्यालय खोलने वाले कार्यकर्त्ताओं की भूरी २ प्रशंसा की कि तीर्थस्थानों में आधुनिक समय में विद्यालयों का खुलना एक अमोघ आकर्षण और उनमें सजीवता लाने की सद्भावनाओं का परिचायक है। व्याख्यान की समाप्ति पर सर्वजनों ने श्री महावीरप्रतिमा का पूजन किया और दिन में पंचकल्याणक पूजा बनवाई तथा श्रीफल की संघपति की ओर से सर्व छात्रों और उपस्थित व्यक्तियों को प्रभावना वितरित की गई। सायंकाल को भी श्री संघपति की ओर से नवकारशी की गई। विद्यालय के छात्र, अध्यापक तथा पीढ़ी के

सर्व कर्मचारी निमंत्रित किये गये और विद्यालय को १०१) का आर्थिक दान दिया गया। दूसरे दिन वै० कृ० १३ को चरितनायक ने छात्रों की धार्मिक परीक्षा ली और अभ्यास अच्छा देख कर समस्त संघ को अति संतोष हुआ। परीक्षा के मान में आहोरवासिनी श्राविका भीखीबाई की ओर से नवकारशी की गई, जिसमें सर्व छात्र, अध्यापक तथा पीढ़ी के कर्मचारियों को भी प्रीतिभोजन दिया गया तथा सेदरियावासिनी श्राविका लक्ष्मीबाई की ओर से श्रीफल की प्रभावना दी गई। वै० कृ० १४ को श्री ओशियांजी तीर्थ से संघ ने जोधपुर की ओर प्रयाण किया और मथानिया, माणकलाव, दईजर, मण्डोर होते हुआ श्रीसंघ वै० शु० १ को जोधपुर पहुँचा।

संघ का जोधपुर में स्वागत और वहां से सघ का विसर्जन

जोधपुर में श्रीसंघ के आगमन की निश्चित तिथि और समय की सूचना वहाँ के सधर्मी बन्धुओं को पूर्व ही मिल चुकी थी। जोधपुर में लगभग दो सहस्र से भी ऊपर जैन घर हैं। श्रीसंघ ज्योंही शहर के निकट पहुँचा कि समस्त शहर में संघ के पदार्पण की तथा पुर-प्रवेश के निश्चित समय की सूचना की घोषणा करवा दी गई। चरितनायक के अधिनायकत्व में यात्रा करते आते हुये संघ के स्वागत को जोधपुर-संघ शहर से भारी समारोह में वाद्यंत्रों एव शोभा के साजों से सुसज्जित होकर बढ़ा। संघका पुर-प्रवेश अति ही धूम-धाम और शोभापूर्वक करवाया गया। स्वागत करनेवालों में प्रमुख उत्साह धराने वाले सज्जनों में प्रमुख नाम महेता सुमेरचन्द्रजी, वकील हस्तिमलजी और वेदमहेता रतनचन्द्रजी के उल्लेखनीय हैं। जोधपुर के संघ एवं उपरोक्त तीनों सज्जनों के अत्याग्रह पर संघ को जोधपुर में पांच दिन तक रुकना पड़ा। जोधपुर के श्रीसंघ ने प्रीति-भोजनों से तथा उत्तम प्रकार की शयन आदि की व्यवस्थायें करके संघ की अति ही सराहनीय सेवा की जो प्रशंसनीय है।

१. वै० शु० २ को वकील हस्तिमलजी की ओर से,

२. वै० शु० ३ को वेदमेहता रतनचन्द्रजी की ओर से और

३. वै० शु० ४ को महेता सुमेरचन्द्रजी की ओर से विविध प्रकार के मिष्ट व्यञ्जनवाली नवकारशियें की गईं।

संघपति ने वै० शु० ६ को श्रीफल की प्रभावनापूर्वक श्रीकेशरियानाथ के जिनालय में नवाणुंप्रकारी पूजा बनवाई और सायंकाल को पंचमिष्ठान्न की नवकारशी की, जिसमें जोधपुर के श्रीसंघ के सधर्मी बन्धु भी निमन्त्रित किये गये थे।

वै० कृ० ७ को श्रीसंघ की विसर्जन-क्रिया चरितनायक की साक्षी में की गई। इस प्रकार संघपति शा० जीवाजी लखाजी की ओर से श्रीजैसलमेरतीर्थ को निकाला हुआ संघ जैसलमेर, ओशियांजी तीर्थों की यात्रा करके जोधपुर आकर सानन्द एवं सकुशल विसर्जित हुआ। इस संघयात्रा में वि० सं० १९८६ फा० शु० ३ से वि० सं० १९८७ वै० शु० ६ तक कुल २ मास और चार दिवस व्यतीत हुये। संघ के विसर्जित होने पर स्वयं संघपति और उनका परिवार तथा संघ में सम्मिलित व्यक्ति रेल द्वारा अपने २ स्थानों को चले गये। चरितनायक ने अपनी साधुमण्डली के साथ जोधपुर से वै० कृ० ७ को विहार किया और मोगड़ा नामक ग्राम में विश्राम किया। साथ में कुछ श्रावक और श्राविकायें भी थी। इनकी व्यवस्था के लिये संघपति ने अपने कुछ विश्वासपात्र सेवक छोड़ दिये, जो मार्ग में सर्व प्रकार की व्यवस्था करते थे।

मोगड़ा से चरितनायक ने अपनी साधुमण्डली और श्रावक, श्राविकाओं के साथ विहार करके गुढ़ाबालोतरा की ओर प्रयाण किया। मार्ग में पाली, चाँणोद, भूति जैसे प्रसिद्ध नगरों एवं ग्रामों में विश्राम करते हुये वि० सं० १९८७ ज्ये० कृ० ५ को आपश्री गुढ़ा पधारे और भारी महोत्सव के साथ आपश्री का नगर-प्रवेश करवाया गया।

चरितनायक का यह पुर-प्रवेश गुढ़ा निवासियों ने अत्यन्त ही भावभक्ति से करवाया था। इसका एक कारण यह भी था कि चरितनायक जैसलमेर-तीर्थ की यात्रा से अभी ही लौटे थे और यह जैसलमेर-तीर्थ-यात्रा बहुत ही शांति और सुख के साथ हुई थी।

श्री ओशियांजी तीर्थ से जोधपुर तक संघ का और जोधपुर से साधुमंडली का विहार-दिग्दर्शन

ग्राम, नगर	अंतर	जैनघर	मंदिर	दिनांक
मथानिया	७	०	०	वै० कृ० १४
माणकलाव	३	०	०	०
दईजर	४	०	०	,, १५
मन्डोर	३	१	३	वै० शु० १
जोधपुर	३	१२००	७	,, २-६
मोगड़ा	६	८	०	७
काकांणी	२	०	०	०
रोहेट	५	१०	०	८
खारड़ा	४	१०	१	१०
पाली	३	७००	६	११
डेंडा	५	३०	१	१२
वाली	१	४	०	०
कूरणो	१	०	०	०
चांणोद	२	२००	१	१३
भूति	४	७	२	१४ से ज्ये० कृ० २
पादरली	३॥	१२५	१	४
गुढ़ाबालोतरा	४	१२५	३	५
	६०॥	२४१६	२५	एकवीस दिन

वि० सं० १९८९ में चरितनायक के द्वारा लिखी गई पुस्तकों का प्रकाशन इस प्रकार है:—

श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन प्रथम-भागः—यह एक बहुत उपयोगी पुस्तक है, विशेष करके इतिहास की दृष्टि से। इसमें चरितनायक की अधिनायकता में जो राणापुर (मालवा) के श्रीसंघ ने सिद्धाचल, गिरनार तीर्थों की

संघयात्रा की थी उसका तो वर्णन है ही, परन्तु साथ में संघ के विसर्जित हो जाने पर चरितनायक ने जो स्वतंत्र विहार मरुधर की ओर किया और उसमें गिरनार से शंखेश्वर, शंखेश्वर से तारंगातीर्थ, तारंगातीर्थ से अर्बुदाचलतीर्थ और फिर वहाँ से सिरोही और आहोर तक के मार्ग में पड़े समस्त छोटे-बड़े नगर, पुर, ग्रामों का समुचित वर्णन है। जैसे कितने घर हैं, कितने जैन घर हैं, कितने जैन मंदिर हैं, कितना प्राचीन है। इतिहास एव व्यापार की दृष्टि से और कोई बात उल्लेखनीय हुई तो उसका भी इसमें यथाप्राप्य वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ हिन्दी में पृ० ३०५, काऊन १६ पृष्ठीय, वि० सं० ११८५ में रचा हुआ वि० सं० १९८६ में श्री जैनसंघ-फताहपुरा की ओर से ५०० प्रतियों में प्रकाशित हुआ है। ग्रंथ अति ही संग्रहणीय और ऐतिहासिक है।

श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से मरुधर में तीन चातुर्मास और अन्य कार्य

वि० सं० १९८७-८९

●

२४—वि० सं० १९८७ में हरजी में चातुर्मासः—

गुढ़ा में आपश्री अपनी साधुमण्डली के साथ कुछ दिवस विराजे और जैन जनता को धर्मोपदेश प्रदान करते रहे। तत्पश्चात् आपश्री ने वहाँ से विहार किया और आहोर, जालोर, भैंसवाड़ा जैसे बड़े नगरों में पधार कर वहाँ की जैन जनता को धर्मदेशनायें दी। आहोर के निकट में हरजी नामक एक बड़ा ग्राम है। वहाँ के श्रीसंघ ने आपश्री से हरजी में चातुर्मास करने की प्रार्थना की। हरजी में बहुत वर्षों से किसी साधु-मुनिराज का चातुर्मास नहीं हुआ था। हरजी-संघ की अत्यधिक भक्ति देखकर आपश्री ने कहा कि आचार्य भूपेन्द्रसूरिजी महाराज साहब से आप लोग मेरे नाम की

आज्ञा ले आवें, मैं चातुर्मास हरजी में कर लूँगा। आचार्य भूपेन्द्रसूरिजी महाराज सा० भी उन दिनों में निकट के ग्राम, नगरों में ही विचर रहे थे, हरजी का संघ उनके पास पहुँचा और चरितनायक का चातुर्मास हरजी में हो ऐसी श्रद्धापूर्वक विनती की। सूरिजी ने स्वीकृति दे दी और फलतः वि० सं० १९८७ का आपश्री का चातुर्मास हरजी में हुआ।

सम्पूर्ण चातुर्मासभर धर्म की अच्छी उन्नति रही। खूब तपस्यायें, प्रभावनायें हुईं। व्याख्यान में 'श्री भगवतीसूत्र (सटीक)' का और भावनाधिकार में 'श्री विक्रमादित्यचरित' का वाचन हुआ और मुमुक्षों नर-नारियों ने अतिशय लाभ लिया।

आहोर, गुढ़ा, भैंसवाड़ा, जालोर, बागरा, तख्तगढ़, फताहपुरा, खुडाला, खिमेल आदि अनेक नगर, ग्रामों से संघ और परिवार तथा व्यक्ति आपश्री के दर्शनार्थ आये। हरजी के संघ ने भी आगंतुक सज्जनों को प्रीतिभोज और अन्य सुख-सुविधायें देकर उनकी भारी सेवायें कीं। चरितनायक के सदुपदेश से हरजी की धर्मशाला का जीर्णोद्धार हुआ और उसमें योग्यस्थान पर २४"×३०" आकार के पाँच चित्र १—श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी, २ श्रीमद् विजयधनचंद्रसूरिजी, ३ श्रीमद् उपाध्याय मोहनविजयजी, ४ श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी और ५ स्वयं चरितनायक का हरजी के श्रीसंघ ने लगवाये। अर्थ यह है कि हरजी में चातुर्मास में धर्म की अच्छी प्रभावना हुई। इसके उपलक्ष में चातुर्मास के पूर्ण हो जाने पर श्री अष्टाह्निका-महोत्सव किया गया, जिसमें हरजी के संघ ने अच्छा द्रव्य व्यय किया और नित्य नवकारशी और भारी समारोह के साथ उक्त महोत्सव को सम्पन्न किया।

चरितनायक के द्वारा लिखी गई पुस्तकों का इस वर्ष का प्रकाशन इस प्रकार है :—

श्रीकोर्टाजी तीर्थ का इतिहासः—जैसा नाम ही प्रकट करता है कि इस ग्रंथ में कोरंटपुरतीर्थ, जिसका आज नाम कोर्टातीर्थ है और जो मरुधर-प्रदेश में सिरोही-राज्य के उत्तर कोण पर स्थित है का इतिहास एवं पुरातत्त्व

दृष्टि से उसका श्लाध्य वर्णन है। रचना और प्रकाशन वि० सं० १९८७, पृष्ठ ११२. प्रतियां ७५०, आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय जिसको नावी (मारवाड़) के निवासी शाह साँकलचन्द्र किशनाजी, जवानमल, ऋषभदास और हजारीमल जोराजी डूंमावत ने आनन्द प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में अति सुन्दर और दृढ़ पत्रों पर छपवाकर पक्की जिल्द में अमूल्य प्रकाशित किया।

चातुर्मास के पश्चात् अन्यत्र विहार और थलवाड़ में प्रतिष्ठोत्सव वि० स० १९८७

मार्गशीर्ष शु० तृतीया को हरजी से विहार करके आपश्री अपनी साधुमण्डली के साथ सियाणा पधारे। साथ में हरजी के अनेक स्त्री और पुरुष भी थे। उस समय सियाणा में आचार्य श्रीमद् भूपेन्द्रसूरीश्वरजी विराज रहे थे। आप उनकी सेवा में डेढ़ मास पर्य्यंत रहे। तत्पश्चात् श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी माघ शु० ९ को आकोली पधारे। आपश्री भी साथ में ही थे। आकोली में उन दिनों में समाज में पुनः दो पक्ष पड़ गये थे। आपके सतत् प्रयत्न एवं प्रभावक व्याख्यान से दोनों पक्षों में मेल हो गया और परिणाम में विविध धर्म एवं पुण्य के कार्य हुये। आकोली से आपश्री ने आचार्य भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा लेकर अलग विहार पुनः चालू किया। आकोली से आपश्री अपनी साधुमण्डली के सहित बागरा, चूरा, वाकरारोड़, मांक, मोदरा, सेरणा और धाणसा होते हुये तथा धर्मदेशना देते हुये थलवाड़ पधारे। थलवाड़ में श्रीसंघ ने आपश्री का प्रशंसनीय ढंग से भव्य स्वागत किया।

थलवाड-श्रीसंघ के अत्याग्रह से आपश्री ने वहाँ फाल्गुन मास में होने वाली प्रतिष्ठा को कराने की स्वीकृति प्रदान कर दी। अतः वहाँ के श्रीसंघ के कुछ प्रतिष्ठित जन श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी के पास में गये और आपश्री के द्वारा प्रतिष्ठा कराने की आप के नाम पर आज्ञा-पत्रिका ले आये। वि० सं० १९८७ फाल्गुण शु० तृतीया शुक्रवार के दिन शुभ मुहूर्त्त में महामहोत्सवपूर्वक श्री जीरावलापार्श्वनाथ आदि ६ मूर्त्तियों की और उनके अधिष्ठायिक देवों को तथा मोदरा ग्राम के जिनालय के लिये तीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठांजनशलाका की गई। इस प्रतिष्ठोत्सव के मान में दस दिनों तक

पूजा, प्रभावनायें एवं नवकारशियां होती रहीं। जब प्रतिष्ठोत्सव सानंद सम्पूर्ण हो गया तो उसके शुभ उपलक्ष में श्रीसंघ ने स्वामीवात्सल्य किया।

भांडवतीर्थ की यात्रा और जालोर में ज्ञान-भण्डार की स्थापना

वि० सं० १९८८

थलवाड़ में अंजनशलाकाप्रतिष्ठोत्सव सानंद पूर्ण करके आपश्री वहाँ से विहार करके भांडवपुरतीर्थ में पधारे। इस तीर्थ का ऐतिहासिक वर्णन यथा-स्थान एवं यथाप्रसंग आगे किया जायगा। यहाँ से आपश्री मेंगलावा, चौराउ, सायला होते हुये तथा धर्मोपदेश देते हुये जालोर (जाबालिपुर) पधारे। वहाँ आपश्री के ज्ञानगरिमापूर्ण सदुपदेश को श्रवण करके स्थानीय श्री शाह साकलचंद्र आईदानजी ने श्री जैन धर्मशाला में ज्ञान-भण्डार-भवन का निर्माण करवाया और उसमें आपश्री की तत्त्वावधानता में शुभ मुहूर्त्त में ज्ञान अर्थात् आगम (शास्त्र) पुस्तकों की महामहोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की और उसका नाम श्री 'राजेन्द्र-जैन ज्ञान-भण्डार'* प्रसिद्ध किया।

आहोर में साधु-दीक्षा वि० सं० १९८८

जालोर में श्री ज्ञान-भण्डार की स्थापना करके आपश्री सहसाधु-मण्डली भेंसवाड़ा और वहाँ से आहोर, हरजी होते हुये गुढ़ाबालोतरा पधारे। वहाँ के श्रीसघ ने आपका नगरप्रवेश भव्य स्वागत द्वारा किया। वहाँ आप कुछ दिवस विराज कर पुनः आहोर पधारे। आहोर में नाडोल के श्रावक मोतीलालजी जो अभी वय में नवयुवक ही थे और संसार की असारता से उदासीन हो कर साधुव्रत ग्रहण करना चाहते थे को वि० सं० १९८८ द्वितीय आषाढ़ कृ० १३ सोमवार को भव्य सज-धज के साथ लघुदीक्षा प्रदान की और उत्तमविजय उनका नाम रक्खा।

शिला-लेख

*'श्री सुरिराजेन्द्र-जैन-ज्ञान भण्डार, व्याख्यान-वाचस्पत्युपाध्याय श्री यतीन्द्रविजयजी महाराज के सदुपदेश से इस ज्ञान-भण्डार को शाह साकलचंद आईदानजी ने वनबा के संघ को भेंट किया। संवत् १९८७ मु० जालोर।'

२९—वि० सं० १९८८ में जालोर में चातुर्मासः—

जालोर श्रीसंघ के अत्याग्रह एवं श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा से वि० सं० १९८८ का चातुर्मास जालोर दुर्ग में हुआ। जालोर अपनी ऐतिहासिकता एवं अति प्राचीनता के लिये प्रसिद्ध है तथा श्री सुवर्णगिरितीर्थ की पावन छाया में आज तक वह अपनी आयु बनाये हुये है। इस चातुर्मास में आपश्री के संग में मुनि श्री वल्लभविजयजी, विद्याविजयजी, सागरानन्दविजयजी, कल्याणविजयजी और उत्तमविजयजी पांच मुनि थे। व्याख्यान में आपश्री ने 'श्रीउत्तराध्ययनसूत्र सटीक' और भावनाधिकार में श्री चारित्रसुन्दरगणिरचित 'श्री कुमारपाल—महाकाव्य' का वाचन किया। आपश्री के प्रभाव एवं सदुपदेश से चातुर्मास में अनेक प्रकार के तप, पूजा, प्रभावनायें हुईं और अनेक ग्राम जैसे बागरा, सियाणा, आहोर, गुढ़ा, सायला, मोदरा, बागरा, मांक, साथू, आकोली आदि के श्रीसंघ, परिवार और व्यक्ति दर्शनार्थ आये। जालोर-श्रीसंघ ने दर्शनार्थ आये हुये अतिथियों की भूरि २ अभ्यर्थना की। अतिरिक्त इसके जालोर में शाह आईदानजी के सुपुत्र सांकलचंद्रजी की ओर से नवपदोद्यापनोत्सव का आयोजन किया गया, जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

नवपदोद्यापनोत्सव का कराना

शाह आईदानजी ओसवालज्ञातीय लघुशाखीय श्रीमंत श्रावक थे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती महोरबाई कई वर्षों से श्रीनवपद-ओलीव्रत का आराधन करती आ रही थीं। आईदानजी जैसे श्रीमंत और धर्मप्रेमी थे, वैसे ही आप के सुपुत्र सांकलचंद्रजी हैं। चरितनायक का चातुर्मास और ऐसे तेजस्वी एवं शास्त्रज्ञ मुनिराज का संयोग देख कर आपने मातुश्री के व्रत के मान में नवपदोद्यापनोत्सव करने का आयोजन किया। विस्तृत एवं खुले स्थान में सुन्दर पण्डाल की रचना की गई और उसको अमूल्य वस्त्रों एवं शोभा के उपकरणों से सजाया गया। नव पदों में से प्रत्येक पद के निमित्त अलग २ निम्नवत् सामग्री भक्तिपूर्वक अर्पित की गई। सामग्री में प्रत्येक वस्तु संख्या में नव (९) थी।

कामदार चन्द्रवा	पीठिया	तोरण	रूमाल
रुप्यक चौबीसी	सिद्धचक्रगट्टा	अष्टमंगल थाल	छत्र
चौदह स्वप्न	जर्मनी चाँदी की आरतियाँ	मंगल दीपक	धूपदानी
सिंहासन	तासक	कटोरियाँ	ताम्रकुँभ
कलश	घंटियाँ	चन्दन का मूठिया	ठवणी
कम्बलियाँ	सांपड़ा	रूल	ओघा
पूंजणियाँ	डाँडा, डाँडी	आसन	चर्वला
डंडासन	कामली	स्वर्णमालायें	पाटियाँ
ओरीसा	कांच		

इस प्रकार उपरोक्त वस्तुओं में से प्रत्येक संख्या में नौ-नौ एक सुन्दर सजे हुये उच्चासन पर सजायी गई थीं। इसके साथ में 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के सातों भाग, 'श्रीपालरास' (सार्थ) 'देववंदन-माला' आदि ज्ञान-पदपूजा की पुस्तकों को भी रक्खा गया था। नीचे लिखे अनुसार नव दिन तक विविध पूजाओं का आयोजन किया गया था:—

वि०सं० १९८८ आश्विन शु०		७ को	श्री पंचकल्याणकपूजा
,,	,,	८	श्री नवपदपूजा
,,	,,	९	श्री सम्यक्त्वाष्टप्रकारीपूजा
,,	,,	१०	श्री नवाणुप्रकारीपूजा
,,	,,	११	श्री नंदीश्वरदीपपूजा
,,	,,	१२	श्री वीशस्थानकतपपूजा
,,	,,	१३	श्री पार्श्वनाथपंचकल्याणकपूजा
,,	,,	१४	श्री वेदनीयकर्माष्टप्रकारीपूजा
,,	,,	१५	श्री महावीरपंचकल्याणकपूजा

इस प्रकार पूजायें बनवाकर तथा रुप्यक चौबीसी और श्री सिद्ध-चक्रजी के गट्टों की प्रतिष्ठांजनशलाका करवाकर कार्त्तिक कृ० १ को १०८ अभिषेकवाली शांति-स्नात्रपूजा करवाई गई। नगर के चतुर्दिक इस रोज

अभिमंत्रित जल की धारा दी गई और नवकारशी करके नगर के श्रीसंघ को प्रीतिभोज दिया गया ।

इस नवपदोद्यापनोत्सव के अवसर पर श्री सांकलचंद्रजी ने मरुधर में प्राचीनतम और विश्रुत श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग, ओसियां तीर्थ से संगीत-मण्डली को निमंत्रित किया था । उत्सव के सभी अर्थात् नव दिनों में दिन में मन्दिरों में और रात्रि को खुले स्थानों अथवा मदिरों के सभामण्डलों में मण्डली ने विविध कीर्त्तनों, स्तवनों, गायनों, भक्तिरस के अभिनयों, नाटकों से त्रिकालिक प्रभु-भक्ति की और दर्शकों में भक्तिरस का संचार किया और स्तुति प्राप्त की । उत्सव की शोभा में निस्संदेह इस मण्डली के भक्ति-पूर्ण अभिनयों से चार चांद लग गये थे । जैन, अजैन समस्त जनता मण्डली के कार्यों से अत्यधिक प्रभावित एवं मुग्ध हुई । श्रेष्ठी सांकलचंद्रजी ने भी मण्डली के छात्रों एवं निरीक्षकों के लिये खान-पान, रहन-सहन की अति सुन्दर व्यवस्था की थी । विदाई के समय अच्छी एवं सर्वस्तुत्य भेंट देकर मण्डली का सम्मान किया था ।

जालोर में उस दिन तक हुये उत्सव-महोत्सवों से इस नवपदोद्याप-नोत्सव का स्थान शोभा, व्यय, अतिथि-उपस्थिति, भाव-भक्ति में अद्वितीय रहा था, जिसकी वयोवृद्ध एवं अनुभवी प्रतिष्ठित जनों ने मुक्तकंठ से भूरि २ प्रशंसा की थी ।

अति धर्म-ध्यान एवं पुण्यकार्य से पूर्ण जब यह चातुर्मास सानन्द समाप्त हुआ तो श्री सौधर्मवृहत्तपागच्छीयसंघ की ओर से भारी समारोह-पूर्वक द्वितीय अष्टाह्निकामहोत्सव किया गया तथा पश्चात् सुश्राविका शृंगार-वहिन ने भी वीशस्थानकतप के निमित्त श्रीवीशस्थानकतप पूजा बड़े ही ठाट से एवं भाव-भक्ति से करवाई और नगर-नवकारशी करके स्थानीय संघ का आतिथ्य किया ।

श्री जगडूशाह-चरित्र और श्री कयवन्ना-चरित्र का प्रकाशनः— जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इन दोनों ग्रंथों की रचना वि० सं० १९८४ में ही हो चुकी थी । इनका मुद्रण इस वर्ष में हुआ । 'श्रीजगडूशाह-चरित्र'

श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुड़ाला की ओर से प्रकाशित हुआ। पृष्ठ ४१, प्रतियाँ ६००, सुपररॉयल १२ पृष्ठीय।

'श्री कयवन्नाचरित्र' भी राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुड़ाला की ओर से ही प्रकाशित हुआ। पत्र १७, प्रतियाँ ६००, सुपररॉयल १२ पृष्ठीय।

श्रीयतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन द्वितीय भागः—वैसे इस ग्रंथ की रचना वि० सं० १९८७ में ही हो चुकी थी। इसका प्रकाशन इस वर्ष में हुआ। इसको श्रीसंघ-हरजी ने श्री आनन्द-प्रेस, भावनगर में छपवाकर प्रकाशित किया। रेशमी जिल्द, पृ० ३०९, आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। इसमें चरितनायक के थराद से अर्बुदाचल, गोड़वाड़पंचतीर्थी, कोर्टा(कोरंटपुर) तथा गुढ़ाबालोतरा से निकाले गये जैसलमेर-संघ के मार्ग में पड़े वहाँ तक के ग्राम-नगरों, जैसलमेर से ओसियां, ओसियां से जोधपुर और जोधपुर से गुढ़ाबालोतरा तक के ग्रामों का संक्षिप्त परिचय, उनकी प्राचीनता, ऐतिहासिकता एवं भौगोलिक स्थितियों का वर्णन दिया गया है। इतिहास एवं पुरातत्त्व की दृष्टि से ग्रंथ अति उपादेय एवं संग्रहणीय है। जैनियों के लिये तो यह ग्रंथ उपरोक्त मार्गों में एवं स्थानों में बने तीर्थों का, प्राचीन मन्दिरों का जैन घर एवं जैनों की धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक स्थितियों का एक सुन्दर लेखा है, जो जैन-समाज के एक अंग का अच्छा एवं आधारभूत अध्ययन कहा जा सकता है।

इस वर्ष श्रीमद् आचार्य भूपेन्द्रसूरिजी का चातुर्मास बागरा में था। वेश्री चातुर्मासपूर्ण करके अपनी साधु एवं शिष्यमण्डली के सहित जालोर पधारे। एतदर्थ चरितनायक जालोर में ही तब तक ठहरे।

जालोर में भूपेन्द्र-सूरिजी के साथ में कुछ दिनों का सहवास और विहार

जालोर में सूरिजी पौष शु० १२ तक विराजे, तब तक आपश्री उनकी सेवा में ही रहे। पौष शु० १३ को सूरिजी ने जालोर से विहार किया और शंकराणा, भैंसवाड़ा में विचरते हुये आहोर में पधारे। यहाँ दियावट-पट्टीय श्रीसंघ ने उपस्थित होकर श्री भाण्डवतीर्थ की ओर चरितनायक को भेजने की विनती की; कारण कि श्री भाण्डवतीर्थ में

श्री महावीर-मन्दिर के ऊपर स्वर्णध्वजदण्ड का आरोपण करना माघ शु० १० बुधवार को निश्चित हो चुका था। सूरिजी ने चरितनायक को श्रीभाण्डव-तीर्थ की ओर विहार करने की आज्ञा प्रदान करदी। दियावट्टपट्टीय-सघ सूरिजी की आज्ञा श्रवण करके अति हर्षित हुआ।

आहोर से चरितनायक ने विहार किया और जालोर, आलासण, चोराउ, सायला आदि ग्रामों में होते हुये तथा इन ग्रामों में एक २ दिन ठहरते हुये एवं धर्मोपदेश देते हुये श्रीभाण्डवतीर्थ पधारे और

भाण्डव तीर्थ में श्री महावीर-मंदिर पर दड-ध्वजारोहण और प्रतिष्ठा तथा भाण्डव तीर्थ का कुछ परिचय

प्रतिमा के दर्शन करके अति हर्षित हुये। यह तीर्थ मरुधर-प्रदेश की दियावट्टपट्टी में स्थित है। इस पट्टी में दो पक्ष हैं—ऊली (इधर की) पट्टी और पेली (उधर की) पट्टी। दोनों पक्षों में कुल ४८ ग्राम हैं। इन ग्रामों की श्री भाण्डवतीर्थ पर देख-रेख है। जिस ग्राम में तीर्थ है वह भाण्डवपुर कहलाता है, ग्राम में लगभग १५० घर हैं। परन्तु जैन घर एक भी नही है। राजपुत्र, चौधरी और कृषकों के अधिक घर हैं। ये सर्व वैष्णव होते हुये भी तीर्थ के परम भक्त हैं। भाण्डवतीर्थ में एक ही मंदिर है और वह भगवान् महावीर का है। भाण्डवपुर के लोग भगवान् महावीर की प्रतिमा को महावीर बाबा कह कर पुकारते हैं। महावीर के सम्मान में प्रति वर्ष चैत्र शु० चतुर्दशी को ये लोग पूर्ण अगता पालते हैं। उस दिन कृषिसंबंधी कोई कार्य करना तो दूर रहा, अपने खेत पर जाने तक में ये अगता का भंग होना समझते हैं। घर से अपने पशुओं को निकाल देते हैं और अगर पशु किसी के खेत में उस दिन नुकसान भी करदें तो भी कोई क्रुद्ध नहीं होता है वरन् अपना अहोभाग्य समझता है। भाण्डवपुरतीर्थ के चारों ओर लगभग डेढ़ दो मील तक घना जंगल है। इस जंगल में से कोई भी गृहस्थ एक टहनी का छेदन करना भी पाप मानता है। इस जंगल की लकड़ी, जब वृक्ष पूर्णतया शुष्क हो जाता है और उस पर कहीं हरा पत्र नही दिखाई देता है, तब वह काट कर तीर्थ के कार्य में लायी जाती है। अन्यत्र उसका उपयोग निषिद्ध है। कोई गौ अथवा भैंस जब बच्चा देती है तो उसका प्रथम दूध और दही तथा घी बाबा महावीर के भेंट होता है। नव विवाहिता दुलहिन

और दूल्हा अपने घर में प्रवेश करने के पूर्व बाबा के यहाँ नमस्कार करने आते हैं और श्रीफल तथा अन्य भेंट चढ़ा करके युगलरूप में महावीर बाबा को नमस्कार करते हैं और तत्पश्चात् कई घंटों तक बाबा के आगे मैदान में नृत्य और गीतों की धारा बंध जाती है। भाण्डवपुर में जिस दिन जैनाचार्य का आगमन होता है, उस दिन भी समस्त ग्राम जैसा अगता के विषय में ऊपर कहा गया है, पूर्ण अगता पालता है। प्रथम तो अगता का थोड़े अंश में भी कोई भंग नहीं करता है और दैवयोग से कोई भूल करके भंग कर लेता हैं तो वह प्रायश्चित्त करता है और दो सई अर्थात् एक मन बाजरी वह अपने-आप बाबा के अन्न-भण्डार में लाकर डाल देता है। श्रीमहावीर के नाम से यहाँ एक अन्न-भण्डार है, जिसमें प्रत्येक कृषक प्रति वर्ष एक मन अन्न लाकर डालता है, जहाँ से नित्य कबूतरों को प्रातः अन्न डाला जाता है। ये लोग अत्यन्त भावुक, सरल प्रकृति एवं धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। ये जैन नहीं है, फिर भी जैन-तीर्थ के प्रति इनकी इतनी अगाध भक्ति और श्रद्धा सचमुच विस्मय और श्रद्धा का पात्र है। ये लोग जल छान कर पीते हैं। बाबा की सींव एवं जंगल में कोई आखेट नही खेल सकता है। ऐसे कितने ही धार्मिक प्रतिबंध हैं, जिनको क्रमवार लिखा जाय तो एक लंबी सूची बन जाती है। यातायात के साधन बन जाने से जैन तो वहाँ अब आने लगे हैं, परन्तु सैंकड़ों वर्षों से ये ही लोग इस तीर्थ की रक्षा में अपना पूरा भाग भजते आये हैं। ये लोग कितने धन्यवाद एवं श्रद्धा के पात्र हैं— ये उक्त पंक्तियाँ ही बतला सकती है।

तीर्थ लगभग एक सहस्र वर्ष प्राचीन प्रतीत होता है। इसकी प्रथम प्रतिष्ठा वि० सं० १०९५ में उपकेसज्ञातीय किसी संघवी श्रावक ने करवाई थी। प्रतिष्ठाकर्त्ता के वंशज आज भी सिरोही और अहमदाबाद में तथा भाण्डवपुर तीर्थ से ४ मील के अंतर पर बसे हुये कोमताग्राम में रहते हैं। इस तीर्थ का प्रथम जीर्णोद्धार वि० सं० १३५९ में और दूसरा वि० सं० १६५४ में हुआ था। वि० सं० १९५६ में श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज यहाँ पधारे और तब से उनकी सम्प्रदाय के श्रावकों की उस ओर मान्यता प्रमुखतः बढ़ी और परिणाम यह आया कि वि० सं० १९८८ अर्थात् इस

वर्ष से श्री चरितनायक के सदुपदेश से इस तीर्थ का जीर्णोद्धार चालू हुआ, जो आज तक चालू है और लगभग डेढ़, दो लाख रुपया जीर्णोद्धार में अबतक लग चुका है। भगवान् महावीर का मंदिर यद्यपि मूलतः छोटा ही है, परन्तु बड़ा सुन्दर है। इसका गंभारा, गूढ़मण्डप और खेलामण्डप का जीर्णोद्धार हो चुका है, नवचौकिया सभामण्डप और शृंगार-चौकी पर गुम्बज बन चुके हैं, जिनमें अभी प्रतिमायें स्थापित नहीं की गई हैं। मंदिर के दक्षिण पक्ष पर एक जैन धर्मशाला थी, उसका भी जीर्णोद्धार हो चुका है। धर्मशाला के विशाल द्वार में,जो पूर्वमुखी हैं बनी हुई वरशाला के उत्तर पक्ष में बनी एक बडी कोठरी में इस समय तीर्थ की पीढ़ी है, जहाँ मुनीम रहता है और मुनीम के नीचे तीर्थ के अन्य सेवक, पुजारी कार्य करते हैं। मंदिर एवं धर्मशाला तथा एक विशाल एवं विस्तृत मैदान को घेर कर चतुर्दिक परिकोष्ठ बना है। इस परिकोष्ठ की उत्तर, पश्चिम, पूर्व की भीतों में लगभग ७० कोटरियाँ बनादी गई हैं, जिनमें उत्सव, मेले पर तथा यात्रा के लिये आने वाले दर्शकगण ठहरते हैं।

मन्दिर का सिंहद्वार पूर्व में है और दक्षिण में परिकोष्ठ का विशाल सिंहद्वार बना है। परिकोष्ठ के भीतर ही कुंआ है और भोजन आदि बनाने के लिये भी स्थानों की सुविधायें रक्खी गई हैं।

चरितनायक ने वि० सं० १९८८ माघ शु० १० बुधवार को श्री महावीर-चैत्यालय के शिखर पर स्वर्णदण्डध्वजारोहण शुभ मुहूर्त्त में किया और उसी रोज श्री शांतिनाथ-प्रतिमा और मुनिसुव्रतप्रतिमाओं की तीर्थाधिराज मूलनायक श्री महावीर भगवान् के सुन्दर एवं प्राचीन बिंब के दोनों पक्ष पर क्रमशः स्थापना की। इस शुभोत्सव पर दियावट्टपट्टी एकत्रित हुई थी और उसने चरितनायक की अधिनायकता में अनेक सामाजिक सुधार स्वीकार किये तथा तीर्थ की पूरी देख-रेख करने के लिये प्रशंसनीय व्यवस्था बनाई।

२६ – वि० सं १९८९ में शिवगंज में चातुर्मासः—

माघ शु० त्रयोदशी को आपने भाण्डवतीर्थ से प्रस्थान किया और

मेंगलावा पधारे। उसी दिन आपश्री ने श्री सौधशिखरी-जिनालय में श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमा और श्री शांतिनाथ धातु-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की। वहाँ से दो दिनों तक निरन्तर विहार करके आपश्री जालोर पधारे। जालोर में इस समय श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी विराज रहे थे। वहाँ सूरिजी के करकमलों से स्वर्णगिरि के ऊपर बने हुये दुर्ग में विनिर्मित जैन मन्दिरों के ऊपर स्वर्णदण्डध्वज एवं मन्दिरों में जिन-बिंबों की प्रतिष्ठा होने वाली थी, आपश्री उस उत्सव में सम्मिलित हुये, जिससे उत्सव की शोभा एवं रोचकता में वृद्धि हो गई।

भाण्डवतीर्थ से विहार और जालोर में सूरिजी के दर्शन तथा उनके साथ में शिवगञ्ज में चातुर्मास

सूरिजी प्रतिष्ठोत्सव सानन्द समाप्त करके जालोर से विहार करके आहोर, गुढ़ाबालोतरा होते हुये हरजी पधारे। चरितनायक भी साथ में ही थे। सूरिजी लगभग सवा मास तक हरजी में विराजे, तब तक आपश्री भी उनकी सेवा में ही रहे। यहाँ से सूरिजी की आज्ञा से आपश्री ने आषाढ़ कृष्णा त्रयोदशी को अलग विहार किया और ग्रामों में विचरते हुये, धर्मोपदेश देते हुये शिवगंज (सिरोही-राज्य) में अपनी साधुमण्डली एवं शिष्यों के सहित पधारे। यहाँ श्रीसंघ ने चरितनायक का भव्य स्वागत किया। आपश्री व्याख्यानकला एवं मार्मिक भाषण देने के लिये प्रसिद्ध थे। शिवगंज में लग-भग ५०० से ऊपर जैन घर हैं। आपके पाण्डित्य एवं विद्वत्ता की चर्चा उनके कर्णों तक पहुँची हुई थी। आपके व्याख्यान में श्रोतागण की भारी भीड़ लगती थी। शिवगंज के श्रीसंघ की इच्छा उस वर्ष सूरिजी तथा आपका सम्मिलित चातुर्मास करवाने की थी। इस प्रस्ताव को चरितनायक ने स्वीकार कर लिया। अतः शिवगंज का श्रीसंघ श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी से चातुर्मास की विनती करने के लिये गया और चरितनायक के चातुर्मास-संबन्धी विचारों से भी उनको अवगत करवाया। सूरिजी ने शिवगंज में चातु-र्मास करना स्वीकार कर लिया। श्रीसंघ-शिवगंज हर्षित होकर अपने स्थान को लौट आया और उस वर्ष अर्थात् वि० सं० १९८९ का चातुर्मास इस प्रकार श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी के साथ मे आपश्री का भी शिवगंज में हुआ, जिसमें निम्न प्रकार धर्म-प्रचार एवं सुकार्य हुये।

जनता चरितनायक की व्याख्यान-शैली से मुग्ध थी, अतः विद्वान् एवं वयोवृद्ध आचार्य श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी ने चातुर्मास में शास्त्र वाचने एवं व्याख्यान देने की आज्ञा आपश्री को ही प्रदान की। व्याख्यान में भावविजयोपाध्यायकृत सटीक 'श्री उत्तराध्ययनसूत्र' और भावनाधिकार मे शुभशीलगणिरचित श्री 'विक्रमादित्यचरित्र' (पद्यात्मक) का वाचन किया। चातुर्मासभर आपश्री के व्याख्यानों की प्रशंसा रही और धर्मशाला में व्याख्यान में सहस्र-सहस्र नर-नारियों की सदा उपस्थिति रही। सैकड़ों प्रभावनायें वितरित की गई और समय २ पर मदिरों में छोटी-बड़ी पूजायें बनाई जाती रहीं। सूरिजी और चरितनायक दोनों प्रखर एवं सुप्रसिद्ध मुनिवरों का चातुर्मास शिवगंज में श्रवण कर दूर २ के नगर, ग्रामों से जिनमें मुख्य आहोर, बागरा, जालोर, भीनमाल, वरलूट, मंडवारिया, तख्तगढ़, गुढ़ावालोतरा, आकोली, साथू, धाणशा, मोदरा, शिरोही, कोरटा, जोगापुरा, फताहपुरा, भूति, पावा, खिमेल, कौशीलाव, राणी, बाली, वीजापुर, रतलाम, खाचरोद, उज्जैन, मंदसोर, नीमच, जावरा, निम्बाहेड़ा, थराद आदि से संख्यावध दर्शकगण आये। श्रीसंघ–शिवगंज ने भी आगंतुक सधर्मी बंधुओं की पूरी २ भावभक्ति की। इस प्रकार शिवगंज का चातुर्मास बड़े आनद एवं शोभापूर्ण सुकृत्यों के आयोजनों से सानंद समाप्त हुआ। चातुर्मास के सानंद समाप्त होने के उपलक्ष में चातुर्मास के अंत में श्रीसंघ-शिवगंज ने अट्ठाई-महोत्सव का आयोजन किया और वह भी अति हर्ष एवं आनंद के साथ परिपूर्ण हुआ। तत्पश्चात् चरितनायक सूरिजी की आज्ञा लेकर शिवगंज से विहार करके फताहपुरा पधारे।

बृहद्विद्वद्गोष्ठी नामक पुस्तक का प्रकाशन—रचना सं० १९८९, पत्र० १३, प्रतियाँ ६०० । इसको श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुडाला ने इस वर्ष छपवा कर प्रकाशित किया। यह ग्रथ गद्य और पद्य दोनो शैलियों में सस्कृत भाषा में है। ग्रंथ विद्वानों के पढ़ने एवं समझने के योग्य है, जैसा इसके नाम से भी बोधित होता है।

श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी की आज्ञा लेकर आपश्री अपनी साधु-

मण्डली के सहित शिवगंज से मार्गशीर्ष शु० ६ को विहार करके फताहपुरा पधारे थे । यहां आपश्री कुछ दिनों तक विराजे । यहाँ के श्रीसंघ में दो पक्ष पड़े हुये थे । आपश्री के सद्प्रयत्न एवं उद्बोध तथा व्याख्यान के प्रभाव से दोनों पक्षों में मेल होगया और परस्पर व्यवहार चालू हो गया । यहाँ से विहार करके आपश्री कोरंटपुरतीर्थ (कोरटातीर्थ) में पधारे । वहाँ के श्रीसंघ ने चरितनायक का नगर-प्रवेश अति धूम-धाम से करवाया । चरितनायक तथा उनके साथ में आये हुये साधुगण ने तीर्थपति भगवान् महावीर की प्रतिमा के दर्शन किये और तत्पश्चात् आपश्री धर्मशाला में पधारे और धर्मोपदेशना देकर श्रोतागण को तीर्थ और तीर्थ में रहने वाले व्यक्तियों की तीर्थ के लिये क्या कर्तव्य हैं के ऊपर विशेष रूप से समझाया । यहाँ आपको पाँच दिन ठहरना पड़ा । अधिक ठहरने का कारण यह था कि कोरंटपुर के ठाकुर साहब विजयसिंहजी ने श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के सदुपदेश से नगर के बाहर श्री महावीर-मंदिर के पूर्व में पूजार्थ पुष्पोद्यान के लिये तीर्थ को ५५० हाथ लंबी और २२० हाथ चौडी जमीन भेंट की थी । परन्तु ठाकुर साहब के देहावसान के पश्चात् श्रीसंघ और नये ठाकुर साहब में विरोध उत्पन्न हो जाने के कारण वह अधिकृत नहीं की जा सकी थी । चरितनायक ने ठाकुर साहब को समझाया और दान में दी हुई भूमि का सुफल तथा दान में दी हुई भूमि के अपहरण के कुफल पर शास्त्रीय ढंग से प्रकाश डाल कर उन्हें प्रभावित किया । चरितनायक के सदुपदेश से ठाकुर साहब ने अपने आपसी झगड़ों को न गिन कर के उपरोक्त भूमि कोरंटपुर-श्रीसंघ को तीर्थ के उपयोग के निमित्त अर्पित करदी और उसका पक्का पट्टा कर दिया । तदुपरान्त आपश्री वहाँ से पौष कृ० ११ को विहार करके लखमावा, नोवी, पावटा, सेदरिया आदि ग्रामों में ठहरते हुये तथा धर्मोपदेश देते हुये गुढावालोतरा पधारे ।

शिवगंज से विहार और कोरंटपुरतीर्थ के दर्शन करना
वि० सं० १९८९

गुढ़ावालोतरा में गुरुजयन्ती तथा उपधानतप का आराधन तथा बड़ी दीक्षायें

वि० सं० १९८९

श्रीमद विजयराजेन्द्रसूरिजी इस युग में महाप्रभावक आचार्य हो

गये हैं। आपश्री की २७ वीं जयन्ती पौ० शु० सप्तमी को बड़े उत्साह से एवं धाम-धूम से मनाई गई और दिन में पूजा-प्रभावनाओं के साथ रात्रि को मंदिरों में आंगी रचवाई गई।

गुढ़ा में जैनियों के लगभग ३०० से ऊपर घर हैं। सब ही घर अर्थदृष्टि से अच्छी स्थिति में हैं। वहाँ के श्रीमंतों में शाह लालचंद्र लखमाजी का स्थान अग्रगण्य है। इनकी ओर से उपधानतप का आराधन करवाने का प्रयत्न कतिपय वर्षों से प्रस्तावरूप में चल रहा था। चरितनायक का आगमन देख कर और गच्छनायक श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी महाराज साहब का विहार भी आस-पास के ग्रामों में सुनकर उन्होंने उपधानतप का आराधन दोनों मुनिवरों की तत्त्वावधानता में करवाने का निश्चय करके दोनों के समक्ष अपनी शुभ भावनाओं को प्रकट किया। दोनों मुनिवरों ने शाह लालचंद्र लक्ष्मीचंद्रजी की भूरि २ प्रशंसा की और उनकी भावनाओं को मान देकर उपधानतप करवाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। फलतः सूरिजी महाराज साहब भी विहार करके गुढ़ा पधार गये।

उपधानतप का आराधन माघ शु० १ से चैत्र कृ० २ तक अर्थात् ४७ दिनों तक रहा। इसमें स्थानीय और हरजी, चरली, भैंसवाडा, तखतगढ़, सेदरिया, भूति, कौशीलाव, वांकली, जावरा आदि नगर-ग्रामों के इकसठ (६१) पुरुषों ने भाग लिया और तप आराध कर अपनी काया को उज्ज्वल किया। तपाराधन के बीच समय मे फाल्गुण कृ० ११ से शु० ३ तक विविध प्रकार की पूजायें वनाई गईं और आठों ही दिन वडी धूम-धाम रही। फाल्गुन शु० ३ को मालापरिधानोत्सव विविध वाद्यंत्रों के कल निनादों और सौभाग्यवती रमणियों के कलकण्ठों से निकलते हुये मंगल-गीतों एवं प्रभु महावीर तथा जिनेश्वरों के, आचार्यों के नामों के जयनादों के बीच प्रातः शुभ मुहूर्त्त में शाह लालचन्द्र लक्ष्मीचन्दजी को माला पहिना कर मनाया गया। इस अष्टदिवस-महोत्सव के बीच में श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी ने मुनि० कल्याणविजयजी, उत्तमविजयजी और तत्त्वविजयजी को बड़ी दीक्षायें प्रदान की। दीक्षोत्सव के उपलक्ष तथा अष्टदिवसोत्सव के उपलक्ष में शाह लालचन्द्र लक्ष्मीचन्द्रजी

की ओर से फा० शु० ३, ४ को नगर-नवकारशियाँ की गईं। तप में भाग लेने वाले सज्जनों का भी इन्होंने विविध प्रकार मान-सम्मान किया तथा खान-पीन, सोने-बैठने, तपाराधन के लिये आवश्यक उपकरणों आदि से उनकी पूरी २ सेवा-भक्ति की। जब तप सानन्द पूर्ण हो गया, उस समय इनकी ओर से तप में भाग लेने वाले सज्जनों को सुन्दर प्रीतिभोज दिया गया और प्रभावना देकर उनका प्रशंसनीय सत्कार किया गया।

गुढ़ा में सानन्द तपाराधन पूर्ण कराकर चरितनायक और सूरिजी दोनों ने साथ में ही विहार किया और आहोर, मेड़ा, सियाणा, काणोदर, रायपुरिया होते हुये सवणातीर्थाधिपति श्री वासुपूज्य-स्वामी-प्रतिमा के ज्येष्ठ कृ० ११ को दर्शन किये और फिर मोटाग्राम, फूंगणी, मेर-मांडवाड़ा, अमलारी, दांत-राई आदि ग्रामों में विचरे। उपरोक्त सर्व ग्रामों के जिन मंदिरों के तथा उनमें प्रतिष्ठित पाषाण एवं धातु की प्रतिमाओं के चरितनायक ने लेखों को शब्दान्तरित किया। धर्मोपदेश देते हुये, लेखों को लेते हुये दोनों मुनिपति ज्येष्ठ शु० पूर्णिमा को प्रसिद्ध एवं प्राचीन तीर्थ श्री जीरापल्ली पधारे और वहाँ दो दिन विराजे। जीरापल्ली-तीर्थ की प्रतिमाओं के लेखों को भी चरितनायक ने शब्दान्तरित किया।

सूरिजी के साथ में विहार वि० सं० १९९०

———

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में २७ वां चातुर्मास

वि० सं० १९९०

●

चरितनायक का विचार वि० सं० १९९० का चातुर्मास पालीताणा में करने का था। अतः सूरिजी महाराज से आज्ञा लेकर आपश्री ने अलग विहार ज्येष्ठ शु० २ को किया। जीरापल्लीतीर्थ से आपश्री वरमाण, मगरीवाड़ा, मंडार, गुंदरी, आरखी, पाथावाड़ा, भाडली, कोटला, जेगोल, दातीवाड़ा, रामपुरा, भूतेड़ी आदि ग्रामों को स्पर्शते हुये और धर्मोपदेश देते हुये ज्येष्ठ शु० ७ को पालनपुर में पधारे। यहाँ थराद के श्रीसंघ ने आपका अति भव्य स्वागत किया। संघ के प्रतिष्ठित पुरुषों का अत्याग्रह होने से यहाँ आप तीन दिवस तक विराजे। तीनों दिनों तक आपश्री ने सारगर्भित एवं शास्त्रानुसार व्याख्यान दिये। व्याख्यानकला के लिये तो आपश्री कई वर्षों से जैन-जगत् में विख्यात थे। आपश्री के व्याख्यानों को अन्य सम्प्रदाय के लोगों ने भी श्रवण किया और आपकी व्याख्यान-शक्ति एवं शैली तथा गंभीरज्ञान की भूरि २ प्रशंसा हुई। जिनेश्वर-पूजा और उससे लाभ तथा मनुष्य-जन्म की सार्थकता शास्त्र-ज्ञान के विना निरर्थक है, इन दो विषयों पर आपश्री ने पाण्डित्यपूर्ण एवं शास्त्रसंगत विवेचन करते हुये बड़े मधुर ढंग से श्रोतागण को पूर्वाचार्यों के निर्णयात्मक प्रमाण देकर समझाया था। श्रीसंघ-पालनपुर की तीव्र इच्छा थी कि आपश्री कुछ दिन वहाँ और ठहरें; परन्तु पालीताणा में चातुर्मास करना था; अतः वहा नहीं रुक कर ज्येष्ठ शु० १० को आपने विहार कर ही दिया। पालनपुर से विहार करके आपश्री अपने साधुमण्डल के सहित मजादर, सिद्धपुर, ऊंझा, इठोर जेतलवासणा, देऊ, तलाटी, मेहसाणा, वोरीभावी, जोटाणा और कटोसनरोड़ होते हुये तथा धर्मोपदेश देते हुये ज्येष्ठ शु० पूर्णिमा को भोयणीतीर्थ में पधारे और तीर्थपति श्रीमल्लीनाथप्रभु-प्रतिमा के दर्शन करके अति ही आनंदित हुये। यहाँ चरितनायक चार दिवस तक ठहरे। आपश्री की स्थिरता को श्रवण

चातुर्मास करने की दृष्टि से विहार

करके अहमदाबाद से शाह० प्रतापचंद्रजी किस्तूरचन्द्रजी नाम की पीढ़ी के मालिक शाह गोकुलचंद्रजी अपने परिवार सह आये थे तथा साध्वीजी श्री कंचनश्रीजी, विमलश्रीजी, चतुरश्रीजी और जिनश्रीजी भी आपश्री के दर्शनार्थ यथावसर पधार गई थीं। यहाँ से चरितनायक का विहार आषाढ़ कृ० ४ को हुआ।

श्रीभोयणीतीर्थ से विहार करके चरितनायक अपने साथी साधुगण के सहित कूकवा, देत्रोज, रामपुरा, अधारी, वीरमग्राम, वणी, साँवली, ढाकी, लीलापुर, लखतर, तलवड़ी, चड़वाणा, वरसाणी, सीयाणी, गागरेटी, भलगामड़ा, लींमडी, लालीवाद, चूड़ा, राणपुर, नानीवाव, खस, सालींगपुर, लाठीदड़, सांगावदर, मांड, सांडारतनपुर, लोआणा, वावड़ी, उमराला, पीपराली, सणोसरा, नवाग्राम, जामणावाव आदि ग्राम, नगरों में एक २ दिन का विश्राम करते हुये वहाँ के मुमुक्षु श्रावकों एवं जैन, अजैन जनता को धर्मोपदेश देते हुये आषाढ़ शु० १ शनिश्चर को पालीताणा* प्रातः नव बजे पहुँचे। यहाँ

पालीताणा

* काठियावाड़ के गोहेलखण्ड-प्रांत में शत्रुंजय पर्वत के पूर्व में उससे लगभग १॥ मील के अंतर पर यह राज्य की राजधानी है। शत्रुंजय-महातीर्थ के गौरव एवं कीर्त्ति के कारण यह नगर मध्यम श्रेणी का होने पर भी जगत्-विख्यात एवं सर्व प्रकार की शोभा और वैभव-सामग्री से पूर्ण और आधुनिक युग के यातायात और विज्ञान आदि के साधनों से सम्पन्न है। शत्रुंजयतीर्थ के लिये दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियों के ठहरने आदि के लिये इस नगर के बाहर शत्रुंजय पर्वत की ओर ही लगभग ४५ बड़ी २ धर्मशालायें बनी हुई हैं, जिनमें लगभग ४,५ लाख मनुष्य ठहर सकते हैं। इन विशाल धर्मशालाओं की सुन्दर एवं सुविस्तृत माला से नगर की रमणीकता अत्यधिक बढ़ गई है। अतिरिक्त इन धर्मशालाओं के यहाँ जैन गुरुकुल, जैन बालाश्रम, हेमचन्द्राचार्य पाठशाला, वीरबाई पाठशाला, बुद्धिसिंह पाठशाला, तिलोकचन्द्र पुस्तकालय और राजकीय प्रासाद एवं राजकीय कार्यालय एक से एक सुन्दर मनोरम बने हुए हैं।

नगर में नव (९) जैन मन्दिर हैं। सर्व से बड़ा मन्दिर श्री आदिनाथ भगवान् का है। नगर में 'श्री आनंदजी कल्याणजी जैन कार्यालय' है। यह शत्रुंजयतीर्थ की व्यवस्था करता है। इस पीढी के अनेक भवन बने हुये हैं।

इस नगर के राजा गोहेलवंशी राजपुत्र हैं। नगर छोटा होकर भी भारत के अति रमणीय एवं सम्पन्न नगरों की ईर्षा का भाजन है।

आपश्री का चातुर्मासार्थ आगमन श्रवण करके एक दिवस पूर्व ही आपश्री के अनेक भक्तगण आगये थे। उनमें से मुख्य मंडवारियावासी शाह नथमलजी, अहमदाबादवासी शाह कालिदास पेथाचन्द्र और फोटोग्राफर शाह चीमनलाल भाई आदि थे। श्रीसंघ-पालीताणा एवं श्री आनन्दजी कल्याणजी की पीढ़ी, पालीताणा की ओर से चरितनायक का भव्य स्वागत किया गया। पालीताणा-नरेश के कर्मचारीगण भी राजसी लवाजमा के साथ नगर-प्रवेश की शोभा बढ़ाने में सम्मिलित हुये थे। इस प्रकार विशाल समारोह के मध्य आपश्री ने नगर में प्रवेश किया। आपश्री ने पालीताणा नगर के जैन मन्दिरों के दर्शन किये और फिर चंपानिवास में विश्रामार्थ प्रवेश किया। यहाँ आपश्री ने स्वागतार्थ आई हुई जैन एवं अजैन जनता को सुन्दर देशना दी। समस्त उपस्थित जनता ऐसे व्याख्यानकलानिधान एवं पण्डित मुनिराज का वहाँ चातुर्मास का होना श्रवण करके अति ही मुग्ध हुई। चरितनायक ने अपनी देशना में सिद्धक्षेत्र श्री शत्रुंजय-महातीर्थ का महत्त्व समझाया और भव की असारता पर सारगर्भित व्याख्यान दिया। व्याख्यान की समाप्ति पर उपस्थित जनों में प्रभावना वितरित की गई और तत्पश्चात् परिषद् विसर्जित हुई।

सियाणानगर से सिद्धक्षेत्र-पालीताणा तक का विहार—दिग्दर्शन

वि० सं० १९९०

ग्राम, गनर	अन्तर	जैन घर	मंदिर	उपाश्रय	धर्मशाला	दिनांक
सवणा	४	०	१	१	१	ज्ये० कृ० ११
मोटाग्राम	५	१००	३	२	२	१२
फूंगणी	२	२०	१	१	१	०
मेरमांडवाड़ा	३	५०	१	१	१	१३
आमलारी	२	२०	१	१	०	०
दातराई	२	१२५	१	१	१	१४
जीरावला	२	१०	१	१	१	ज्ये० कृ० १५ से शु० १
वरमाण	३	४	१	०	०	२

मेगरीवाड़ा	१।।	२	०	०	०	ज्ये० शु० २
मंडार	३	२५०	२	२	१	३
गूंदरी	१	२	०	०	०	०
आरखी	१	१५	१	१	१	०
पांथावाड़ा	३	५०	१	१	१	४
भाडली	२	०	०	०	०	०
कोटला	२	०	०	०	०	०
जेगोल	१	३	०	०	०	०
दांतीवाड़ा	३	३०	२	१	१	५
रामपुरा	३	०	०	०	०	०
भूतेड़ी	२	१५	१	१	०	६
पालनपुर	५	८००	४	५	२	७-९
जगाणा	२	१५	१	१	२	०
मजादर	४	११	१	१	१	१०
सिद्धपुर	६	२५	२	१	१	११
ऊंझा	५	२५०	३	२	२	१२
ईठोर	२	२५	१	१	१	१
जेतलवासण	२	०	०	०	०	०
देऊ	२	८	१	१	१	१३
तलाटी	२	०	०	०	०	०
मेहशाणा	२	३००	१०	२	५	०
वोरियावी	४	८	१	१	०	१४
जोटाणा	४	५०	१	१	१	०
कटोसनरोड़	४	०	०	०	०	०
भोयणी	३	०	१	१	३शु. ३०से आ०कृ०३	
कूकवा	१	२	१	१	०	०
देत्रोज	१	१२	१	१	०	०
रामपुरा	३	७०	१	२	१	४

अधारी	३	२	०	०	०	आ० कृ० ३
वीरमग्राम	६	२५०	६	७	२	५
वणी	४	९	१	१	०	५
सांवली	२	०	०	०	०	०
ढांकी	४	१	०	०	०	६
लीलापुर	१	१२	१	१	०	०
लखतर	४	११०	१	१	१	७
तलवड़ी	१	०	०	०	०	०
चड़वाणा	२	२	०	०	०	०
वरसाड़ी	२	०	०	०	०	०
सीयाणी	३	३०	२	१	१	८
गागरेटी	२	०	०	०	०	०
भलगामड़ा	२	४	०	०	०	०
लींबडी	२	८००	२	३	१	९
लालीयाद	४	६	०	१	१	०
चूड़ा	१	१५०	१	२	१	१०
राणपुर	५	१५०	१	२	१	११
खोखन्ने	२	२	०	०	०	०
नानीवाव	१	०	०	०	०	०
रवश	२	३६	१	१	०	०
रेफड़ा	१	०	०	०	०	०
सांगलपुर	२	२	०	०	२	०
लाठीदड़	२	२५	१	१	०	१२
सांगवदर	२	६	०	०	०	०
मांड	२	०	०	०	०	०
सांडारतनपुर	॥	४	०	०	०	१३
लोआणा	३	०	०	०	०	०
वावड़ी	१	१	०	०	०	०

उमराला	३	८०	१	१	१	१३
पीपराली	२	७	०	१	०	०
बावली	१	४	०	०	०	०
सणोसरा	१	१०	१	१	१	१४
नवाग्राम	४	८	१	१	१	०
जामणवाव	४	८	१	१	०	१५
पालीताणा	२	५६०	९	५	४५	आषाढ़ शु० १
सिद्धाचलतीर्थ	॥	०	०	०	०	२
	१८१॥	४५५१	७७	६७	८८	एक मास सात दिन

आषाढ़ शु० २ रविवार को चरितनायक ने अपने साधुगण के सहित श्री शत्रुंजयतीर्थ पर्वत* पर चढ़ कर तीर्थाधिराज श्री आदिनाथप्रभु की

श्री शत्रुंजय-तीर्थ

* यह जैनतीर्थों में प्रसिद्ध एवं अति प्राचीनतम तीर्थ है। यह शत्रुंजय नामक पर्वत पर जो इस समय समुद्र की सतह से १९८० की ऊंचाई पर है स्थित है। शत्रुंजय पर्वत तक नगर पालीताणा से पक्की सड़क बनी है। पर्वत के ऊपर लगभग चार मील की ऊंचाई चढ़कर पहुँचते हैं। ऊपर नव टूंक बनी हैं। ये सर्व मिलकर शत्रुंजय-तीर्थ के नाम से विख्यात हैं। इन सर्व टूंकों में सैकडों छोटे-बड़े मन्दिर हैं, जो एक से एक सुन्दर और दर्शनीय हैं। संसार के किसी प्रदेश के किसी तल एवं पर्वत के ऊपर एक ही स्थान पर इतने देवालय बने हों, ऐसा कोई भाग आज तक सुनने में नहीं आया है।

टूंक—१. आदीश्वर भगवान् की टूंक
२. मोतीशाह की टूंक
३. बाला भाई की टूक
४. प्रेमचन्द्र मोदी की टूंक
५. हेमा भाई की टूंक
६. उजम बाई की टूंक
७. साकरशाह प्रेमचन्द्र की टूंक
८. छीपा वसही की टूक
९. चौमुखजी की टूंक

वि० सं० १९७९ की गणनानुसार १२७ बडे मन्दिर, ६७७ देवकुलिकायें ८५९० जिनप्रतिमायें और ८९०६ चरण-युगलियां है।

विशेष वर्णन 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भा० १' में देखिये।

प्रतिमा के दर्शन किये और वन्दना की तथा मोतीशाह की टूंक, बालाभाई की टूंक, अद्भुत बाबा की टूंक (आदिनाथ), मोदी की टूंक, हेमाभाई की टूंक उजमबाई की टूंक, पांच पाण्डव, साकरशाह की टूंक, छीपा की टूंक, चौमुखाजी की टूंक आदि प्रत्येक टूंक और देवस्थान में पधार कर आपश्री ने प्रभु-प्रतिमाओं के दर्शन किये और भावभक्ति-पूर्वक वन्दना की और अपनी यात्रा को सफल बनाया।

२७—वि० सं० १९९० में सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में चातुर्मासः—

पालीताणा नगर में इस वर्ष चार जगह चातुर्मास थे। चारों जगह नित्य व्याख्यान होते थे और कभी २ प्रभावनायें भी वितरित होती थी। यहां यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं है कि श्रोतागण ने चरितनायक के व्याख्यानों का अधिकतम लाभ लिया। उसका कारण एकमात्र यही था कि आपश्री जैसा व्याख्यान गूर्जर-भाषा में दे सकते हैं, वैसा हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं में भी दे सकते हैं। प्राकृत और संस्कृत के तो आप पण्डित हैं ही। भाषाज्ञानी होने मात्र से ही श्रोतागण का समस्त आकर्षण पूर्ण नहीं हो जाता। आपके व्याख्यान में अपेक्षाकृत सरल शब्दों का चयन, अनुभव की बातें और वे सब रोचकता एवं क्रमबद्धता से रहती थीं; फलतः आपश्री के व्याख्यान में सदा भीड़ रही और चातुर्मास भर श्रोतागण ने अत्यन्त ही लाभ लिया। व्याख्यान में आपश्री ने 'उत्तराध्ययनसूत्र' का पांचवें अध्ययन से नवम अध्ययनपर्यंत भावविजयोपाध्यायकृत टीकासहित तथा भावनाधिकार में श्री पद्मविजयगणिकृत 'जयानन्द केवली-चरित्र' का वाचन किया। मालवा, मारवाड, मेवाड़, नेमाड़, गुजरात और कच्छ-प्रांत के अनेक नगर, ग्रामों से श्रावकगण आपश्री के दर्शनों का लाभ और इस कारण से सिद्धक्षेत्र-शत्रुंजय-महातीर्थ के दर्शन का लाभ विचार कर आये और तीर्थाधिराज के तथा आपश्री के दर्शन करके तथा व्याख्यान श्रवण करके अति ही आनन्दित हुये। चरितनायक की सेवा में मुनिराज विद्याविजयजी और सागरानन्दविजयजी दो ही मुनिराज थे। दर्शनार्थ आने वाले सज्जनों में विशेष नामांकित रतलामवासी शाह० रखबाजी धनाजी भण्डारी, कालूजी काकरिया, पन्नालालजी संघवी, खाचरोदवासी फकीरचंद्रजी खीमेसरा, मंदसोर-

वासी फूलचंद्रजी, सुथरी (कच्छ) वासी केशवजी खीमजी आदि तथा जावरा, आहोर के गणमान्य प्रतिष्ठित पुरुष थे। कई-एक श्रावक एवं श्राविकायें एवं परिवार आपश्री के दर्शन, व्याख्यान का लाभ लेने के लिये पालीताणा में आकर पूर्ण चातुर्मास भर रहे थे। चातुर्मास में तीर्थ-सेवा-सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के अनेक पुण्यकार्य आपश्री की निश्रा में आगंतुक श्रावकों ने किये। रात्रि को प्रतिदिन चरितनायक की निश्रा में ज्ञानगोष्ठी होती थी, दर्शक नित्य तीर्थाधिराज तथा अन्य जैन मन्दिरों के दर्शन करते थे, मंदिरों में प्रतिदिन नव २ आंगी और विद्युत्-प्रकाश की क्रमवार व्यवस्था होती थी। दिन में विविध पूजाओं का क्रमवार आयोजन रहता था तथा संगीत एवं नृत्य की रात्रि को प्रभु-प्रतिमा के आगे कार्यक्रम रहता था। कार्त्तिक शु० पंचमी से पूर्णिमापर्यंत एक अट्ठाईमहोत्सव मनाया गया। इस अवसर पर मन्दिरों में पूजाओं, कीर्त्तनों एवं नृत्यों का विशेष आयोजन रक्खा गया था। मार्गशीर्ष कृष्णा १ को चंपानिवास से बड़ी सज-धज से वरघोड़ा निकाला गया, जो नगर के राजपथों में होता हुआ जिन मन्दिरों में दर्शन करता हुआ पुनः चंपानिवास में आकर विसर्जित हुआ था। इस वरघोड़ा की नगर के स्त्री, पुरुष, बच्चों ने अधिक संख्या में तथा बाहर के आये हुए यात्रीगण और दर्शकों ने उपस्थित होकर भारी शोभा बढ़ाई थी। बहुत दिनों तक नगर में और धर्मशालाओं में इस वरघोड़े की शोभा पर ही प्रशंसापूर्ण चर्चायें होती रहीं। तात्पर्य यह है कि पालीताणा में अद्यावधि निकले हुये वरघोड़ों में यह वरघोड़ा उपस्थितजनों की संख्या और शोभोपकरणों की दृष्टि से अद्वितीय रहा था। यह सब चरितनायक की सौजन्यता, मृदुता, पाण्डित्य एवं अनुभवपूर्ण व्याख्यानशैली, जिसके कारण ही आपश्री को व्याख्यान-वाचस्पति कहा जाता है के प्रभाव का परिणाम था। सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में इस प्रकार चरितनायक का चातुर्मास अति लाभ के साथ सानन्द पूर्ण हुआ।

श्री चंपकमाला-चरित्र—रचना वि० सं० १९८५। श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुडाला की ओर से इस वर्ष में प्रकाशित किया गया। पत्र ४७, प्रतिया ६००, आकार सुपर रायल १२ पृष्ठीय।

श्री सिद्धाचलनवाणुं-प्रकारी-पूजा—रचना वि० सं० १९९०। आकार में १६ पृष्ठीय। पृ० ६४। इसको भी इसी वर्ष बागरानिवासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह चतराजी मोतीजी और बड़ी खरसोदनिवासी (मालवा) ओसवालज्ञातीय शाह लक्ष्मीचन्द्रजी धूलचन्द्रजी मागीलाल बोहरा ने छपवा कर प्रकाशित किया।

दोनों पुस्तकें धर्मदृष्टि से कितनी महत्त्व की हैं, इस विषय में यहां कहना व्यर्थ है, क्योंकि जैन-जगत् में 'चंपकमाला-चरित्र' का व्याख्यान घर २ होता है और शत्रुंजय-महातीर्थ के पीछे श्री सिद्धाचलनवाणुंप्रकारी-पूजा पूजाओं में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

श्री कच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ की लघु संघ-यात्रा

वि० सं० १९९०

●

संघपति का परिचय और संघ निकालने का प्रस्ताव

बागरा मरुधर-राज्य के अति-समृद्ध नगरों में एक नगर है। यह जालोर जिले में दासपा ठिकाने का ग्राम है। यहाँ कुल घर लगभग एक हजार हैं। जैन घर लगभग २५० हैं। सर्व ही जैन घर सम्पन्न हैं और अधिकतर बम्बई, मद्रास-प्रान्तों में बड़ी २ फर्मों के मालिक हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अधिक जैन घर लक्षाधिपति हैं। इन लक्षाधिपतियों में प्राग्वाटज्ञातीय शा० प्रतापचंद्र धूराजी का भी प्रतिष्ठित स्थान है। वे जैसे श्रीमंत थे वैसे ही धर्म के लिये व्यय करने में भी सदा तत्पर रहते थे। चरितनायक का चातुर्मास ज्योंही पालीताणा में होना निश्चित हुआ चरितनायक सियाणा से अपना विहार पालीताणा की दिशा में प्रारम्भ करने ही वाले थे कि उस समय सियाणा में शाह प्रतापचंद्र धूराजी ने सूरिजी महा-

राज साहब से अपनी ओर से एक लघु संघ-यात्रा निकालने की शुभ भावना प्रकट की थी। आचार्य महाराज ने उनकी विनती स्वीकार करके चरितनायक को उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिये आदेश दिया था। चरितनायक के चातुर्मास में शाह प्रतापचंद्र धूराजी पालीताणा में आपश्री के तथा तीर्थ के दर्शन करने के लिये पधारे और वहीं श्री कच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ के लिये लघु संघ-यात्रा (शा० प्रतापचंद्र धूराजी की ओर से) निकाले जाने का निश्चय किया गया।

लघु संघ-यात्रा का निकलना

चातुर्मास पूर्ण होते ही अतः वि० सं० १९९० मार्गशीर्ष शु० ११ सोमवार तदनुसार ता० २७ नवंबर सन् १९३३ को शुभ मुहूर्त्त में चरितनायक की अधिनायकता में श्री कच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ* के लिये लघु संघ-यात्रा का प्रारंभ हुआ। इस लघु संघ-यात्रा में तीन मुनि चरितनायक स्वयं, मु० विद्याविजयजी, मु० सागरानंदविजयजी और चार साध्वियां थीं। आहोर, थराद, खाचरोद, रतलाम, बागरा, सियाणा, सांथू, भूति, आदि मालवा-गुजरात के ग्रामों के तीस श्रावक थे। वाहन, मार्ग-रक्षण, भोजन तथा यात्रा-संबंधी अन्य सर्व खर्चा संघपति शा० प्रतापचंद्र धूराजी ने किया था।

लघु संघ-यात्रा-मुहूर्त्त

*प्रवर्त्तमाने दक्षिणायतगते भास्करे मासोत्तममासे मार्गशीर्षमासे शुक्लपक्षे तिथौ ११ घट्य: ४८ । ३ चंद्रवासरे, उत्तरापाढा नक्षत्रे घट्य. १३ । ४६, सिद्धियोगे ववकरणे घट्य: १८।२१ सूर्योदयादिष्टनाट्य: १० । १० एवमादिपञ्चाङ्गशुद्धावत्रदिने कल्याणवतीवेलायां मरुधरप्रदेशान्तरगत श्री बागरानगरवास्तव्य प्राग्वाटज्ञातीय शा० प्रतापचंद्रजी धूराजी सज्जित—श्री कच्छभद्रेश्वरतीर्थलघुसंघयात्रा प्रयाणमुहूर्त्त श्रेष्ठ: ॥ शुभम् ॥

श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा से श्रीकच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ तक का लघु संघ-यात्रा दिग्दर्शन

वि० स० १९९०

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	मंदिर	उपाश्रय	धर्मशाला	दिनांक
घेटी	२	२०	२	२	१	मार्ग शु० ११
लीलीवाय	१॥	०	०	०	०	०
मानगढ़	२	२	०	०	०	१२
गारियाधार	४	६०	१	१	१	१३
वाव	१	०	०	०	०	०
सनोलिया	४	३	०	०	१	१४
लीलिया	२	०	०	०	०	०
सनली	२	२	०	०	१	१५
लालावदर	२	०	०	०	०	०
अमरेली	२	५०	२	२	१	पौष कृ० १ (प्र)
भंडारिया	४	०	०	०	०	१ (द्वि)
जालिया	२	७	०	०	०	०
केरालू	१॥	०	०	०	०	०
पीपलिया	१	०	०	०	०	०
वगसरा	२॥	१२५	१	२	१	२
पीपरीया	१	०	०	०	०	०
माऊझुंझवा	२	७	१	१	१	३
सरदारपुर	१	०	०	०	०	०
हड़मतियो	१	०	०	०	०	०
गलत	३	१०	०	१	०	४
राणपुर	३	३०	१	१	१	०
खारचिया	१॥	१०	१	१	१	५
चाकली	३॥	०	०	०	०	०

जंबूड़ी	१	०	०	०	०	पौ० कृ० ५
हस्तिनापुर	१	०	०	०	०	०
हनुमानधारा	२	०	०	०	०	०
सहसावन	॥	०	२	०	१	६
ऊपरकोट	१	०	१६	१	२	७-८
तलेटी	२॥	०	१	१	१	०
जूनागढ़तीर्थ	२	३००	२	३	३	९-१०
वडाल	३	५०	१	१	१	११
जेतलसर-जंकशन	५	०	०	०	०	१२
जेतपुर	३	४००	१	२	१	०
पीठड़ीया	२	१	०	१	०	१३
वीरपुर	२॥	२	०	१	०	०
गोमटा	२	६	०	१	१	१४
गोंडल	४	४००	१	२	१	१५ से शु० १-२
रीबड़ा	६	३	०	१	०	३
राजकोट	६	८००	१	२	२	४-६
हड़मतियुं	२	०	०	०	०	०
राजगढ़	१	०	०	०	०	०
खोराणा	२	३	०	१	०	७
पीपराली	२	०	०	०	०	०
सींधावदर	२	१	०	१	०	०
पांच द्वारिका	१	०	०	०	०	०
तिथवा	१	७	०	१	१	०
जड़ेसर	२	०	०	०	२	९
कोठारियो	१	०	०	०	०	०
हड़मतियो	१	१०	०	१	०	०
लजाई	२	२०	०	१	१	१०-११
वीरपुर	२	१२	०	१	०	०

सनारो	१	०	०	०	०	पौ० शु० ११
मोरवी	१	७००	१	२	२	पौ.शु.१२से मा.कृ६
वेला	३	९	१	१	१	७-८
रंगपुर	॥	९	०	१	०	०
जेतपुर	३॥	१०	०	१	१	१०
खाचरेची	३	२०	१	१	१	११
वेणासर	३	७	०	१	१	१२-१३
माणावा	९	०	०	१	०	१४
कटारिया	४	२	१	१	१	मा.कृ.१५मा.शु.१
ललियाण	३	१२	०	१	०	२
चौंध	५	१०	१	१	१	३
भचाऊ	२	४०	१	२	१	४
मोटी-चीरई	३॥	७	१	२	०	५
भीमासर	३॥	०	०	०	०	६
वरसामेड़ी	३॥	०	०	०	०	०
अंजार	२॥	२००	३	४	१	७-९
भूवड़	६	२०	१	२	०	१०
भद्रेश्वर तीर्थ और वसई	४	०	०	०	०	मा.शु. ११-१५ से फा० कृ० १ तक
	१७३	३३८७	४५	५४	३५	दो मास

यह लघु संघ पालीताणा से मार्गशीर्ष शु० ११ को रवाना होकर श्री भद्रेश्वरतीर्थ को पूर्ण दो मास में माघ शु० ११ को प्रातः साढ़े नव बजे पहुँचा। इस संघ यात्रा में अपूर्व शान्ति और अपार आनंद रहा। जैसा यात्रा-दिग्दर्शन से ज्ञात होता है यह अमरेली में एक दिन, जूनागढ़तीर्थ में दो दिन, जूनागढ़नगर में तीन दिन, गोंडल में तीन दिन, राजकोट में तीन दिन, लजाई में दो दिन, मोरवी में दस दिन, वेला में दो दिन, वेणा-सर में २ दिन, कटारिया में दो दिन, अंजार मे दो दिन और शेष अन्य

ग्रामों में कई एक दिन, कई अर्ध दिवस और कई कुछ घंटों का विश्राम लेता हुआ निर्दिष्ट तीर्थ भद्रेश्वर में पहुँच कर वहां ६ दिन पर्यंत ठहरा था। इन उपरोक्त ग्रामों में इस संघ का स्थानीय संघों ने अतिशय भक्तिभावनाओं से बड़ी धूम-धाम से प्रवेश करवाया था और खूब आदर-सत्कार किया था। चरितनायक ने भी वहाँ के श्रीसंघों को अपनी अमृतवाणी से धर्मोपदेश देकर संतृप्त किया था। उपरोक्त स्थानों के श्रीसंघों द्वारा जो इस लघु संघ का सत्कार किया गया वह अति प्रशंसनीय होने से यहाँ उल्लेखनीय भी है; अतः पाठकों के पठनार्थ वह यहाँ नीचे दिया जाता है।

अमरेली—यह बड़ौदा-स्टेट का ग्राम है। यहाँ संघ पौष कृ० १ को प्रातः ९ बजे पहुँचा। स्थानीय श्रीसंघ ने आगन्तुक संघ का समारोहपूर्वक स्वागत किया और विविध भोजनों से संघ-सेवा करके संघभक्ति का अनुकरणीय परिचय दिया। संघपति ने स्थानीय संघ से स्वामीवात्सल्य करने की आज्ञा माँगी, लेकिन वह नहीं दी गई।

गिरनारतीर्थ और जूनागढ़—लघु संघ अमरेली से विहार करके मार्ग के छोटे-बड़े ग्रामों में ठहरता हुआ पौष कृ० ६ के रोज दिन के लगभग तीन बजे गिरनारतीर्थ * के सहस्राम्रवन में सकुशल पहुँचा और वहाँ श्री नेमिनाथ भगवान् के चरण-युगल की आनंदपूर्वक सेवा-पूजा की। दूसरे दिन संघ प्रातः छः हजार फीट से भी ऊंचे गिरनार पर्वत पर चढ़कर ऊपर पहुँचा। वहाँ पहुँच कर पांचों टूंकों में बने हुये जिनालयों के दर्शन किये और बड़ी भावभक्ति से सेवा-पूजा की। संघ ऊपर ही दो दिन तक ठहर कर पौष कृ० ९ को प्रातः १० बजे जूनागढ़नगर में उतर कर

गिरनारतीर्थ

* जूनागढ़ नामक नगर काठियावाड़ में राज्य की राजधानी रही है। उस समय वहाँ मुसलमानों का राज्य रहा है। नगर प्राचीन है और प्राचीन एव आधुनिक ढंग के भवन और अट्टालिकाओं से वह सुसज्जित है। नगर का महत्त्व गिरनारतीर्थ से अधिक बढ़ गया है। सहस्रों यात्री प्रति वर्ष गिरनारतीर्थ के दर्शन करने के लिये आते हैं, उन सर्व के ठहरने आदि के लिये नगर में ही प्रबंध है और एतदर्थ अनेक जैन, वैष्णव धर्मशालायें बनी हुई हैं। राजकीय

आगया। यहाँ गिरनारतीर्थ की व्यवस्थापिका कमेटी ने जिसका नाम सेठ० देवचंद लक्ष्मीचंद है धूम-धाम एवं समारोहपूर्वक संघ का स्वागत किया। संघपति की ओर से यहाँ स्वामीवात्सल्य हुआ और धर्म के विविध भागों में संघपति ने अच्छी निधि भेंट की।

गोंडल—संघ अनुक्रम से चलकर वड़ाल आदि नगरों में विशेष मान पाता हुआ पौष कृ० अमावस्या को ग्यारह बजे गोंडल नगर में पहुँचा। यहाँ के जैनसंघ ने आगन्तुक संघ का अति सराहनीय एवं स्मरणीय ढंग से भारी स्वागत किया और विविध व्यंजनों से संघ को प्रीतिभोज दिया। संघपति ने यहाँ सिद्धचक्र की पूजा बनाई, श्रीफल की प्रभावना वितरित की और ऋतु-पक्वान्न की नवकारशी की।

राजकोट—संघ गोंडल से विहार करके पौ० शु० ४ को राजकोट पहुँचा। राजकोट के श्रीसंघ ने भी अति ही प्रेम एवं भक्ति से संघ का स्वागत किया और साग्रह उसे दो दिन तक ठहराया तथा प्रीतिभोज आदि सेवा-प्रकारों से उसकी अति ही भक्ति की। संघपति ने जिनालय में पूजा बनवायी और श्रीफल की प्रभावना तथा प्रत्येक घर एक सेर शक्कर की लाभिणी दी।

मोरवी—संघ अनुक्रम से मोरवी में पौ० शु० १२ को दस बजे पहुँचा। यहाँ के संघ का इतना आग्रह एवं आदर-सत्कार रहा कि संघ को

भवन एक से एक अति विशाल और सुन्दर बने हुये हैं।

जूनागढ़ से पूर्व में अनेक पहाड़ियाँ हैं और वे परस्पर एक-दूसरे से मिली हुई हैं। प्रमुख पहाडी गिरनार नामक है, जिसके नाम के पीछे ही यह तीर्थ गिरनारतीर्थ कहलाता है। समुद्र की सतह से गिरनारपहाडी ३६०५ फी०, योगिनिया पहाडी २५२७ फी०, वेसलापहाडी २२९० फी० और दत्तात्रयी पहाड़ी २७८० फी० ऊची हैं। इन सर्व पर जाने, आने के लिये लगभग १०००० सीढ़ियाँ बनी हैं। गिरनार पहाडी पर १६ जैन मंदिर बने है और उन सबके चारों ओर एक सुदृढ़ प्राकार है। कोट का द्वार जूनागढ़नगर से ३००० फी० की ऊचाई पर है। सर्व मन्दिरों में प्राचीनतम श्री नेमिनाथ भगवान् का जैन मंदिर है। कला की दृष्टि से श्री नेमिनाथ टूँक, राजाकुमारपाल की टूँक और वस्तुपाल तेजपाल की टूँक अधिक-प्रसिद्ध हैं। गिरनारतीर्थ जैनसमाज के प्रसिद्ध तीर्थों में एक तीर्थ है।

विशेष वर्णन के लिये 'श्रीयतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन भा० १' देखिये।

यहाँ १०(दस)दिन ठहरना पड़ा। दसों दिन यहाँ व्याख्यान-वाचस्पति चरित-नायक के व्याख्यानों का एवं दर्शनों का स्थानीय संघ ने अति ही लाभ लिया। प्रतिदिन व्याख्यान में ४०० से ऊपर स्त्री-पुरुष हो जाते थे। संघपति की ओर से व्याख्यान के अनंतर नित्य प्रभावनायें दी गईं।

श्री अमृतविजय जैन पाठशाला और जैन कन्याशाला के विद्यार्थियों एवं बालिकाओं की दोनों संस्थाओं की समितियों के अनुरोध से चरितनायक ने इस स्थिरता में परीक्षायें लीं और संतोषजनक परीक्षा-फल के उपलक्ष में स्थानीय संघ की ओर से उत्तीर्ण बालक, बालिकाओं को योग्य पारितोषिक एवं संघपति की ओर से दोनों संस्थाओं के समस्त कार्यकर्त्ता एवं बालक, बालिकाओं को प्रीतिभोज दिया गया। संघपति ने जिनालय में बड़ी पूजा बनाई और नगर-नवकारशी की।

वेणासर और कटारियातीर्थ—संघ मोरवी से विहार करके अनुक्रम से मार्ग के ग्रामों को स्पर्शता हुआ एवं संघ-भक्ति का लाभ लेता हुआ माघ कृ० १२ के दिन वेणासर में पहुँचा। यहाँ संघ एक दिन ही ठहरा और स्थानीय संघ को संघपति की ओर से स्वामीवात्सल्य दिया गया। वेणासर से ही कच्छ की सीमा प्रारंभ हो जाती है। कच्छ का अरण्य अपनी भयंकरता के लिये भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है। माघ कृ० १४ को संघ ने इस भयंकर अरण्य को पार किया और दिन के साढ़े तीन बजे वह मणाबा नामक ग्राम में पहुँचा। लगातार रेतीले पथ में चलकर साधु एवं साध्वियां तथा श्रावक-गण सभी अत्यधिक थक चुके थे। अतः एक दिन का मणाबा में ही विश्राम किया और दूसरे दिन वहाँ से प्रातः रवाना होकर संघ प्रातः साढ़े दस बजे कटारिया नामक तीर्थ में पहुँचा। तीर्थ की व्यवस्थापिका समिति श्री सेठ वर्द्धमान आणंदजी की ओर से आगन्तुक संघ का अच्छा स्वागत किया गया। संघ यहाँ दो दिन ठहरा। संघपति ने तीर्थ के जीर्णोद्धार-खाते मे १२५) रु० भेंट किया।

कटारियातीर्थ से चल कर संघ अनुक्रम से मार्ग के ग्रामों में होता

हुआ, आदर-सत्कार पाता हुआ माघ शु० ७ (सप्तमी) को अंजार में पहुँचा।

अंजार और श्री भद्रेश्वरतीर्थ में पहुँचना

संघ यहाँ तीन दिन ठहरा और स्थानीय मंदिरों में सेवा-पूजा आदि करके संघ ने अति ही आनन्द प्राप्त किया। यहाँ के स्थानीय श्रे० सोमचन्द्र धारसी ने आगन्तुक संघ की प्रीति-भोजनादि से अवर्णनीय सेवाभक्ति की। माघ शु० १० (दशमी) को संघ यहाँ से रवाना होकर मार्ग में भूवड़ग्राम में एक रात्रि का विश्राम करके दूसरे दिन माघ शु० ११ ग्यारहस को दिन के प्रातः नव बजे श्री भद्रेश्वरतीर्थ पहुँचा। तीर्थ की व्यवस्थापिका समिति श्री सेठ वर्द्धमान कल्याणजी की ओर से आगन्तुक संघ का अतिशय धाम-धूम और समारोहपूर्वक स्वागत किया गया। समारोह में भुज, मांडवी, देसलपुर, अंजार आदि निकटस्थ ग्राम, नगरों के प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ भी स्वागतार्थ सम्मिलित हुये थे। संघ के ठहरने के लिये एक विशाल धर्मशाला में तीर्थसमिति की ओर से सुव्यवस्था की गई थी। अतः संघ वहीं जा कर ठहरा। यहाँ संघ ६ दिन तक ठहरा और कार्यक्रम निम्नवत् रहा।

माघ शु० ११-१२—चरितनायक की तत्त्वावधानता में संघपति ने संघ में सम्मिलित सर्व व्यक्तियों के साथ तीर्थपति प्रभु महावीर-स्वामी और पार्श्वनाथस्वामी की प्रतिमाओं को सुवर्ण-पुष्पों से वधा कर चैत्यवन्दनादि भावस्तवन करके फिर स्नान-मंजन किया और विधिपूर्वक पूजा-भक्ति की। दूसरे दिन द्वादसी को भी इसी प्रकार भावभक्तिपूर्वक चैत्यवन्दनादि करके प्रभु की पूजा-भक्ति की। दोनों दिन संघपति की ओर से तीर्थपति-प्रतिमा की लक्षिनी आंगी रचाई गई और विविध नाट्य, नृत्य, संगीत, स्तवनों से प्रभुभक्ति करके दर्शकों के मनों को मुग्ध किया।

माघ शु० १३-१४—त्रयोदशी को नित्यवत् सेवा-पूजा करके दिन में भूतिग्रामनिवासीनी सुश्राविका नौजीबहिन की ओर से जिनालय में नव-पदपूजा बनाई गई और नवकारशी की गई। चतुर्दसी को दर्शन-पूजन का आयोजन रहा।

माघ शु० पूर्णिमा को प्रातः प्रभु-पूजा आदि का कार्य रहा और दिन में संघपति की ओर से समारोह निकाल कर श्री पंचकल्याणकपूजा बनाई गई और प्रभावना दी गई तथा नवकारशी की गई। इसी दिन तीर्थपति श्री महावीर स्वामी के जिनालय के विशाल मण्डप में संघ ने एकत्रित होकर विविध गान, संगीत के मध्य संघपति शा० प्रतापचन्द्र धूराजी को तिलक करके संघमाला प्रधारण करवाई और जय-ध्वनियों से सब ने अपने आनन्द को प्रकट किया। संघपति ने परिषद् के समक्ष ही तीर्थ के सभी खातों में अलग २ निधियें भेंट कीं और तीर्थ-कार्यालय के कर्मचारी एवं सेवकों को योग्य पुरष्कार आदि देकर उनकी सेवाओं का मान किया।

फाल्गुन कृ० १ को संघ वहाँ और ठहरा और नित्य के अनुसार सेवा-पूजा, रात्रि को स्तवन आदि से प्रभु-भक्ति की। दूसरे दिन फा० कृ० २ गुरुवार को संघ ने तीर्थपति के दर्शन करके भद्रेश्वर से पुनः सिद्धक्षेत्र-पालीताणा की ओर प्रयाण किया।

श्री कच्छभद्रेश्वरतीर्थ से सिद्धक्षेत्र-पालीताणा तक का लघु संघ-यात्रा-दिग्दर्शन

वि० सं० १९९०

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	मंदिर	उपाश्रय	धर्मशाला	दिनांक
भूवड़	४	२०	१	२	०	फा० कृ० २
खेड़ई	२	२	०	०	०	०
चिनुगरो	२	०	०	०	०	०
अंजार	२॥	२००	३	४	१	३-४
भीमासर	५	०	०	०	०	५
मोटीचीरई	३॥	७	१	२	०	६
भचाऊ	३॥	४०	१	२	१	७
सामखीयारी	६	१७०	१	२	१	८-९
जंगी	३	२०	२	१	१	१०

वांडिया	१॥	५०	१	२	१	फा० कृ० ११
सीकारपुर	१॥	२०	१	१	१	१२
पेथापुर	३॥	३०	०	१	०	१४-१५
वेणासर	६	७	०	१	१	फा० शु० १-३
जूनाघाटीला	४	६	०	१	०	४
वाटावदर	३	१०	१	१	१	५
हलवद	४	५०	१	२	१	६
ढवाणा	४	१०	०	१	०	७
कोड़	२	४०	१	२	१	८
रामपुर	३	२	०	०	०	०
करमाद	२	२	०	१	०	९
परमारनी टीकर	४	१०	१	१	१	१०
मूलीरोड़	१	०	०	०	०	०
सायला	६	२००	१	२	१	११
थोरियाली	२	०	०	०	०	०
सुदामणा	२	४५	१	१	१	११
नोली	३	६	०	१	०	१२
पालीयाद	५	११५	१	२	१	१३
बोटाद	५	३००	१	२	१	१४
लाठीदड़	४	२५	१	१	०	३०
लाखेणी	३	२०	१	१	१	चै० कृ० १
नशीतपर	१	०	०	०	०	०
जालिया	१	०	०	०	०	०
कंथारिया	२	४	०	०	०	०
पशेग्राम	१	३०	१	२	१	२
पीपला	१॥	०	०	०	०	०
उमराला	१॥	८०	१	१	१	०
पीपराली	२	१०	०	१	०	३

बावड़ी	१	०	०	०	०	चै० कृ० ३
सणोसरा	१॥	१०	१	१	१	०
सांडेडा	१॥	०	०	०	१	४
ढांकणकुंडो	१॥	०	०	०	०	०
नवाग्राम	१॥	८	०	१	१	१
अंकोलाण	१	०	०	०	०	०
रतनपुर	१	३	०	०	०	०
जामणवाव	१	८	१	१	०	५
पालीताणा	२	५६०	६	५	४५	६
	१२६	२१२०	३४	४६	६६	एक मास चार दिन

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है श्री भद्रेश्वर से लघु संघ चरितनायक की अधिनायकता में पुनः वहाँ से प्रस्थान करके दूसरे मार्ग से अनेक ग्राम, नगरों में कहीं एक दिन, कहीं दो दिन, कहीं कुछ घंटों का विश्राम करता हुआ, आदर-मान पाता हुआ पुनः चैत्र कृष्णा ६ को बुधवार के दिन प्रातः ८ बजे सिद्धक्षेत्र-पालीताणा पहुँचा। पालीताणा में स्थित आनन्दजी कल्याणजी की पीढ़ी की ओर से भारी धूम-धाम के साथ लघु संघ का स्वागत किया गया। दूसरे दिन लघु संघ ने संघपति के सहित श्री शत्रुंजय पर्वत पर चढ़कर नव टूंकों के सर्व जिनालयों के दर्शन किये और बाबा आदिनाथ की अत्यन्त भाव-भक्तिपूर्वक सेवा-पूजा-भक्ति की और अपनी यात्रा का अर्थ सानंद पूर्ण हुआ देखकर सर्व जन अति आनंदित हुये। इस लघु संघ-यात्रा के सानंद पूर्ण होने के हर्ष में संघपति की ओर से स्वामीवात्सल्य किया गया। इस प्रकार श्री भद्रेश्वरतीर्थ के लिये चरितनायक की अधिनायकता में शाह प्रतापचन्द्र धूराजी बागरानिवासी की ओर से निकाली गई यह लघु संघ-यात्रा सानंद एवं निर्विघ्न समाप्त हुई।

श्री भद्रेश्वर से जब लघु संघ लौटा तो पेथापुर और लाखेणी में उसका भव्य स्वागत किया गया था, जिसका वर्णन संक्षेप में यहाँ किया जाना आवश्यक है।

पेथापुर—लघु संघ फा० कृ० १४ को दिन के ११ बजे वहाँ पहुँचा। स्थानीय संघ ने अति भाव-भक्ति से समारोहपूर्वक आगंतुक संघ का स्वागत किया। संघपति की ओर से यहाँ नवकारशी की गई तथा पानी की प्रपा में रु० १००) की भेंट दी गई।

लाखेणी—पेथापुर से लघु संघ चल कर अनुक्रम से चैत्र कृ० १ को लाखेणी पहुँचा। यहाँ स्थानीय संघ की ओर से उसका भारी स्वागत किया गया तथा संघपति की ओर से स्थानीय संघ को प्रीति-भोज दिया गया।

श्री लघु संघ-यात्रा के संघपति ने सिद्धक्षेत्र-पालीताणातीर्थ से जाते समय और श्री भद्रेश्वरतीर्थ से आते समय निम्न ग्राम और प्रसिद्ध नगरों में स्वामीवात्सल्य तथा नवकारशियां कीं।

१ माऊंझूझवा	२ गलत	३ खारचिया	४ जूनागढ़
५ गोंडल	६ मोरवी	७ वेणासर	८ कटारिया
९ भद्रेश्वर	१० पेथापुर	११ लाखेणी	१२ पालीताणा

संघपति की ओर से निम्न ग्राम, नगरों में स्थानीय संघ के प्रत्येक घर को एक-एक सेर शक्कर की लाभिनी दी गई तथा मंदिरों में केसर, धूप, पूजा आदि खातों में योग्य निधियें भेंट की गईं।

१ घेटी	२ गारियाधार	३ अमरेली	४ बगसरा
५ खारचिया	६ गिरनार	७ जूनागढ़	८ वड़ाल
९ गोंडल	१० राजकोट	११ वेला	१२ जेतपुर
१३ खाचरेची	१४ कटारिया	१५ ललियाणा	१६ वोंध
१७ भचाऊ	१८ अंजार	१९ भूवड	२० चीरई
२१ जंगी	२२ वाटिला	२३ वांटावदर	२४ हलवद
२५ ढवाण	२६ कोंढ़	२७ करमाद	२८ परमारनी टीकर
२९ सायला	३० सुदामड़ा	३१ नोली	३२ पालीयाद
३३ वोटाद	३४ लाठीदड़	३५ लाखेणी	

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में २८ वां चातुर्मास और तत्पश्चात् मेवाड़, मालवा की ओर विहार

वि० सं० १९९१-९२

●

लघु संघ-यात्रा का कार्य जब समाप्त हो गया तो लघु संघ-यात्रा के संघपति बागरानिवासी शा० प्रतापचंद्रजी धूराजी और कच्छ मंजलरेलड़ीया-वासी शा० उमरसी देवजी नाथाणी के अत्याग्रह से वि० सं० १९९१ का चातुर्मास भी चरितनायक ने पालीताणा में ही करना निश्चित कर लिया। चातुर्मास के प्रारंभ होने से पूर्व के महीनों में तथा चातुर्मास भर चरितनायक के परम प्रभाव से चंपानिवास में मनोहर धार्मिक वातावरण और दर्शकों का प्रभावकारी आवा-गमन बना ही रहा। इस चातुर्मास में चरितनायक की सेवा में मुनि श्री अमृतविजयजी, विद्याविजयजी, सागरानंदविजयजी, चतुरविजयजी और उत्तमविजयजी पांच योग्य साधु थे। इस स्थिरता में उल्लेखनीय वस्तु यह हुई कि ऊपर लिखे दो प्रतिष्ठित श्रावकों में से शाह प्रतापचंद्र धूराजी की ओर से उपधान-तप का आराधन करवाया गया था। इस तप में १२५ श्रावक-श्राविकायें प्रविष्ट हुई थी। तपस्वियों को शास्त्र की आज्ञानुसार सब प्रकार की सुख-सुविधायें इतनी सुन्दर एवं पूर्णता से तत्परतापूर्वक दी गई थीं कि तप सानंद समाप्त हुआ और उसके उपलक्ष में संघवी प्रतापचंद्रजी धूराजी की ओर से तपस्वियों को तथा अतिथियों को प्रीति-भोजन दिया गया। इस तप का सम्पूर्ण खर्चा शा० प्रतापचंद्रजी धूराजी ने ही किया था।

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में दूसरा २८ वा चातुर्मास वि० सं० १९९१

मालवा-प्रदेश के श्रावकों की विनतियाँ बराबर चरितनायक की सेवा में आ रही थीं कि मालवा-प्रदेश की ओर अब आपश्री विहार करके अपनी दिव्य व्याख्यान-वाणी से मुमुक्षु श्रावकों की शास्त्रश्रवण की जिज्ञासा को पूर्ण करें। निदान आपश्री का पालीताणा से पौष कृ० ६ को प्रातःकाल

चरितनायक उपाध्याय श्रीमद् यतीन्द्रविजयजी महाराज

श्री सिद्धक्षेत्र पालीताणा में चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० १९९०

चंपानिवास के बाहर एक वरघोड़े का दृश्य, श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा

उपधानतप के अवसर पर वि० स० १९९१

में मालवा की ओर विहार हुआ। मालवा की ओर विहार करते समय आपका उद्देश्य श्रीकेसरियानाथतीर्थ के दर्शन करने का था। अतः आपश्री श्रीकेसरियातीर्थ और अन्य छोटे-मोटे तीर्थों के दर्शन और बड़े नगरों में अधिक दिवसों की स्थिरता रखते हुये आषाढ़ शु० ६ को खाचरोद में पधारे। इस विहार का दिग्दर्शन और संक्षेप में वर्णन इतिहास प्रेमियों के लाभार्थ नीचे दिया जाता है।

सिद्धक्षेत्र-पालीताणा से श्री केसरियातीर्थ तक का विहार—दिग्दर्शन

वि० सं० १९९१-९२

ग्राम, गनर	अन्तर	जैन घर	जिनालय	धर्मशाला व उपाश्रय	दिनांक
मोरवड़का	२	१०	१	१	पौष कृ० ६-७
सराण	३	०	०	०	०
पीपलवो	१	१	०	०	०
सोनगढ़	२	१०	१	१	८
पालड़ी	२	३	१	१	०
चमारड़ी	३	३	१	१	९
वला (वल्लभी)	३	१०५	१	२	१०
कानपुर	३	१	१	०	०
मूलधराई	२	५	१	०	११
पाणवी	२	२	०	१	१२
वरवालो	३	२१५	१	२	०
पोलारपुर	२	२	०	१	०
भीमनाथ	।।।	०	०	१	पौ० कृ० १३
तगड़ी	२	२	०	०	०
धन्धुका	३	७५	१	१	१४
खडोल	५	१	०	१	१५

फेदरा	५	३	१	१	पौष शु० १-२
लोदिला	२	२	०	०	०
गुनदी	३	२	०	१	३
कोंठ	५	५०	१	३	४-५
					(मनसुखभाई भगुभाई का संघ)
धोलका	६	७	३	३	६
चलोड़ा	२	२०	१	१	०
बदरखा	३	११	१	१	७
भांत	१॥	१०	१	१	०
कासीन्दरा	२	२५	१	१	८
फतेवाड़ी	४	०	०	०	०
सरखेज (तीर्थ)	॥	२०	१	२	६
अहमदाबाद	४	८२५०	२१६	८७	पौ०शु०१० से फा०शु०१०
रामनगर	२	५	०	०	११
खोरज	३	८	१	२	१२
जासपुर	२	०	०	०	०
सेरीसा (तीर्थ)	२	४	१	१	प्रथम १३
कलोल	३	२००	१	२	द्वि० १३
पानसर (तीर्थ)*	३	२	२	२	फा०शु० १४से चै०कृ० १
नारदीपुर	३	१५	१	२	२
सोजा	२	४०	०	१	३
पुंजापुर	२	२५	१	१	४
माणसा	२	३००	३	१	०
विंदरोल	२	१५	१	१	०
आजोल	३	४०	१	१	५
पिलवाई	३	१०	१	१	६
बीजापुर	२	३५०	६	२	७

* श्री महावीर-जिनालय

के लिये सम्भव है पिछली २-४ शताब्दियों में भी नहीं निकला हो। इस संघ में अनेक गच्छों के लगभग ४०० से ऊपर साधु, साध्वी एवं आचार्य संमिलित थे और भारत के समस्त भागों से लगभग २५००० (पच्चीस सहस्र) जैनजन सम्मिलित हुये थे। इस संघ की विशालता, शोभा, समृद्धि देखने ही योग्य थी। संघ में १०० मोटर एवं २२०० बैलगाड़ियां थी। संघ की रक्षार्थ ३०० राजकीय अश्वारोही एवं पायदल-रक्षक थे। यह संघ ४५ दिवस संघ-यात्रा करके पुनः अहमदाबाद लौटा था। चरितनायक के गच्छ के मुनिप्रवर हंसविजयजी, कल्याणविजयजी और तत्त्वविजयजी भी इस संघ में सम्मिलित हुये थे। उक्त तीनों मुनिराजों से चरितनायक की विहार के अन्तर में कोंठग्राम में भेंट हुई थी और चरितनायक तथा इनके साथ के साधुओं को भी उक्त संघ की शोभा, समृद्धि देखने का अवसर प्राप्त हुआ था।

अहमदाबाद में इतने दिनों तक ठहरने का कारण यह था कि वहाँ श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी के करकमलों से गुरुणीजी श्री भावश्रीजी के आश्रय में रहने वाली लीला बहिन की माघ शु० पूर्णिमा को दीक्षा होने वाली थी और सूरिजी महाराज साहब की भी चरितनायक को उस दीक्षोत्सव पर वहीं ठहरने की आज्ञा थी। निदान माघ० शु० पूर्णिमा को शुभ मुहूर्त्त में धाम-धूम एवं समारोह सहित लीला बहिन को भागवती-दीक्षा श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी ने प्रदान की और दीक्षासम्बंधी समस्त विधि-विधान चरितनायक ने करवा कर लीला बहिन को मुक्तिश्री नाम दिया और उसको श्रीगुरुणीजी भावश्रीजी की शिष्या बनाई। तत्पश्चात् एक मास आप फिर वही विराजे।

यहाँ लीला बहिन का जीवन कुछ पंक्तियों में कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। इसका जन्म वि० सं० १९८१ में कुक्षी (मालवा) में हुआ था। इसके माता-पिता सोनी ज्ञाति के थे। पिता की मृत्यूपरांत इसकी विधवा माता गंगाबाई ने इसको चार वर्ष की वय में श्री भावश्रीजी को अर्पित कर दी थी। यह साध्वियों के सहवास में ही रहती और उनकी देख-रेख में ही इसका सांस्कृतिक एवं बौद्धिक उत्थान वय की बढ़ती के साथ २ होता रहा। परिणाम यह आया कि इसने अव्रत अवस्था में समस्त साध्वी-क्रियाओं का

अध्ययन और उनका सम्यक् प्रकार से पालन करना सीख लिया तथा जीव-विचार, नवतत्त्व जैसे उपयोगी विषयों का अध्ययन और संस्कृत एवं व्याकरण का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। साथ में हिन्दी का अभ्यास भी होता रहा। आज यह साध्वी विद्या एवं वाचनकला की दृष्टियों से सम्प्रदाय की प्रमुख साध्वियों में है और सम्प्रदाय को इनसे बड़ी २ आशायें हैं।

आपश्री पुनः अहमदाबाद से फा० शु० १० को रवाना हुये और छोटे-बड़े ग्राम, नगरों में होते हुये चैत्र शुक्ला अष्टमी को श्रीकेसरियाजी-तीर्थ को पहुँचे। इस विहार में भी आपको कटु अनुभव और कष्टों का सामना करना पड़ा। मार्ग के ग्रामों में प्रायः जैन घरों की कमी और वे भी अगर संकुचित और अनुदार वृत्ति तथा श्रद्धा, भक्ति और विवेक से शून्य मिल जांय तो विरक्त त्यागी एवं साधुओं को कितना विहार, आहार में कष्ट होता है, पाठक सहज अनुभव कर सकते हैं। श्रीकेसरियातीर्थ को पहुँच कर चरितनायक और साथ के साधुगण ने बड़ी ही भक्ति-भाव से तीर्थपति भगवान् आदिनाथ की प्रतिमा के दर्शन किये और वंदन करके बड़े ही आनंदित हुये। वहाँ आपश्री चार दिवस ठहरे और चैत्र शु० १२ को वहाँ से विहार करके खाचरोद की ओर पधारे।

चतुर्विंशति-जिनस्तुतिमालाः—रचना वि० सं० १९९०। क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० २४। यह श्री महोदय प्रि० प्रेस, भावनगर से कुक्षी-वासिनी श्राविका लीलाबाई की ओर से इस वर्ष वि० सं० १९९१ में प्रकाशित की गई थी। इस छोटी-सी पुस्तिका में संस्कृत भाषा में सुन्दर, कोमल-कांत पदावलियों में चौवीस ही वर्तमान जिनेश्वरों के चैत्यवंदन हैं। पुस्तक ग्रहणीय एवं भजनीय है।

श्रीयतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन तृतीय भागः—रचना वि० सं० १९९१। क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृष्ठ सं० २०८। इसको बागरावासी शाह प्रतापचंद्रजी धूराजी ने श्री महोदय प्रेस, भावनगर से इसी वर्ष वि० स० १९९१ में छपवाकर प्रकाशित किया था। यह पुस्तक इतिहास एवं पुरातत्त्व के विषयों के प्रेमियों के लिये संग्रहणीय और पठनीय है। इसमें सिद्धक्षेत्र-

पालीताणा से गिरनार, मोरवी और कच्छ-भद्रेश्वरतीर्थ तक के मार्ग के समस्त छोटे-बड़े ग्रामों का घर, मंदिर, धर्मशाला आदि की संख्या और विशेष ऐतिहासिक परिचयों के साथ क्रमशः वर्णन दिया गया है।

श्रीराजेन्द्रसूरि-अष्टप्रकारीपूजाः—रचना सं० १६६१। आकार फुलस्केप १६ पृष्ठीय। पृष्ठ सं० ३८। इसको इसी वर्ष वि० सं० १६६१ में आहोरनिवासी शाह केराजी के पुत्र भानाजी की धर्मपत्नी श्रीमती श्राविका धापुबाई ने महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर से प्रकाशित करवाई। मन्दिरों में यह पुस्तक रखने योग्य है।

श्री केसरियातीर्थ से डूंगरपुर, बांसवाड़ा, राजगढ़ होकर खाचरोद तक का विहार-दिग्दर्शन

वि सं १९९२

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	जिनालय	धर्मशाला और उपाश्रय	दिनांक
खेरवाड़ा	५	१	१	१	चै० शु० १३
वोकला	३	०	०	०	१४
वींछीवाड़ा	५ दि०	०	०	०	३०
चूंडावाड़ा	३	०	०	०	वै० कृ० १
नागफणी (तीर्थ)	१॥	०	१	१	०
कणावा	४ दि०	५	०	०	०
ओडू	२	०	०	०	०
भुवनेश्वर	॥	०	०	१	२
थाना	२दि०	१२	१	०	०
डूंगरपुर	२	६०	४	१	३-४
वीरपुर	१	०	०	०	०
खेड़ा	२	०	०	०	०
नरेड़ी	३	०	०	०	५
पुनाली	२	१२	१	१	०

वनकीड़ा	४	९५	१	१	वै० कृ० ६
पूंजापुर	३	१८	१	१	७
वड़ोदा (तीर्थ)	१	५०	२	१	८
आशपुर	२	३८	१	१	९
मोगड़ा	३	०	०	०	०
साबरा	४	१५	१	१	१०
वेणेश्वर	२	०	०	०	०
लुहारिया	३दि०	७०	१	१	११
भीमपुर	१दि०	८	१	१	०
चंदुनो नानोगुडो	५ दि०	१०	१	१	१२
बांसवाडा	६	२०	३	२	१३से१५ (अमावस्या)
खांधु	५दि०	८०	१	१	वै० शु० १
चन्द्रगढ़	३॥	०	०	०	२
वाजना	६	२४	१	२	३ से ५
अमरपुरा	४	१	०	०	६
खवासा	४	१६	१	१	७ ८
बामन्या	१॥	५	०	०	०
पेटलावद	३।	८०	२	२	९-१०
रामपुरिया	१॥	२	०	०	०
वणी	१	४	०	०	०
बोरासा	४	०	०	०	११
झकणावदा	३	४२	१	१	१२ से ३०(पूर्णिमा)
सोनगढ़	३	०	०	०	ज्ये० कृ० १
राजगढ़	२	१७४	५	३	२ से ६
मोहनखेडा (तीर्थ)	१	०	१	१	०
जोलाणा	३॥	०	०	०	०
वरमंडल	४	१७	१	१	७
राजोद	३	३१	२	१	८-९

झींझोटा	१	०	०	०	ज्ये० कृ० ९
तलगारो	४	१०	१	?	१०
छत्रीवरमावर	१॥	६	०	०	०
धोलका	२॥	०	०	०	११
वड़ोदियो	३॥	०	०	०	०
मांगरोल	२॥	०	०	०	०
करमदी (तीर्थ)	१॥	०	२	२	१२-१३
रतलाम	॥	८३६	१२	२	१४ से शु० ४
वांगरोद (तीर्थ)	४	४	१	१	प्रथम ५
भुपांसा	३	०	०	०	द्वितीय ५
खाचरोद	२	१८७	१०	५	६
	१४९।	१९३३	६१	३९	एक मास तेवीस दिन

श्री केसरियातीर्थ-धुलेवा से डूँगरपुर तक विकट पर्वत, दुर्गम घाटियाँ और भयावह जंगलों का तांता-सा है। पैदल और वह भी पदरक्षिकाविहीन विहार करने वाले साधुओं के लिये, जिनके साथ कोई अंगरक्षक नहीं होता अवश्य कष्टप्रद तो होता ही है; परन्तु उनका तपसी-जीवन और कष्ट-सहिष्णुता की शक्ति इन सर्व विषमताओं में भी उनमें तीर्थ-दर्शन, लोकोपकार-हित विहार-क्रिया और आचार-पालन-प्रियता और धर्म की दृढ़ता को बढाती हुई एक दिव्यरुचि और लग्न बनाये रखती है, जो सच्चे, त्यागी और विरक्त साधुओं में प्रमुख गुण समझे जाते हैं। कष्ट-सहिष्णुता का गुण जिस साधु में कम होगा वह उतना ही आचारशिथिल और प्रपंची होगा।

डूंगरपुर से आगे मार्ग सुगम और सुखावह है। डूंगरपुर से वांस-वाड़ा तक के मार्ग में भी यद्यपि छोटे २ ग्राम हैं फिर भी उनमें आहार, पानी का संयोग और विश्राम की सुविधा प्रायः मिल ही जाती है। वांस-वाड़ा से आगे साधु, साध्वियों के लिये योग्य सुविधावाले ग्राम हैं। चरित-नायक वांसवाड़ा से राजगढ़ आदि नगरों, छोटे-बड़े ग्रामों में होते हुये मध्य भारत के प्रसिद्ध शहर रतलाम में ज्ये० कृ० १४ को पधारे। यहाँ के श्री

चरितनायक उपा० श्रीमद्‌यतीन्द्रविजयजी महाराज

खाचरोद चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० १९९२

संघ ने आपश्री का स्वागत अति ही भव्यता एवं भाव-भक्तिपूर्वक किया। यहाँ आपश्री पाँच दिवस तक ठहरे और अपने दिव्य एवं सारगर्भित धर्मोपदेशों से स्थानीय श्रोतागण एवं दर्शनार्थ आये हुये बाहर के दर्शकों का चित्त हर्षित किया। वहाँ से विहार करके ज्येष्ठ कृ० ६ को खाचरोद में पधारे। खाचरोद के श्रीसंघ ने चरितनायक का नगर-प्रवेश अति धूम-धाम एवं समारोहपूर्वक करवाया। इस वर्ष का चातुर्मास चरितनायक का यहीं हुआ।

२९—वि० सं० १९९२ में खाचरोद में चातुर्मासः—

इस वर्ष चरितनायक की निश्रा में यहाँ वयोवृद्ध मुनि श्री दानविजयजी, मुनि श्री विद्याविजयजी, मुनि श्री सागरानन्दविजयजी और मुनि श्री उत्तमविजयजी चार साधुवर थे। व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययनसूत्र' का प्रथम-द्वितीय अध्ययन (सटीक) और भावनाधिकार में शीलगणिरचित 'श्री विक्रमादित्यचरित्र' (पद्यबद्ध) के तीन सर्गों का वाचन किया था। व्याख्यान-परिषद् में श्रोतागण की नित्य अच्छी उपस्थिति रहती थी और विशेष अवसरों में शक्कर और श्रीफलों की प्रभावनाओं का सराहनीय क्रम रहा था। अजैन बन्धु भी नित्य अच्छी संख्या में चरितनायक के व्याख्यानों को श्रवण करने के लिये नियमित रूप से आते थे। पर्यूषणपर्व को चरितनायक की सेवा में आराधने की भावना से बाहर के नगर, ग्रामों से लगभग डेढ़ सहस्र (१५००) स्त्री, पुरुष और उनके बालक, बालिकायें उपस्थित हुई थीं। नित्य व्याख्यान-परिषद् में ठाट और शोभा जमी रहती थी। बाहर से आये हुये इन सधर्मी बन्धुओं की सेवा का लाभ सेठ टेकचंद्रजी बागरेचा और सेठ कालूरामजी नागदा ने सोत्साह एवं श्रद्धापूर्वक प्रीति-भोजन आदि देकर लिया था।

उपधानतपाराधन—इस तप का आयोजन और इसकी सम्पूर्ण व्यवस्था और इसके व्यय का सम्पूर्ण भार सेठ कालुजी चम्पालाल नागदा, सेठ टेकचन्द्रजी इन्द्रमल बागरेचा ने भक्ति-भावपूर्वक वहन किया था। वह तप पैंतीस दिवसपर्यंत रहा था। इसमें भिन्न २ ग्राम, नगरों के १०२ श्रावक और श्राविकाओं ने समुहूर्त्त प्रवेश किया था। उनके लिये सर्व प्रकार की भोजन

और तपाराधन की सुयोग्य सुविधा और व्यवस्था थी। तप करवाने वाले उपरोक्त दोनों श्रेष्ठियों ने तपस्वी एवं तपस्विनियों की तन, मन, धन से ऐसी सेवा एवं सुश्रूषा की थी कि सर्व लोग उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते थे। इनकी ओर से ही कार्त्तिक शु० ६ से १३ तक अष्टाह्निका-महामहोत्सव, रथयात्रा का वरघोड़ा, उपधानमाला का वरघोड़ा आदि का समारोहपूर्वक धूम-धाम से आयोजन किया गया था। ऐसा उपधानतप और वह इस शोभा एवं सज्जा से आज तक खाचरोद में नहीं हुआ था। चरितनायक ने अति सराहनीय ढंग से उपधानतप का आयोजन पुष्कल द्रव्य का व्यय करके उठाने वाले उपरोक्त दोनों सद्गृहस्थों की सार्वजनिक विशाल सभा में भूरि २ सराहना की और उपधानतप के कराने वालों को उपधानतप करवाने से मिलने वाले फल का व्याख्यान किया।

दर्शकगण—इस चातुर्मास में बाहर के ग्रामों से कुल मिलाकर लगभग ३५००(साढ़े तीन सहस्र)दर्शकगण आये थे। उपरोक्त दोनों श्रेष्ठियों ने तन, मन, धन से उनकी सेवा-सुश्रूषा करके भारी यश प्राप्त किया था। दर्शकगण इन निम्न ६८ ग्राम, एवं नगरों से आये थे।

रतलाम	जावरा	मन्दसौर	महेन्द्पुर	उज्जैन
इन्दौर	बड़नगर	राजगढ़	राजोद	झाबुआ
पारा	थांदला	खवासा	अमला	देशाई
पेटलावद	किशनगढ़	रंभापुर	सीतामऊ	संजीत
कुकड़ेश्वर	नीमच	मलवासा	मुंजाखेड़ी	ऐलची
मामटखेड़ा	पीपलोदा	रूणीचा	मकरावन	कुशलगढ
धानासूता	वरवणो	खेड़ावदा	कमेड़	खंडोली
ढ़ीकवो	शेरपुर	पीपरखूटो	भेसला	कारूड़ो
वरणावदा	ईंगणोद	वर्डिया	लसूड़िया	कचनारा
रोजाना	सरसी	नामली	सैलाना	ऊमरण
मेघनगर	वासवाड़ा	हातोद	पचलाना	खरसोद (बड़ी)
चीरोला (वड़ा)	वारोदा वड़ा	अजड़ावदा	उन्हेल कस्वा	वोरखेड़ा

धराड़ सम्मेतशिखर सेंमलिया बांगरोद सहूगढ़
आलीराजपुर बम्बई कच्छमंजलरेडिया ।

अन्य पुण्यकार्य जैसे कच्छमंजलरेडियावासी शा० ऊमरसी देवजी नाथाणी ने व्याख्यान वाचने के लिये बैठने वाले साधु एवं आचार्य के लिये एक सुन्दर सिंहासन करवा कर श्री सौधर्मवृहत्तपोगच्छीय जैनपौषधशाला में स्थापित किया ।

१ खाचरोदवासी श्रे० कालूरामजी नागदा २ चंपालालजी सूराणा ३ सागरमलजी सेठिया ४ जीतमलजी कठलेचा ५ खूबचन्द्रजी डूंगरवाल इन पांचों श्रेष्ठियों ने २४"×३०" आकार के सुन्दरतम पांच चित्र १ आ० श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी २ श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी ३ श्रीमन् मोहन-विजयजी ४ श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी और ५ व्याख्यान-वाचसपति श्रीमद् विजय-यतीन्द्रसूरिजी के करवाकर उपरोक्त जैन पौषधशाला में ही शुभ मुहूर्त्त में स्थापित किये ।

चरितनायक के व्याख्यानों से उत्साहित होकर तथा उनके सदुपदेश से प्रेरित होकर स्थानीय खाचरोद-श्रीसंघ ने सातों क्षेत्रों के निर्वाहार्थ 'श्री ऋषभदेवजी टेकचंद्र' नामक एक पीढ़ी स्थापित की ।

उपरोक्त सुकार्यों के कारण खाचरोद का चातुर्मास उल्लेखनीय एवं सराहनीय रहा और इस प्रकार अनेक पुण्य कार्यों के करवाने के साथ समाप्त हुआ । मार्गशीर्ष शु० १० को चरितनायक ने अपने साथी साधुओं के साथ में प्रभातवेला में प्रातः समय विहार किया । विहार जिस समय हुआ था, उस समय चरितनायक के दर्शनार्थ समस्त जैन, अजैन जनता लगभग पांच सहस्र(५०००)की संख्या में उमड़ पड़ी थी । दृश्य जनसागर-सा प्रतीत होता था । धाणोदा एक छोटा-सा ग्राम है । आपश्री खाचरोद से चलकर दो कोस के अंतर को पार करके वहाँ आकर ठहरे थे । साथ में खाचरोद के अनेक वृद्ध स्त्री और पुरुष और छोटी वय के लड़के आदि भी थे; अतः निदान आपश्री को दो कोस के अंतर पर ही वहीं ठहरना पड़ा ।

चातुर्मास के पश्चात् खाचरोद से अन्य ग्रामों में विहार और पुनः खाचरोद में पदार्पण तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९९२-९३

ग्राम, गनर	अंतर	जैन घर	मंदिर	धर्मशाला व उपाश्रय	दिनांक
धाणोदा	२	१	०	०	मार्ग० शु० ११
वरड़ावदा	२॥	३०	१	२	१२ से पौ० कृ० २
लसूड़िया	२॥	२	१	१	३-४
बड़िया	२॥	२	१	१	५-६
हिंगोरिया	१॥	०	०	०	०
मांगरोल	१	०	०	०	०
चौकी	॥	०	०	०	०
ईंगणोद (तीर्थ)	॥।	२२	२	२	७
वनवाड़ो	१॥	०	०	०	०
रोजाणा	१॥	६	१	१	८-९
मामटखेड़ा	२	१०	१	०	०
जावरा	२	३६५	१०	३	पौ० कृ० १० से माघ शु० ९
नीमण	२	०	०	०	०
सरसी	२	६	१	१	१० से १२
गुणावद	१	०	०	०	०
सेमलिया (तीर्थ)	२	१५	१	१	१३-१४
धुवांसा	३	१	०	०	१५
रतलाम	३॥	८३६	१२	६	फा० कृ० १ से चै० कृ० १०
जड़वासा छोटा	२	०	०	०	०
जड़वासा वड़ा	१	०	०	०	११
मलवासा	१	५	०	०	०

करणवासा	२	०	०	०	चै०कृ० ११
भुंवासा	१	०	०	०	१२
खाचरोद	२	१८७	१०	५	१३ से वै०शु० ५
	४२॥।	१४९४	३१	२३	चार मास २५ दिन

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि मार्ग शु० १० को चरितनायक ने विहार खाचरोद से कर दिया था। वहाँ से आपश्री धाणोदा होकर मार्ग० शु० १२ को बरड़ावदा पधारे। बरड़ावदा के श्रीसंघ ने चरितनायक का अच्छा स्वागत-समारोह किया। आपश्री वहाँ ५ (पांच) दिवसपर्यंत विराजे और मुमुक्षुओं एवं भव्यजीवों को शास्त्रोपदेश देकर उन्हें संतुष्ट किया। पौ०कृ०२ को वहाँ से विहार करके कहीं दो दिन, कहीं एक दिन और कहीं कुछ घटों का विश्राम लेते हुये अनुक्रम से जावरा पधारे और वहाँ पौ० कृष्णा १० से माघ शु० ९ तक अर्थात् डेढ़ मास पर्यंत विराजे। आपके व्याख्यानों का यहाँ अच्छा ठाट रहा। नित्य आपश्री के व्याख्यान का जैन, अजैन सैकडों स्त्री और पुरुष लाभ लेते थे। जावरा के सर्वसंघ की ओर से चरितनायक की अधिनायकता में श्री ईंगणोंदतीर्थ के लिये नगर के अधिकांश जैन परिवारों का एक भारी संघ निकाला गया था। ईंगणोंदतीर्थ में वह संघ तीन दिवस पर्यंत ठहरा और तत्पश्चात् पुनः वह जावरा लौट आया। माघ शु० ९ को आपश्री ने जावरा से रतलाम के लिये विहार किया और मार्ग में पड़ते ग्रामों में ठहरते हुये, धर्मोपदेश देते हुये फाल्गुण कृ० १ को रतलाम में पधारे। रतलाम के श्रीसंघ ने आपश्री का अति भव्य स्वागत किया। वहाँ आपश्री चैत्र कृ० १० तक अर्थात् १ मास और ६ दिन विराजे। यहाँ भी आपश्री के व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा। रतलाम में खाचरोद के कुछ चुने हुये प्रतिष्ठित श्रावक वहाँ के श्रीसंघ की ओर से भेजे हुये आपश्री की निश्रा में उपस्थित हुये। उन्होंने सविनय वंदना करके निवेदन किया कि खाचरोद के श्रीसंघ की भावना आपश्री की निश्रा में श्री मण्डपाचलतीर्थ की यात्रा करने की है, अतः आपश्री सह साधुमण्डल वहाँ पधारें और खाचरोद-संघ की इच्छा को पूर्ण करें। चरितनायक ने विनती स्वीकार कर ली और रतलाम से विहार

करके चै० कृ० १३ को खाचरोद पधारे। उसी दिन 'श्री महावीर-जयन्ती' चरितनायक की तत्त्वावधानता में बड़े ठाट एवं शोभा से मनाई गई।

श्री मण्डपाचलतीर्थ की संघ-यात्रा

वि० सं० १९९३

●

निश्चित तिथि वि० सं० १९९३ वै० शु० ६ सोमवार को चरितनायक की अधिनायकता में श्रीमण्डपाचलतीर्थ* के दर्शन करने के लिये खाचरोद से संघ रवाना हुआ और एक कोस के अन्तर पर मड़ावदा नामक ग्राम में जा कर ठहरा। संघ ने श्री महावीर भगवान् की प्रतिमा के दर्शन किये और पूजा-भक्ति की तथा खाचरोदवासी शा० प्रतापचंद्रजी चौहाण की ओर से श्री महावीर-पंचकल्याणकपूजा बनाई गई और नवकारशी भी उनकी ओर से ही की गई। तत्पश्चात् संघ वहाँ से रवाना हुआ और ग्राम-ग्राम विश्राम लेता हुआ ज्ये० कृ० १ को धामणदा में पहुँचा और वहाँ विश्राम लिया। धामणदा के स्थानीय संघ ने आगन्तुक संघ का सहरानीय स्वागत किया और विश्राम के लिये सर्व सुविधायें प्रस्तुत कीं। धामणदा से संघ सीधा श्रीमण्डपाचलतीर्थ

संघयात्रा मुहूर्त्त

श्री विक्रम संवत् १९९३ वर्षे शालिवाहन शाके १८५८ प्रवर्त्तमाने उत्तरायणगते भास्करे मासोत्तममासे वैशाखमासे शुक्लपक्षे ६ तिथौ घट्यः ६।४१, चन्द्रवासरे पुनर्वसुनक्षत्रे घट्यः ४१।४, धृतियोगे घट्यः २६।२६, तैतिलकरणे घट्यः ४।३, सूर्योदयादिष्टनाड्य ०।५, लग्ने० १३।४।५६ एवमादिपञ्चाङ्गशुद्धावत्रदिने कल्याणवतीवेलायां श्री खाचरोदसंघ सुसज्जित मण्डपाचलतीर्थयात्रासंघस्य प्रयाण मुहूर्त्तं श्रेष्ठ : शुभमिति।

को ही जाने को था, परन्तु देशाई और राजगढ़ के श्रीसंघों की अति विनती और अत्याग्रह से यात्रा-क्रम में परिवर्त्तन करना पड़ा और संघ धामणदा से देशाई गया। देशाई के श्रीसंघ ने आगन्तुक संघ का अति ही भाव-भक्ति-पूर्वक सेवा, सत्कार किया एवं नगर-प्रवेश करवाया। देशाई से संघ लेड़ग्राम मे विश्राम लेकर के सरदारपुर होकर राजगढ़ पहुँचा। राजगढ़ में पाच जिनालय हैं, संघ ने चरितनायक के साथ में पाचों मदिरों के दर्शन किये और भाव-भक्ति से चैत्यवंदन किये। फिर पूजा के समय श्रद्धापूर्वक पूजायें कीं।

राजगढ़ से दूसरे दिन ज्येष्ठ कृ० ५ मी को संघ ने स्थानीय अनेक प्रतिष्ठित जैन स्त्री और पुरुषों के साथ श्री मोहनखेडातीर्थ की यात्रा की। श्री आदिनाथ और श्री पार्श्वनाथ-प्रतिमाओं के दर्शन किये और सेवा-पूजा अति भाव-भक्तिपूर्वक की तथा गुरु-समाधिमंदिर, जिसमें श्री विजयराजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराज की कलापूर्ण साक्षात्-सी प्रतिमा प्रतिष्ठित है के दर्शन किये और अपनी यात्रा को संघ ने इस प्रकार सफल किया। राजगढ़ से संघ रवाना होकर भोपावरतीर्थ और अमीझरातीर्थ के दर्शन करता हुआ धार, तलवाड़ा और नालछा में एक-एक दिन का विश्राम लेता हुआ ज्येष्ठ कृ० ११ को श्री मराडपाचलतीर्थ को सकुशल पहुँचा। संघ ने पहुँच कर तीर्थपति के दर्शन किये और अतिशय भाव-भक्ति से प्रभु-पूजन, कीर्त्तन, चैत्यवंदन-क्रियायें कीं। दिन में पूजा बनाई गई और रात्रि में आंगी रचवाई गई और सुन्दर रोशनी करवाई गई। संघ वहाँ इसी प्रकार नित्य सेवा-पूजा और रात्रि में आगी-रचना करवाता हुआ पांच दिन ठहरा। तीर्थनाथ श्री शातिनाथ और श्री सुपार्श्वनाथ की प्रतिमायें इतनी चित्ताकर्षक हैं कि वे भक्तों को अपूर्व भाव देने वाली एवं भक्ति-भावों का संचार करने वाली हैं।

इस सघ में खाचरोद के स्त्री, पुरुषों के अतिरिक्त जावरा, रतलाम, मन्दसोर. ईंगणोद, लखूडिया, नागदा, बरड़ावदा, चारोदाबड़ा, राजगढ़, रींगनोंद खवासा, उज्जैन, इन्दौर, बडनगर आदि अन्य नगर, ग्रामों से भी श्रावक श्राविकायें सम्मिलित हुई थीं। संघ के मार्ग में जितने भी ग्राम, नगर पड़े उनमें उनकी जैन जनगणना के अनुसार संघ की ओर से शक्कर और श्रीफलों

की प्रभावनायें दी गईं, स्वामीवात्सल्य किये गये और चरितनायक के व्याख्यान हुये, मंदिरों में विविध पूजायें बनवाई गईं, आँगी-रचनायें करवाई गईं। यद्यपि दिवस गर्मियों के थे, फिर भी गुरु एवं देव की कृपा और पावन प्रताप से मार्ग में कोई कष्ट, बाधायें उत्पन्न नहीं हुईं और संघयात्रा सानन्द सफल हुई। मण्डपाचल से संघ विसर्जित हो गया और सर्व जन अपने२ ग्राम एवं पुरों को लौट गये और तब चरितनायक का विहार कुक्षी की ओर हुआ।

कुक्षी की ओर विहार तत्पश्चात् लक्ष्मणी-तीर्थादि के दर्शन वि० सं० १९९३

खाचरोद का संघ जब श्री मण्डपाचलतीर्थ को पहुँचा था ठीक उसी समय कुक्षी के श्रीसंघ ने श्री चौधरी रूपचंद्रजी और सौभाग्यचंद्रजी को चरितनायक से कुक्षी में चातुर्मास करने के लिये विनती करने को माण्डु भेजा। चरितनायक ने कुक्षी में चातुर्मास करने की विनती को स्वीकार करके ज्येष्ठ शु० १ को कुक्षी के लिये प्रयाण किया। पार्वतीय प्रदेश में होकर एवं विकट तथा विषम मार्गों में चलकर चरितनायक छोटे-छोटे ग्रामों में होते हुये ज्येष्ठ शु० ७ को कुक्षी में पधारे। चरितनायक का स्वागत किया गया और धूम धाम के सहित नगर प्रवेश करवाया गया। चरितनायक कुक्षी में चार दिवस विराजे और व्याख्यानादि से संघ की शास्त्रश्रवण की पिपासा को शांत किया। कुक्षी से ज्येष्ठ शु० १२ को चरितनायक अपनी साधुमण्डली एवं कुक्षी के कतिपय श्रावक और श्राविकाओं के साथ श्रीतालनपुरतीर्थ* को पधारे जो कुक्षी से सवा कोस के अन्तर पर है। वहाँ तीर्थपति के दर्शन किये और वहाँ से चिकलीढ़ोला, नादुरी (नानपुर) होकर आलीराजपुर में पधारे और वहाँ ज्येष्ठ शु० १४ से आषाढ़ कृ० २ तक विराजे।

तालनपुर तीर्थ

कुक्षी (नेमाड) से २॥ मील के अन्तर पर यह एक प्राचीन देवस्थान है। इसका प्राचीन नाम तुंगियापत्तन या तारणपुर रहा है। यह स्थान अति प्राचीन है। ऐसा यहाँ भूमि को एवं खण्डहरों को देखकर जाना जा सकता है। वि० सं० १९१६ में भीलाला ज्ञाति के किसी कृषक के खेत से एक भूमिगृह में से पच्चीस जिन प्रतिमायें अति प्राचीन और अति सुन्दर निकली थीं। जब इसकी सूचना कुक्षी के श्री जैन संघ को मिली तो प्रतिमाओं को

आलीराजपुर से ढाई कोस के अन्तर पर श्री प्राचीन तीर्थ लक्ष्मणी है। यह तीर्थ किसी समय में अति प्रसिद्ध और मंदिरमालाओं से समृद्ध था, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। कालान्तर में यह उजड कर अज्ञात-सा हो गया था, आज जो लक्ष्मणीतीर्थ पुनः विशाल धर्मशालाओं एवं जीर्णोद्धार से युक्त होकर प्राचीन मंदिरों से पुनः जैन यात्रियों को प्रतिवर्ष आकर्षित करता है यह सब चरितनायक के सतत् प्रयास और श्रम का ही कारण है। आलीराजपुर से आपश्री लक्ष्मणीतीर्थ को पधारे और वहाँ दो दिन विराजे। पुनः वहाँ से आषाढ कृष्णा ६ को विहार करके आषाढ़ कृ० १० को बाग में पधारे। बाग में आपश्री आषाढ़ शु० ७ तक विराजे और स्थानीय जैनसंघ को धर्मोपदेश देकर अति लाभ पहुँचाया। बाग से प्रस्थान करके आषाढ़ शु० १० को पुनः कुक्षी पधार गये।

उसने अपने अधिकार में लीं और उनकी सेवा-पूजा का प्रबन्ध करके वहाँ एक जिनालय बनवाने का निश्चय किया गया। जब जिनालय बनकर के तैयार हो गया, ये सर्व प्रतिमायें उसमें प्रतिष्ठित कर दी गईं। अधिकांश प्रतिमाओं के ऊपर लेख नहीं है। एक प्रतिमा पर वि० सं० ६१२ का लेख है, जो अस्पष्ट है, पर पूरा है और वह इस प्रकार है :—

"संवत् ६१२ वर्षे शुभे चैत्रमासे शुक्ले च पंचम्यां तिथौ भौमवासरे श्रीमण्डपदुर्गमध्यभागे तारापुरस्थित-पार्श्वनाथ-प्रासादे गगनचुम्बी-शिखरे श्रीचन्द्रप्रभबिम्बस्य प्रतिष्ठाकार्या प्रतिष्ठाकर्त्ता च धनकुबेर शा० चन्द्रसिंहस्य भार्या जमुना पुत्रश्रेयोर्थं, प्र० जगचंद्रसूरिभि.।"
लेख के संवत् में शंका है—लेखक।

इसी प्रकार सं० १९१८ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को एक वापिका में से श्री गोडीपार्श्वनाथ-प्रतिमा निकली और उसको भी एक दूसरा जिनालय बनवाकर उसमें श्री कुक्षी-संघ ने समहोत्सव शुभ मुहूर्त्त में स्थापित किया। उस पर भी लेख इस प्रकार है :—

"स्वस्ति श्रीपार्श्वजिनप्रासादात् संवत् १०२२ वर्षे मासे फाल्गुने सुदिपक्षे ७ गुरुवार श्रीमान्-श्रेष्ठि श्रीसुरराजराज्ये प्रतिष्ठित श्रीबप्पभट्टसूरिभि नुगियापत्तने।"

वि० सं० १९५० में श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी ने तेरह मूर्तियों की अंजनशलाका की थी और वे उपरोक्त पार्श्वनाथ-प्रतिमा के दोनों ओर विराजमान हैं। इसी प्रकार तीसरा एक दिगम्बर जिनालय भी है, जिसमें प्रतिमायें वि० सं० १२९४ की प्रतिष्ठित हैं। वे भी उपरोक्त श्वेताम्बर प्रतिमाओं के साथ में ही निकली हुई हैं।

खाचरोद से श्री मण्डपाचलतीर्थ और मण्डपाचलतीर्थ से कुक्षी तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० १९९३

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	जिनालय	धर्मशाला व उपाश्रय	दिनांक
दफड़ावदा	१	०	०	०	वै० शु० ५
मड़ावदा	२	४	१	१	६
कमठाणा	१॥	०	०	०	०
धानासूता	१	२१	१	१	७
पचलाना	१॥	१०	१	१	८
खेड़ावदा	१	१	०	०	०
वारोदावड़ा	१	१५	१	१	९-१०
वीरियाखेड़ी	२॥	०	०	०	११
वड़नगर	२	८७	४	२	१२-१३
अमरा	१॥	४	१	१	०
माजीबालोदा	२	२	०	०	०
कठोरियो	१॥	०	०	०	०
कानून	२॥	३०	१	१	१४
वड़ी कड़ोद	३	३०	२	१	पूर्णिमा
धामणदा	३	१२	१	०	ज्ये० कृ० १
देशाई	२	३५	१	१	२
लेड़गांम	२॥	१०	१	१	३
सरदारपुर	२॥	०	०	०	०
राजगढ़	२॥	१७४	५	४	४-५
मोहनखेड़ा(तीर्थ)	॥	०	३	१	०
भोपावर(तीर्थ)	२॥	०	१	१	६
छीपापुर	१॥	०	०	०	०
मेढ़ा	२	०	०	०	०

केसरपुर	१	०	०	०	ज्ये० कृ० ६
अमीझरा(तीर्थ)	१॥	२	१	१	७
तला	४॥	०	०	०	०
धार	३	५५	२	२	८
तलवाड़ा	५	०	०	०	९
नालछा	३	१५	१	१	१०
मण्डपाचलतीर्थ	३	२	१	१	११ से शु० १
बड़िया	३	०	०	०	२
धोलीबावडी	॥	०	०	०	०
ऊमरवन	३	०	०	०	०
भभोरी	१॥	०	०	०	३
रामगढ़	२	०	०	०	०
टोंकी	२	०	०	०	०
मनावर	१	१३	१	१	४
सिंगाणा	५	२	१	१	५
लुहारी	२	०	०	०	०
अम्बाड़ो	२	०	०	०	६
कुक्षी	२॥	८१	५	३	७ से ११
तालनपुर (तीर्थ)	१।	०	२	१	१२
चिकलीढ़ोला	५	०	०	०	प्रथम १३
नानपुर (नांदुरी)	३॥	३	१	१	द्वि० १३
आलीराजपुर	५	२१	२८	१	१४ से आ०कृ० २
लक्ष्मणी (तीर्थ)	२॥	१	१	१	३ से ५
खटाली	४	४	१	१	६
घोड़ाजोवट	३	३	०	१	८
भीरपणी	४॥	७	०	०	०
अखाड़ो	१॥	०	०	०	९

बाग (टप्पा)	३॥	२०	१	१	आ० कृ० १० से शु० ७
पांडव-गुफा	२	०	०	०	८
रामपुरा	३	०	०	०	९
कुक्षी	३	८१	५	३	१०
	१३०॥	७४५	७५	३७	दो मास छः दिन

३०—वि० सं० १९९३ में कुक्षी में चातुर्मासः—

चातुर्मास पर्यंत व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययन सूत्र (सटीक)' का प्रथमाध्ययन और भावनाधिकार में 'श्रीजयानन्द-चरित' का वाचन किया गया। व्याख्यान में सदा श्रोतागण और दर्शकों की भीड़ ही रही और अवसरों पर प्रभावनाओं का सराहनीय क्रम रहा। अजैन जनता ने भी आपश्री के व्याख्यानों से अति लाभ प्राप्त किया।

इस चातुर्मास में कुक्षी के पंचों और पाणीवाले शा० जबरचंद्रजी के मध्य देव के द्रव्य को लेकर जो झगड़ा गत तीस वर्षों से चला आरहा था और जिसके कारण संघ में दो दल पड़ चुके थे और द्वेष और मत्सर की अग्नि भड़क रही थी चरितनायक के प्रभावशाली व्याख्यानो से एवं सफल प्रयत्नों से वह मिट गया और देव-द्रव्य का प्रश्न समुचित एवं संतोषजनक ढंग से हल कर लिया गया और इस प्रकार कुक्षी-संघ में पुनः ऐक्य और प्रेम स्थापित हो गया। इस प्रकार के अन्य सुधार एवं अनेक पुण्यकार्यों, तप, तपस्याओं एवं सामाजिक सुधारों के सहित यह चातुर्मास सानन्द पूर्ण हुआ। आहोर (मारवाड़) में श्रीमद् विजयभूपेन्द्रसूरिजी का इसी वर्ष १९९३ माघ शु० ७ बुधवार को स्वर्गवास हो गया था। इस समाचार से सारे सम्प्रदाय में महाशोक छा गया। चरितनायक को भी महान् खेद हुआ और शोक-सभा करके दिवंगत आत्मा के लिये उच्चगति की भावना व्यक्त की गई। चरितनायक ने कुक्षी से वि० सं० १९९४ चैत्र शु० १० को विहार किया।

श्रीयतीन्द्र विहार-दिग्दशन चतुर्थ भाग—रचना सं० १९९३। आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृष्ठ संख्या ३१०। इसको श्री सौधर्म-वृहत्त-

पागच्छीय-जैनसंघ कुक्षी ने वि० सं० १९९३ में श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में छपवाकर प्रकाशित किया। इस पुस्तक में सिद्धक्षेत्र-पालीताणा से अहमदाबाद, केसरियातीर्थ होकर खाचरोद में वि० संवत् १९९२ में चातुर्मास हुआ तक का वर्णन और तत्पश्चात् खाचरोद से मालवा-प्रान्त का भ्रमण और पुनः मण्डपाचलतीर्थ की खाचरोद से यात्रा और वहाँ से कुक्षी की ओर प्रयाण तथा अन्य ऐतिहासिक तीर्थ स्थानों के वर्णन संक्षेप में उल्लिखित हैं। पुस्तक इतिहास और पुरातत्त्व के प्रेमियों के लिये अत्यन्त ही लाभदायक है।

सविधि-स्नात्र पूजा—रचना सम्वत् १९९३। आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृष्ठ संख्या २१। इसको कुक्षी वाले प्राग्वाटज्ञातीय शा० चुन्नी-लालजी रायचंद्रजी की धर्मपत्नी श्राविका जडीबाई ने इसी वर्ष वि० सं० १९९३ में श्री आनन्द प्रेस, भावनगर में छपवाकर प्रकाशित किया। यह पूजा राधेश्याम तर्ज पर अच्छी गाई जाती है और बड़ी आह्लादक प्रतीत होती है।

प्रेमविजयजी की दीक्षा

इसी वर्ष चरितनायक ने मुनि श्री प्रेमविजयजी को कुक्षी-संघ की विनती को मान देकर कुक्षी में ही वि० सं० १९९३ मार्गशीर्ष शु० १० को शुभ मुहूर्त्त में दीक्षा प्रदान की और उसी दिवस प्राग्वाटज्ञातीय शाह हीरा-चंद्रजी राजमलजी की ओर से महामहोत्सवपूर्वक १०८ अभिषेक वाली श्री शांतिस्नात्र पूजा बनाई गई।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि चरितनायक ने वि० सं० १९९४ की चैत्र शुक्ला १० को कुक्षी से विहार किया था। कुक्षी से आपश्री लक्ष्मणी-तीर्थ के दर्शन करने के लिये पधारे। वहाँ आपश्री की तत्त्वावधानता में चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को नवीन जिनालय के बनवाने के अर्थ उसका शिलान्यास किया गया। तत्पश्चात् वहाँ से आपश्री अपनी साधु एवं शिष्यमण्डली के सहित आलीगजपुर, खटाली, चोड़ा-जोबर, बाग, टाडा, रींगणोद, राजगढ़ नगर, ग्रामों में विराजे और शेष काल

मालवा-प्रान्त के अन्य ग्राम व नगरों में विहार

को इन्हीं ग्राम, नगरों में धर्मोपदेश देते हुये व्यतीत किया। तत्पश्चात् आपश्री पुनः राजगढ़ से आलीराजपुर पधारे। इस समय तक चातुर्मास भी निकट आ गया था। आलीराजपुर के संघ ने चरितनायक से वहीं पर चातुर्मास करने के लिये प्रार्थना की और वह स्वीकृत हुई, फलतः वि० सं० १९९४ का चातुर्मास आलीराजपुर में ही हुआ।

कुक्षी में गत चातुर्मास निश्चित होने के पूर्व ज्ये० शु० १४ से आषाढ़ कृष्णा २ तक आलीराजपुर में चरितनायक ठहरे थे और वहाँ से आषाढ़ कृ० ३ से ५ तक लक्ष्मणीतीर्थ को पधार कर ठहरे थे। आपश्री को आगामी वर्ष में आलीराजपुर में चातुर्मास करने की अत्यन्त आवश्यकता प्रतीत हुई ताकि वहाँ रह कर पास में २।। (ढ़ाई) कोस के अन्तर पर आये हुये अति प्राचीन उक्त लक्ष्मणीतीर्थ का निरीक्षण, जिसका जीर्णोद्धार एवं खुदाई का कार्य आपश्री की देख-रेख में ही चल रहा था अच्छी प्रकार किया जा सके और तीर्थ की उन्नति के लिये योग्य व्यवस्था करने का मार्ग एवं यत्न आलीराजपुर के श्रीसंघ को जो तीर्थ की देख-रेख करता था समझा सकें।

वि० सं० १९९४ में आलीराजपुर में ३१ वां चातुर्मास और तत्पश्चात् श्री लक्ष्मणीतीर्थ की प्रतिष्ठा

आलीराजपुर में चातुर्मास बड़े आनन्दपूर्वक हुआ। व्याख्यान में 'उत्तराध्ययनसूत्र सटीक' और भावनाधिकार में 'विक्रम-चरित्र' का वाचन हुआ। तप, तपस्यायें आदि बहुत हुईं और व्याख्यान में श्रोतागण की संख्या सदा अपरिमित रही। आलीराजपुर-नरेश स्वयं कभी २ व्याख्यान में पधारते थे। वे चरितनायक की विद्वत्ता, चरित्र एवं कर्मठता पर मुग्ध थे और इनके परम भक्त थे। इसका अजैन जनता पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा और वह भी नित्य अच्छी संख्या में व्याख्यान का लाभ लेने के लिये आती थी। प्रभावनाओं का भी अच्छा क्रम रहा था। व्याख्यान समाप्त होने पर एक दिन आलीराजपुर के श्रीसंघ ने चरितनायक से श्रीलक्ष्मणीतीर्थ* की प्रतिष्ठा कराने की विनती की। विनती योग्य जान कर चरितनायक ने

* लक्ष्मणीतीर्थ के विशेष वर्णन के लिये देखो 'मेरी नेमाड़ यात्रा'।

स्वीकार करली। प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियाँ होने लगी। आलीराजपुर-नरेश ने राज्य की ओर से प्रतिष्ठोत्सव के लिये भारी सुविधायें दीं और शिविर, वितान, शोभा की सामग्री और जो कुछ स्थानीय संघ ने मांगा सहर्ष दिया। वि० सं० १९९४ मार्ग शीर्ष शु० १० सोमवार को शुभ मुहूर्त्त में चरितनायक ने भारी महोत्सव एवं धूम-धाम के साथ श्रीलक्ष्मणीतीर्थ की प्रतिष्ठा की। आलीराजपुर-नरेश श्री सर प्रतापसिंहजी ने अपनी ओर से तीर्थ को दो सहस्र रुपयों की निधि अर्पित की। उत्सव में नरेश स्वयं उपस्थित हुये थे। लक्ष्मणीतीर्थ की कीर्त्ति श्रवण करके मालवा, मारवाड़, गुजरात के अनेक ग्राम, प्रसिद्ध नगरों से लोग प्रतिष्ठोत्सव देखने एवं प्राचीन तीर्थ के दर्शन करने के लिये आये थे। आलीराजपुर के श्रीसंघ ने आगन्तुक भक्त एवं दर्शकों को भोजन, शयन आदि की पूरी २ सुविधायें देकर उनकी अच्छी सेवा की थी तथा आलीराजपुर-नरेश को चरितनायक की तत्त्वावधानता में भारी सभा का आयोजन करके उनकी सेवाओं और सहानुभूति के संमान में मानपत्र अर्पित किया था। पाठक अब समझ चुके होंगे कि प्राचीनतीर्थ श्री लक्ष्मणी को प्रकाश में लाकर चरितनायक ने जैन-शासन की महान् सेवा की है।

चरितनायक को सूरि-पद तथा गच्छ-भार अर्पित करने का संघ का निश्चय

वि० सं० १९९३ माघ शु० ७ बुधवार को आचार्य एवं गच्छनायक श्रीमद् विजय भूपेन्द्रसूरिजी का आहोर नगर (मरुधर प्रदेश-राजस्थान) में स्वर्गवास हो गया था। उस समय चरितनायक कुक्षी में विराज रहे थे। वहाँ यह दुःखद समाचार श्रवण करके समस्त समाज में शोक छा गया था और चरितनायक की तत्त्वावधानता में संघ ने सम्मिलित होकर दिवंगतात्मा के लिये उच्च गति की शुभ भावना प्रकट की थी। जैसी परम्परा चली आती है गच्छभार वहन करने वाला कोई गच्छनायक अवश्य ही होना चाहिए। विजयभूपेन्द्रसूरिजी को भी स्वर्गस्थ हुये दस मास से ऊपर हो चुके थे। अब चरितनायक को योग्य समझ कर सम्प्रदाय के साधु, साध्वियों एवं प्रतिष्ठित पुरुषों ने उनको सूरिपद प्रदान करके गच्छनायक बनाने का निश्चय कर लिया था। फलतः

आहोर से संघ के प्रतिष्ठित व्यक्ति आलीराजपुर में चरितनायक की सेवा में उपस्थित होकर उन्हें अपनी सदेच्छा एवं निश्चय से परिचित किया। संघ की आज्ञा प्रत्येक साधु एवं आचार्य को शिरोधार्य करनी ही होती है, ऐसी शास्त्र की मर्यादा है। संघ के साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकायें चार अंग होते हैं और साधु उनमें से प्रमुख अंग होकर भी एक अंग है। अतः चरितनायक को संघ की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी और जैसा आहोर में ही पाटोत्सव का किया जाना भी निश्चित हो चुका था, आपश्री ने अपनी साधुमण्डली के सहित आलीराजपुर से वि० सं० १९९४ की माघ शु० ५ पंचमी को शुभ मुहूर्त्त में विहार करके मालवा, मेवाड़ एवं मारवाड़ के अनेक ग्राम, नगरों में विचरते हुये चैत्र मास की पूर्णिमा वि० सं० १९९५ को आपश्री आहोर पधारे और भारी स्वागत के साथ आपश्री का नगर-प्रवेश हुआ।

उक्त विहार पूर्ण २ मास और १० दिवस पर्यंत रहा। इस विहार में आपश्री द्वारा अनेक ग्राम एवं नगरों को स्पर्शा गया था, जिनमें मुख्य दाहोद, लीमड़ी, जालोद, गालियाकोट, डूँगरपुर, श्रीकेसरियातीर्थ, उदयपुर, मंदार, गोगूंदा, सायरा, राणकपुरतीर्थ, सादड़ी, खुड़ाला, खीमेल, साण्डेराव, दूजाणा, तखतगढ़, वेदाणा, गुढ़ा, चरली हैं। उक्त सूची से ज्ञात होता है कि उक्त विहार त्वरित गति से और वह भी अधिकांशतः पर्वतीय भागों में होकर किया गया था।

———

मरुधर में पदार्पण और आहोर नगर में सूरिपदोत्सव

वि० सं० १९९५

●

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है चरितनायक अपने शिष्यों एवं साधु-मण्डली के सहित आहोर में वि० सं० १९९५ चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को पधार गये। आपश्री के शुभागमन के पूर्व ही आपकी सम्प्रदाय के मुनिप्रवर विद्वान् गुलाबविजयजी, निर्मलात्मा हंसविजयजी, वयोवृद्ध अमृतविजयजी, हर्षविजयजी आदि अनेक साधु एवं साध्वीगण आ चुके थे।

आहोर में चरितनायक का आगमन

पूर्णिमा को जिस दिन चरितनायक का आहोर में प्रवेश हुआ था, बहुत प्रातः से ही नगर के स्त्री, पुरुष और लड़के, लड़कियाँ स्वागत के लिये दो-तीन मील तक चल कर सामने पहुँच गये थे। लगभग प्रातः ९ बजे चरितनायक आहोर के बाहर आ पहुँचे। आहोर नगर आपश्री के दर्शनों के लिये उमडा पड़ रहा था। भारी जनमेदिनी एकत्रित थी। अनेक प्रकार के वाद्य-यन्त्रों के निनादों से गगन गूंज रहा था। समारोह की सामग्री जैसे सुसज्जित अश्व, सुन्दर स्त्रियों के मण्डल, पाठशाला और नवयुवक-मण्डल के दल, बैंड-बाजे, ढोल, शहनाई के बजाने वाले, कलावंत आदि के जमाव से आहोर नगर भीतर और बाहर एक दिव्य शोभा को धारण कर रहा था। इस प्रकार की धूम-धाम से आहोर के श्रीसंघ ने चरितनायक का नगर-प्रवेश करवाया था। चरितनायक ने धर्मशाला में पहुँच कर धर्मदेशना प्रदान की और उसमें दिवंगत सूरिजी महाराज भूपेन्द्रसूरिजी के चरित्र पर अधिक प्रकाश डाला तथा सौधर्मतपागच्छ का इतिहास वर्णित किया। श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के दिव्य गुण और तेज का वर्णन किया, श्रीमद् धनचंद्रसूरिजी के शान्त एवं गभीर स्वभाव का तथा उपा० मुनि मोहनविजयजी के आत्मबल का परिचय दिया। तत्पश्चात् अपने को सूरिपद के अयोग्य होना बताते हुये श्रीसंघ की

आज्ञा के आगे विवशता प्रकट की तथा श्रीसंघ की आज्ञा अनिवार्यतः शिरोधार्य्य होती है की दृष्टि से सूरिपद ग्रहण करने की स्वीकृति प्रदान की।

आहोर के श्रीसंघ ने पाटोत्सव के लिये भारी-भारी तैयारियाँ की थीं। इस पाटोत्सव में अपार जनसमुदाय के एकत्रित होने की भी कई कारणों से संभावना थी। एक तो आहोर के चारों ओर लगभग १५, २० कोस के क्षेत्र में जितने भी नगर, ग्राम हैं, उन सब में आपश्री के अनुयायी सैकड़ों घरों की संख्या में हैं। दूसरे मरुधर-प्रान्त के इस क्षेत्र में पाटोत्सव सैकड़ों वर्षों से हुआ ही नहीं था; अतः लोग यह भी नहीं समझते थे कि पाटोत्सव क्या वस्तु है और वह कैसे किया जाता है। तीसरी बात यह थी की आहोर श्रीसंघ ने अपनी समस्त समाज जो नेमाड़, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, थराद्रि, मालवा, मेवाड़, कोटा आदि भागों में बसती है, को निमंत्रित किया था और आशा भी सहस्रों स्त्री-पुरुषों के आने की थी। कई सौ स्वयंसेवक आगन्तुक दर्शकों की सेवा के लिये बाहर से बुलाये गये थे। एक सुन्दर पण्डाल विनिर्मित करवाया गया था और उसमें साधु, साध्वियों, स्त्री, पुरुषों, मण्डलों एवं संगीतमण्डलियों के लिये अलग २ बैठने के लिये स्थानों की व्यवस्था की गई थी।

सूरिपद का ग्रहण करना

श्रीपाटोत्सव वैशाख शु० ३ सोमवार से प्रारंभ होकर वैशाख शु० ११ मंगलवार तक रहा। प्रत्येक दिन का कार्यक्रम निम्न प्रकार था।

(१) वै० शु० ३ सोम—जलयात्रा, वेदीपूजन—नागोरी शा० चुन्नीलाल, मिश्रीमल, भभूतमल, भंवरलाल, धनराज, सुमेरमल, सहसमलजी की ओर से श्री नवपदपूजा बनाई गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

(२) वै० शु० ४ मंगल— नवग्रह-मंडलपूजा—नेनावत शा० जेठमल, लादूराम, पूनमचन्द्र, धुलाजी की ओर से नवाणुंप्रकारीपूजा बनाई गई तथा स्वामीवात्सल्य हुआ।

(३) वै० शु० ५ बुध-दशदिग्पालपूजा—वाफणा शाह मिश्रीमल

धर्मचन्द्र, रत्नाजी, भूताजी की ओर से श्री वीसस्थानकपदपूजा बनाई गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

(४) वै० शु० ६ बृह०—कुम्भस्थापना—काश्यपगोत्रीय चौहान शाह भूरमल, मूलचन्द्र, मिश्रीमल, कुन्दनमल, घीसूलाल, धन्नाजी की ओर से बारह भावना की पूजा बनाई गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

(५) वै० शु० ७ शुक्र०—नाड़गोत्र सोलंकी शाह वछराज, प्रेमचन्द्र, छोगालाल, नरसिंहजी की ओर से बारह व्रत की पूजा बनाई गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

(६) वै० शु० ८ शनि०—काश्यपगोत्रीय चौहान शाह नथमल, छोगालाल, हजारीमल, ऋषभदास, लाधमल, पार्श्वमल, लालाजी की ओर से श्री पार्श्वनाथ-पचकल्याणकपूजा बनाई गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

(७) वै० शु० ६ रवि०—तलोरागोत्रीय मुहता शाह नथमल, मगनमल, मोतीचद्र, मुलतानमल, मोतीचद्र, सुखराज, सौभागमल, रणजीतमल, वस्तिचद्र, माणकचद्र, घेवरचद्र, भंवरलाल, गठमल, जीतमल, भोपतरामजी की ओर से अष्टप्रकारी पूजा बनाई गई और संघ-जीमण (नवकारशी) किया गया।

(८) वै०शु० १० सोम०—*को शुभ मुहूर्त्त में प्रातः भारी समारोह निकालकर, जिसमें अगणित स्त्री, पुरुष, स्वयं सेवकों के दल, श्री राजेन्द्र-जैन-गुरुकुल-तीखी की संगीत मण्डली, स्थानीय जैन लड़कों और लड़कियों की पाठशालाओं के विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों के दल, बैण्ड-बाजे, सुसज्जित हाथी, अश्व थे, जो अपने-अपने स्थानों पर शोभा पाते हुये चल रहे थे। पण्डाल में पहुँचकर व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक श्रीमद् यतीन्द्रविजयजी को अनेक ग्रामों, नगरों से आये हुये एकत्रित श्रीसंघ ने सूरिपद से अलंकृत किया

श्री पाटोत्सव-लग्नम्

* श्री अर्हम् स्वस्ति श्री ऋद्धिवृद्धि जयमङ्गलाभ्युदयाश्च "आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे, नक्षत्राणि सराशय। सर्वे श्रेय प्रयच्छन्तु यस्यैषा जन्मपत्रिका ॥१॥" विक्रम सम्वत् १९ ५, शाके च १८६० प्रवर्तमाने मासोत्तममासे वैशाखमासे शुक्लपक्षे दशम्या तिथौ चन्द्रवासरे घट्य,

और जयध्वनि की तथा उसी समय विद्वान्प्रवर मुनि गुलाबविजयजी को उपाध्यायपद से विभूषित किया। इस प्रकार पाटोत्सव का शुभ कार्य अति-हर्ष और आनन्द के साथ समाप्त हुआ। इस दिन कटारिया सिंघवी शा० थानमल, लक्ष्मीचंद्र, वछराज, हजारीमल, खीमराज, छगनराज, बागमल, मंसालाल, पेराजी की ओर से श्री महावीर-पंचकल्याणकपूजा बनाई गई और संघ-जीमण अर्थात् नवकारशी की गई।

(९) वै०शु० ११मंगल०—नेनावत शा० मगराज, स्वरूपचंद्र, छोटा-लाल, गुलाबचंद्र, वीरचंद्र, मांगीलाल, प्रतापचंद्र, दीपचंद्रजी की ओर से श्री अष्टोत्तरशताभिषेक-शांतिस्नात्रपूजा बनाई गई और संघ-जीमण अर्थात् नव-कारशी की गई।

इस प्रकार आहोर के श्रीसंघ ने भारी उत्साह एवं अतिशय भाव-भक्ति से श्री पाटोत्सव को मनाकर भारी यश प्राप्त किया था। इसमें श्रीसंघ-आहोर ने पुष्कल द्रव्य किया था।

श्री गोड़ीपार्श्व राजेन्द्र जैन गुरुकुल, तीखी की संगीत-मण्डली का कार्यक्रम नव ही दिन पर्य्यंत रहा था और वह अति ही आकर्षक एवं मनोरंजक था।

१७।१२, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रे घट्यः २३।४९, नवघटीभुक्तावशेषे व्याघातयोगे घट्यः २०।४६, गरकरणे घट्य, १७।१२, सूर्योदयादिष्टनाड्यः ८।५ एतत्पञ्चाङ्गशुद्धावत्रदिने सूर्यः २५ लग्न २।१४।८ वृश्चिकराशेः श्री यतीन्द्रविजयवाचकवरस्याऽऽचार्यपदप्रदानमुहूर्त्तः शुभोऽस्ति। सूर्योदयात् ९ नव बजकर १४ मिनिट पश्चान्मुहूर्त्तः श्रेष्ठः इति।

लग्नचक्रम् नवांशचक्रम्

सूरिपद से बागरा में प्रथम चातुर्मास और तत्पश्चात् प्रतिष्ठायें एवं दीक्षायें

वि० सं० १९९५

●

हरजी में प्रतिष्ठा

सूरिपदोत्सव के सानंद समाप्त हो जाने पर आपश्री आहोर में कुछ दिवस विराजे। आहोर से लगभग चार कोस के अंतर पर हरजी नामक एक अच्छा समृद्ध नगर है। वहाँ के श्रीसंघ ने आहोर में आपश्री से हरिजी में पधार कर श्री आदिनाथ-जिनालय पर ध्वजादण्ड और कलश का आरोहण सोत्सव करवाने की विनती की थी। अतः चरितनायक अपने साधुमण्डल के सहित आहोर से विहार करके ज्येष्ठ कृ० १२ को हरजी पधार गये। हरजी के श्रीसंघ ने चरितनायक का अतिशय भाव-भक्तिपूर्वक नगर-प्रवेश करवाया। हरजी में प्रतिष्ठा-संबंधी तैयारियाँ अतिशय शक्ति से होने लगीं। प्रतिष्ठोत्सव का कार्य शुभ दिवस एवं शुभ मुहूर्त्त में प्रारंभ हुआ, जो १३ (तेरह) दिवस-पर्यंत अर्थात् ज्येष्ठ शु० पूर्णिमा तक रहा। और वैसे तो प्रतिष्ठोत्सव ज्ये०शु० १४ शनिवार को ही महामहोत्सवपूर्वक सानंद समाप्त हो गया था।

उत्सव के तेरह ही दिनों में दिन में विविध पूजायें और रात्रि में प्रभुभक्ति का अच्छा ही आनन्द रहा। प्रतिष्ठा-उत्सव तो प्रायः अधिकतर नव दिनों का ही होता है; परन्तु हरजी-संघ ने यह उत्सव तेरह दिवस पर्यंत अति उत्साह एवं भक्तिभावों के सहित किया था।

डूडसी में प्रतिष्ठा

हरजी से आपश्री ने आषाढ़ मास के शुक्लपक्ष में विहार किया और मेड़ा, मायलावास होते हुये आषाढ़ शु० अष्टमी को आपश्री डूडसी पधारे। डूडसी के श्रीसघ ने सूरिजी महाराज साहब का नगर-प्रवेश अति ही भाव-भक्ति एवं धूम-धाम से करवाया। अब आपश्री की निश्रा में प्रतिष्ठा-

सम्बन्धी कार्य की तैयारियाँ प्रारंभ हुईं । वि०सं० १६६५ आषाढ़ शु० ११ शुक्रवार को महोत्सवपूर्वक पूर्वप्रतिष्ठित जिनबिंब की स्थापना सूरिजी के कर-कमलों से सानंद पूर्ण हुई और प्रतिष्ठोत्सव अति हर्ष एवं आनन्द के साथ समाप्त हुआ ।

प्रतिष्ठोत्सव के नव ही दिनों में मंदिर में विविध पूजायें और रात्रि में प्रभुकीर्त्तन होते रहे ।

मुनि न्यायविजयजी की दीक्षा

इनका मूल नाम कन्हैयालालजी था । इनका जन्म वि० सं० १९७० पौ० शु० ३ मंगलवार को हुआ था । इनके पिता का नाम किस्तूर-चंद्रजी और माता का नाम धूलीबाई था । इनके पिता उपकेशज्ञातीय (ओस-वाल) बोहरागोत्रीय है और खाचरोद (मालवा) के निवासी है । इनके पिता गुरुवर्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के परम भक्त रहे हैं । आप भी चरितनायक के परम श्रद्धालु श्रावक थे । वि० सं० १९९४ में आप कार्तिक पूर्णिमा करने के लिये पालीताणा गये थे । वहाँ आप कई दिनों तक ठहरे । आप पर साध्वीजी श्री सोहनश्रीजी और फूलश्रीजी के वैराग्यपूर्ण विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा और निदान आपने असार संसार का त्याग करके साधु-जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया । एतदर्थ आप गुरुमहाराज सा० के दर्शनार्थ आये और डूडसी में प्रतिष्ठामहोत्सव के शुभावसर पर उसी दिन आपको भी दीक्षा दी गई ।

डूडसी में अनेक निकटस्थ ग्रामों के श्रीसंघ और सद्गृहस्थ उत्सव को देखने एवं सूरिजी महाराज सा० के दर्शन करने के लिये आये थे । चातुर्मास भी संनिकट आ रहा था । सर्व ग्रामों की ओर से चातुर्मासार्थ विनतियाँ हुईं । परन्तु वागरा के श्रीसंघ का अत्याग्रह था और कई कारण प्रबल भी थे, जिससे वि० सं० १९९५ का चातुर्मास चरितनायक ने अपनी व्याख्यान-परिषद् में ही स्वीकृत किया और वहीं तत्काल जय एवं हर्ष के घोषों से वह वधाया गया ।

३२—वि० सं० १९९६ में बागरा में चातुर्मास:—

चरितनायक डूडसी से आषाढ़ शु० १३ को विहार करके सीधे बागरा पधारे और आषाढ शु० १४ को प्रातः १० बजे आपश्री का बागरा में नगर-प्रवेश हुआ। बागरा जैसा पूर्व 'लेखक और चरितनायक' नामक निबंध में लिखा जा चुका है अति धनाढ्य ग्राम है। वहाँ आचार्यश्री का नगर-प्रवेश अति ही शोभनीय उपकरणों एवं सज-धज के साथ हुआ था। अपार जनसमूह आपश्री के दर्शन करने के लिये उमडा पड़ रहा था। सर्वत्र नगर में आनन्द और हर्ष हिलोर रहा था। स्थान २ पर नव वधूयें, कुल-प्रधान सुन्दरियाँ चरितनायक को बधाने के लिये कुंकुम भरे थाल और मोती-अक्षत लिये खडी थीं। धर्मशाला में जब चरितनायक पधारे तो समस्त धर्मशाला दर्शक गणों से खचा-खच भर गई और फिर सब के स्थान ग्रहण कर लेने पर आचार्यश्री की देशना प्रारम्भ हुई। इस देशना में आपश्री ने ज्ञान के विषय पर अति ही विद्वत्तापूर्ण कहा और ज्ञान की आवश्यकता की अनिवार्यता बताते हुये श्रोतागण पर सचोट प्रभाव डाला। बागरा के श्रीसंघ ने यह अनुभव किया कि बागरा का प्रत्येक गृहस्थ भौतिक दृष्टि से आज सम्पन्न हो कर भी अपने निरक्षर रहते लड़के और लड़कियों को शिक्षण दिलाने के लिये इस विद्या के युग मे कोई सफल प्रयत्न नहीं कर रहा है।

चातुर्मास पर्यंत चरितनायक ने व्याख्यान में 'श्रीस्थानाङ्गसूत्र' और भावनाधिकार मे 'कुमारपालचरित' का वाचन किया। विशेषतः आपश्री के व्याख्यान मे सदा ज्ञान और प्रमुखत मानव की स्थिति पर ही अधिक बल रहता था। आपश्री के इन सद्भावों एव विचारों से बागरा श्रीसंघ मे तत्काल विद्यालय स्थापित करने की भावनायें उत्पन्न हो गई और पाठक पूर्व ही सुविस्तृत रूप से लिखे गये 'लेखक और चरितनायक' लेख मे पढ़ चुके है कि आश्विन शु० ६ वि० स० १९९५ तदनुसार ता० २९-११-१९३८ को अति आनन्द के पारावार में 'श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल' की स्थापना हो गई। गुरुकुल की स्थापना यह एक ऐसा महान् कार्य हुआ कि आज बागरा की वर्त्तमान नवयुवक सन्तति ९०' प्रतिशत शिक्षित है और कई लड़के बी. कॉम. बी.ए.,एल-एल.बी., एफ-ए., और मैट्रिक में हो गये हैं और पढ़ रहे

श्री प्रेमविजयजी, न्यायविजयजी और नीतिविजयजी को तथा साध्वीजी श्री मोतीश्रीजी, विशालश्रीजी, विनोदश्रीजी और लावण्यश्रीजी को बड़ी दीक्षा प्रदान की।

श्रीकोर्टातीर्थ में बिंबस्थापना एवं प्राण-प्रतिष्ठा

वि० सं० १९९६

सियाणा से आपश्री ने दीक्षोत्सव समाप्त करके कुछ ही दिनों के पश्चात् श्री कोर्टाजीतीर्थ की ओर प्रयाण कर दिया, कारण कि श्री कोर्टाजी तीर्थ के ऊपर दण्डध्वजारोहण करवाना था तथा जिनेश्वर-प्रतिमाओं एवं गुरु-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करनी थी। सियाणा से आपश्री आहोर, गुढ़ा, तखतगढ़, भूति आदि ग्रामों में विहार करते हुये अनुक्रम से श्रीकोर्टाजी तीर्थ में पधारे। कोर्टा के संघ ने आपश्री का भव्य स्वागत किया। अब प्रतिष्ठा की तैयारियां की जाने लगीं और तीर्थ के बाह्योद्यान में मण्डप की सुन्दर रचना की गई। वि०सं० १९९६ वै० शुक्ला ७ बुधवार को शुभ मुहूर्त्त में दो जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा तथा चार दण्डध्वज और गुरुवर्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज सा० की दो सुन्दर प्रतिमाओं की अञ्जनशलाका की गई।

यहाँ से चरितनायक ने रोवाड़ाग्राम (सिरोही राज्य) की ओर प्रयाण किया।

रोवाड़ा (सिरोही-राज्य) में गुरु-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा

वि० स १९९६

जब चरितनायक अपनी साधु-मण्डली के सहित कोर्टाजी तीर्थ से विहार करके रोवाडा मे पधारे तो रोवाडा के श्रीसंघ ने आपश्री का शोभा एवं सज्जा के उपकरणों के सहित समारोहपूर्वक स्वागत किया। वि०सं० १९९६ ज्ये०कृ० ९ को* अष्टोत्तरशत-स्नात्र पूजा के सहित गुरुवर्य

---

* 'श्री धातम्मा-प्रतिष्ठा महोत्सव' नामक पुस्तक के प्रतिष्ठा-प्रकरण में रोवाडा की प्रतिष्ठा का दिन ज्ये० शु० ८ रविवार छपा है, उसकी जगह ज्ये० कृ० ९ चाहिए।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी की प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा की। रोवाड़ा से आपश्री विहार करके फताहपुरा पधारे।

फताहपुरा में प्राण-प्रतिष्ठा
वि० सं १९९६

चरितनायक रोवाड़ा से शुभ मुहूर्त्त में विहार करके फताहपुरा पधारे। फताहपुरा के संघ ने आपश्री का अति ही भव्य स्वागत किया। वि०सं० १९९६ ज्ये०शु० ९ शनिश्चर को शुभ मुहूर्त्त में श्रीमद् राजेन्द्रसूरिश्वरजी महाराज साहब और उनके शिष्य मुनिवर श्री हिम्मतविजयजी के चरण-युगलों की आपश्री ने प्रतिष्ठाञ्जनशलाका की। इस अवसर पर फताहपुरा के श्रीसंघ ने अट्ठाई-महोत्सव का सुन्दर आयोजन किया था। नव दिनों में अलग २ सज्जन श्रावकों एवं संघ की ओर से नव नवकारशियाँ की गई थी। प्रतिष्ठा से निवृत्त होकर चरितनायक सलोदरिया पधारे।

सलोदरिया में प्रतिष्ठा
वि० सं १९९६

चरितनायक फताहपुरा से विहार करके सीधे सलोदरिया पधारे। वहाँ संघ ने आपश्री का अति ही सराहनीय विधि से स्वागत किया। आपश्री ने वि० सम्वत् १९९६ ज्ये० शु० १४ गुरुवार को शुभ मुहूर्त्त में श्री पार्श्वनाथबिंब की प्रतिष्ठा की। इस बिंबस्थापनोत्सव के उपलक्ष में सलोदरिया के श्रीसंघ ने तीन दिवस पर्यंत उत्सव उजमा था।

यहाँ से चरितनायक शिवगंज, उन्दरी होते हुये लघुतीर्थ श्री जाकोड़ा के दर्शन करके साण्डेराव, कौशीलाव, पावा में होते हुये तथा एक-एक और कहीं अधिक दिनों का विश्राम करते हुये चातुर्मासार्थ आषाढ़ शु० १४ को भूति में प्रविष्ट हुये।

३३—वि०सं० १९९६ में भूति में चातुर्मास और गुरु-प्रतिमा की अंजनशलाका

आचार्यश्री ने मुनि श्री लक्ष्मीविजयजी, वल्लभविजयजी, विद्याविजयजी, सागरविजयजी, प्रेमविजयजी, न्यायविजयजी आदि ९ साधुओं के

साथ में भूति में चातुर्मास किया। व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययनसूत्र' और भावनाधिकार में 'श्री विक्रम-चरित्र' का वाचन किया। चारों मास तप, व्रत, पौषध आदि की सराहनीय उन्नति रही। विशेष दिन एवं त्योहारों पर व्याख्यान के पश्चात् प्रभावनायें वितरित की गई। आचार्यश्री के दर्शन करने के लिये बागरा, आहोर, हरजी, भीनमाल, बाली, शिवगंज, पावा, जालोर, सियाणा आदि ग्राम-नगरों से तथा मालवा, नेमाड, कच्छ-प्रान्तों से अनेक सद्गृहस्थ श्रावक आये थे। श्रीसंघ-भूति ने आगंतुक दर्शक एवं अतिथियों का अच्छा आदर-सत्कार किया था। चातुर्मास पूर्ण होने पर चरितनायक को भूति-संघ ने श्री राजेन्द्रसूरि-प्रतिमा की स्थापना करवाने की विनती की। फलतः अति धूम-धाम एवं महोत्सवपूर्वक वि० सं० १९९५ पौष शु० ९ को शुभ मुहूर्त्त में समारोहपूर्वक श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी की प्रतिमा की आपश्री ने प्राण-प्रतिष्ठा करके स्थापना की तथा मुनि श्री लावण्यविजयजी को भी दीक्षा इसी शुभावसर पर प्रदान की गई।

मेरी नेमाड़-यात्रा—रचना वि० सं० १९९४। फाऊन १६ पृष्ठीय। पृ०सं० ८४। सादी जिल्द। यह एक गवेषणापूर्वक लिखी गयी ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दृष्टियों से संग्रहणीय एवं पठनीय पुस्तक है। इसमें नेमाड़-प्रान्त, जिसमें प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर माण्डू, धार, बड़वाणी, लक्ष्मणीतीर्थ और आलीराजपुर, कुक्षी आदि के प्रदेश सम्मिलित हैं, उन सर्व का यथा-प्राप्त भूगोल, इतिहास वर्णित है। इसको भूति (मरुधर) निवासी जोशी रावल सूरतिंगजी वन्नाजी ने सं० १९९६ में श्री आनन्द-प्रि०-प्रेस, भावनगर में छपवा कर प्रसिद्ध किया।

गुरु-चरणयुगल की अंजनशलाका

वि० सं० १९९७

चरितनायक ने शरद्-ऋतु भूति में ही स्थिरता रख कर व्यतीत की। तत्पश्चात् आपश्री वहां से विहार करके मार्ग में पड़ते हुये ग्राम, नगरों में धर्मोपदेश देते हुये आहोर पधारे। वि० सं० १९९७ फा० शु० १४ के दिन शुभ मुहूर्त्त में आपश्री ने स्वर्णकलश एवं दण्डध्वज की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका करके

उनको त्रिशिखरी श्री महावीर-जिनालय के ऊपर चढ़वाये। इस उत्सव पर अट्ठाई-महोत्सव शाह रतनाजी भूताजी मिश्रीमल की ओर से उजमा गया था। इसी शुभ दिवस पर गुरुवर्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी की दो प्रतिमाओं की अंजन-शलाका भी की गई थी। यहां आपश्री कुछ दिन स्थिर-वास रहे और तत्पश्चात् आपश्री ने चातुर्मासार्थ जालोर की ओर प्रयाण किया।

३४—वि०सं० १९९७ में जालोर में चातुर्मास और गुरु-प्रतिमा की अंजनशलाकाः—

आचार्यश्री ने मुनिप्रवर श्री लक्ष्मीविजयजी, अमृतविजयजी, वल्लभ-विजयजी, विद्याविजयजी, सागरविजयजी, चारित्रविजयजी, प्रेमविजयजी, नीतिविजयजी, न्यायविजयजी, लावण्यविजयजी, रंगविजयजी के साथ जालोर में चातुर्मास किया। चातुर्मास-व्याख्यान में 'सूयगडाङ्गसूत्र' और भावनाधिकार में 'जयानन्द केवली-चरित्र' का वाचन किया। जालोर में जैन घरों की अच्छी संख्या है और प्रायः सर्व ही सम्प्रदाय के घर हैं; परन्तु आपश्री के सार-गर्भित एवं ओजस्वी व्याख्यानों का लाभ सर्व ही सम्प्रदाय के सद्गृहस्थों ने लिया। इस चातुर्मास में श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल, बागरा की संगीत-मण्डली संगीत-अध्यापक मास्टर सालिगरामजी की अध्यक्षता में चरितनायक के दर्शन और प्रभु-कीर्त्तन करने के लिये जालोर में भेजी गई थी। बागरा की संगीत-मण्डली का कार्य और कौशल देखकर सर्व दर्शकगण ने उसकी भूरि २ प्रशंसा की और चरितनायक के शुभाशीर्वाद से उस समय से बागरा की संगीत-मण्डली की ख्याति बढ़ी और वह अपने समय में जांगल एवं अन्य प्रान्तों की सर्व जैन संगीत-मण्डलियों में धीरे २ अद्वितीय गिनी जाने लगी। चातुर्मास में अगणित तप, व्रत और कई अट्ठाई-महोत्सव हुये तथा आचार्यश्री के दर्शन करने के लिये भिन्न २ प्रान्तों के ५५-६० नगरों से श्रावक और श्राविकायें आईं, जिनकी जालोर-श्रीसंघ ने भोजन, शयनादि की समुचित सुविधाओं से एवं योग्य सत्कार से अच्छी सेवा की। चातुर्मास के सानन्द पूर्ण हो जाने पर श्रीसंघ-जालोर ने गुरुदेव के समक्ष श्री राजेन्द्रसूरि महाराज साहब की तीन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराने की प्रार्थना की। फलस्वरूप आचार्यश्री को वहीं ठहरना पड़ा और अट्ठाई-महोत्सव के साथ वि० सं० १९९७ मार्ग० शु० १० सोमवार को ओसवालज्ञातीय लघुशाखीय गोकलचन्द्रजी

किस्तूरचन्द्रजी की ओर से किये गये महामहोत्सवपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा करके श्रीगोडीपार्श्वनाथ-जिनालय में उक्त श्रेष्ठी के द्वारा ही विनिर्मित लघी में एक प्रतिमा संस्थापित की गई तथा शेष प्रतिमाओं में से एक मोहनखेडातीर्थ में और द्वितीय बागरा के श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में स्थापनार्थ भेजी गई।

मारवाड़-बागरा में ३५ वां चातुर्मास और तदनन्तर श्री प्राण-प्रतिष्ठा

वि० स० १९०८

●

यह मध्यस्थ श्रेणी का नगर है। सम्भवतः यह एक सहस्र वर्षों की पुरानी बस्ती है। यह जालोर-प्रगणा के अन्तर्गत आया हुआ है। यह जालोर से दक्षिण में और सियाणा से उत्तर में बसा हुआ है। बागरा मारवाड-बागरा नाम से जोधपुर-रेल्वे का फ्लेग स्टेशन है। ग्राम में सरकारी पोस्ट-ऑफिस भी है। बागरा दासपा-ठिकाने का प्रसिद्ध एवं प्रमुख ग्राम है। दासपा ठिकाने की ओर से यहां तहसील है। दासपा-ठिकाने के जागीरदार जोध-पुर-महाराज साहब के द्वितीय श्रेणी के उमराव हैं। सुना जाता है कि बहुत पहिले बागरा पर ओसवालज्ञातीय भूमिपालों का अधिकार था। बागरा में इस समय चारों वर्णों की भिन्न २ ज्ञातियों के एक सहस्र के लगभग घर हैं। अधिकांश परिवारों का धन्धा कृषि है। प्रायः सर्व ही परिवार आर्थिक दृष्टि से धनी नहीं तो भी निर्धन नहीं हो कर सुखी ही हैं और सर्व अपने-अपने ज्ञाति-धन्धे में संयुक्त हैं। यहां जैन प्राग्वाटज्ञाति के घर २५० और उपकेशज्ञाति के २५ घर हैं। ये सर्व जैन घर सनातन त्रिस्तुतिक जैन सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। आर्थिक दृष्टि से प्रायः सर्व जैन घर सुखी, सम्पन्न और समृद्ध हैं। अनेक जैन बन्धु दक्षिण भारत में तेनाली, बेजवाडा, बेलारी,

बागरा का परिचय

कोकनाड़ा आदि नगरों में दुकानें करते हैं और वहाँ के अति धनी, मानी एवं प्रतिष्ठित जनों में माने जाते हैं।

बागरा मरुधर-प्रदेश में सोना-चांदी के व्यापार का केन्द्र एवं प्रमुख स्थान बना हुआ है। युद्ध के प्रभाव से सोना-चांदी का व्यापार कई गुणा बढ़ गया है। जैन पंचों की श्री पार्श्वनाथ जैन पीढ़ी भी अभी २ बहुत ही सम्पन्न बन गई है। इसकी कई लक्षों की सम्पत्ति मन्दिरों में, धर्मशालाओं में, वाटिका और गुरुकुल-विद्यालय में लगी हुई है, जिसका सदुपयोग बड़े ही सराहनीय ढंग से हो रहा है। जैन मन्दिरों और गुरुकुल का यहाँ संक्षिप्त परिचय दे देना असंगत नहीं माना जायगा।

सौधशिखरी श्री पार्श्वनाथ-जिनालय

इस भव्य मन्दिर का निर्माण वि०सं० १९७० में पूर्ण हुआ था। इस स्थल पर पहिले विक्रम की अट्ठारहवीं शताब्दी का बना हुआ श्री पर्श्वनाथ-जिनालय था। वह जीर्ण हो चुका था तथा भगवान् की प्रतिमा भी कुछ खण्डित हो चुकी थी। बागरा-श्रीसंघ ने पुष्कल द्रव्य व्यय करके वर्त्तमान मन्दिर का निर्माण करवाया।

नवीन मन्दिर में दक्षिण, उत्तर और पूर्व पक्षों पर सशिखर २६ देवकुलिकाओं का निर्माण किया गया है। मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की सशिखर प्रमुख कुलिका मन्दिर के ठीक मध्य में विनिर्मित की गई है। वैसे सम्पूर्ण चैत्यालय ही एक उच्चासन बनवाकर उसके ऊपर बनवाया गया है, फिर भी मूलनायक-कुलिका उक्त चतुष्क के मध्य में उच्चतर चतुष्क पर बनी है। मूलकुलिका सगूढ़मण्डप है और गूढ़मण्डप से लगता हुआ नवचौकियां है और नवचौकियां से जुड़ा हुआ सभा-मण्डप बना है। सिंह-द्वार पश्चिमाभिमुख है। इसकी शृङ्गारचौकी बड़ी ही सुन्दर बनी है। इस नवीन जिनालय की प्रतिष्ठा वि० सं० १९७२ माघ शु० १३ को श्रीमद् विजयधनचन्द्रसूरिजी और उपा० मोहनविजयजी म०सा० के कर-कमलों से हो चुकी थी।
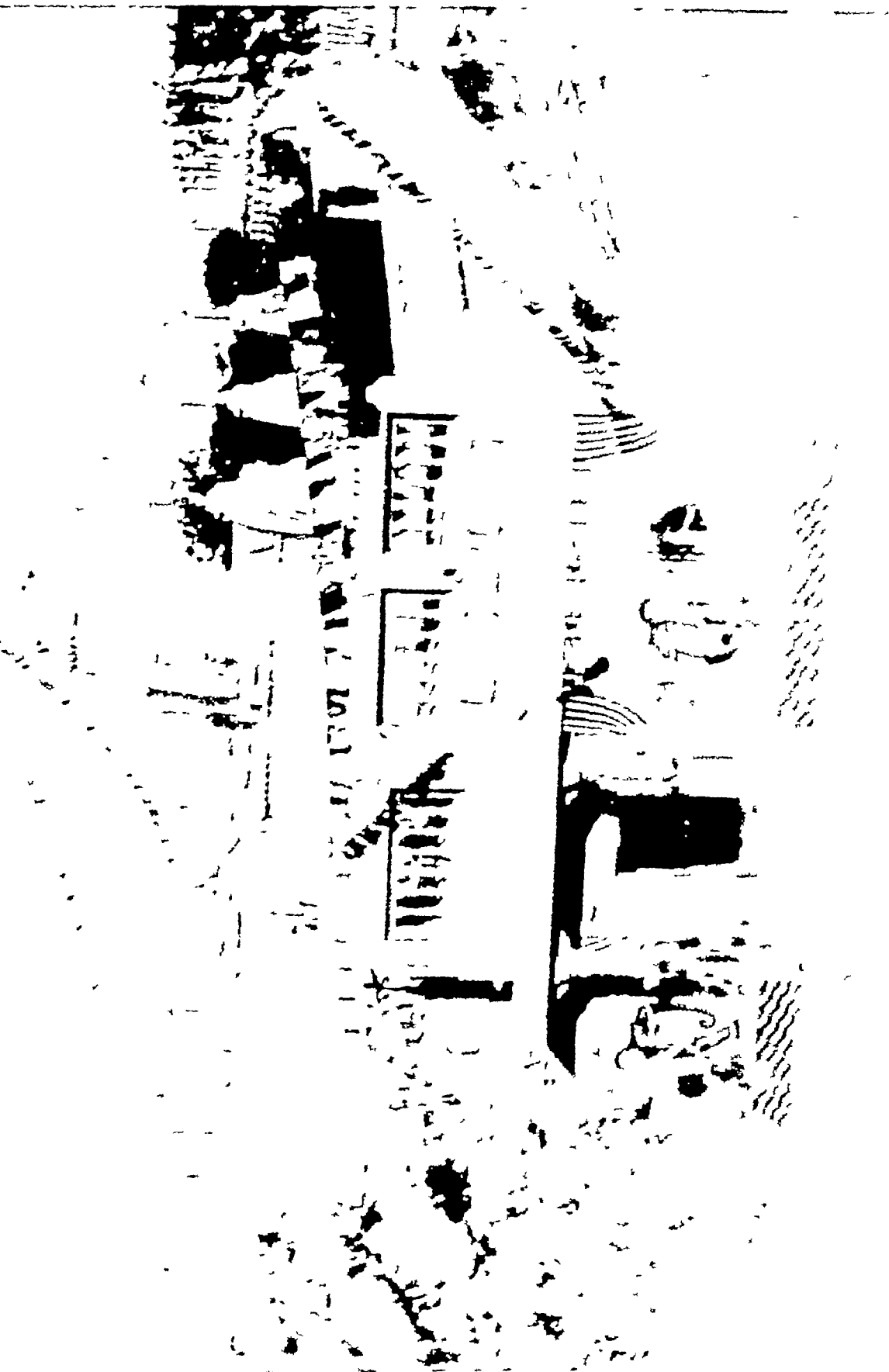
श्री महावीर-जिनालय और श्री धनचन्द्रसूरि-समाधि-मंदिर, बागरा

प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० स० १९९८

यह जिनालय ग्राम के ठीक मध्य में आ गया है। इसके सामने ही जैन पीढ़ी का कार्यालय और श्री ताराचन्द्र नवाजी की बड़ी धर्मशाला आगई है। इनसे यह स्थल ग्राम का हृदयस्थल-सा प्रतीत होता है और रमणीक भी लगता है।

श्री महावीर-जिनालय और समाधि-मन्दिर

ये दोनों चैत्यालय नगर के बाहर दक्षिण-दिशा में आये हुये लघु सरोवर के पश्चिम तट से कुछ अन्तर पर इसी वर्ष में बनवाये गये हैं। दोनों जुड़े हुये, समकक्ष और उत्तराभिमुख हैं। इनके पृष्ठ भाग में पंचायती वापिका और बगीचा आ गया है। पंचायती कुंआ सवापिका बना हुआ है। समस्त जैन कुल इस ही वापिका के जल का उपयोग पीने और धावन के अर्थ करते हैं। पुरुषों और महिलाओं के लिये वस्त्र-धावन एवं स्नानादि के लिये अलग २ स्थल बने हुये हैं। चातुर्मास में यह वापिका, मन्दिर और लघु सरोवर का संयुक्त स्थल बड़ा सुहावना लगता है।

श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल

इस सरस्वती-मन्दिर की संस्थापना वि० सं० १९९५ में आश्विन शुक्ला षष्ठी को समारोहपूर्वक चरितनायक की अधिनायकता में हुई थी। दो अध्यापक-स्वयं लेखक और दूसरे श्री ज्वालादासजी माथुर और ३०-३२ विद्यार्थियों से ही यह संस्था प्रारम्भ हुई थी। इस वर्ष इसमें विद्यार्थी-संख्या १०० से ऊपर और ६ योग्य अध्यापक हैं तथा जोधपुर-राज्य के शिक्षाविभाग से सम्मानित एवं सहायताप्राप्त है। संस्था में पाँच कक्षा पर्यंत शिक्षण होता है। मिडिल कक्षा भी खोलने की विचारणा चल रही है। अपनी अल्पायु में ही इस संस्था ने मरु-प्रदेश की अति समुन्नत एवं शिक्षणप्रिय संस्थाओं में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। संस्था की व्यवस्था ग्यारह सदस्यों की एक समिति करती है। समिति के प्रधान, प्रधानमंत्री, उपमंत्री, प्रधानाध्यापक आदि कर्मठ कर्त्ताओं के कार्य एवं कर्त्तव्य समिति ने नियमोपनियम बनाकर निश्चित कर दिये हैं और फलतः संस्था

की प्रगति सरलता एवं शांति से सुविधापूर्वक हो रही है। गुरुकुल से सम्बन्धित एक कन्या-पाठशाला भी है और उसमें द्वितीय कक्षा तक शिक्षण दिया जाता है। दोनों शिक्षण संस्थायें एक ही विशाल भवन में आ गई हैं। इस भवन के स्थान पर पहिले शाह मोतीजी दलाजी नाम की धर्मशाला थी और वह जैन संघ की पीढ़ी की देख-रेख में थी। आज उसका कलेवर शिक्षण-संस्था के विशाल भवन के रूप में परिवर्तित हो गया है और जिसका शिलान्यास वि० सं० १९९६ में शाह चैनाजी तत्पत्नी चुन्नीबाई पुत्र भभूतमल पत्नी रखबीबाई गेनाजी के नाम से हुआ है। यह शिक्षण-मन्दिर ग्राम के पश्चिम पक्ष पर आ गया है। इसका सिंहद्वार भी पश्चिमाभिमुख ही है। सिंहद्वार से लगता हुआ राजमार्ग स्टेशन को जाता है। इस मार्ग पर शिक्षण-भवन से लगभग अर्ध फर्लांग के अन्तर पर आगे जाकर आठ अध्यापक-उपगृह बने हुये हैं, जो चार-चार करके दो पंक्तियों में बने हैं और सबका सिंहद्वार एक ही है और वह दक्षिणाभिमुख है।

प्रतिष्ठा का प्रस्ताव और चातुर्मास के लिये विनती

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय में अभिनव विनिर्मित २६ देवकुलिकाओं में तथा ग्राम के बाहर उद्यान में विनिर्मित श्रीमहावीर-जिनालय में एवं गुरु-समाधि-मंदिर में प्रतिमायें स्थापित करनी थीं। निदान एक दिन शुभ मुहूर्त्त में समस्त बागरा-श्रीसंघ इस विषय पर मंत्रणा करने के लिये एकत्रित हुआ। संघ ने मंत्रणा करके निकट भविष्य में ही प्रतिष्ठा कराने का प्रस्ताव पास किया और साथ ही साथ चरितनायक का इस वर्ष का चातुर्मास भी बागरा में हो, इसके लिये विनती करने के लिये चरितनायक की सेवा में जाने का निश्चय करके भेजे जाने वाले सज्जनों का चुनाव किया। बागरा-श्रीसंघ की ओर से भेजे गये सज्जन चरितनायक की सेवा में हरजी ग्राम में उपस्थित हुये और उन्होंने प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में बागरा-संघ के निश्चय से चरितनायक को अवगत करते हुये उक्त दृष्टि से चरितनायक का चातुर्मास बागरा में होना चाहिए ऐसी विनती की। चरितनायक ने कारणों पर विचार करके बागरा में चातुर्मास करने की स्वीकृति प्रदान करदी और वह स्वीकृति जयनादों से वधाई गई।

प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० स० १९९८

प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० सं० १९९८
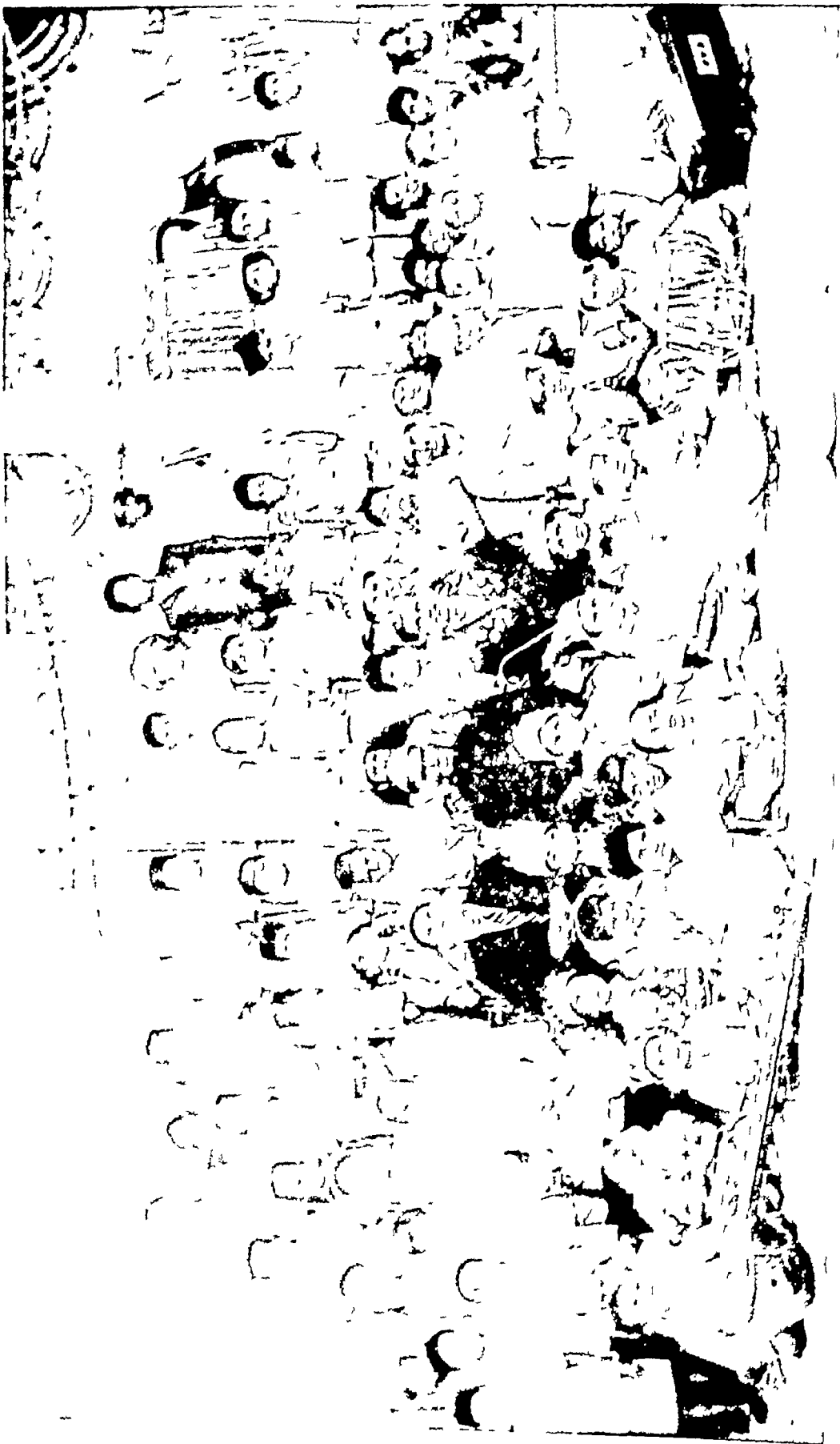
बागरा-संघ को जब यह शुभ समाचार प्राप्त हुये वह प्रमुदित होकर अनन्त उत्साह से प्रतिष्ठा-सम्बन्धी कार्य में संलग्न हो गया। सर्व प्रथम समस्त संघ ने एकत्रित होकर बड़ी ही बुद्धिमत्ता एवं विचारशीलता के साथ १ शाह जेठमल खुमाजी, २ शाह हीराचन्द्र जेताजी, ३ शाह० पूनमचन्द्र नरसिंहजी, ४ शा० वरदाजी पेराजी, ५ शा० वरदाजी गजाजी, ६ शा० मलचन्द्र मथुराजी, ७ शा० हजारीमल वनाजी, ८ शा० मन्शाजी दलाजी, ९ शा० केसरिमल हुक्माजी इन नव अति प्रतिष्ठित, बुद्धिमान् विचारशील एवं अनुभवशील व्यक्तियों को चुनकर 'कार्यकारिणी प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति' का निर्माण किया। उक्त समिति का चुनाव हो जाने पर अर्थ, नीति, समाज, व्यवहार एवं धर्म की दृष्टियों से उसको सर्व प्रकार की अपेक्षित सत्तायें प्रदान करके यह सर्वसम्मति से घोषित किया कि चरितनायक के चातुर्मास के सम्बन्ध में तथा प्रतिष्ठा की शुभ समाप्ति पर्यंत समस्त बागरा-श्रीसंघ उक्त समिति के निकट उसके द्वारा पूर्ण अनुशासित, उसका पूर्ण अनुवर्त्ती एवं उसके आदेश एवं आज्ञाओं का अनुशीलक रहेगा। समिति के कार्य का विवरण यथास्थान आगे लिखा जायगा।

कार्यकारिणी प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति

वि०सं० १९९८ आषाढ शुक्ला चतुर्थी शनिश्चरवार का दिन था। अरुणोदय हो चुका था। सूर्य की बालकिरणें वृक्षों के पल्लवों पर पुष्पाहार गूंथकर पक्षियों को पहना रही थीं। पवन वृक्षों से अटखेलियां कर रहा था। पक्षीगण आनन्द में विभोर होकर कलरव करके अपना प्राकृत एवं विशुद्ध संगीत सुना रहे थे। यह वेला सचमुच दुःख-बन्धन छेदक ही है। पशु भी अपने २ कारागृहों से निकलकर उछल-कूद कर रहे थे। इस प्राकृत नित्यायोजन में आज एक विशिष्ट आयोजन का सहचार होने को था और वह रात्रि के चतुर्थ प्रहर में ही प्रारम्भ भी हो चुका था। आज की प्रातः वेला में चरितनायक का अपनी साधुमण्डली के सहित बागरा में नगर प्रवेश होने को था। पक्षियों का कलरव, पशुओं का रमण और चरितनायक के स्वागत के लिये सजकर जाते हुये वाद्य-यन्त्रों का कल निनाद सचमुच एक

चरितनायक का चातुर्मासार्थ शुभागमन

त्रिराग-संगम हो उठा था और सुन्दर वरांगनाओं का कलकण्ठः निसृत मधुर-संगीत उसका मानो अनुमोदन करता था। ऐसी अनुपम उल्लास-पूर्ण वेला में चरितनायक का शुभागमन हुआ और वेश्री अपनी साधुमण्डली के सहित ग्राम में प्रविष्ट होकर स्थल २ पर अर्चन-पूजन के लिये एकत्रित हुईं सौभाग्यवती रमणियों का स्वागत-सत्कार स्वीकार करते हुये, श्रद्धालु भक्त-गण का वंदन एवं अभिवादन झेलते हुये ग्राम के वक्षभाग को सुशोभित करने वाली विशाल धर्मशाला में पधारे।

व्याख्यान-पीठिका पर विराजमान होकर चरितनायक ने अनुपम देशना प्रारंभ की। अपनी देशना में उनश्री ने अष्ट दुष्ट कर्मों के आक्रमण एवं प्रभावों का वर्णन करते हुये श्रोतागण को उनसे बचने के उपाय सुझाते हुये दान, शील, तप और भावना जैसे चार अमोघ शस्त्रों का प्रयोग करने के प्रति और उनमें सदा उत्साह बनाये रखने के प्रति लोगों को अनेक उदाहरण देकर समझाया। देशना के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

प्रतिष्ठा-समिति की बैठक और उसके आधीन कई विभागों का निर्माण

बागरा-श्रीसंघ का प्रतिष्ठासंबंधी उत्साह अकथनीय एवं अद्भुत था। चरितनायक के चातुर्मासार्थ हुये नगर-प्रवेश के दिन की रात्रि को ही श्री प्रतिष्ठा-समिति की धर्मशाला के आंगन में बैठक हुई और उसमें निम्नवत् कार्यवाही हुई। सर्व प्रथम समिति ने प्रतिष्ठा-संबंधी समस्त अंगोपांग पर विचार करके भिन्न २ विभागों का एवं उपविभागों का खोलना सर्वसंमति से पास किया और तुरंत ही विभागों की निम्नवत् रचना हुई।

प्रमुख विभाग

१. भोजन-विभाग
२. भोजन-प्रेषक-विभाग
३. वर्त्तन-संमार्जक-विभाग
४. मण्डप-विभाग
५. वरघोड़ा-विभाग
६. स्वागत-विभाग
७. संरक्षण-विभाग
८. भाषण-विभाग

उपविभाग

1. छिड़काव-विभाग
2. मंगलगृह-विभाग
3. दर्शक-विभाग
4. दीपक-विभाग
5. स्वच्छकारी-विभाग
6. सजावट-विभाग
7. कोठार-विभाग
8. स्वयंसेवक-विभाग
9. चिकित्सा-विभाग
10. नगर-सफाई-विभाग
11. नाटक-विभाग

उपरोक्त प्रकार से मुख्य विभागों को स्थापित करके उनमें से प्रत्येक को श्री प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति के एक-एक सदस्य की अध्यक्षता में रक्खा गया तथा उपविभागों में से कुछ विभाग उक्त केन्द्रीय समिति के सदस्यों के अधीन ही रक्खे गये और कुछ को अन्य व्यक्तियों के अधीन रक्खा गया। प्रधान विभाग एवं उपविभाग के अध्यक्षों को अपने २ कार्य बतला दिये गये और उनको अपने २ विभागों की स्वतंत्र समितियां बनाने का अधिकार दे दिया गया। केन्द्रीय समिति ने चढ़ावे का विषय अपने अधीन ही रक्खा तथा प्रधान और उपविभागों का निरीक्षण, उनकी कठिनाइयों का हल करना अपना कर्त्तव्य घोषित किया। प्रत्येक विभाग के प्रधान को अपने विभाग की हर-प्रकार की व्यवस्था करने में, आवश्यक साधन-सामग्री जुटाने में, व्यय करने में पूर्ण स्वतंत्र रक्खा गया। यह सर्व हो जाने पर केन्द्रीय समिति ने घोषित किया कि कल से ही सर्व प्रमुख विभागों के एवं उपविभागों के अध्यक्ष अपना २ कार्य प्रारंभ कर दें और साथ ही उनको यह भी सूचित कर दिया कि वे कार्य जिनकी सम्पन्नता सर्व प्रथम होना आवश्यक है वे शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर लिये जायं।

केन्द्रीय समिति की उपरोक्त सर्व कार्यवाही चरितनायक की तत्त्वावधानता में रात्रि के १२ बजे तक होती रही। साधु-मण्डल भी उपस्थित था। सफलता के साथ सर्व कार्यों का विभाजन हो सका जिससे कि निर्माण हो सका तथा विभागों के अध्यक्ष और अध्यक्षों का [illegible]-कर्त्तव्य इतनी शान्ति और सफलता से निश्चित किये जा सके, इसमें चरितनायक

त्रिराग-संगम हो उठा था और सुन्दर वरांगनाओं का कलकण्ठः निसृत मधुर-संगीत उसका मानो अनुमोदन करता था। ऐसी अनुपम उल्लास-पूर्ण वेला में चरितनायक का शुभागमन हुआ और वेश्री अपनी साधुमण्डली के सहित ग्राम में प्रविष्ट होकर स्थल २ पर अर्चन-पूजन के लिये एकत्रित हुईं सौभाग्यवती रमणियों का स्वागत-सत्कार स्वीकार करते हुये, श्रद्धालु भक्त-गण का वंदन एवं अभिवादन झेलते हुये ग्राम के वक्षभाग को सुशोभित करने वाली विशाल धर्मशाला में पधारे।

व्याख्यान-पीठिका पर विराजमान होकर चरितनायक ने अनुपम देशना प्रारंभ की। अपनी देशना में उनश्री ने अष्ट दुष्ट कर्मों के आक्रमण एवं प्रभावों का वर्णन करते हुये श्रोतागण को उनसे बचने के उपाय सुझाते हुये दान, शील, तप और भावना जैसे चार अमोघ शस्त्रों का प्रयोग करने के प्रति और उनमें सदा उत्साह बनाये रखने के प्रति लोगों को अनेक उदाहरण देकर समझाया। देशना के पश्चात् सभा विसर्जित हो गई।

प्रतिष्ठा-समिति की बैठक और उसके आधीन कई विभागों का निर्माण

बागरा-श्रीसंघ का प्रतिष्ठासंबंधी उत्साह अकथनीय एवं अद्भुत था। चरितनायक के चातुर्मासार्थ हुये नगर-प्रवेश के दिन की रात्रि को ही श्री प्रतिष्ठा-समिति की धर्मशाला के आंगन में बैठक हुई और उसमें निम्नवत् कार्यवाही हुई। सर्व प्रथम समिति ने प्रतिष्ठा-संबंधी समस्त अंगोपांग पर विचार करके भिन्न २ विभागों का एवं उपविभागों का खोलना सर्वसंमति से पास किया और तुरंत ही विभागों की निम्नवत् रचना हुई।

प्रमुख विभाग

१. भोजन-विभाग
२. भोजन-प्रेषक-विभाग
३. वर्त्तन-संमार्जक-विभाग
४. मण्डप-विभाग
५. वरघोड़ा-विभाग
६. स्वागत-विभाग
७. संरक्षण-विभाग
८. भाषण-विभाग

उपविभाग

१. हिसाब-विभाग
२. मंगलगृह-विभाग
३. दर्शक-विभाग
४. दीपक-विभाग
५. स्वच्छकारी-विभाग
६. सजावट-विभाग
७. कोठार-विभाग
८. स्वयंसेवक-विभाग
९. चिकित्सा-विभाग
१०. नगर-सफाई-विभाग
११. नाटक-विभाग

उपरोक्त प्रकार से मुख्य विभागों को स्थापित करके उनमें से प्रत्येक को श्री प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति के एक-एक सदस्य की अध्यक्षता में रक्खा गया तथा उपविभागों में से कुछ विभाग उक्त केन्द्रीय समिति के सदस्यों के अधीन ही रक्खे गये और कुछ को अन्य व्यक्तियों के अधीन रक्खा गया। प्रधान विभाग एव उपविभाग के अध्यक्षों को अपने २ कार्य बतला दिये गये और उनको अपने २ विभागों की स्वतंत्र समितियाँ बनाने का अधिकार दे दिया गया। केन्द्रीय समिति ने चढ़ावे का विषय अपने अधीन ही रक्खा तथा प्रधान और उपविभागों का निरीक्षण, उनकी कठिनाइयों का हल करना अपना कर्त्तव्य घोषित किया। प्रत्येक विभाग के प्रधान को अपने विभाग की हर-प्रकार की व्यवस्था करने में, आवश्यक साधन-सामग्री जुटाने में, व्यय करने में पूर्ण स्वतंत्र रक्खा गया। यह सर्व हो जाने पर केन्द्रीय समिति ने घोषित किया कि कल से ही सर्व प्रमुख विभागों के एवं उपविभागों के अध्यक्ष अपना २ कार्य प्रारंभ कर दें और साथ ही उनको यह भी सूचित कर दिया कि वे कार्य जिनकी सम्पन्नता सर्व प्रथम होना आवश्यक है वे शीघ्रातिशीघ्र पूर्ण कर लिये जायं।

केन्द्रीय समिति की उपरोक्त सर्व कार्यवाही चरितनायक की तत्त्वावधानता में रात्रि के १२ बजे तक होती रही। साधु-मण्डल भी उपस्थित था। सफलता के साथ सर्व कार्यों का विभाजन हो सका, विभागों का निर्माण हो सका तथा विभागों के अध्यक्ष और अध्यक्षों का कार्य-कर्त्तव्य इतनी शांति और सरलता से निश्चित किये जा सके, इनमें चरितनायक

और साधुमण्डल की संमति और सहयोग भी बहुत दूर तक सहायक रहे। 'जय महावीर' की ध्वनि के साथ समिति की बैठक विसर्जित हुई।

समिति की बैठक और चढावे

श्री प्रतिष्ठा-महोत्सव-समिति की द्वितीय बैठक श्रावण शु० १ को पुनः दिन के तृतीय प्रहर में चरितनायक की अध्यक्षता में हुई। महोत्सव के कार्यक्रम पर सर्वप्रथम विचार करके उसको निश्चित करके लिख लिया गया। तत्पश्चात् ९ नवकारशियों की बोली बोली गई और कुंकुमपत्रिका का चढ़ावा बोलने वाले सद्गृहस्थ का 'प्रणाम' लिखने का प्रस्ताव पास किया गया। चरितनायक से श्री कुँकुमपत्रिका का लेखन तैयार करने की प्रार्थना की गई और चरितनायक ने वह सहर्ष स्वीकृत की। तत्पश्चात् बैठक विसर्जित हो गई। नवकारशियों की बोली निम्नवत् रही।

(१) रु० ३३०१) शा० जैरूपजी चुन्नीलाल ताराचन्द्र शंकरलाल।*
(२) ,, ३१०१) ,, अचलाजी रिखबदास लादाजी।
(३) ,, ३८०१) ,, वनाजी हजारीमल लालचन्द्र छगनलाल सुमेरमल सुरतिंगजी।
(४) ,, ४४०१) ,, पूनमचन्द्रजी छगनलाल सुखराज भूरमल नरसिंहजी।
(५) ,, ४४०१) ,, पूनमचन्द्र लक्ष्मीचन्द्र केसाजी।
(६) ,, ६५०१) ,, वरदीचन्द्रजी मिश्रीमल लखमाजी।
(७) ,, ६६०१) ,, जैरूपजी गजाजी।
(८) ,,१०५०१) ,, हीराचन्द्रजी सिरेमल जेताजी (बड़ी नवकारशी)
(९) ,, २९०१) ,, नत्थमल मोतीजी वीठाजी।

———

४५५०९)

---

* जीकारसंयुक्त प्रथम नाम पिता, जीकारविहीन नाम पुत्र और अन्तिम जीकार संयुक्त नाम पितामह के क्रमशः समझने चाहिए।

समिति की बैठकें और चढ़ावे

उक्त प्रकार ही समिति ने अपनी कई वार बैठकें कीं और सर्व प्रकार के चढ़ावे उनमें बोले गये। श्रीपार्श्वनाथ-जिनालय में अभिनव विनिर्मित २६ कुलिकाओं में से प्रत्येक के लिये सात-सात चढ़ावे बोले गये। चढ़ावे इस प्रकार थेः—

१. कुलिका पर नाम,
२. बिंब पर नाम
३. बिंब-स्थापना
४. दण्डारोहण
५. ध्वजारोपण
६. सिंह पर नाम
७. कलश-स्थापना।

२६ कुलिकाओं के उक्त विधि से कुल १८२ चढ़ावे होते हैं। अगर चढ़ावा बोलने वाले १८२ सज्जनों का नामोल्लेख किया जाय तो कई पृष्ठ बढ़ जाते हैं, अतः प्रत्येक कुलिका का सातों चढ़ावों का कुल चढ़ावा कितना हुआ इतना ही नीचे दे दिया जाता हैः—

१. रु० २४३१) श्री ऋषभदेव कुलिका।
२. ,, ४८३६) ,, अजितनाथ कुलिका।
३. ,, ४६०६) ,, संभवनाथ कुलिका।
४. ,, ४५१०) ,, अभिनन्दन कुलिका।
५. ,, ४०८७) ,, सुमतिनाथ कुलिका।
६. ,, ५३०८) ,, पद्मप्रभदेव कुलिका।
७. ,, ४३७४) ,, सुपार्श्वनाथ कुलिका।
८. ,, ४०९८) ,, चन्द्रप्रभ कुलिका।
९. ,, २३०४) ,, पार्श्वनाथ-चरण कुलिका।
१०. ,, ३७१८) ,, सुविधिनाथ कुलिका।
११. ,, ३८२९) ,, शीतलनाथ कुलिका।
१२. ,, ३८०३) ,, श्रेयांसनाथ कुलिका।
१३. ,, ३८६१) ,, वासुपूज्य कुलिका।
१४. ,, ३६०५) ,, विमलनाथ कुलिका।

१५. रु० ३७५९) श्री अनन्तनाथ कुलिका।
१६. „ ३२९२) „ धर्मनाथ कुलिका।
१७. „ १६०५) „ महावीर-चरण कुलिका।
१८. „ ३२१२) „ शांतिनाथ कुलिका।
१९. „ ३५७२) „ कुंथुनाथ कुलिका।
२०. „ ३६११) „ अरनाथ कुलिका।
२१. „ ३४१८) „ मल्लिनाथ कुलिका।
२२. „ २९०८) „ मुनिसुव्रत कुलिका।
२३. „ २९१६) „ नमिनाथ कुलिका।
२४. „ २६३०) „ नेमिनाथ कुलिका।
२५. „ ५७३१) „ महावीर कुलिका।

९२३५४)

२००८४) देवकुलिकाओं में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं पर नामों के चढ़ावे।

११३५१) ग्राम के बाहर उद्यान में विनिर्मित श्री महावीर-मंदिर पर नाम और श्री महावीर-प्रतिमा पर नाम का चढ़ावा।

८२७४) ग्राम के बाहर उद्यान में विनिर्मित श्री धनचंद्रसूरि-समाधि-मंदिर पर नाम और प्रतिमादि तथा कलश-ध्वज-दण्डारोहण का चढ़ावा।

१३२०६३)

श्री पार्श्वनाथ-जिनालय की उपरोक्त २६ कुलिकाओं के ऊपर केवल नाम लिखाने के चढ़ावे बोलने वाले सद्गृहस्थों की ऊपर लिखी गई कुलिकाओं के क्रम के अनुसार ही नामावली और चढ़ावों की रकमः—

१. ... .
२. रु० २५२५) शा० साकलचंद्र जुहारमल देवराजजी।
३. „ २४५१) „ किसनाजी जेताजी।

४. रु० २७५१) शा० वरदाजी लखमाजी ।
५. ,, २६५१) ,, चैनाजी खूमाजी केसरीमल हिम्मतमल धनराज हिन्दुजी ।
६. ,, २७०१) ,, जैरूपजी देवीचद्रजी उदयचंद्र मीठालाल गजाजी ।
७. ,, २७५१) ,, जोधाजी मालाजी मंछाजी प्रेमचंद्र जैरूपचंद्र फूलचंद्र रत्नचंद्र ओकाजी ।
८. ,, २५५१) ,, कस्तूरजी केसरीमल नत्थमल फूलचन्द्र हुक्माजी ।
९. ,, ... ,, ...
१०. ,, २५५१) ,, भगवानजी वीरचंद्र भाणाजी खुमाजी दलीचंद्र नानचंद्र भभूतचंद्र कपूरचंद्र नत्थमल मंछालाल पूनमचंद्र ताराचंद्र अचलदास सौभागमल प्रतापचंद्र मूलचंद्र रिखबदास भीखाजी ।
११. ,, २४५१) ,, ओपाजी खूमाजी पत्नी सोनीबाई ।
१२. ,, २५०१) ,, पेराजी वरदीचंद्र तिलोकचंद्र जेताजी ।
१३. ,, २४०१) ,, कपूरचंद्र चंदाजी की पत्नी जसादे ।
१४. ,, २५०१) ,, जेसाजी हीराचंद्र भभूतमल ।
१५. ,, २६७५) ,, गेनाजी चमनाजी ताराचंद्र लूंबचंद्र ।
१६. ,, २२२५) ,, वनेचंद्र खुशालजी ।
१७. ,, ... ,, ...
१८. ,, २१०१) ,, सूरतिंगजी डायाजी की पत्नी बाई धापू ।
१९. ,, २५०१) ,, देवीचंद्र राजाजी ।
२०. ,, २५२५) ,, हीराचंद्र चैनाजी ।
२१. ,, २४२५) ,, किस्तूरचंद्र चमना कपूरचद्र लालचंद्र लूंबाजी ।
२२. ,, २००१) ,, नत्थमल मोतीजी वीकाजी ।

२३. रु० २१०१) शा० जैरूपजी चैनाजी पनजी।
२४. ,, २१०१) ,, वनजी केसाजी खीमाजी।
२५. ,, २१०१) ,, डाहाजी देवीचंद्र टीकमचंद्र नत्थाजी।

श्री महावीर-जिनालय (ग्राम के बाहर उद्यान में) पर नामः—

रु० १०६०१) शाह प्रतापचंद्र धूड़ाजी।

श्री धनचंद्रसूरि-समाधि-मंदिर (ग्राम के बाहर उद्यान में) पर नामः—

रु० ५६०१) शाह पैराजी लूंबाजी।

कुछ अन्य बड़े चढ़ावेः—

रु० २५०१) शाह नत्थमल जवानजी (महावीर-प्रतिमा-स्थापन)
,, २००१) ,, जुहारमल सांकलाजी (कलशारोहण)
,, ७२२५) ,, वरदीचंद्र नत्थमल पेराजजी (ध्वजारोहण)
,, २००१) ,, वालचंद्र नत्थाजी (दण्डारोहण)
,, २५२५) ,, जुहारमल सांकलाजी (हाथी के हौदे तोरण का बांधना)
,, १२२५) ,, मगराज नरसिंहजी (गुरु-प्रतिमा-स्थापन)

चरितनायक का चातुर्मास

चरितनायक का यह चातुर्मास बड़ा ही आकर्षक एवं धर्म और पुण्य के कार्यों से भरा-पूरा था। प्रतिष्ठा के प्रति प्रत्येक जैन सद्गृहस्थ बड़ा ही उत्कंठित एवं उत्साह भरा था। चरितनायक व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययन सूत्र' और भावनाधिकार में 'श्री विक्रमादित्यचरित्र' का वाचन करते थे। चातुर्मास भर व्याख्यान का भी अतिशय ठाट रहा। आये दिन प्रभावनायें होती थीं। साधु-मण्डली के दर्शनार्थ मारवाड़, मालवा एवं गुजरात के कतिपय ग्राम, नगरों से आये दिन सद्गृहस्थ एवं सज्जन आते ही रहे। बागरा-संघ ने भी अतिथियों का खूब ही स्वागत किया था। इस वर्ष प्रतिक्रमण, पौषध, सामायिक आदि में भी सम्मिलित होने वालों की संख्या आशा से अधिक सदा ही रही तथा बियासणा, एकासणा, आयंबिल, उपवास, बेला,

तेला, चोला, पचोला, अट्ठाई, दशोपवास, पचरंगी, पूजा, प्रभावना, चैत्यवाड़ी, एवं अन्य भिन्न २ तपों का पूरे चातुर्मास भर अदभुत एवं अपूर्व ठाट और आनंद रहा।

प्रत्येक पल एवं घड़ी किसी भी दिन ऐसी नही थी कि जिसमें कुछ न कुछ धर्मकृत्य एवं पुण्य का आयोजन नहीं बना रहा हो। चाहे चातुर्मास-संबंधी, चाहे प्रतिष्ठासंबंधी कोई न कोई प्रश्न अथवा हल चला ही करता था। इस अद्भुत आनंद के साथ चातुर्मास सम्पूर्ण हुआ और कार्त्तिक शुक्ला पूर्णिमा को जब चरितनायक का बागरा से विहार हुआ, उसी दिन प्रतिष्ठोत्सव की कुंकुमपत्रिकायें भी प्रसिद्ध की गईं और मालवा, मेवाड़, नेमाड़, गुजरात, दक्षिण-भारत, बम्बई, कलकत्ता, कच्छ एवं राजस्थान में श्री संघों को प्रेषित की गईं।

चरितनायक का पुनः पदार्पण और प्रतिष्ठोत्सव का प्रारम्भ

चातुर्मास समाप्त करके चरितनायक सांथू पधारे और वहाँ कुछ दिवस पर्यन्त विराजकर पुनः बागरा पधार गये। जैन साधू-मुनिराजों का ऐसा आचार है कि जिस ग्राम, स्थान में चातुर्मास किया है, चातुर्मास की समाप्ति पर वह स्थान अथवा ग्राम एक बार तो छोड़कर अन्यत्र विहार करना ही-पड़ता है। विशेष कारण से पुनः पदार्पण हो सकता है। आपश्री का नगर-प्रवेश बडे ही ठाट एवं उत्साहपूर्वक किया गया। कई मास से जिस प्राण-प्रतिष्ठा के लिये तैयारियां की जा रही थीं वह आखिर संनिकट आती-आती मार्गशीर्ष शुक्ला ३ शुक्रवार को बड़े ही उत्साह एवं आनंद के साथ प्रारंभ हो गई और मार्ग० शुक्ला ११ शनिवार तक वह निर्वाहित रही। प्रति दिन का कार्यक्रम निम्नवत् रहा।

१. मार्ग०शु०३शुक्र०—जलयात्रा, स्नात्रपूजा, अंगकरन्यास, देववंदना, जलदेवी का आह्वान, जलघटस्थापन, अखण्डदीपस्थापन, क्षेत्रपालस्थापन, धूपघट-संधूपन, सिद्धाचल-गिरनारतीर्थपूजन और नवाणुंप्रकारीपूजा।

२. मार्ग०शु० ४ शनि०—जवारा-आरोपण, नवग्रहदशदिग्पालपूजन,

शांतिध्वज-शीलध्वजस्थापन, नन्दावर्त्तमंडलपूजन-स्थापन और महावीरपंच-कल्याणकपूजा।

३. मार्ग० शु० ५ रवि०—नवपदवीशस्थानकपदमण्डलपूजनस्थापन, मण्डपवेदिकोपरी जिनबिम्बस्थापन, कलश-दण्ड-ध्वजमेलन, मातृकान्यासादि और द्वादशभावनापूजा।

४. मार्ग० शु० ६ सोम०—कुम्भस्थापना, घंटाकर्णपटस्थापना, इन्द्र-इन्द्राणि-कल्पना, च्यवनकल्याणकविधानादि और सिद्धचक्रपूजा।

५. मार्ग०शु०७ मंगल०—जन्मकल्याणविधान, दिक्कुमारी-इन्द्रकृत जन्मोत्सव, केलीगृह-रचना, अष्टादशाभिषेक, माता-पिताकल्पना, नामकरणादि और समकितअष्टप्रकारीपूजा।

६. मार्ग०शु० ८ बुध०—पाठशालोत्सव, विवाहसंस्कार, राज्याभिषेक, दीक्षाकल्याणकविधानादि और अष्टप्रवचनमातापूजा।

७. मार्ग०शु० ९ गुरु०— मंत्राक्षर-आलेखन, जिनवराह्वान, अंजनकरण, केवलकल्याणकविधान, निर्वाणकल्याणक और अन्तरायकर्मनिवारणपूजा।

८. मार्ग० शु० १० शुक्र०—ता० २८-११-४१ को शुभ लग्न में देवकुलिकाओं में जिनबिम्बस्थापना, कलशारोहण, दण्डध्वजारोपण तथा श्रीमहावीर-जिनालय में प्रतिमास्थापन और कलश-दण्ड-ध्वजारोपण और गुरु-समाधि-मंदिर में गुरु-मूर्त्तिस्थापन और द्वादशव्रतपूजा।

९. मार्ग०शु० ११ शनि०—एक सौ आठ अभिषेकवाली शान्तिक-पौष्टिक-शान्तिमहापूजा, नगर के चतुर्दिक जलधारादान, देवदेवी-विसर्जन-क्रिया।

ऊपर लिखे नवों दिनों में प्रति रात्रि को श्रीराजेन्द्र जैन-गुरुकुल की संगीत-मण्डली के जिनगुणगर्भित संगीत, नर्त्तन एवं समाज-सुधार दृष्टियों से तथा देशभक्ति-भावनादायी अभिनय और नाटक होते रहे। प्रतिष्ठोत्सव के

श्री पार्श्वनाथ-राजेन्द्र-बैण्ड, बागरा।

प्राण-प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० स० १९९८

निमित्त संगीत-मण्डली का शिक्षण गत आठ मास पूर्व ही प्रारंभ कर दिया गया था और मण्डली के पात्रों की पोशाक अहमदाबाद से स्पेशल दर्जी बुलवा कर सिलवाई गई थी तथा वाद्य आदि कई उपकरणों को जुटाने में समिति ने व्यय का विचार नही किया था। अब पाठक स्वयं सोच सकते है कि मण्डली की निपुणता की मात्रा किस रेखा तक बढ़ गई होगी। संगीत में निष्णात मा०सालिगरामजी द्वारा शिक्षण और उत्कट सेवाभावी मा० ज्वालादासजी की सेवाओं को पाकर संगीत-मण्डली को प्रगति करने में कोई त्रुटि कैसे रह सकती थी। लेखक भी सौभाग्य से इस मण्डली का निरीक्षक रहा था और मण्डली के कौशल को प्रकटाने में जो कुछ और जितना अपेक्षित था वह करने में कभी पीछे नहीं रहा था।

नव ही दिनों में नित्य वरघोड़ा निकलता था, जिसमें हाथी, सुसज्जित अश्व, देवरथ, डणकानिशान, इन्द्र-ध्वज रहते थे तथा कई ढोल, बैण्ड और कलावंतों के दल होते थे। सिरोही के श्री महावीर-बैन्ड की उपस्थिति सचमुच वरघोड़े में चार-चाँद का कार्य करती थी। वरघोड़े की सेवा करने में श्रीपार्श्वनाथ जैन सेवा-मण्डल, बागरा की तत्परता बड़ी ही सराहनीय एवं स्तुत्य रही।

वैसे तो श्री बागरा-अंजनशलाका-प्रतिष्ठा की स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी गई थी; परन्तु दुःख है कि वह छपाई नहीं गई। वह पुस्तक सचमुच इस उद्देश्य से ही लिखी गई थी कि ऐसी बड़ी प्राण-प्रतिष्ठाओं एव महोत्सवों का प्रबंध किस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे आनंद का अतिरेक बढ़े और लगाये खर्च का आनंद आ जाय। अगर उस पुस्तक में वर्णित वस्तु संक्षिप्त रूप से भी लिखी जाय तो भी पृष्ठों की संख्या आलोच्य स्तर तक बढ़ सकती है। यहाँ तो जितना अन्य स्थानों में हुई प्रतिष्ठाओं के वर्णन को स्थान दिया गया है, उतना इसको भी। उपसंहार में इतना कह देना ठीक समझता हूँ कि बागरा-प्रतिष्ठोत्सव में भोजन-निर्माण, भोजन-व्यवहार, आतिथ्य, वरघोड़ा-निष्कासन, शौच-स्नान और मूत्र-त्याग की सुविधायें एवं मनोरंजन जैसे नाटक, संगीत, अभिनय तथा प्रभु-भजन-कीर्त्तन आदि तत्संबंधी समितियां

अपनी पूरी लग्न, श्रद्धा एवं शक्ति से सम्पन्न कर रही थीं। सहस्रों की संख्या में आये हुये सधर्मी बंधुओं का जैसा आतिथ्य शयन, भोजन, विश्राम, मनोरंजन आदि दृष्टियों से बागरा के इस महोत्सव पर हुआ, मेरा विचार है कि वैसा आतिथ्य ऐसे ही बड़े अवसरों पर राजस्थान एवं मालवा में कई वर्षों में भी नहीं हुआ होगा। इस महोत्सव की व्यवस्था को दृष्टि में रख कर पश्चात्वर्त्ती वर्षों में बागरा के निकट के नगर और ग्रामों में पश्चात्वर्त्ती हुई प्रतिष्ठाओं की वैसी ही व्यवस्था करने का प्रयत्न कई स्थलों पर द्विगुणित, त्रिगुणित व्यय करके भी किया गया ज्ञात हुआ है और लेखक ने स्वयं भी कई प्रतिष्ठाओं में संमिलित होकर अनुभव भी किया है; परन्तु जो आनंद इस बागरा-प्रतिष्ठोत्सव में आया वह फिर नहीं अनुभव किया गया। एवमस्तु।

सेदरिया में प्रतिष्ठा और सियाणा में उद्यापन और बड़ी दीक्षा

वि० सं० १९९८

●

विहार और सेदरिया में प्रतिष्ठा

प्रतिष्ठा के समाप्त होने पर चरितनायक अपनी साधु-मण्डली एवं शिष्यगण के सहित आकोली पधारे और वहाँ कुछ दिन पर्यंत विराज करके सियाणा पधारे। यहाँ भी स्थानीय संघ के आग्रह से कुछ दिन पर्यंत विराजे। सेदरिया में इसी वर्ष फाल्गुण मास में प्रतिष्ठा करनी थी; अतः आपश्री वहाँ से सर्दी के कम पड़ने पर विहार करके हरजी पधारे। हरजी-श्रीसंघ ने चरितनायक का स्वागतोत्सव बड़े ही ठाट-बाट से किया। हरजी से सेदरिया पधारे। सेदरिया में संगमरमर-विनिर्मित त्रिशिखरी-जिनालय में वि० सं० १९९८ फाल्गुन शुक्ला ५ पंचमी शुक्रवार को पाँच जिनबिंबों की शुभ मुहूर्त में अट्ठाई-महोत्सवपूर्वक स्थापना की एवं जिनालय के ऊपर स्वर्णकलश और दण्डध्वजारोपण करवाया। कुछ दिनों के पश्चात् चरितनायक ने सेदरिया से पुनः सियाणा की ओर विहार किया।

सियाणा में उद्यापन एवं ७ मुनियों की बड़ी दीक्षा एवं विहार

वि० सं० १९९९

चरितनायक सेदरिया से पुनः विहार करके गुढ़ाबालोतरा, आहोर, हरजी होते हुये सियाणा पधारे। यहा शाह कपूरचंद्र भीखाजी की ओर से वीशस्थानकतप का उद्यापन करवाया गया था तथा इसी शुभावसर पर मुनि श्री लावण्यविजयजी, रंगविजयजी आदि ७ मुनियों को बड़ी दीक्षा दी गई थी। उद्यापनतपोत्सव एवं बृहद्दीक्षोत्सव दोनों के सम्मिलित होने से एक महोत्सव का रूप बन गया था। यहाँ से आपश्री विहार कर के आहोर पधारे। आहोर के श्रीसंघ में कुछ कारणों से कुसंप उत्पन्न हो गया था, उसको मिटाकर गुढ़ाबालोतरा, थूंबा, कवराड़ा, भूति, पावा, बाबाग्राम, कौशीलाव, धणा, ब्राह्मी होते हुये एवं कही एक दिन और कहीं अधिक दिनों का विश्राम करते हुये आपश्री खिमेल में पधारे। इस वर्ष का चातुर्मास खिमेल में ही होना निश्चित हो चुका था। खिमेल के श्रीसंघ ने आपश्री का पुर-प्रवेश बड़ी ही सज-धज से करवाया।

———

खुडाला के श्रीसंघ ने आगत संघ का आतिथ्य एवं स्वागत अत्यन्त ही प्रशंसनीय किया था। संघ खुडाला में तीन दिन ठहरा। पौष शु० ७ मी को स्वर्गस्थ गुरुवर्य श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी की जयन्ती अत्यन्त धूम-धाम एवं सुन्दर आयोजनों के साथ मनाई गई थी। जयन्ती-उत्सव की व्यवस्था श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुडाला के मानद मंत्री श्री निहालचंद्र [illegible] ने बड़ी ही तत्परता एवं भक्ति से की थी। प्रातः नगरकीर्तन, हुआ। मध्याह्न में अष्टप्रकारीपूजा पढ़ाई गई और उसमें संघपति की ओर से श्रीफल की प्रभावना दी गई। रात्रि को सार्वजनिक सभा हुई। इस प्रकार सम्पूर्ण दिन सुन्दर कार्यक्रम से व्यस्त रहा था। दूसरे दिन संघ खुडाला से विसर्जित हो गया और सर्व जन अपने २ ग्रामों को लौट गये।

सिरोही-राज्य के जोरामगरा में विहार और प्रतिष्ठादि कार्य

वि० सं० १९९९

●

बरलूट की ओर विहार और प्राण-प्रतिष्ठा

चरितनायक ने अपने शिष्यमण्डल एवं साधुसमुदाय के सहित खुडाला से विहार किया और जाकोड़ातीर्थ की यात्रा करते हुये सुमेरपुर, फतापुरा, कोरंटातीर्थ, नया जोगापुरा, भेव, अणदोर, जावालादि ग्रामों में विचरते हुये धर्मोपदेश [illegible] हुये बरलूट में पधारे। बरलूट के श्रीसंघ ने चरितनायक का [illegible] एवं उपकरणों से युक्त समारोह निकाल कर नगर-प्रवेश [illegible] की देख-रेख में प्रतिष्ठासंबंधी कार्य को सम्पन्न [illegible] और [illegible]। घर २ मंगलाचार होने लगे और नगर में [illegible] भव्य प्रतिष्ठा-मण्डप की रचना करवाई [illegible] ० सं० १९९९ माघ [illegible] देव और [illegible] मंदिर में

यहाँ के संघ ने भी आगत संघ का अतिशय सम्मानपूर्ण स्वागत किया। यह नगर भी प्राचीन एवं सुन्दर है। यह जोधपुर-राज्य के प्रथम श्रेणी के ठिकाने का पाट-नगर है। ठाकुर साहब के प्रासाद और दुर्ग प्राचीन एवं सुन्दर बने हुये हैं। यहाँ जैनियों के ११ मन्दिर, तीन विशाल जैन धर्मशालायें और चार जैन उपाश्रय हैं।

घाणेराव से श्री महावीर-मुछाला नामक तीर्थ चार मील के अन्तर पर है। पौष कृ० एकादशी को संघ घाणेराव से श्री महावीर-मुछाला तीर्थ के दर्शन करने को रवाना हुआ। वहाँ संघ एक दिन ठहरा। उसने प्रातः सेवा-पूजा खूब भाव-भक्तिपूर्वक की। दिन में पूजा पढ़ाई गई तथा रात्रि को सन्ध्या समय में आंगी की सुन्दर रचना करवाई गई।

श्री महावीर-मुछाला से संघ पौष कृ० द्वादशी को सादड़ी पहुँचा। यहाँ पौरवाल, ओसवालों के जैन घर मिलाकर लगभग एक सहस्र (१०००) हैं। स्थानीय संघ की ओर से नवागत संघ का प्रशंसनीय विधि से स्वागत किया गया। यहाँ एक सौधशिखरी बावन-जिनालय है, जिसमें मूलनायक प्रतिमा भगवान् पार्श्वनाथ की विराजमान् है। अतिरिक्त इसके यहाँ ६ उपाश्रय, २ विशाल धर्मशालायें और एक पुस्तकालय है। साधु, साध्वियों के ठहरने के लिये यहाँ पूरी २ सुविधायें हैं। श्री राणकपुरतीर्थ को दर्शन करने के लिये जाने वाले यात्री यहीं आकर ठहरते हैं। यहाँ सेठ श्री आनंदजी कल्याणजी की पीढ़ी है, जिसकी श्री राणकपुरतीर्थ पर देख-रेख है। यह पीढ़ी ही यात्रियों की सर्व प्रकार की सुविधाओं का प्रबन्ध करती है। इस पीढ़ी की ओर से श्री पार्श्वनाथ-बावन-जिनालय के पार्श्व में उसके उत्तर पक्ष पर एक धर्मशाला बनी हुई है, उसमें राणकपुर को जाने वाले और राणकपुर से आने वाले यात्रियों के लिये ठहरने की व्यवस्था है।

पौ० कृ० द्वितीया द्वादशी को सादड़ी से चलकर संघ श्री राणकपुरतीर्थ*

राणकपुर तीर्थ

* यह तीर्थ सादड़ी से ६ मील दक्षिण दिशा मे माद्री नामक पर्वत-श्रेणियों के मध्य एक खुले मैदान मे आगया है। यहाँ तीन जैन मंदिर और एक वैष्णव सूर्य-मंदिर है।

पहुँचा । संघ का आनंदजी कल्याणजी की पीढ़ी की ओर से भव्य स्वागत किया गया । वहाँ पहुँच कर चरितनायक ने सहसाधु-मण्डल एवं संघ में सम्मिलित श्रावक, श्राविकाओं के साथ में तीर्थपति भगवान् आदिनाथ-प्रतिमा के दर्शन किये और अपनी यात्रा सफल की । तत्पश्चात् संघ ने प्रभु-प्रतिमा की अतिशय भाव-भक्ति से सेवा-पूजा की । दिन में पूजा पढ़ाई गई और रात्रि को सुन्दर आंगी रचवाई गई तथा श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिंग, सुमेरपुर की संगीत-मण्डली ने प्रभु-प्रतिमा के समक्ष भावनाट्य, नृत्य, कीर्त्तन एवं भक्ति की । यहाँ दो नव-कारशियां की गईं तथा संघ ने चरितनायक की अधिनायकता में विशेष उत्सव का आयोजन करके भारी जनसमूह के बीच संघपति शा० देवीचन्द्र रामाजी को संघपति की माला परिधान करवाई और संघपति ने तीर्थोद्धार एवं केसरखाते में अच्छी निधियां भेंट कीं । इस प्रकार भूति से निकला हुआ संघ गोडवाड़ के तीर्थों के दर्शन करता हुआ श्री राणकपुरतीर्थ के दर्शन-पूजन करके कृतकृत्य हुआ । इस संघ की व्यवस्था का अधिक उत्तरदायित्व शा०ताराचन्द मेघराजजी पावावालों के स्कंधों पर रहा था, और उन्होंने अति बुद्धिमानी एवं तत्परता से सुख-सुविधा की समस्त तैयारियाँ पूरी २ की थी । वे भी यहाँ धन्यवाद के पात्र हैं । श्री राणकपुरतीर्थ से संघ रवाना होकर सादड़ी, मुंडारा, वाली होता हुआ पौष शु० पंचमी को खुडाला पहुँचा ।

चारों मंदिर प्राचीन एव कला की दृष्टि से दर्शनीय हैं । मूल-मंदिर श्री धरणविहार-त्रैलौक्य-दीपक श्री आदिनाथ-जिनालय है । इस मदिर को नांदिया ग्राम के श्रीमंत प्राग्वाटज्ञातीय धरणाशाह ने लगभग एक कोटि द्रव्य व्यय करके बनवाया था और तपागच्छाधिराज श्रीमद् सोमसुन्दरसूरि से वि० सं० १४९८ फा० कृ० १० को शुभ मुहूर्त्त में इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करवाई थी । यह मदिर इतना विशाल है कि ससार में इसकी विशालता की समता करने वाले देवालय कोई विरले ही होंगे । यह देवालय चतुर्मुखा है । इसमें चारों दिशाओं मे चार तीन-मंजिले द्वार वने हुये हैं । सिंहद्वार पश्चिमाभिमुख है । चार मेघमण्डप, चार सभामण्डप, चार कोणमदिर एव चौरासी देवकुलिकाओं से युक्त यह त्रिमंजिला जिनालय इस पृथ्वीमण्डल पर सचमुच 'नलिनीगुल्मविमान' का ही अवतार प्रतीत होता है । इसमें १४४४ स्तंभ हैं और चौरासी भूगृह कहे जाते हैं । दूसरे दो जैन मंदिर १—श्री पार्श्वनाथ-जिनालय और २—श्री नेमिनाथ-जिनालय हैं ।

विशेष वर्णन के लिये 'मेरी गोडवाड-यात्रा' और लेखक द्वारा लिखित 'प्राग्वाट-इतिहास' मे श्री धरणाशाह का प्रकरण देखिये ।

खुडाला के श्रीसंघ ने आगत संघ का आतिथ्य एवं स्वागत अत्यन्त ही सराहनीय किया था। संघ खुडाला में तीन दिन ठहरा। पौष शु० ७ मी को स्वर्गस्थ गुरुवर्य श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी की जयन्ती अत्यन्त धूम-धाम एवं सुन्दर आयोजनों के साथ मनाई गई थी। जयन्ती-उत्सव की व्यवस्था श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुडाला के मानद मंत्री श्री निहालचंद्र फौजमलजी ने बड़ी ही तत्परता एवं भक्ति से की थी। प्रातः नगरकीर्त्तन, हुआ। मध्याह्न में अष्टप्रकारीपूजा पढ़ाई गई और उसमें संघपति की ओर से श्रीफल की प्रभावना दी गई। रात्रि को सार्वजनिक सभा हुई। इस प्रकार संपूर्ण दिन सुन्दर कार्यक्रम से व्यस्त रहा था। दूसरे दिन संघ खुडाला से विसर्जित हो गया और सर्व जन अपने २ ग्रामों को लौट गये।

सिरोही-राज्य के जोरामगरा में विहार और प्रतिष्ठादि कार्य

वि० सं० १९९९

●

वरलूट की ओर विहार और प्राण-प्रतिष्ठा

चरितनायक ने अपने शिष्यमण्डल एवं साधुसमुदाय के सहित खुडाला से विहार किया और जाकोड़ातीर्थ की यात्रा करते हुये सुमेरपुर, फताहपुरा, कोरंटपुरतीर्थ, नया जोगापुरा, भेव, अणदोर, जावालादि ग्रामों में विचरते हुये धर्मोपदेश देते हुये वरलूट में पधारे। वरलूट के श्रीसंघ ने चरितनायक का अत्यन्त शोभासाधनों एवं उपकरणों से युक्त समारोह निकाल कर नगर-प्रवेश करवाया और वह चरितनायक की देख-रेख में प्रतिष्ठासंबंधी कार्य को सम्पन्न करने की तैयारियां करने लगा। घर २ मंगलाचार होने लगे और नगर में मंगलसूचक वाद्ययंत्र वजने लगे। भव्य प्रतिष्ठा-मण्डप की रचना करवाई गई और अष्टाह्निका-महोत्सव प्रारंभ किया गया। वि० सं० १९९९ माघ शु० ११ सोमवार को शुभ मुहूर्त्त में प्रतिष्ठा-मण्डप में अधिष्ठायक देव और देवियों की प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा सविधि-विधान करके उनको मंदिर में

प्रतिष्ठित करवाईं और दण्डध्वज एवं स्वर्ण-कलशारोहण करवाये। संघ ने स्वामीवात्सल्य और नवकारशियाँ करके बाहर ग्रामों से आये हुये दर्शकगण की प्रीतिभोज से एवं शयन, सेवा आदि की सुन्दर सुविधायें प्रदान करके अच्छी अभ्यर्थना की। बरलूट के निकट ऊड़ नामक ग्राम है। वहाँ के श्री संघ ने भी इस प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर आकर चरितनायक से वहाँ (ऊड़) पधार कर श्री शान्तिनाथ-जिनालय में जिन प्रतिमा और अधिष्ठायक देव और देवी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाकर उनको स्थापित करवाने की विनती की। चरितनायक ने ऊड़ के श्रीसंघ की विनती स्वीकार की और बरलूट से प्रतिष्ठोत्सव सानंद समाप्त करके आपश्री सहमुनि-मण्डल ऊड़ पधारे।

ऊड़ में प्रतिष्ठा

वि० सं० १९९९

बरलूट से विहार करके चरितनायक जावाल होते हुये ऊड़ पधारे। ऊड़ के श्रीसंघ ने चरितनायक एवं साधुमण्डल का भव्य स्वागत किया और बड़ी धूम-धाम से नगर-प्रवेश करवाया। प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त वि० सं० १९९९ फाल्गुन शु० २ सोमवार का निश्चित हुआ था। चरितनायक की आज्ञा एवं आदेशानुसार प्रतिष्ठोत्सव के लिये तैयारियाँ प्रारंभ की गईं। सुन्दर मण्डप की रचना की गई और आठ दिनों तक उत्सव मनाया गया और तब फा० शु० २ सोमवार को शुभ मुहूर्त्त में सविधि प्रतिष्ठा-सम्बन्धी क्रिया करा कर चरितनायक ने प्राचीन श्री शान्तिनाथ-जिनालय में दो जिनप्रतिमायें, दो अधिष्ठायक देव-प्रतिमायें और अधिष्ठायिका देवी की मूर्तियाँ और एक मणिभद्र की मूर्त्ति स्थापित करवाई और खेलामण्डप पर स्वर्णकलश चढ़वाया।

श्री भाषणसुधा—आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० ६२। रचना वि० सं० १९९९। वि० सं० १९९९ में श्री आनंद प्रेस, भावनगर (काठियावाड़) में खिमेलनिवासी भंडारी विमलचंद्र अनारचंद्रजी ने बढ़िया कागज पर छपवाकर इसकी १००० प्रतियाँ प्रकाशित कीं। यह छोटी-सी पुस्तक सात व्याख्यानों का एक सुन्दर समुच्चय है। प्रत्येक व्याख्यान का विषय अलग है और वे सब व्याख्यान अति सारपूर्ण

एवं तात्त्विक हैं। व्याख्यानदाताओं के लिये तो यह पुस्तक विशेष उपयोगी है। इसकी प्रस्तावना में आचार्यश्री के खिमेल में हुये चातुर्मास का भी विशेष वर्णन है।

श्री पौषध-विधि—आहोरवासी शा० पुखराज जुहारमलजी ने इसको आनंद-प्रेस, भावनगर में वि० सं० १९९९ में इसकी १००० प्रतियां, आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय छपवाकर प्रकाशित किया।

मण्डवारिया और देलंदर में स्थिरता और सुधार-वृद्धि और तत्पश्चात् सियाणा में पदार्पण

ऊड़ में जब प्राण-प्रतिष्ठोत्सव सानन्द पूर्ण हो गया तब चरितनायक वहाँ से पुनः जावाल, बरलूट होते हुये मण्डवारिया पधारे और वहाँ कुछ दिवस पर्यंत विराजे। मण्डवारिया में शा० देवराजजी चुन्नीलालजी का बनवाया हुआ सौधशिखरी-जिनालय चालीस वर्षों से अप्रतिष्ठित ही रह रहा था। गुरुदेव ने उसकी भी प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त्त वि० सं० २००० ज्येष्ठ शु० ६ बुधवार का निश्चित किया और तत्पश्चात् वहाँ से आपश्री भूतग्राम, मणोरा होते हुये देलंदर पधारे।

देलंदर के श्रीसंघ में फूट पड़ी हुई थी और परस्पर श्रावक लड़ते थे और विशेषकर धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के अवसरों पर उन लोगों में फूट का बुरा प्रभाव उन्हें एकमत नहीं होने दे रहा था। फलतः वहाँ के जिनालय का जीर्णोद्धार-कार्य वंद पडा हुआ था। चरितनायक के तेज एवं व्याख्यानों के प्रभाव से देलंदर के संघ में पड़ी हुई फूट छू-मंत्र हो गई और जिनालय का जीर्णोद्धार-कार्य प्रारम्भ करने के लिये आठ सदस्यों की एक समिति सर्वसघ की सम्मति से नियुक्त हुई, जिसको संघ ने जीर्णोद्धार-सम्बन्धी सर्व सत्ता अर्पित की। चरितनायक जिनालय का जीर्णोद्धार-कार्य शुभ मुहूर्त्त में प्रारंभ करवा करके वहाँ से विहार करके वराड़ा, काणोदर के जिनालयों के दर्शन करते हुये एवं धर्मोपदेश देते हुये सियाणा पधारे। सियाणा वडा नगर है और यहा चरितनायक की ही सम्प्रदाय के लगभग ४५०

श्रावकों के घर हैं। आचार्यश्री का अति ही भव्य-स्वागत किया गया, जिसका वर्णन सप्रसंग आगे किया जायगा।

सियाणा में अनेक जिन बिंबों की अंजनशलाकाप्रतिष्ठा एवं तत्पश्चात् सियाणा में चातुर्मास

वि० सं० २०००

●

सियाणा और उसका संक्षिप्त परिचय

कृष्णावती नदी के पश्चिम तट पर काछला नामक एक छोटा-सा भारी-भरकम डूंगर है। इसके उत्तर पक्ष की अंक में सियाणा नगर बसा हुआ है। सियाणा का प्राचीन नाम साणारा था, जब कि यह पुरोहित ब्राह्मणों के अधिकार में था। जब पुरोहित ब्राह्मणों को अपने से दुष्काल एवं आपत्ति के समय डाकू एवं लुटेरों से ग्राम में बसने वालों की जान-माल की रक्षा का होना अशक्य प्रतीत होने लगा, उन्होंने नावीग्राम के ठाकुर को साणारा की रक्षा का भार अर्पित किया और तब से यह धीरे २ ब्राह्मणों के प्रभुत्व से निकलकर संरक्षक ठाकुर के अधिकार में अधिकाधिक जाता रहा और एक दिन संरक्षक ठाकुर ने ब्राह्मणों को हरा कर अपना स्वतंत्र अधिकार स्थापित कर लिया और साणारा के स्थान पर इसका नाम सियाणा रक्खा। ग्राम को सुरक्षित हुआ समझ कर आस-पास के खेड़ों एवं छोटे २ अरक्षित ग्रामों में बसने वाले श्रीमंत शाहूकार सियाणा में आकर बसने लगे और ठाकुर साहब ने भी उनकी रक्षा का पूरा २ उत्तरदायित्व संभाला। इसका परिणाम यह हुआ कि साणारा जो एक साधारण खेड़ा था बढ़कर सियाणा नाम से लगभग ११०० घरों का अति समृद्ध नगर बन गया। आज भी सियाणा पर नावीग्राम के ठाकुर साहब के वंशजों का ही अधिकार है।

सियाणा में महाजन-समाज का इतनी संख्या में आकर बसने का

एक दूसरा भी अति महत्त्वशाली कारण था और वह यह कि वहाँ पर काछला भाखर के उत्तरीय ढाल पर गूर्जरसम्राट् कुमारपाल द्वारा विनिर्मित अति भव्य जिनालय है, जिसके विषय में आगे के पृष्ठों में विस्तृत रूप से लिखा जायगा।

श्री सुविधिनाथ-जिनालय की देवकुलिकाओं में बिंबों की प्रतिष्ठा करवाने का प्रस्ताव और आचार्य महाराज से विनती

गूर्जरसम्राट् कुमारपाल द्वारा विनिर्मित मंदिर में मूलनायक प्रतिमा श्री सुविधिनाथ स्वामी की है, अतः वह श्री सुविधिनाथ-जिनालय के नाम से ही प्रसिद्ध है। अधिक प्राचीन होने से मंदिर स्थल-स्थल पर खण्डित और कुरूप हो गया था। श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी के सदुपदेश से श्रीसंघ-सियाणा ने उसका जीर्णोद्धार करवाया और मूलमन्दिर में चौवीस जिनेश्वरों की चौवीस देवकुलिकायें तथा जिनालय के पृष्ठभाग के ऊपर द्वितीय मंजिल में पंचतीर्थी बनवाईं। वि० सं० १९५८ माघ शु० १३ गुरु० को श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से इनकी प्रतिष्ठा-अञ्जनशलाका महोत्सवपूर्वक की गई थी; परन्तु देवकुलिकाओं में सोजतिया पत्थर काम में लिया गया था, वह कच्चा होने से कुछ ही वर्षों में खरने लगा और यत्र-तत्र खड्डे पड़ गये और देवकुलिकाओं की छत भी बिखर-सी गई; अतः श्रीसंघ ने पंचतीर्थी और देवकुलिकाओं को गिराकर पुनः मकराणा और श्वेत पत्थरों से उनका निर्माण करवाया तथा पंचतीर्थी के ऊपर द्वितीय मंजिल में श्रीशान्तिनाथ-राजेन्द्र-टूँक श्वेत संगमरमर की वनवाई और जिनालय के सिंहद्वार पर गवाक्ष और उसमें चौमुखा मन्दिर वनवाया। सिंहद्वार के बाहर दोनों पक्ष पर हाथी-खाना, उसके पीछे धरणेन्द्र और पद्मावती के शिखरबद्ध देवल और विहरमान् तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी का गृह-मन्दिर वनवाया। यह नव एवं जीर्णोद्धार-कार्य वि० सं० १९९६ में लगभग पूर्ण-सा हो गया।

चरितनायक जिन दिनों में मंडवारिया मे विराज रहे थे, श्रीसंघ-सियाणा ने एकत्रित होकर देवकुलिकाओं में पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमाओं की स्थापना

कराने के विषय में विचार किया। परिणाम में सर्वसम्मति से यह निश्चय किया गया कि मंडवारिया जाकर श्रीमद् आचार्य महाराज साहब से इस पुनीत कार्य को यथाशीघ्र सम्पन्न कराने की प्रार्थना की जाय। सियाणा के प्रतिष्ठित कुछ सद्गृहस्थ आचार्य महाराज साहब की सेवा में मण्डवारिया पहुँचे और अपने उक्त प्रस्ताव को उनके समक्ष सविनय रक्खा। आचार्य महाराज साहब ने उनका अत्याग्रह एवं उत्साह देखकर लग्न वि० सं० २००० वैशाख शु० ६ सोमवार* का निश्चित कर दिया और आपश्री भी मण्डवारिया से विहार करके जैसा ऊपर लिखा जा चुका है सियाणा पधार गये।

आचार्यश्री का नगर-प्रवेश और स्थापनोत्सव के साथ में प्राणप्रतिष्ठोत्सव कराने का भी प्रस्ताव स्वीकृत

आचार्यश्री योग्य अवसर पर मण्डवारिया से विहार करके अनुक्रम से सियाणा पधारे। आपश्री का नगर-प्रवेश अवर्णनीय सज-धज से करवाया गया था। नगर के जैन और अजैन अधिकांश स्त्री, पुरुष लड़के, लड़कियाँ एवं छोटे-मोटे बच्चे तक समारोह में सम्मिलित थे। समारोह में देशी बैण्ड, डंकानिशान, ढोल, ध्वजापताकायें, श्री राजेन्द्रसूरि-विद्यालय के विद्यार्थियों का दल, अध्यापक-वर्ग, श्री शान्तिनाथ-राजेन्द्र जैन बैण्ड सर्व अपने २ स्थान पर समारोह की शोभा बढ़ा रहे थे। जैन बैण्ड के पीछे आचार्यदेव और मुनिमण्डल, जिनकी सेवा में स्वयंसेवकदल साथ २ चल रहा था, धीमी २

लग्नकुंडालिका

चं.४ रा. | श. २ बु | ५ | गु. ३ शु. | सू. १ | १२ | ६ | मं. ११ | ७ | ९ | ८ | के.१०

नवांशकुंडालिका

१० | ८ | ११ | ९ के. | ७ सू. | १२ बु. | ६ | १ | ३ गु. | ५ चं. | २ मं. | ४ श.

*श्री जिनदेवेभ्यो नम.। स्वस्ति श्री विक्रम सं० २०००, शाके १८६५ प्रवर्त्तमाने

चाल से पदधारण कर रहे थे। मुनिमण्डल के पीछे अगणित श्रावक, श्राविकायें एवं अजैन स्त्री और लड़के, बालिकायें चल रही थीं। वाद्ययंत्रों की ध्वनियों से, जयनादों से, सौभाग्यवती स्त्रियों के मंगल एवं पुनीत गीतों से आकाश-मण्डल गूंज रहा था। चरितनायक स्थान २ पर गुंहलियों का स्वागत लेते हुये श्री आदिनाथ-मंदिर एवं सम्राट् कुमारपाल द्वारा विनिर्मित श्री सुविधिनाथ-जिनालय के दर्शन एवं चैत्यवंदन करते हुये श्री पोरवाड़ जैन धर्मशाला में पधारे।

आचार्यश्री ने गुरुपट्ट पर अपना स्थान ग्रहण किया और सर्व स्त्री एवं पुरुष भी अपने २ स्थानों पर बैठ गये। गुरुमहाराज ने तब अपनी देशना प्रारंभ की। आचार्यश्री ने बिंब-प्रतिष्ठा का महत्त्व और उससे होने वाले फल पर अपना वक्तव्य दिया तथा फिर श्रीसंघ-सियाणा को सम्बोधित करके कहा, "आप लोग पूर्वप्रतिष्ठित प्रतिमाओं की स्थापना करवा रहे हैं और व्यय प्रतिष्ठोत्सव में जितना होता है उतना ही होगा; तब अप्रतिष्ठित प्रतिमायें, जो आपके यहाँ कई वर्षों से रक्खी हुई हैं, उनको भी प्रतिष्ठित क्यों नही इसी शुभावसर पर करवाली जायं। थोड़ा और व्यय करने पर दोनों कार्य पूर्ण हो जाते हैं। नहीं तो फिर अलग जब कभी भी उनकी प्राण-प्रतिष्ठा करवाई जायगी, सर्व प्रकार का व्यय और समारंभ फिर नव विधि से करना पड़ेगा। समय को किसने देखा है? आज क्या है और कल क्या होने वाला है? मेरी तो यही सम्मति है कि प्रतिष्ठित बिंबों की स्थापना के साथ में ही अप्रतिष्ठित प्रतिमाओं की भी प्रतिष्ठांजनशलाका करवाली जाय।" आचार्यश्री का यह सुझाव सर्व संघ को अच्छा और लाभदायक प्रतीत हुआ और सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव कि अप्रतिष्ठित प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा भी इसी शुभावसर पर करवाली जाय, इसी में हर प्रकार से लाभ है पास हो गया। तत्पश्चात् हर्ष एवं आनंद की जय-ध्वनियों से परिपद् विसर्जित हो गई।

मासोत्तममासे वैशाखमासे शुक्ल पक्षे ६ तिथौ घट्यः ३९। ३७, चन्द्रवासरे पुनर्वसुनक्षत्रे घ० १६।४। शूलयोगे घ० १८।२१, कौलवकरणे घ० ७।२, इष्ट घट्यः ६।४५, एतत्समये सियाणानगरे श्री पार्श्वनाथादि जिनवराणां प्रतिष्ठामुहूर्त्तं श्रेष्ठतमः। सर्वेषां कल्याणाय भवतुतरामिति।

अंजनशलाकाप्राण-प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियाँ

श्रीसंघ-सियाणा ने निम्नलिखित आठ प्रतिष्ठित एवं उत्साही पुरुषों की व्यवस्थापिका-समिति बनाई और प्रतिष्ठोत्सव सम्बन्धी सर्व सत्ता उनको अर्पित की।

१. शा० नत्थमल जेताजी २. शा० कपूरचंद्र भीखाजी।
३. सं० मेघराज नरसिंहजी ४. ,, मूलचंद्र ओपाजी।
५. शा० मीठालाल हुणाजी ६. ,, हेमा नरसिंहजी।
७. ,, खुशालचंद्र वीठाजी ८. ,, जेतमल तोलाजी।

फिर व्यवस्थापिका-समिति ने अपने अधीन निम्नलिखित उपसमितियाँ बनाकर प्रतिष्ठा संबंधी कार्य का विभाजन कर दिया और अपने २ कार्य को करने में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता एवं सत्ता प्रदान की।

१. मण्डप-रचना-समिति ८. धूपनिरीक्षण-समिति।
२. मंगलगृहवस्तु-समिति ९. प्रकाश-प्रबन्धक-समिति।
३. भोजन-प्रबंधक-समिति १०. अतिथि-प्रबंधक-समिति।
४. दण्डकारापण-समिति ११. स्वर्णकलशनिर्माण-समिति।
५. फर्नीचर-सचय-समिति १२. स्वयंसेवक-प्रबंधक-समिति।
६. बोलीबोलन-समिति १३. भोजनकारायण-समिति।
७. चारादापन समिति १४. संगीत-मण्डली-समिति।
१५. खाद्य-सामग्री-समिति

मण्डप की स्थापना

इस प्रकार कार्यों का विभाजन करके प्रतिष्ठा संबंधी कार्य का प्रारंभ किया गया। श्री ओसवाल-जैन-धर्मशाला में ३०×३३ फीट लम्बा-चौड़ा रम्य प्रतिष्ठा-मण्डप रचवाया गया। मण्डप को तीन बराबर के भागों में विभाजित करके एक भाग में श्री सिद्धाचलतीर्थ, मध्य में रजत्मय भव्यतम समवशरण और श्री गिरनारतीर्थ की सुन्दर रचनायें एक-एक के पीछे

करवाई गई। द्वितीय भाग में त्रिवेदिका-पीठ का निर्माण कराकर उसके ऊपर नवीन प्रतिमायें, अधिष्ठायक देव और देवियों की मूर्त्तियाँ, गुरु-प्रतिमायें, स्वर्णकलश, स्वर्णदण्ड और ध्वज तथा प्रस्तरकलशों को क्रमशः रक्खा गया। तृतीय भाग स्नात्रियों, स्नात्राणियों के लिये विधि-विधान करवाने के निमित्त खुला हुआ स्थल रक्खा गया।

मण्डप के आगे ३६×४०फीट ऊपर से खुला हुआ स्थान रक्खा गया, जिसमें संगीत मण्डली के लिये अभिनय, कीर्त्तनादि करने और स्त्री, पुरुषों के लिये अलग-अलग बैठने के लिये रस्सियाँ बांध कर व्यवस्था की गई थी।

प्रतिष्ठोत्सव का समारंभ

सर्व प्रकार की समितियों ने अपने-अपने अधीन कार्यों को प्रतिष्ठोत्सव के समारंभ करने के दिन तक पूर्ण कर लिया। प्रतिष्ठोत्सव का कार्य दस दिवस पर्यंत रहा, जो निम्न प्रकार है:—

वै० कृ० १२ शनि०—वेदिका पर मंत्रालेखन, पूजन-विधान, पंच-कल्याणकपूजा।

वै०कृ० १३ रवि०—जलयात्रा का समारोह सर्व प्रकार की शोभा-सामग्रियों एवं उपकरणों से युक्त निकाला गया।

वै० कृ० १४ सोम से शु० ५ रवि०—कुम्भस्थापना, जवारारोपण, अखण्डदीपस्थापन, क्षेत्रपालस्थापन, नवग्रहमण्डल, दशदिग्पालमण्डल, वेदिका पर नवप्रतिमास्थापन, वीशस्थानक-नवपद-नन्दावर्त्तमण्डल-स्थापनादि तथा विधानपूर्वक च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान, निर्वाण पांचों कल्याणक और उनके मध्य में पाठशाला-संनिवेश, राज्यस्थापना, विवाहादि सर्व प्रसंगों का शास्त्रोक्त विधि से विधान क्रमशः कराया गया।

वै०शु० ६ सोम०—तदनुसार ता० १०-५-१९४३ को भारी समारोह के साथ हाथी के होदे तोरण बांधा गया, माणकस्तंभ रोपा गया, द्वारोद्घाटन किया गया, स्वर्णाक्षतों से प्रभु-प्रतिमा के सम्मुख स्वस्तिक रचा गया और तत्पश्चात् ठीक ६ घड़ी ४५ पल पर शुभ लग्न-मुहूर्त्त में नवजिन-

बिंबों को, गणधर-प्रतिमाओं को, आचार्य-बिंबों को, अधिष्ठायक देव एवं देवियों की प्रतिमाओं को अपने-अपने स्थानों पर स्थापित किया गया और स्वर्ण-कलश तथा ध्वजादण्ड समारोपित किये गये। इस प्रकार प्रतिष्ठोत्सव सानंद पूर्ण हुआ और घर २ आनंद की वर्षा हुई।

वै० शु० ७ मंगल०—इस दिन १०८ अभिषेकवाली बड़ी शान्तिस्नात्रपूजा पढ़ाई गई और नगर के चतुर्दिक जल-धारा दी गई।

संक्षेप में सार यह है कि प्राण-प्रतिष्ठोत्सव सानन्द पूर्ण हुआ। सोलह बार वरघोड़ा निकाला गया था। संगीत-मण्डली के अभिनय, नृत्य एवं कीर्त्तनों का अच्छा ठाट रहा था। स्वामीवात्सल्य एवं नवकारशियाँ करके आगत दर्शक एवं अतिथियों की अच्छी अभ्यर्थना की गई थी।*

आचार्य श्री राजेन्द्रसूरिजी द्वारा वि०सं० १५५८ माघ शु० १३ गुरु० को प्रतिष्ठित श्री सुविधिनाथ-जिनालय, सियाणा में चरितनायक द्वारा निम्नलिखित जिन प्रतिमाओं की स्थापना

वि० सं० २०००

देवकुलिकाओं में प्रतिष्ठित प्रतिमायें और उनकी इन्चों में ऊंचाई

कु० सं०	प्रतिमाओं का नाम	ऊंचाई	कु० सं०	प्रतिमाओं का नाम	ऊंचाई
१—१	श्री ऋषभदेवजी	१९	८	,, धर्मनाथ	१२
२	,, सुपार्श्वनाथ	१३	९	,, सम्भवनाथ	१२
३	,, आदिनाथ	१३	४-१०	,, अभिनन्दन	२०
२—४	,, अजितनाथ	१८	११	,, पार्श्वनाथ	१४
५	,, अभिनन्दन	१३	१२	,, ,,	१४
६	,, चन्द्रप्रभ	१३	५-१३	,, सुमतिनाथ	१९
३—७	,, सम्भवनाथ	१७	१४	,, चन्द्रप्रभ	१२

* सियाणा में हुये इस महोत्सव के विशेष वर्णन के लिये, 'सियाणा-प्राण-प्रतिष्ठा-महोत्सव' नामक पुस्तक देखिये।

कु० सं०	प्रतिमाओं का नाम	ऊंचाई
१५	,, श्रेयांसनाथ	१२
६–१६	,, पद्मप्रभ	१५
१७	,, शीतलनाथ	१२
१८	,, सुपार्श्वनाथ	१२
७–१९	,, ,,	२१
२०	,, ,,	१४
२१	,, कुंथुनाथ	१४
८–२२	,, चन्द्रप्रभ	१८
९–२३	,, सुविधिनाथ	२१
२४	,, शान्तिनाथ	१२
२५	,, अजितनाथ	१२
१०–२६	,, शीतलनाथ	१८
२७	,, नेमिनाथ	१२
२८	,, सुमतिनाथ	१२
११–२९	,, श्रेयांसनाथ	१८
३०	,, पार्श्वनाथ	१२
३१	,, अभिनन्दन	१२
१२–३२	,, वासुपूज्य	१९
३३	,, नेमिनाथ	१२
३४	,, पद्मप्रभ	१२
१३–३५	,, विमलनाथ	१६
३६	,, पद्मप्रभ	११
३७	,, सुमतिनाथ	११
१४–३८	,, अनंतनाथ	१७
३९	,, अजितनाथ	१२
४०	,, मुनिसुव्रत	१२
१५–४१	,, धर्मनाथ	१७
४२	,, शीतलनाथ	१२
४३	,, सुपार्श्वनाथ	१२
१६–४४	,, शीतलनाथ	१७
४५	,, पार्श्वनाथ	१४
४६	,, अनंतनाथ	१४
१७–४७	,, कुंथुनाथ	१७
१८–४८	,, अरनाथ	१०
४९	,, नमिनाथ	१४
५०	,, सुमतिनाथ	१४
१९–५१	,, मल्लिनाथ	१७
५२	,, ,,	१४
५३	,, शीतलनाथ	१४
२०–५४	,, मुनिसुव्रत	१७॥
५५	,, शीतलनाथ	१४
५६	,, अनंतनाथ	१४
२१–५७	,, नमिनाथ	१६
५८	,, पार्श्वनाथ	१२
५९	,, ,,	१४
२२–६०	,, नेमिनाथ	१५
६१	,, ऋषभदेव	१२
६२	,, अजितनाथ	१२
२३–६३	,, पार्श्वनाथ	१८
६४	,, विमलनाथ	१२
६५	,, चन्द्रप्रभ	१२
२४–६६	,, महावीर	१७
६७	,, सुमतिनाथ	१२
६८	,, कुंथुनाथ	१२

चरितनायक द्वारा अंजनशलाकाप्रतिष्ठाकृत प्रतिमाओं की सूची

वि० सं० २०००

श्री सुविधिनाथ-जिनालय की श्री शान्तिनाथ-राजेन्द्र-टूँक में प्रतिष्ठित प्रतिमायें और उनकी इंचों में ऊंचाई ।

	प्रतिमा का नाम	ऊंचाई
१	श्री शान्तिनाथ	६८
२	,, पार्श्वनाथ (सफण) श्री राजेन्द्रसूरि द्वारा वि० सं० १९५८ में प्रतिष्ठित	५१
३	,, पार्श्वनाथ (सफण)	५१
४	,, श्रेयांसनाथ (कायोत्सर्गस्थ)	५०
५	,, सम्भवनाथ ,,	५०
६	,, श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि	१९
७	,, श्रीमद् विजयधनचन्द्रसूरि	१९
८-९	,, चामरधारी इन्द्र (दो)	३१,३१

श्री विहरमान् जिनालय की समीपवर्त्ती कुलिकाओं में प्रतिष्ठित प्रतिमायें और उनकी ऊंचाई

१०—श्री पार्श्वनाथ (सफण)	१६	इंच	१५—श्री अजितनाथ	२५	इंच
११—,, मल्लिनाथ	२५	,,	१६—,, धर्मनाथ	२२	,,
१२—,, नेमिनाथ	२३	,,	१७—,, वासुपुज्य	६	,,
१३—,, सुविधिनाथ	१३	,,	१८—,, सुविधिनाथ	६	,,
१४—,, पार्श्वनाथ	६	,,			

धाणसाग्राम की प्रतिमायें

१६—श्री शीतलनाथ २५ इंच २०—श्री अनंतनाथ २५ इंच

नीमच (मालवा) की प्रतिमा

२१—श्री महावीर ३१ इंच

सूरा (मारवाड़) की प्रतिमायें

२२—श्री पार्श्वनाथ (सफण) २० इंच २३—श्री पार्श्वयक्ष १२॥ इंच

बागरा (मारवाड़) की प्रतिमायें

२४-२५—श्री सप्तफणा-पार्श्वनाथ (दो धातुमय)

जीरापल्ली तीर्थ (जीरावला) की प्रतिमायें

२६—श्री सुविधिनाथ १३ इंच २७—श्री कुंथुनाथ १३ इंच

आहोर (मारवाड़) की प्रतिमायें

२८-२९—श्री सप्तफणा-पार्श्वनाथ (दो रजत्मय) ४ इंच
३०—श्री शान्तिनाथ-चौवीसी (रजत्मय) ५ ,,
३१—श्री सिद्धचक्र का गट्टा (,,)

बाधनवाड़ी (मारवाड़) की प्रतिमायें

३२—श्री शान्तिनाथ-पंचतीर्थी (रजत्मय) ६ इंच
३३-३४—श्री सिद्धचक्र का गट्टा (दो रजत्मय)

कौशीलाव (मारवाड़) की प्रतिमायें

३५—श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि १५ इंच

रतलाम (मालवा) की प्रतिमा

३६—श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरि २० इंच

अमरेली (काठियावाड़) की प्रतिमायें

३७—श्री संभवनाथ २६ इंच ३८—श्री नेमिनाथ १३ इंच

धोराजी (काठियावाड़) की प्रतिमायें

३९—श्री नेमिथाथ १९ इंच ४३—श्री पद्मप्रभ १५ इंच
४०—,, मुनिसुव्रत १५ ,, ४४—,, चन्द्रप्रभ १५ ,,
४१—,, वासुपुज्य १५ ,, ४५—,, सुविधिनाथ १३ ,,
४२—,, नेमिनाथ २० ,,

जालोर (मारवाड़) की प्रतिमायें

४६—श्री गोड़ीपार्श्वनाथ १६ इंच ४८—श्री सुविधिनाथ १५ इंच
४७—,, वासुपूज्य १५ ,,

श्री सुविधिनाथ-जिनालय (सियाणा) में

४६-५२—श्री चतुर्मुखा गवाक्ष के लिये | ५४-५८ देवकुलिकाओं में
५३—,, विहरमान-जिनालय के लिये | अन्य पाच प्रतिमायें

चातुर्मासार्थ विनतियाँ—चातुर्मास भी संनिकट आ रहा था। सियाणा में इस महोत्सव के शुभावसर पर अनेक नगर, ग्रामों से संघ एवं सद्गृहस्थों के दल के दल आये थे; जिनमें मुख्यतः भीनमाल, थराद, आहोर, बागरा, हरजी, आदि ग्राम-नगरों के थे। चरितनायक से अपने-अपने यहाँ चातुर्मास करने की प्रत्येक ग्राम की ओर से विनती की गई। उसमें क्षेत्र-स्पर्शना और कारणों पर विचार करके चरितनायक ने वि० सं० २००० का चातुर्मास सियाणा में ही करना स्वीकृत किया। इस प्रकार प्रतिष्ठा का कार्य सानंद पूर्ण करके एवं चातुर्मास का निश्चय हो जाने पर चरितनायक ने मण्डवारिया के लिये विहार किया।

मंडवारिया में प्राण-प्रतिष्ठा

वि० सं० २०००

सियाणा से विहार करके चरितनायक अपनी साधु एवं शिष्यमंडली के सहित मंडवारिया पधारे। मंडवारिया के श्रीसंघ ने आचार्यश्री का नगर-प्रवेश अति सज-धज एवं भक्ति-भावपूर्वक करवाया। जैसा पूर्व ही लिखा जा चुका है कि मंडवारिया में प्रतिष्ठोत्सव का शुभ लग्न आचार्यश्री ने सियाणा में हुई प्राण-प्रतिष्ठा से पूर्व ही निश्चित कर दिया था, तदनुसार प्रतिष्ठा सम्बन्धी सर्व प्रकार की तैयारियां वहाँ पहिले से ही पूर्ण हो चुकी थीं। मण्डप की रचना अति ही रम्य एवं आकर्षक बनाई गई थी।। उत्सव का समारंभ ज्येष्ठ कृ० १२ से किया गया था। ज्येष्ठ शु० पंचमी तक नित्यप्रति प्राण-प्रतिष्ठा सम्बन्धी सर्व विधि-विधान आदि अष्टाह्निका-महोत्सवपूर्वक किये

जाते रहे और ज्येष्ठ शु० ६ बुधवार को निश्चित शुभ लग्नमुहूर्त्त में पार्श्वयक्ष और पद्मावती के बिंबों की प्राण-प्रतिष्ठा करके सौधशिखरी जिनालय में मूलनायक श्रीपार्श्वनाथ आदि की तीन प्रतिमायें तथा अधिष्ठायक देव और अधिष्ठायिका देवी की मूर्तियाँ विराजमान् की गईं। मंदिर के ऊपर स्वर्ण-कलशारोहण और दण्डध्वजारोपण किये गये। ज्येष्ठ शु० ७ गुरुवार को अष्टोत्तरशत शान्तिस्नात्रपूजा (१०८ अभिषेकवाली बड़ी पूजा) पढ़वाई गई और अभिमंत्रित जल की धारा नगर के बाहर चतुर्दिक दिलवाई गई। इस प्रकार हर्ष एवं आनन्द की वृद्धि के साथ में प्राण-प्रतिष्ठोत्सव सम्पूर्ण हुआ।

३७—वि० सं० २००० में सियाणा में चातुर्मासः—

मण्डवारिया से विहार करके चरितनायक सियाणा में पधारे। श्रीसंघ-सियाणा ने चरितनायक का प्रवेश अवर्णनीय भक्ति-भाव एवं सज धज के साथ में करवाया। चातुर्मास में आचार्यश्री ने व्याख्यान में श्री भावविजयोपाध्यायरचित सटीक 'उत्तराध्ययनसूत्र का चौथा अध्ययन' और भावनाधिकार में शुभशीलगणिरचित 'विक्रमादित्यचरित' का द्वितीय खंड का वाचन किया। व्याख्यान में सैकड़ों स्त्री, पुरुष जैन और अजैन दोनों आते थे और अतिशय लाभ लेते थे। तप, व्रत, पौषध आदि भी समयानुसार सराहनीय हुये। बाहर से दर्शकगण भी अच्छी संख्या में आये। श्रीसंघ सियाणा ने भी बाहर से आये हुये दर्शकों की अच्छी सेवा-भक्ति भोजन एवं शयनादि की अच्छी सुविधायें प्रदान करके की थी।

इस वर्ष आपश्री की सेवा में वृद्ध मुनिप्रवर लक्ष्मीविजयजी, काव्यरसिक मुनिवर विद्याविजयजी, मुनिश्री सागरानन्दविजयजी, तत्त्वविजयजी चरितविजवजी, लावण्यविजयजी, मणिविजयजी और मेरुविजयजी इस प्रकार आठ साधुप्रवर थे।

आचार्यश्री के महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित प्रवचनों से प्रेरित एवं उत्साहित होकर श्रीसंघ तथा श्रीमंत सद्गृहस्थों ने साहित्य-प्रचार में, अनाथालय में, जीवदया-कोष में तथा अन्य साधारण खातों में अच्छी निधियाँ अर्पित कीं और अपने द्रव्य का सदुपयोग किया।

चातुर्मास पर्यंत चरितनायक के प्रभाव एवं तेज से सियाणा में अतिशय आनन्द एवं सुख-हर्ष की वृष्टि होती रही।

धाणसा में प्राण-प्रतिष्ठा-महोत्सव

वि० सं० २०००

●

धाणसा--जालोर प्रगणा की ढंढार नामक उन्तीस (२९) ग्रामों की पट्टी में धाणसा शिरमुकुट ग्राम है। यह ग्राम वि०सं० १२१३ में मार्गशीर्ष शु० १० को राठोड़-राजवंश में उत्पन्न ठाकुर धाणकसिंहजी द्वारा बसाया गया था और तब से यह उन्हीं के वंशजों के अधिकार में आज तक चला आया है। धाणसा में इस समय लगभग ६००(छः सौ)घर हैं, जिनमें लगभग १०० घर जैन हैं, वे सर्व ओसवालज्ञातीय हैं। इस ग्राम के स्त्री, पुरुष अधिक सरल और अपेक्षाकृत सदाचारी एवं प्राचीन संस्कृति और मर्यादा के पालक और पूर्वजों की शोभा अक्षुण्ण बनाये रखने वालों में हैं। यहाँ पहिले तीन उपाश्रय थे, जिनमें जैन यति रहते थे। अब एक भी उपाश्रय अवशिष्ट नही बचा है और नहीं कोई यति ही वहाँ रहते हैं। धाणसा में इस समय दो जैन मंदिर हैं। एक जिनालय ग्राम में है, जो उत्तराभिमुख है और प्राचीन एवं शिखरबद्ध है। दूसरा जिनालय ग्राम के बाहर ग्राम से लगभग १॥ फर्लांग के अन्तर पर पश्चिम दिशा में है। उपरोक्त दोनों जिनालयों में स्थापित कराने की दृष्टि से श्रीसंघ-धाणसा ने वि० सं० १९९८ में बागरा में हुई अंजनशलाकाप्रतिष्ठा में पांच जिन प्रतिमाओं को और चार अधिष्ठायक देव और देवियों की मूर्त्तियों को जयपुर (राजस्थान) से बनवाकर, मंगवाकर प्राण-प्रतिष्ठित करवाली थी। बागरा में प्रतिष्ठोत्सव के पूर्ण होने पर श्रीसंघ-धाणसा ने बागरा से अपनी प्रतिमाओं को लाकर ग्राम की जैन-धर्मशाला में रक्खा था और वहीं वे लगभग दो वर्ष पर्यंत पूजी जाती रहीं। वि० सं० २००० पौष शु० २ को धाणसा के श्रीसंघ ने एकत्रित होकर

सर्वानुमति से यह प्रस्ताव स्वीकृत किया कि चरितनायक से, जो उन दिनों में सियाणा में ही विराज रहे थे जाकर उपरोक्त प्रतिमाओं को निकटतम शुभ मुहूर्त्त में जिनालयों में स्थापित करवाने की विनती की जाय। धाणसा से अतः संघ की ओर से चार प्रतिष्ठित सज्जन आचार्यश्री की सेवा में सियाणा में उपस्थित हुये और सविधि वंदना करके उन्होंने अपने आने का प्रमुख अर्थ आचार्यश्री से निवेदन किया। आचार्यश्री ने ज्योतिषशास्त्र के आधार पर मुहूर्त्त देखा तो वह वि० सं० २००० फाल्गुन शुक्ला ११ शनिश्चरवार * का निकला। धाणसा के आये हुये चारों सज्जनों ने उक्त मुहूर्त्त को स्वीकार किया और वहाँ वे दो दिन ठहर कर धाणसा आगये।

धाणसा में जब प्रतिष्ठोत्सव करवाने के शुभ मुहूर्त्त को श्रीसंघ की ओर से प्रसिद्ध किया गया, घर-घर में आनन्द और हर्ष छा गया और अजैन

श्री अर्हन्नमो नमः

अथास्मिञ्छुभे विक्रमसंवत्सरे २०००, श्री शालीवाहनशाके १८६५, प्रवर्त्तमाने, उत्तरायणे, गतेऽर्के, शिशिरर्तौ, मङ्गलप्रदे, मासोत्तममासे फाल्गुनमासे, शुक्लपक्षे, ११ तिथौ, रविवासरे घ० ३५।१८, पुनर्वसुनक्षत्रे, घ० ३२।२२, सौभाग्ययोगे घ० २२।२२, ववकरणे घ० ३। ३१, सूर्योदयादिष्टघट्यः ३।१०, सूर्यः १०।११, लग्न ११।१६ एतत्समये धननवांशे श्री शान्तिनाथ श्रीपार्श्वनाथयो. प्रवेशमुहूर्त्त. श्रेष्ठतमः। श्रीरस्तु शुभम्।

धाणसा में प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियाँ

जनता में भी अपार प्रसन्नता प्रकटित हुई। श्रीसंघ ने एकत्रित होकर सर्वानुमति से एक प्रतिष्ठोत्सव-व्यवस्थापिका-समिति बनाई और प्रतिष्ठा सम्बन्धी सर्व प्रकार का उत्तरदायित्व एवं सत्ता उसको अर्पित की। प्रतिष्ठोत्सव-व्यवस्थापिका-समिति ने प्रतिष्ठा के सर्व कार्यों को अलग २ व्यक्तियों के अधीन देकर उन्हें तुरन्त पूर्ण कराने का आदेश दिया। समस्त ग्राम जैन, अजैन सर्व जन प्रतिष्ठोत्सव की तैयारियों में लग गया। शोभोपकरण, पूजोपकरण, खाद्य-सामग्री आदि का तुरन्त ही संग्रह कर लिया गया। ४५×२५ फीट लम्बे-चौड़े रम्य मण्डप की रचना करवाई गई। मण्डप को तीन भागों में विभाजित किया गया था। प्रथम भाग में पंचतीर्थी की सुन्दरतम रचना की गई थी, द्वितीय भाग में वेदिका पर जिनबिंब और अधिष्ठायक देव और देवियों की प्रतिमाओं की स्थापना की गई थी और प्रतिष्ठा संबन्धी क्रिया-विधान कराने के लिये स्थान रक्खा गया था तथा तृतीय भाग संगीत-मण्डली और कीर्त्तन, स्तवन करने वालों के लिये मुक्त रक्खा गया था। मण्डप के चतुर्दिक पक्का परिकोष्ठ बनाया गया था। मण्डप में तोरण, महरावों की रचना तथा विविध प्रकार के धार्मिक चित्रों की रचना अत्यन्त ही मनोहर और दर्शनीय थी। मण्डप के भीतर की भित्तियों पर श्री शत्रुंजयतीर्थ-पट्ट, गिरनारतीर्थ-पट्ट, अर्बुदाचलतीर्थ-पट्ट, सम्मेतशिखरतीर्थ-पट्ट, कमठासुर-उपसर्ग-पट्ट, वीरप्रभुकर्णकीलनोपसर्ग-पट्ट, पार्श्वप्रभु का कमठोपदेश-पट्ट श्री आदिनाथ-इक्षुरस-व्योहरावण-पट्ट आदि लम्बे-चौड़े अलग २ वस्त्र-पट्टों पर रचना करवाकर मण्डप की भीतों को आवृत्त किया गया था। मण्डप का प्रवेश-द्वार अति ही उन्नत और अति ही शोभापूर्ण बनाया गया था। मण्डप अनेक ध्वजा-पताकाओं से युक्त देवप्रासाद-सा प्रतीत होता था।

प्रतिष्ठोत्सव प्रारम्भ होने के ५, ७ दिन पूर्व सब प्रमुख २ तैयारियाँ पूर्ण हो चुकी थीं। भोजन की व्यवस्था एक लम्बे-चौड़े कई बीघे के क्षेत्र में की गई थी। बाहर से आने वाले दर्शकगण को ठहराने के लिये ग्राम में कई-एक घर पूरे-पूरे और कई-एक कक्ष खाली करवा कर उन्हें साफ करवा लिया गया था।

आचार्यश्री ने मुनिश्री लक्ष्मीविजयजी, विद्याविजयजी, सागरानन्द-विजयजी, तत्त्वविजयजी, चरितविजयजी, लावण्यविजयजी, मणिविजयजी, माणकविजयजी साधुप्रवर एवं शिष्यों के साथ में सियाणा से धाणसा के लिये फाल्गुन कृ० २ को विहार किया और डूडसी को स्पर्शते हुये बागरा में पधारे। बागरा में चरितनायक फा० कृ० १० तक विराजे। इस समय पर आपश्री के प्रवचनों एवं सदुपदेश से प्रेरित एवं उत्साही होकर बागरा-श्रीसंघ ने एक कोष एकत्रित करके स्थायी आंबिलखाता चालू रखने का निश्चय किया और तत्काल शुभ दिवस पर उसको प्रारम्भ भी कर दिया गया।

आचार्यदेव का सियाणा से विहार और बागरा में पदार्पण और आंबिलखाते का खुलवाना तथा धाणसा में शुभागमन

तत्पश्चात् बागरा से आपश्री अपनी साधुमण्डली के सहित सूरा, सरत और मोदरा होते हुये सेरणा ग्राम में पधारे। सेरणा के जिनालय में पद्मासनादि का जीर्णोद्धार करवाने की आवश्यकता थी। चरितनायक के उपदेश से जिनालय में जीर्णोद्धार-कार्य चालू किया गया और आपश्री सेरणा से विहार करके फा० कृ० १४ को प्रातःकाल आठ बजे धाणसा में पधारे। श्रीसंघ-धाणसा ने सजा हुआ हाथी, सजे हुये घोड़े, डंका-निशान, बैण्डबाजा आदि शोभा-सामग्री से युक्त भारी जनसमारोह के साथ चरितनायक का नगर-प्रवेश करवाया। जिनालय के उद्यान में विनिर्मित धर्मशाला में पधारकर आचार्यश्री ने सर्वजनोपकारी धर्मदेशना प्रदान की और उसमें प्रभु-प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाने के शुभकार्य के ऊपर शास्त्र के आधारों पर प्रकाश डाला। इस मंगलमयी देशना के पूर्ण होने पर समारोह विसर्जित हुआ और चरितनायक के शुभागमन से घर २ मंगलाचार और आनन्द की वृद्धि हुई।

फाल्गुन शु० ५ (पंचमी) सोमवार से प्रतिष्ठोत्सव प्रारम्भ हुआ और फा० शु० ११ रविवार को प्राण-प्रतिष्ठा हुई तथा फा० शु० १२ सोमवार को वड़ी शान्तिस्नात्रपूजा पढ़ाई जाकर उत्सव सानन्द समाप्त हुआ। गुरुदेव के पावन-प्रभाव एवं तेज से सर्व प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्य, विधि-विधान अंत तक अति आनन्द एवं उत्साह, भक्तिभाव एवं श्रद्धापूर्ण वातावरण में निर्वहित होकर निर्विघ्न पूर्ण हुआ। फा० शु० ११ के दिन दर्शक-

प्रतिष्ठोत्सव का समारम्भ

गण की संख्या लगभग १५००० पन्द्रह सहस्र के पहुँच गई थी। इतनी बड़ी दर्शकगण की संख्या बहुत ही कम उत्सवों में देखी गई थी। पाठकों के पठनार्थ प्रतिष्ठोत्सव के आठों दिन का कार्यक्रम नीचे दिया जाता है।

(१) फा० शु० ५ सोम०—मुहथा फुसा सिरेमल मेघा जोधाजी की ओर से नवपदपूजा और वेदिकापूजन करवाया गया।

(२) फा० शु० ६ मंगल०—संघवी सद्दा, मिश्रीमल, तिलोकचंद्र जयरूपजी की ओर से पंचकल्याणकपूजा और क्षेत्रपाल-स्थापना करवाई गई।

(३) फा० शु० ७ बुध०—संघवी हिम्मतमल, देशराज, हजारीमल, भूताजी की ओर से बारहव्रतपूजा, कुंभस्थापना और जवारारोपण-क्रिया करवाई गई।

(४) फा० शु० ८ गुरु०—कवदी दरगा मीठालाल, सुखराज केसरीमलजी की ओर से बारहभावनापूजा और ग्रहपूजन-क्रिया करवाई गई।

(५) फा० शु० ९ शुक्र०—संघवी ऋषभराज, तोलचन्द्र, छोगालाल पूनमचन्द्रजी की ओर से अट्ठारह स्नात्राभिषेक और गुरु-पूजन-क्रिया करवाई गई।

(६) फा० शु० १० शनि०—मुहथा कुंपा सुरतानमलजी की ओर से चैत्यवास्तुपूजा और नवाणुंप्रकारीपूजा पढ़ाई गई।

(७) फा० शु० ११ रवि०—पारियात रघुनाथमल जीवाजी की ओर से पूजा आदि विधि-विधान तथा जिनबिंब-स्थापना, गुरु-मूर्त्ति-स्थापना, अधिष्ठायक देव और देवियों की प्रतिमा-स्थापना, स्वर्णकलशदण्डध्वजादि का आरोपण शुभ एवं विशाल जनसमारोह के साथ निश्चित लग्नमुहूर्त्त में करवाया गया।

(८) फा० शु० १२ सोम०—मुहथा छोगालाल कुंपाजी की ओर से १०८ एक सौ आठ अभिषेक वाली बड़ी शान्तिस्नात्रपूजा पढ़ाई गई और ग्राम के चतुर्दिक अभिमंत्रित जल की धारा दी गई।

इस प्रकार आठ दिन पर्यंत व्यस्त कार्य-क्रम के साथ श्री धाणसा-प्रतिष्ठोत्सव समाप्त हुआ।

इस धाणसा ग्राम के प्राण-प्रतिष्ठोत्सव* के अवसर पर श्री पार्श्वनाथ-सेवा-मंडल, बागरा ने सर्व प्रकार की व्यवस्थाओं में सक्रिय सहयोग देने में और श्री राजेन्द्र-जैन-गुरुकुल, सियाणा की संगीत-मण्डली ने दर्शकगण का मनोरंजन तथा प्रभु-प्रतिमा के आगे भक्ति, कीर्त्तन, स्तवन करने में जो उत्साह एवं लग्न तथा तत्परता से कार्य किया, प्रतिष्ठा की सफलता के श्रेय में भागीदार ये भी हैं।

आचार्यश्री द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का परिचय

वि० सं० २०००

श्री शान्तिनाथ-जिनालय में बिंब-स्थापना

	बिंब	वर्ण	ऊंचाई
१.	मू० ना० श्री शान्तिनाथ-बिंब	श्वेत	३१ इंच
२.	दांयी ओर श्री धर्मनाथ-बिंब	,,	२५ ,,
३.	बांयी ओर श्री संभवनाथ-बिंब	,,	,, ,,
४.	दांयी ओर आलय में श्री महावीर-बिंब	,,	२१ ,,
५.	बांयी ,, ,, श्री अजितनाथ-बिंब	,,	२० ,,
६.	अधि० श्री गरुडयक्षजी-बिंब	श्याम	१५ ,,
७.	,, ,, निर्वाणदेवी-बिंब	श्वेत	,, ,,
८.	,, ,, शारदादेवी की प्रतिमा	,,	,, ,,
९.	छत्री में श्री राजेन्द्रसूरि-प्रतिमा	,,	२० ,,

श्री गोड़ीपार्श्वनाथ-जिनालय में बिंब-स्थापना

	बिंब	वर्ण	ऊंचाई
१०.	मू० ना० श्री गोड़ीपार्श्वनाथस्वामी-बिंब	श्याम	३५ ,,
११.	दांयी ओर श्री अनंतनाथस्वामी-बिंब	श्वेत	२५ ,,

* धाणसा की प्राण-प्रतिष्ठा के विशेष वर्णन के लिये 'श्री धाणसा-प्रतिष्ठा-महोत्सव' नामक पुस्तक को देखिये।

१२.	बांयी ओर श्री शीतलनाथ-स्वामी-बिम्ब	श्वेत	२५ इंच
१३.	अधिष्ठायक श्री धरणेन्द्र की प्रतिमा	,,	१५ ,,
१४.	अधिष्ठायिका श्री पद्मावतीजी-प्रतिमा	,,	,, ,,

वि० सं० २००१ का वर्णन लिखूं, इसके पूर्व यह समुचित है कि चरितनायक द्वारा रचित एवं प्रकाशित हुई पुस्तकों का परिचय दे दूं।

अक्षयनिधितप-विधि तथा श्री पौषध-विधि--आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। पृ० सं० ६४। इसकी प्रथमावृत्ति में प्रतियां १००० श्री महोदय प्रिं० प्रेस, भावनगर में श्री सौधर्मवृहत्तपागच्छीय-श्वेताम्बर जैन संघ-भूति ने और द्वितीय आवृत्ति जैन संघ खाचरोद ने छपवाकर प्रकाशित कीं। 'पौषध' एवं 'अक्षयनिधितप' के करने वाले जिज्ञासु स्त्री, पुरुषों के लिये यह पुस्तक अति ही लाभप्रद है।

श्री यतीन्द्र-प्रवचन (हिन्दी)--आकार क्राऊन ८ पृष्ठीय। रचना वि० सं० १९९६। पृष्ठ सं० २९०। प्रतियाँ १०००। श्री सौधर्मवृहत्तपागच्छीय जैन संघ-सियाणा ने श्री महोदय प्रिं० प्रेस, भावनगर में इसी वर्ष वि०सं० २००० में इसको छपवाकर प्रकाशित किया। इस पुस्तक में अनेक शिक्षाप्रद एवं धर्मविषयक निबंधों का समुच्चय है। जैन-दर्शन को समझने के लिये तथा व्याख्यानदाताओं की व्याख्यानपटुता एवं धर्मोपदेशकों को धर्मकथायें और उनका उद्देश्य एवं विधेय जानने के लिये यह पुस्तक अति ही उपयोगी है।

समाधान-प्रदीप (हिन्दी)--आकार क्राऊन १६ पृष्ठीय। प्रतियां ५००। रचना वि० सं० १९९६। इसको इसी संवत् २००० में श्री सियाणा-वासी शा० भगवानजी लूंबाजी ने श्री महोदय प्रिं० प्रेस, भावनगर में छपवा-कर प्रकाशित किया। इसमें अनेक शंकाओं का-प्रश्नोत्तर की शैली से समाधान किया गया है। ग्रंथ पढ़ने एवं मनन करने के योग्य है। यह ग्रंथ संस्कृत भाषा में भी लिखा जा चुका है। लेकिन वह अभी अप्रकाशित ही है।

सेरणा में प्रतिष्ठा
वि० सं० २०००

धाणसा में प्रतिष्ठोत्सव के सानन्द समाप्त हो जाने के पश्चात् चरितनायक कुछ दिनों तक धाणसा में ही विराजे रहे। फिर वहाँ से विहार करके आपश्री अपनी साधु-मण्डली के सहित मोदरा में पधारे। मोदरा से सेरणा पधारे। सेरणा के श्रीसंघ ने भारी जनसमारोह के साथ में अति ही धूम-धाम एवं सज-धज के साथ आचार्यश्री का ग्राम-प्रवेश करवाया। आचार्यश्री ने सेरणा में वि० सं० २००१ वैशाख शु० ७ शनिश्चर को अष्टाह्निका-महोत्सव के साथ में श्री पार्श्वनाथ आदि पांच जिनबिंबों की अति धूम-धाम से शुभ मुहूर्त्त में बिंब-प्रतिष्ठा की।

स्वर्णकलश एवं दण्ड-ध्वजारोहण और धाणसा में चातुर्मास का निश्चय
वि० सं० २००१

आचार्यश्री मोदरा से विहार करके पुनः धाणसा पधारे। भारी सज-धज के साथ में धाणसा-श्रीसंघ ने अतिशय भाव-भक्तिपूर्वक चरितनायक का ग्राम-प्रवेश करवाया। वि० सं० २००१ ज्येष्ठ कृ० २ बुधवार को आचार्यश्री ने शान्तिनाथ-जिनालय में सियाणानिवासी प्राग्वाटज्ञातीय-सत्तावतगोत्रीय शाह भगवानजी लूंबाजी की ओर से विनिर्मित श्री गुरु-समाधि-मंदिर के ऊपर शुभ मुहूर्त्त में धूम-धाम एवं समारोह के साथ में स्वर्णकलश और दण्डध्वज का आरोपण करवाया। इसी अवसर पर बागरा, जालोर, भीनमाल, सियाणा, आहोर, हरजी आदि ग्रामों के श्रीसंघों की ओर से चरितनायक को चातुर्मास की विनती करने के लिये भेजे हुये प्रतिष्ठित व्यक्ति धाणसा में उपस्थित हुये थे। कारण एवं क्षेत्रस्पर्शना को देखकर आचार्यश्री ने आहोर के श्रीसंघ की विनती स्वीकृत की और जय बोल दी। तत्पश्चात् आचार्यश्री अपनी साधु एवं शिष्यमण्डली के सहित धाणसा से विहार करके आहोर की ओर पधारे।

आहोर में ३८ वां चातुर्मास एवं प्राण-प्रतिष्ठा और दीक्षायें

वि० सं० २००१

●

चरितनायक धाणसा से विहार करके ग्राम बाकरा, सूरा, बागरा, डूडसी होते हुये सियाणा पधारे और फिर सियाणा से मायलावास, मेड़ा, छीपरवाडा होते हुये एवं धर्मोपदेश प्रदान करते हुये आहोर पधारे। आहोर के श्रीसंघ ने शाही समारोहपूर्वक चरितनायक का नगर-प्रवेश करवाया।

चरितनायक ने व्याख्यान में 'श्री भगवतीसूत्र' और भावनाधिकार में 'श्री विक्रमचरित्र' का वाचन किया। मालवा से चरितनायक को इधर मरुधर-प्रान्त में पधारे हुये लगभग ६-७ वर्ष व्यतीत होने आये थे; अतः मालवा के ग्रामों एवं नगरों के श्रीसंघ एवं सद्गृहस्थ आपश्री के दर्शनों के अति उत्कंठित एवं लालायित होकर इस वर्ष आहोर में आये। आहोर के श्रीसंघ ने भी आगन्तुक दर्शनार्थियों का अच्छा स्वागत-सम्मान किया। चरितनायक के प्रताप से आहोर में कई अष्टमतप और छोटे-मोटे अन्य प्रकार के तप, व्रत, पौषध हुये और चातुर्मास में पूर्ण आनंद रहा। भाद्रपद में मु० श्री चरित्रविजय जी ने ४१(एकतालीस) उपवास की उत्कट तपस्या की थी। इस तपस्या के कारण निकट के ग्राम, नगरों से श्रावक एवं श्राविकायें तपस्वी मुनि के सदा दर्शन करने के लिये आते और जाते रहे।

अहोर-संघ ने चरितनायक के इसी वर्ष के चातुर्मास में ही लगभग २००(दो सौ) जिनेश्वर-प्रतिमाओं, गुरु-बिंबों और अधिष्ठायक देव एवं देवियों की प्रतिष्ठाञ्जनशलाका कराने का निश्चय करके वि० सं० २००१ माघ शु० ६ शुक्रवार का प्रतिष्ठालग्न-दिवस चरितनायक से निकलवा लिया था। आहोर नगर का श्रीसंघ प्रतिष्ठोत्सव को वृहद् पैमाने पर करना चाहता था; अतः सम्पूर्ण चातुर्मास भर एवं तत्पश्चात् भी प्रतिष्ठा संबंधी तैयारियां बड़ी तत्परता, लग्न से की जाती रहीं। चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् उक्त प्रतिष्ठा के

आहोर में प्राण-प्रतिष्ठा

होने का निश्चय हो जाने के कारण चरितनायक को भी अपनी साधु-मण्डली के सहित अन्यत्र विहार नहीं करके आहोर में ही रुकना पड़ा।

आहोर-श्रीसंघ ने रम्य मण्डप की रचना करवाई और वरघोड़ा के अत्यन्त सुन्दर शोभोपकरणों को एकत्रित किया। आने वाले श्रावक एवं संघों के ठहरने के लिये बहुत ही योग्य व्यवस्था की। प्रतिष्ठा शरदऋतु में थी; परन्तु विश्राम, भोजन, आतिथ्य सम्बन्धी व्यवस्था इतनी सुन्दर एवं स्तुत्य थी कि सहस्रों की संख्या में आनेवाले सधर्मी बंधुओं को तनिक भी कष्ट एवं असुविधा नही हुई। प्रतिष्ठा के नव दिनों में ही स्थानीय श्री राजेन्द्र जैन पाठाशाला की संगीत-मण्डली का अभिनय, ड्रामा, कीर्त्तन, भजन-स्तवन का बहुत ही आकर्षक एवं सुन्दर कार्यक्रम रहा। प्रतिष्ठा के नव दिनों का कार्यक्रम निम्नवत् थाः—

(१) माघ कृ० १३ शुक्र०—बाफनागोत्रीय मूथा छोगालाल, चुन्नीलाल, दलीचंद्र, छगनराज, घेवरचंद्र की तरफ से जलयात्रा, नवपदपूजा, वेदिकापूजनादि।

(२) माघ कृ० १४ शनि०—तलेसरा मूथा रायचंद्र, ताराचंद्र, सुखराज, पुखराज, किस्तूरजी की तरफ से द्वादशव्रतपूजा तथा नन्दावर्त्त-मण्डलपूजनादि।

(३) माघ कृ० ३० रवि०—काश्यपगोत्रीय चौहान शा० मूलचंद्र, मिश्रीमल, घीसूलाल, पारसमल, हस्तिमल, भूराजी की ओर से समवशरणपूजा तथा नवपदवीशस्थानकमण्डलपूजनादि।

(४) माघ शु० २सोम०—चौपड़ा मूथा ओटमल, उदयचंद्र, मांगीलाल, मिश्रीमल, किशोरीमल ओखाजी की ओर से द्वादशभावनापूजा तथा ग्रहादिमण्डलपूजनादि।

(५) माघ शु० ३ मंगल०—काश्यपगोत्रीय चौहान शा० हजारीमल, ऋषभदास, पारसमल, घेवरचंद्र, सुमेरमल, भंवरलाल, नरथाजी की ओर से कल्याणकोत्सव, अभिषेकोत्सवादि तथा पंचकल्याणक की पूजा।

वेदिका पर विराजित प्रतिमायें, आहोर
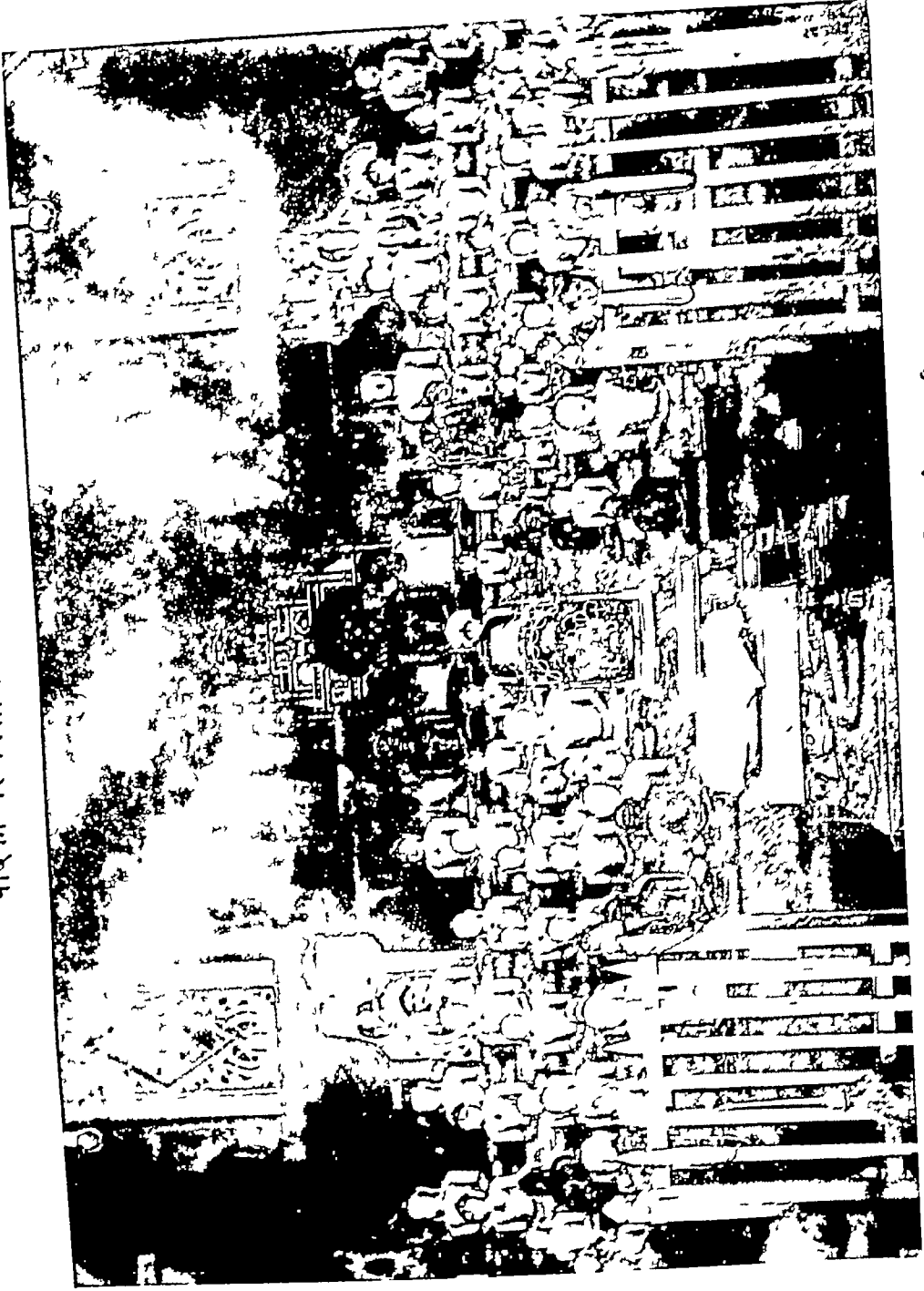
प्राण-प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर. वि० सं० २००१.

श्री गोड़ीपार्श्वनाथ-बावन जिनालय, आहोर

प्राण-प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर वि० स० २००१

(६) माघ शु० ४ बुध०—तलेरा मूथा नत्थमल, मगनमल, मोतीचंद्र, मुलतानमल, मोतीचंद्र, सुखराज, सौभागमल, माणकचंद्र, भोपतरामजी की ओर से चैत्यवास्तुपूजन, नवाणुंप्रकारीपूजा तथा सभा का आयोजन और भाषणादि ।

(७) माघ शु० ५ गुरु०—काश्यपगोत्रीय तूर शा० नेमीचंद्र, मांगीलाल, घेवरचंद्र, चम्पालाल, पूनमचंद्र की ओर नन्दीश्वरद्वीपपूजादि, प्रतिमांजनविधान तथा चढ़ावादि ।

(८) माघ शु० ६ शुक्र०—तलावत शा० परागचंद्र, सिरेमल, खीमराज, कनीराम, हजारीमल, माणकजी गदैया की ओर से बड़ी नवकारशी तथा जिनप्रतिमा-स्थापना, गुरु-मूर्त्तिस्थापना, स्वर्णकलशदण्डध्वजारोपणादि ।

(९) माघ शु० ७ शनि०—कुंकुमचोपड़ागोत्रीय शा० मूलचन्द्र, ऋषभदास, जावंतराज, पुखराज, सिरेमल, वस्तीमल, मिश्रीमल की ओर से अष्टोत्तरशताभिषेक वृहच्छान्तिस्नात्र-पूजा तथा प्रतिष्ठोत्सवविसर्जनादि ।

छोटी एवं बड़ी दीक्षायें

वि० सं० २००१

प्रतिष्ठोत्सव के शुभ दिवस माघ शु० ६ शुक्रवार को चरितनायक ने शुभ लग्न में मुनिश्री कान्तिविजयजी और श्री हेमेन्द्रविजयजी को बड़ी दीक्षा एव साध्वीजी श्री जयश्रीजी को लघु भागवती दीक्षा प्रदान की। दीक्षित साधु एवं साध्वियों का गृहस्थ-परिचय नीचे दिया जा रहा है:—

मुनि कान्तिविजयजी—इनके पिता थराद(उत्तर-गुजरात) के निवासी थे। उनका नाम अमोलख भाई और माता का नाम मैना वहिन था। स्वयं का नाम मफतलाल था। ज्ञाती से ये श्रीश्रीमाल थे। इनका जन्म वि० सं० १९८५ पौ० शु० ९ को थराद में ही हुआ था। इनको लघुदीक्षा उपा० गुलाबविजयजी ने गुढ़ाबालोतरा में इसी वर्ष (वि० सं० २००१) मार्ग० शु० पचमी को प्रदान की थी और इन्हें मु० श्री हंसविजयजी के शिष्य

बनाये थे । चरितनायक ने इनको प्रतिष्ठोत्सव के शुभ अवसर माघ शु० ६ शुक्रवार को बड़ी दीक्षा प्रदान की ।

मुनि हेमेन्द्रविजयजी—इनके पिता प्राग्वाटज्ञातीय गैनाजी नाम के बागरानिवासी थे । इनका नाम पूनमचन्द्र था । इनको मु० हर्षविजयजी ने भीनमाल नगर में वि० सं० १६६६ में आषाढ़ शु० ५ को लघुभागवती दीक्षा दी थी । आहोर में इनको भी चरितनायक ने प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर माघ शु० ६ को बड़ी दीक्षा प्रदान की ।

श्रीजयश्रीजी—आहोर के पास में चरलीग्राम में इदाजी नामक प्राग्वाटज्ञातीय श्रावक की धर्मपत्नी सोनीबहिन की कुक्षी से वि० सं० १६७१ आषाढ़ शु० १४ को आपका जन्म हुआ था । आपका जन्म नाम जीवीबाई था । आपका विवाह वि० सं० १९८४ वैशाख शु० पंचमी को आहोरवासी शाह मगराजजी के साथ में सम्पन्न हुआ था । परन्तु सौभाग्यावस्था आपके भाग्य में अधिक दिनों तक नहीं लिखी थी । आप वि० सं० १६८७ वैशाख शु० १४ को अकस्मात् विधवा हो गईं । अब संसार आपके लिये भारस्वरूप हो गया था । निदान धीरे २ आपको वैराग्य उत्पन्न हो गया और वि० सं० २००१ माघ शु० ६ को प्रतिष्ठोत्सव के शुभावसर पर ही शुभ मुहूर्त में आपने आहोर में चरितनायक के कर-कमलों से भागवती दीक्षा ग्रहण करी और श्रीगुरुणीजी कमलश्रीजी की आप शिष्या हुईं । आपका साध्वीनाम श्रीजयश्रीजी प्रसिद्ध किया गया ।

श्रीमहिमाश्रीजी और श्रीजयन्तश्रीजीः—ये दोनों सहोदरा हैं और दोनों ही बालकुमारियाँ हैं । इनके माता-पिता मालवा-प्रान्त के खाचरोद नामक प्रसिद्ध नगर के रहने वाले थे । पिता का नाम हीरालालजी और माता का नाम सुन्दरबाई था । माता इन दोनों को ही बचपन में छोड़कर मर गई थी । माता के मरने के पश्चात् पिता ने इन दोनों बहिनों को साध्वीजी श्री हेतश्रीजी को अर्पण करदीं । इनका जन्म नाम क्रमशः कमला और रुक्मीबाई था । वि० सं० २००१ में श्री चरितनायक ने इन दोनों को शुभ मुहूर्त्त में माघ शु० १४ के दिन आहोर में लघु भागवतीदीक्षा

समहोत्सव प्रदान की और क्रमशः श्रीमहिमाश्री और जयन्तश्री साध्वीनाम रखकर इनको गुरुणीजी श्री कमलश्रीजी की शिष्या बनाईं।

भेसवाड़ा में प्रतिष्ठा

वि० सं० २००१

भेसवाड़ा में बिंबप्रतिष्ठा करनी थी, अतः चरितनायक एवं साधु-मण्डल आहोर से विहार करके भेसवाड़ा पधारे। भेसवाड़ा–श्रीसंघ ने आपश्री का स्वागत अति ही भव्यता से किया। अट्ठाई–महोत्सव के साथ शुभ मुहूर्त्त में प्रतिष्ठा-कार्य प्रारम्भ करवाया गया। वि० सं० २००१ फाल्गुन शु० ५ को शुभ लग्न में बिंबप्रतिष्ठा की गई। आपश्री भेसवाड़ा कुछ दिनों के लिये और विराजे और पुनः वहाँ से आहोर पधारे।

भेसवाडा से आहोर पधारकर आपश्री आहोर में कई दिनों के लिये स्थिरवास रहे। यहाँ चरितनायक की सेवा में अनेक ग्रामों एवं नगरों के श्रीसंघों की ओर से भेजे हुये प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ चातुर्मास की विनती करने के लिये उपस्थित हुये। मुख्यतः जालोर, भीनमाल, फताहपुरा, बाली, खाचरोद, कुक्षी, रतलाम, बागरा और सियाणा के श्रीसंघों का अत्याग्रह था। क्षेत्र-स्पर्शना एवं कारणों पर विचार करके चरितनायक ने बागरा की विनती स्वीकार की।

तत्पश्चात् आपश्री गुढ़ाबालोतरा पधारे और वहाँ से तखतगढ़ पधारे। जब आपश्री तखतगढ़ विराज रहे थे, तब आहोर के एक श्रीमंत जन चरित-नायक की सेवा में उपस्थित हुये और उन्होंने आपश्री से निवेदन किया कि वे आहोर से मांडवपुरतीर्थ के लिये संघ निकालने का निश्चय कर चुके हैं; अतः उसका अधिनायकत्व संभालने के लिये कुछ मुनिवर भेजे जायं। इस पर आपश्री ने मुनिराज विद्याविजयजी को दो मुनिवरों के साथ में उक्त संघ में सम्मिलित होने के लिये भेजा। तत्पश्चात् आपश्री ने बागरा के लिये विहार किया।

बागरा में गुरुदेव का ३६ वां चातुर्मास और उपधानतपोत्सव

वि० सं० २००२

●

वैसे तो चातुर्मास का अर्थ चार मास होता है। परन्तु इसे रूढ़ बनाकर इसका अर्थ वर्षाकाल में साधु-साध्वियों का चार मास तक एकत्र निवास कर दिया है। वर्षाऋतु में जलवृष्टि के कारण मार्ग पंकिल हो जाते हैं, पद-पथ बिगड़ जाते हैं, नदी और नालों में बाढ़ें आती रहती हैं, सरोवर एवं छोटे-मोटे जलाशय उमड़-उमड़ कर आस-पास के स्थलों को ऊबड़-खाबड़ बना देते हैं और भूमि जीवाकुल हो जाती है। इस प्रकार आवा-गमन की क्रिया प्रायः बंद ही करनी पड़ती है। फिर वे साधु-साध्वी जिन्हें किसी भी तुच्छ जीव को कष्ट पहुँचाने की अति साधारण क्रिया भी पसन्द नहीं, कैसे गमनागमन कर सकते हैं? अतः वे जहाँ-तहाँ एक स्थान पर रह कर इस समय धर्म, ध्यान, तप, जप करते हुए लोगों को अपने अमृत भरे अनुभवपूर्ण सबल व्याख्यानों से लाभ पहुँचाते हुए यह ऋतु व्यतीत करते हैं। यह परिपाटी न मालूम कब से चली आती है? भारतीय धर्म-व्यवहार में इस प्रकार चातुर्मास का महत्त्व बड़ा विशाल है। जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव आदि सब ही ने चातुर्मासकाल को एक सा महत्त्व दिया है। जैनधर्म में इसका महत्त्व कुछ विशेष बढ़कर माना है। जैनी प्रायः इस ऋतु में जहाँ तक हो सकता है अपने रात-दिन के क्रिया-क्रम में भी कुछ कमी कर लेते हैं। अमुक परिधि तक अमुक कार्य करने का संकल्प कर लेते हैं। उपवास, व्रत, आयं-बिल, पौषध, सामायिक आदि क्रियाकल्पों की एक दर्शनीय एवं अनुकरणीय धूम-सी मच जाती है। जहाँ अगर दैवयोग से साधु महात्मा का विराजना हो तो उस स्थान की कुछ अलग ही विशेषता छट जाती है।

बागरा में इस वर्ष (२००२) का पुण्यप्रभावक गुरुदेव चरितनायक श्रीमद् आचार्यमणि श्री श्री १००८ श्री श्री विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का मुनिमंडलसह चतुर्मास हुआ। लोगों की भावनायें अनेक धर्मकार्य

करने की ओर खूब बढ़ रही थीं। गुरुदेव के सतत् प्रवचनों से आगरा नगर में धर्म जाग उठा और ऐसे-ऐसे कार्य हुए जो स्वर्णाक्षरों में सदा के लिये लिखे रहेंगे। जनता को गुरुदेव के नित्य के व्याख्यानों से अति लाभ प्राप्त होता रहा था। उधर पाश्चात्य प्रदेशों में महाकाली की लपलपाती जिह्वा रक्तपान पर उतर रही थी, रुद्र के महागण की एक ताण्डव-दौड़-धूप मच रही थी। भारत भी कानों यह सब घटनायें सुन रहा था और यह भी आशंका थी कि कोई शिव की महाकाली यहाँ तक न आ फैले। यद्यपि वह यहाँ साक्षात् रूप से न भी आई हो तो भी भारत को उसे अपनी ओर से भेंट तो भेजनी पड़ रही थी। कितना भयावह, दयापूर्ण, करुणा बढ़ाने वाला अवसर आ उपस्थित हुआ था। इस चण्डी के ताण्डव को राजनीतिज्ञ भले ही सजग हो कर निहार रहे हों, परन्तु प्रत्येक सहृदय जन को इससे घृणा हो चली थी। साधु-महात्माओं के लिये यह वैराग्य भावनाओं की भक्ति-प्रधान क्रियाओं को सजग करने का अच्छा अवसर था। लोगों के हृदय आये दिन दुःखद घटनायें सुन कर कुछ शान्ति पहुँचाने वाली बातें मनन करने को लालायित हो रहे थे और कुछ यथाशक्ति भला कर्म करने के प्रति भी खिंचे जा रहे थे। गुरुदेव के व्याख्यानों का जनता पर भारी प्रभाव पड़ा और अनेक धर्म के कार्य हुए जिनका वर्णन यथास्थान दिया जाता है।

उपधानतप की भावना

१—बहुत वर्षों से आगरा-निवासियों के हृदय में उपधानतप आराधन कराने की भावना विलास कर रही थी; परन्तु उपयुक्त अवसर ही उपस्थित नहीं हो रहा था। इस वर्ष यह उन की महत्त्वाकांक्षा गुरुदेव की परम कृपा से फली और वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है, जिसका-विशद् वर्णन पाठकों को आगे के पृष्ठों में मिलेगा।

बीस सहस्र का सराहनीय दान

२—कोटातीर्थ का नाम तो प्रायः सभी ने सुना होगा, जिनको कोटा-तीर्थ के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा वे वहाँ के

प्राचीन जिनालयों से अवगत भी होंगे । जैन तीर्थ-धामों में कोर्टा-तीर्थ भी अपनी प्राचीन गौरव रखने में किसी प्रकार कम नही है । यहाँ अनेक साधु-साध्वी दर्शनार्थ आते हैं; परन्तु उनके ठहरने के लिये कोई योग्य स्थान नहीं था । बागरा-संघ ने धर्मशाला बनाने के निमित्त जैन पीढ़ी की ओर से दस सहस्र रुपयों की रकम देने की घोषणा की ।

जालोर के स्वर्णगिरि नामक पर्वत पर आया हुआ 'अष्टापदावतार' नामक सौधशिखरी जिनालय जो अपनी शान का एक ही है, उसके जीर्णोद्धार खाते में भी बागरा-संघ ने अपनी (श्रीपार्श्वनाथ श्वेताम्बर) जैन पीढ़ी की ओर से दस सहस्र रुपयों की रकम देने की भी घोषणा की ।

अट्ठाई-महोत्सवों की धूम-धाम

३—गुरुदेव के व्याख्यानों का ही एकमात्र प्रभाव है कि इस प्रकार के धर्मोन्नतिजनक महोत्सवों की धूम-सी मच गई । यह उत्सव आठ दिन तक किया जाता है । प्रतिदिन प्रभु-कीर्त्तन-पूजा के प्रभावक कार्य मुमुक्षु प्राणियों के हृदय को अतिशय आह्लादित करते रहते हैं ।

प्रथम—अट्ठाई-महोत्सव नगर की जनता में सब तरह शान्ति-समाधि बनी रहने के निमित्त श्रीयुत् हजारीमल वन्नाजी भण्डारी की तरफ से सोत्सव करवाया गया था । अंतिम दिन भारी पूजा-भक्ति के साथ पौष्टिक वृहत् शान्तिस्नात्र पूजा भणाकर नगर के चारों ओर मंत्रपूत जल की शान्ति-धारा दी गई । इस पूजन में विश्व भर के प्राणियों के कल्याण की भावना सन्निहित होती है । संसार में शान्ति के प्रसाद की प्राप्ति और आधि, व्याधि एवं अशाति विनष्ट होने के लिये ही यह पूजा भणाई जाती है ।

द्वितीय एवं तृतीय—अट्ठाई-महोत्सव वीसस्थानकपद-तप के उद्यापन के निमित्त शाह पन्नाजी सदाजी तथा चैनाजी नभूतमल की पत्नी श्राविका रखवीबाई की तरफ से किया गया । वीसस्थानकपद-तप दस वर्ष

तक किया जाता है। प्रतिवर्ष इसकी दो ओली यथाशक्ति उपवास से होती हैं। दो ओली करने से दस वर्ष में यह तप पूर्ण होने पर अन्त में उद्यापन (उजमणा) करना पड़ता है।

चौथा एवं पाँचवां—अट्ठाई-महोत्सव उपधान तप के निमित्त उसके आदि और अन्त में बागरा नगर के श्रीसंघ की ओर से किये गये। वर्द्धमान-आयंबिल-तप के निमित्त शा० प्रतापचन्द्र (ओटमल) धूड़ाजी की ओर से किया गया। ये सभी अष्टाह्निका महोत्सव भारी प्रभावक हुए।

छठा—अट्ठाई-महोत्सव उपधानतप के मध्य में हुआ।

पर्युषणपर्वाराधन

४—यह पर्व सर्व पर्वों में प्रथम मंगलकारी है। यह भी आठ दिन तक मनाया जाता है। प्रत्येक जैन उपवास, बेला अट्ठम, आयंबिल आदि तप करके इसकी आराधना करता है। मन्दिरों, धर्मस्थानों की आय भी प्रमुख रूप से इसी अवसर पर हुआ करती है। गुरुदेव के यहाँ विराजने से इस वर्ष आय भी अधिक हुई, जो गत वर्षों के र्युषणों में कभी न हुई थी। स्वप्न, पालना, कल्पसूत्र आदि के चढ़ावों की रकम २५ हजार से ऊपर हुई।

मिडिल स्कूल की योजना

५—यहाँ जो श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल नाम का शिक्षणालय चल रहा है, वह गुरुदेव के कर-कमलों से ही सं० १९९५ की आश्विन शुक्ला छठ को संस्थापित हुआ था। उसका अष्टवर्षीय जन्मोत्सव भी आपकी तत्त्वावधानता में ही संपन्न हुआ। इस अवसर पर गुरुदेव का गुरुकुल की वर्त्तमान स्थिति, भूत के इतिहास पर एवं भविष्य पर मार्मिक भाषण हुआ, जिसके फलस्वरूप गुरुकुल को मिडिल स्कूल बनाने की योजना बनाई गई और इस दिशा में प्रयत्न भी प्रारम्भ कर दिया गया। विद्यालय का नया भवन और छात्रालय का अलग नूतन छात्रावास भवन भी बनाना विचारा गया।

दो सहस्र का सराहनीय दान

६—इसी चातुर्मास में पं. लालारामजी, प्रबन्धमंत्री-हिन्दू धर्म-रक्षिणी सभा, इन्दौर का संस्था के प्रचार के निमित्त आना हुआ। आपको पधारने के लिये आग्रह शा० हजारीमल बनेचंदजी भंडारी की ओर से किया गया था। पंडितजी को बागरा से दो सहस्र रुपयों की आर्थिक सहायता उपलब्ध हुई। हजारीमलजी से १२००) रुपया और शेष रहती रकम अन्य सज्जनों की ओर से प्रदान हुई।

मुनि हंसविजयजी का स्वर्गारोहण

७—देह त्याग करना वैसे तो साधु-महात्माओं के लिये गमनागमन की एक क्रिया है। लेकिन महात्माओं का जो अभाव इस प्रकार घटता है, वह हम संसारियों के लिये तो अवश्य दुःखद है। मुनिराज श्री हंसविजयजी वस्तुतः हंस ही थे। पूज्य उपाध्याय श्री गुलाबविजयजी के साथ आपका चातुर्मास इस वर्ष भीनमाल में था। वहीं आपका देहावसान डबल निमोनिया के आ जाने से तिथि कार्त्तिक शुक्ला ६ ता० ११-११-४५ रविवार की रात्रि में १० बजे हुआ। तारीख १२ को तार से खबर आते ही श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल की ओर से शोकसभा मनाई गई और उसमें दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करने की प्रार्थना अर्हन् भगवान् से करके सभा विसर्जित हुई।

उपधानतप और उसका महत्त्व

जैन शास्त्रों में अनेक प्रकार के व्रतों एवं तपों का उल्लेख है। वैसे सीधे रूप से तप का अर्थ तपना क्रिया से लगाया गया है। तपना अर्थात् कष्ट सहन करना। किस लिये? आत्म-कल्याण के लिये। आत्म-कल्याण की साधना में संसार के सभी प्रकार के प्राणियों का हित अपने आप सध जाता है। ये साधना मोटे रूप से तीन प्रकार से संपादित की जाती है—तन, मन और वचन से। विशेष अंश में तन से कर्म, मन से संकल्प और वचन से संभाषण-क्रियाओं के माध्यमों द्वारा वह कर्म करना, जिससे आत्म-कल्याण

होता हो। ऐसे कर्म के करने में शरीर को अत्यधिक तपना पड़ता है; अतः इसका नाम तपस्या है एवं मन से इस प्रकार की तपस्या का दृढ़ संकल्प करना ही व्रत है और तपस्या और व्रत का आलोचनापूर्वक परिपालन एवं पर्यवेक्षण करने का नाम ही पौषध है। ऐसे जीवन को व्यतीत करने का जिसका लक्ष्य हो, जिसने कुछ समय के लिये संकल्प कर लिया हो या ऐसे जीवन को व्यतीत करने के लिये जो दीक्षित हो गया हो—ऐसे व्रत एवं तपस्या करने वालों के तीन वर्ग किये जा सकते हैं। श्रावक, उपतपस्वी और साधु। जैन बन्धुओं की श्रावकों में, उपधानादि तप करनेवालों की उपतस्वियों में और दीक्षितों की साधु मुनिराजों में परिगणना होती है। 'उप' से अर्थ समीप-भाव से है, समीप-भाव से अर्थ किसी के पार्श्व में रह कर तप-साधना करने से है। पूरे 'उपधान' शब्द का अर्थ आधार या आश्रय से है, अर्थात् किसी के आश्रय में रह कर या किसी के आधार-सहारे से तप-साधना करने को 'उपधानतप' कहते हैं। ऐसी तप-साधना आलोचना एवं पर्यवेक्षण के साथ होनी चाहिये, जिसे पौपध कहते हैं। इस प्रकार समूचे उपधानतप का अर्थ गुरु के आश्रय में पौषध-क्रिया सहित तप विशेष से श्रुत, अर्थ उभय की नियमित समय तक साधना-आराधना करनी होती है। अत्र आधार किसका, किस के पास रह कर यह तप-साधना करना? जो व्रती हो, तपस्वी हो, जो अपने आश्रित को साधना में सब प्रकार का सहयोग देने में समर्थ हो। ऐसे तपस्वी पुरुष तो वे ही हो सकते हैं, जिन्होंने पाचों इन्द्रियों को जीत लिया हों, जो नव प्रकार का ब्रह्मचर्य पालन करते हों, काम, क्रोध, लोभ, मोह से रहित हों, समिति, गुप्ति के धारक और पंच महाव्रतों के पालन में दृढ़-प्रतिज्ञ हों। ऐसे पुरुष को हमारे शास्त्रों में साधु, मुनि की संज्ञा दी है, जिन्हें गुरु, आचार्य, पूज्य कह कर मानते हैं अर्थात् उपधानतप का आराधन साधु-आचार्य के समीप में रह कर ही किया जाना चाहिये। ऊपर के विस्तृत विश्लेपण से यह तो प्रकट हो ही गया कि उपधानतप किसे कहते हैं। अब यह रहा कि इस तप के आराधन में कैसी-कैसी क्रियायें होती हैं? इस तप की क्रियाओं को विशेप रूप से छः विभागों में विभक्त कर दिया है, जिन्हें महाश्रुतस्कन्ध भी कहते हैं।

१. पंचमंगलमहाश्रुतस्कन्ध--इसमें एक लक्ष नवकारमंत्र का जाप और उसका सार्थ शुद्ध अध्ययन-आराधन होता है।

२. प्रतिक्रमणश्रुतस्कन्ध--इसमें 'इरियावही, तस्सउत्तरी, अन्नत्थ' इन सूत्रों का भेदोपभेद के सहित सार्थ अध्ययन एवं आराधन होता है।

३. शक्रस्तवश्रुतस्कन्ध—इसमें आराधनापूर्वक 'नमुत्थुणं' सूत्र का सार्थ अध्ययन किया जाता है।

४. चैत्यस्तवश्रुतस्कन्ध—इसमें 'अरिहंतचेइयाणं' सूत्र के मूलार्थ का अध्ययन एवं आराधन होता है, साथ ही उसके हेतु, उदाहरण आदि का ज्ञान करना पड़ता है।

५. नामस्तवश्रुतस्कन्ध—इसमें चतुर्विंशतिस्तव (लोगस्स) सूत्र का हेतु, दृष्टान्त के सहित मूलार्थ संयुक्त अध्ययन एवं आराधन किया जाता है और तीर्थंकरों का जीवनस्वरूप संक्षेप में समझना पड़ता है।

६. श्रुतस्तव-सिद्धस्तवश्रुतस्कन्ध—इसमें अर्थ सहित 'पुक्खरवर-दीवड्ढे' और 'सिद्धाणं' दोनों सूत्रों का अध्ययन एवं आराधन किया जाता है।

इस तरह उपधानतप के छः प्रकार हैं। वर्त्तमान परिपाटी के अनुसार उक्त उपधानों में पंचमंगलमहाश्रुतस्कन्ध, प्रतिक्रमणश्रुतस्कन्ध, चैत्यस्तवश्रुतस्कन्ध और श्रुतस्तव-सिद्धस्तवश्रुतस्कन्ध ये चारों उपधान एक साथ ही किये जाते हैं, शेष अलग-अलग। प्रथम, द्वितीय उपधान १८-१८ दिन का है, उनमें १२॥-१२॥ उपवास की भरती करनी पड़ती है। चौथे और छठे उपधान के क्रमशः ४ और ६ दिन हैं, उन में २॥ और ४॥ उपवास की पूर्त्ति करनी होती है। ये चारों उपधान ४७ दिनों में वहन किये जाते हैं और कुल ३२ उपवास की तपस्या करनी पड़ती है। तृतीय उपधान ३६ दिन का और पाचवा उपधान २८ दिन का होता है। इनमें क्रमशः ११॥ और १५॥ उपवास की तपस्या की जाती है। सभी उपधानों में पौषध, पौषध सम्बन्धी एवं उपधान सम्बन्धी क्रिया करने के उपरान्त १०० खमा-

समण, १०० लोगस्स का कायोत्सर्ग और २० माला गिनना आदि क्रिया भी सदा नियम से करनी पड़ती है।

उपधानतप कितना बड़ा आत्म-कल्याणकर है, इस पर अब अधिक लिखने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। सक्षेप में फिर भी इतना कह देना उचित है कि इस तप से कर्मों का क्षय, शरीर-शुद्धि, श्रुतज्ञान की आराधना, श्रमणभाव का अनुभव, इन्द्रियों का दमन करने की शक्ति की प्राप्ति, गुरु और देव-भक्ति का रसानन्द हो जाता है। ये सब मोक्ष की प्राप्ति के साधन कहे जाते हैं।

जो बन्धु यह तप आराधन करते हैं और ऊपर के ६ विभागों में से जैसा उपधान वहन करते हैं, तप के जितने दिन निश्चित हैं, उतने दिन के लिये उस बन्धु को संसार के सब प्रकार के झंझटों से दूर रहना पड़ता है। थोड़े में यों समझा दिया जाय कि ऐसे तप करने वालों को निश्चित अवधि तक संसार छोड़ कर गुरुदेव के समीप रह कर उपधानतप की क्रिया साधन करनी पड़ती है।

उपधानतप का महोत्सव

ऊपर के लेख में यह बताया जा चुका है कि उपधानतप किसे कहते हैं? यह तप क्यों किया जाता है? इसका महत्त्व कितना बड़ा है? आदि। इस लेख में यह बताया जायगा कि उपधानतप-महोत्सव वागरा नगर में किस प्रकार मनाया गया।

ऐसे विशेष अवसरों पर वागरा-श्रीसंघ किस प्रकार की व्यवस्था करता है, उसका कुछ परिचय 'श्रीमहावीरादि प्राणप्रतिष्ठोत्सव' प्रकरण मे आलेखित है। ठीक वैसी ही व्यवस्था इस अवसर पर भी की गई थी। प्रमुख समिति और उस की सहायक समितियां जैसे मण्डप-समिति, भोजन-समिति, तपस्वी-व्यवस्थापक-समिति, औषध-विभाग, वरघोड़ा — विभाग, संगीत एवं नाटक-विभाग, स्वयंसेवक-विभाग, फोटोकर्पण-विभाग आदि की सुव्यवस्था की गई थी। विभाग, समिति एवं मंडलों में इस महोत्सव का कार्य वंटा हुआ था, जिसका यहाँ विशेष वर्णन न देकर संक्षेप में बतलाया जायगा।

धार्मिक उत्सवों की सूचना के लिये प्रति-ग्राम में आमंत्रण-पत्रिकायें वितरित करने की मर्यादा प्राचीन काल से चली आ रही है। ऐसा उत्सव जनता की दृष्टि में अच्छा माना जाता है। आमंत्रण-पत्रिकाओं में उत्सव सम्बन्धी सब तरह की सजावट का और नवकारशियाँ होने का उल्लेख होने से लोगों की हार्दिक भावनायें उस उत्सव को देखने के लिये लालायित हो उठती हैं। लोग अपना अवकाश निकाल कर एवं आकर उत्सव की शोभा में वृद्धि करते हैं। बागरा-संघ ने भी सर्व प्रथम आमंत्रण-पत्रिकायें छपवा कर देश, देशान्तर में भेज दीं। आमंत्रण-पत्रिका में यह भी सूचित कर दिया था कि कार्तिक कृ० ८ तदनुसार ता० २८-१०-४५ रविवार को प्रथम प्रवेश और कार्त्तिक कृ० १३ तदनुसार ता० २-११-४५ शुक्रवार को द्वितीय प्रवेश निश्चित किया गया है।

आमंत्रण-पत्रिका

उपधानतप-मण्डप की रचना जैन धर्मशाला जो चौहटे पर आई हुई है, उसी में की गई थी। मण्डप की रचना भव्य और चित्ताकर्षक थी। चतुर्दिक् भित्तियों पर सजीव-से रंगीन चित्र विशाल पट्टों पर ऐसे लगाये गये थे, जो दीवारों पर ही चित्रित किये गये चित्रों-से प्रतीत होते थे। मंडप के मध्यभाग मे दिव्य सिंहासन रचा गया था, जिसके चारों ओर नृत्य करती हुई, हाथों में पुष्पमाला ली हुईं एवं बाजे बजाती हुईं देव-परियाँ लगी हुई थीं, जो निरीक्षकों को आकर्षित करती थीं। इसके आगे रङ्गशाला के लिये स्थान छोड़ा गया था, जहाँ सङ्गीत-मंडली के अभिनय और पूजा भणाने की सुव्यवस्था थी।

मण्डप रचना

उपधानतप करने वाले तपस्वियों के लिये सोने-बैठने की व्यवस्था मंडपवाली बड़ी धर्मशाला में ही की गई थी और तपस्विनियों के लिये श्री राजेन्द्र जैन गुरुकुल के भवन में। सर्दी का समय था, परन्तु व्यवस्था सुन्दर होने से किसी को कुछ भी कष्ट न हुआ। जिधर-जिधर खुला भाग था उधर-उधर विशाल वस्त्रपट्ट लटका दिये थे। उपधानवाहक भाई बहिनों की संख्या ३४७ (तीन सौ सैंतालीस) थी। कुछ तपस्वी एवं तपस्विनियाँ मध्य में

उपधानवाहकों की व्यवस्था

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज
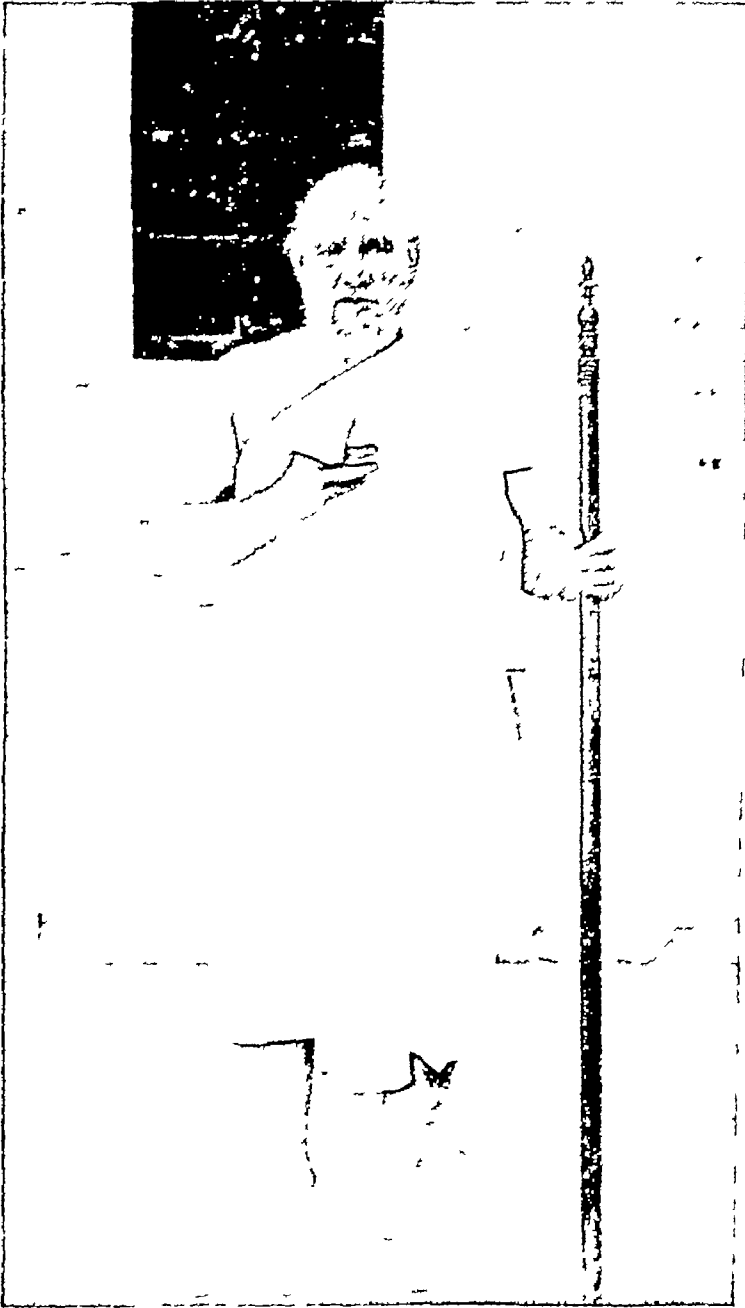
बागरा उपधानतप के अवसर पर वि० सं० २००२

उपधानवाहकों के भोजन ग्रहण के पूर्व भोजन-स्थल का एक दृश्य, बागरा
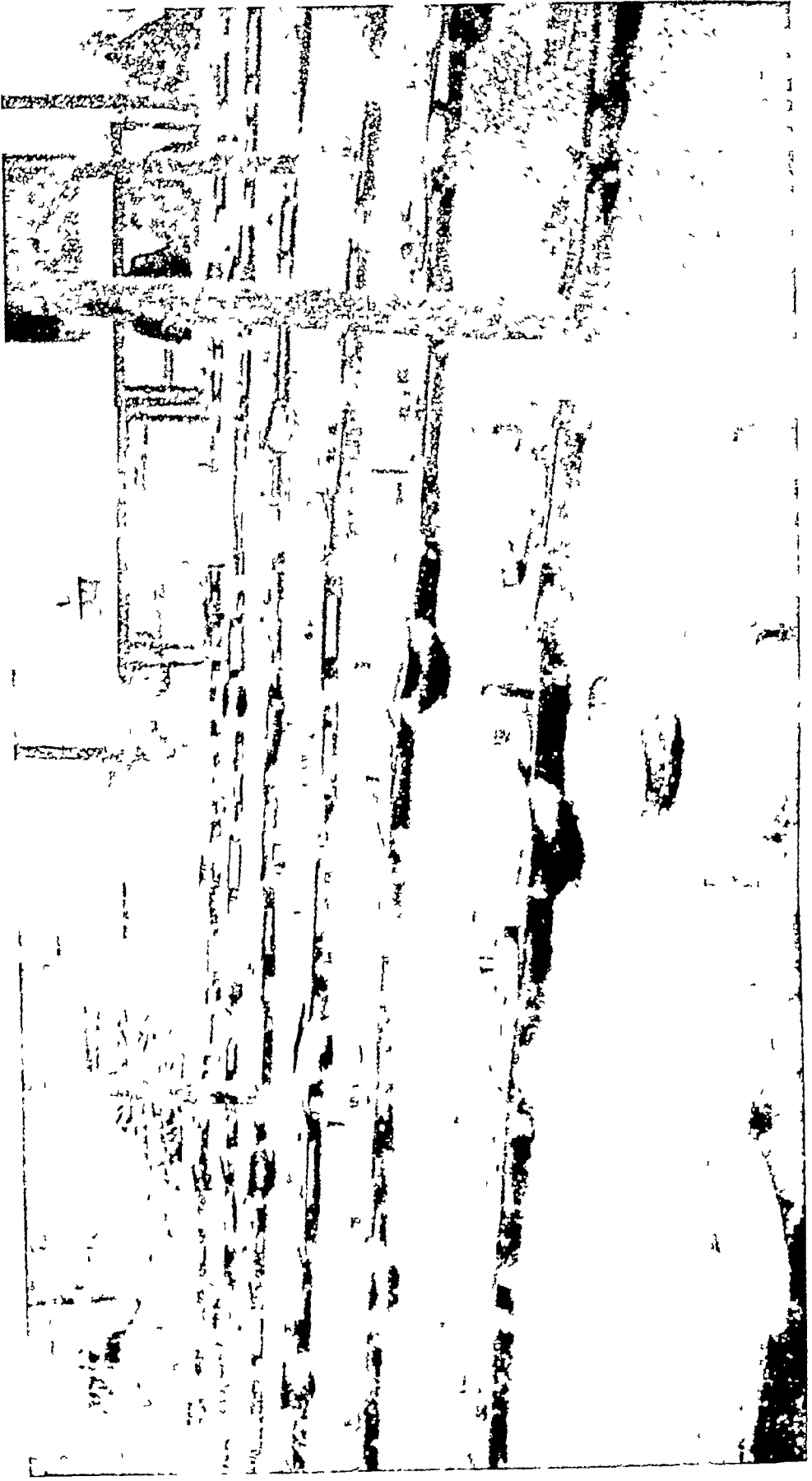
उपधानतप के अवसर पर वि० स० २००७

ही अपना तप पूरा हो जाने से चले भी गये थे। उपधानतप वहन करने के लिये बागरा, आहोर, जालोर, सियाणा, गुढ़ाबालोतरा, हरजी, तखतगढ़, सेदरिया, पावटा, खुडाला, नाडोलाई, खिमाड़ा, कौशिलाव, बाली, आकोली, सांथू, नून, थावला, बलदूट, सिरोड़ी, कालन्द्री, भेसवाड़ा, विशनगढ़, माडवला, गोल, केसवणा, भूति, डूडसी, मांडाणी, चाँदना, दोरला, चाँदराई, तलावी, खाटू छोटी, रतलाम, मन्दसौर, राजगढ़, सायला, विलाड़ा, सुमेरपुर, लास इन गाँवों के भाई-बहिन उपस्थित हुए थे। बगीचे के विशाल भूमितल पर पटमंडप तैयार किया गया था और उसी में तपस्वियों के योग्य भोजन (पारणा) की व्यवस्था थी, जो शा० जेठमल खूमाजी के अधिकार में थी।

मार्गशीर्ष शुक्ला अष्टमी, नवमी, दशमी को नवकारशियों के प्रीतिभोज थे। सहस्रों की संख्या में जनता एकत्रित थी। स्त्री एवं पुरुषों के लिये भोजन करने की व्यवस्था रस्सियां बांध कर अलग-अलग मंडपों में की गई थी। भोजन परोसने का कार्य श्रीबागरा-पार्श्वनाथ सेवा-मंडल के अधिकार में था। नगर में दीपकों का सुन्दर प्रबन्ध स्थान-स्थान पर कर दिया गया था। सर्वत्र मुख्य-मुख्य मार्गों पर अर्धरात्रि तक गैस की बत्तियां जलती रहती थीं।

उत्सवारम्भ

आगन्तुक सज्जनों के उतारे का प्रबन्ध सुन्दर ढंग पर किया गया था। सभी जैन बन्धुओं के घर आगन्तुक सज्जनों के लिये खुले हुए थे। ओढ़ने, बिछाने की भी व्यवस्था अच्छी थी। किसी को किसी प्रकार का कोई कष्ट हुआ हो ऐसी कभी भी कोई विवरण-पत्रिका प्रमुख समिति के समक्ष नहीं आई।

उपधानतप का समारंभ और पूर्णाहुति पर्यन्त का संक्षिप्त परिचय

जैसा विवरण से ही पाठकगण समझ सकेंगे कि बागरा-संघ ने उपधानतपोत्सव में अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं तन, मन, धन का योग देकर उसमें सम्मिलित हुये दूर २ के तपस्वी स्त्री एवं पुरुषों की पूरी २ सेवा की थी। उपधानतप में सम्मिलित हुये तपस्वी जन एवं तपस्विनी स्त्रियों की भोजन एवं तपोकरण आदि से सेवा एवं मान निम्न प्रकार किया गया था।

प्रथम तीन नवकारशियाँ

(१) कार्तिक कृ० ६ शुक्रवार को शाह सिरेमल रतनचन्द्र पूनमाजी की ओर से।

(२) कार्तिक कृ० ७ शनिश्चर को शाह साकलचन्द्र केसरीमल नत्थमल, फूलचन्द्र, बाबूलाल, देवीचन्द्र, माँगीलाल, चुन्नीलाल, हुक्माजी की ओर से।

(३) कार्तिक कृ० ८ रविवार को उपधानतप का समारम्भ और शा० केसरीमल, चैनाजी की ओर से कार्तिक कृ० अमावस्या तदनुसार ता० २८-१०-४५ से ता० ४-११-४५ तक उनका विधि विधान। उपधानतप में प्रविष्ट हुये श्रावक एवं श्राविकाओं को तप के उपकरण आदि निम्नवत् भेंट किये गये:—

(१) रेशमी मालायें—शा० खुशालचन्द्र, मंशालाल, भबूतमल, मिश्रीमल, नरसिंह जी की ओर से सादर भेंट।

(२) नवकरवाली—शा० नत्थमल भाणाजी की ओर से सादर भेंट।

(३) संथारिया—शा० भभूतमल, कपूरचन्द्र, पूनमचन्द्र, ताराचन्द्र, प्रतापचन्द्र, ऋषभचन्द्र, मगनलाल, हस्तिमल, शांतिलाल, शुकराज, भूरमल, पुखराज, बाबूलाल वीरचन्द्रजी की ओर से सादर भेंट।

(४) चरवला—शा० भीमराज, चुन्नीलाल, जवानमल, गणेशमल गेनाजी की ओर से सादर भेंट।

(५) कटासणा—शा० भीकमचन्द्र, माँगीलाल केशाजी की ओर से सादर भेंट।

स्वामीवात्सल्य:—

(१) शा० वरदीचन्द्र, मिश्रीमल लखमाजी की ओर से का० कृ० ९ सोम०
(२) ,, केशरीमल, त्रिकमचन्द्र गलबाजी ,, ११ बुध०

(३)	शा० गेनाजी, ताराचन्द्र छेलाजी	,,	१३ शुक्र०
(४)	,, मगाजी नरसिंहजी	,,	३० रवि०
(५)	,, केशरीमल, स्वरूपचन्द्र, जवेरचन्द्र ऊमाजी	,,	का.शु.द्वि. १ मंगल०
(६)	,, प्रेमचन्द्र, जैरूपचन्द्र मालाजी	,,	३ गुरु०
(७)	,, देवीचन्द्र, शांतिलाल, कांतिलाल नवाजी	,,	५ शनि०
(८)	,, अचलदास, ऋषभदास लादाजी	,,	७ सोम०
(९)	,, प्रतापचन्द्र, वरदीचन्द्र, पेराजमल, फूलचन्द्र, खीमचन्द्र, हीराचंद्र, चंदनमल, हरकचंद्र खूमाजी	,,	९ बुध०
(१०)	,, पूनमचन्द्र, लखमीचंद्र केशाजी	,,	१२ शुक्र०
(११)	,, जेठमल, चंदनमल खूमाजी	,,	१४ रवि०
(१२)	,, मंशालाल, चुन्नीलाल दलाजी	,,	मार्ग० कृ० १ मंगल०
(१३)	,, दल्ला, नथमल खशाजी	,,	३ गुरु०
(१४)	,, ताराचंद्र, छोगमल, नथमल, भूरमल गोमाजी	,,	५ शनि०
(१५)	,, हुक्मीचंद्र, ताराचन्द्र, चुन्नीलाल, शंकरलाल पेराजी	,,	७ सोम०
(१६)	,, वरदीचंद्र, नत्थमल, मयाचंद्र पेराजी	,,	९ बुध०
(१७)	,, लूंबचन्द्र, उमेदमल, गुलाबचन्द्र चमनाजी	,,	११ शुक्र०
(१८)	,, खूमचंद्र, जसराज, नत्थमल नरसिंहजी	,,	१३ रवि०
(१९)	,, सूरतिंग, हिम्मतमल, छगनलाल, शुकराज पुखराज मथराजी	,,	३० मंगल०
(२०)	,, हीराचन्द्र, मॉगीलाल चैनाजी	,,	मार्ग शु० २ गुरु०
(२१)	,, वनेचंद्र खशाजी	,,	४ शनि०
(२२)	,, सॉकलचंद्र, फूलचंद्र, गणेशमल हाँसाजी	,,	६ सोम०
(२३)	,, हजारीमल, लालचंद्र, छगनलाल, सुमेरमल वनाजी	,,	८ बुध०
(२४)	,, हजारीमल, लालचन्द्र, छगनलाल, सुमेरमल वनाजी	,,	१० शुक्र०
(२५)	,, चुन्नीलाल, ताराचन्द्र, शंकरलाल जैरूपजी	,,	१२ रवि०

बीच-बीच में स्वामीवात्सल्य श्री सकलसंघ की ओर से होते थे।

अंतिम अट्ठाई-महोत्सव मार्गशीर्ष शु० ३ शुक्रवार से मार्गशीर्ष शु० १० शुक्रवार पर्यंत शा० छोगमल, हजारीमल, भूरमल लालाजी की ओर से हुआ तथा अंतिम तीन नवकारशियाँ निम्नवत् हुईं :—

(१) मार्ग० शु० ८ बुध०ता० १२-१२-४५ को शाह०ताराचंद्र, चुन्नीलाल, वेजराज, मिश्रीमल, बाबूलाल, हजारीमल, मगनलाल, गेनाजी की ओर से।

(२) मार्ग० शु० ९ गुरु० ता० १३-१२-४५ को शा० हीराचंद्र जेठमल, किशनलाल, नरसिंग, वेजराज, गुलाबचंद्र, वरदीचंद्र, छगनलाल, शांतिलाल जेताजी की ओर से।

(३) मार्ग० शु० १० शुक्र० ता० ४-१२-४५ को शा० जुहारमल, पुखराज, शुकराज, बाबूलाल सांकलाजी की ओर से।

उपरोक्त प्रकार कार्यक्रम के साथ उपधानतप मार्ग० शु० १० शुक्र० ता० १४-१२-४५ को महान् हर्ष एवं अपार आनंद के साथ में समाप्त हुआ।

उपधानतप-समिति, श्री पार्श्वनाथ-सेवामण्डल, श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल संगीत-मण्डली और अन्य ही ऐसे अंगों की सेवाओं का परिचय देने के स्थान में स्थानाभाव के कारण उन सब के कार्यों का उपसंहार कर देना अधिक उचित समझता हूँ।

संक्षिप्त यह है कि वरघोड़े मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया से निकलने प्रारंभ हो गये थे। जैनपताका, चांदी का बना हुआ रथ, हाथी, दासपा-ठिकाने के घोड़े मय सुन्दर साज, श्रीपार्श्वनाथ जैन बैण्ड, बागरा, श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल संगीत-मण्डली, बागरा, अंग्रेजी बाजा, गुरुकुल का छात्र-दल एवं स्वर्ण के बने हुये बेड़े आदि वरघोड़े की शोभा के प्रमुख साज थे। वरघोड़े बराबर आठों दिन तक सज-धज से निकलते रहे।

जनता का रञ्जनादि करने के लिये अभिनय, नाटक एवं संगीत आदि की

भी व्यवस्था थी। श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल के छात्रों ने अष्टमी की रात्रि को 'अमरसिंह राठौड़' का ड्रामा किया था तथा सुन्दर एवं शिक्षाप्रद गायनों का भी आयोजन था। नवमी को बागरा के जैन युवकों की ओर से सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का नाटक खेला गया था। पात्रों की संख्या लगभग तीस थी। नाटक बड़ा ही चित्ताकर्षक ढंग से अभिनीत किया गया था। यह नाटक गये-बीते लेखक का लिखा हुआ होकर भी इन बागरा युवकों के पात्रों में पड़ कर चमक उठा था। तारा के रुदन पर शायद ही ऐसा व्यक्ति होगा, जिसकी आखों में आंसू न छल-छला उठे हों और हरिश्चन्द्र की दृढ़ता देख कर जिसकी आत्मा को बल न मिला हो।

मार्गशीर्ष शुक्ला दसमी के दिन मालापरिधान का दृश्य बड़ा ही दर्शनीय था। इस अवसर पर सहस्रों स्त्री एवं पुरुष इस दृश्य को देखने के लिये चारों ओर उपस्थित थे। मध्य में गुरुदेव आचार्यप्रवर विराजमान् थे। इधर-उधर साधुवर्ग एवं साध्वीवर्ग विराजमान् था। इनको घेर कर उपाधन-वाहकों का वर्ग शान्ति प्रवर्त्ता रहा था। तप के तेज से तपस्वियों के मुखमण्डल दीप्त थे। उनके वक्षस्थलों पर पड़ी हुई मालायें मानो उनके तपोतेज की ज्योतिष्मण्डली थी। तपस्वी एवं तपस्विनियों के निकट संबन्धियों की ओर से इस अवसर पर अनेक प्रकार की वस्तुओं की प्रभावनायें वितरित की गई थीं। अवसर-अवसर के फोटू भी लिये गये थे।

इसी दिन रात्रि को मण्डप में श्रीवर्द्धमान जैन बोर्डिङ्ग, सुमेरपुर की संगीत-मंडली एवं श्रीराजेन्द्र जैन गुरुकुल, बागरा की संगीत-मंडली ने एक ही स्थान पर बारी-बारी से नृत्य के साथ कीर्त्तन, गायन, स्तवन आदि किये। अन्यत्र जो प्रतियोगिताओं की भावनायें ऐसे अवसरों पर जहर घोल देती हैं, वे यहाँ देखने को तो दूर, कल्पनाओं में भी न थीं।

इस उपधानतपोत्सव पर दासपा-ठिकाने का भी अच्छा प्रबन्ध था। श्रीमान् कुंवर चिमनसिंहजी साहब उत्सव में पधारे हुए थे। पुलिस-थानेदार, सिपाही आदि सब का प्रबन्ध सराहनीय था। चोरी आदि ऐसी कोई घटना न घटी। इस अवसर पर औषधियों का भी समुचित प्रबन्ध किया गया था।

एक चिकित्सक भी नियुक्त थे। वे हमेशा उपधानतप करनेवालों का निरीक्षण करते रहते थे और भोजन के समय भी उपस्थित रहते थे। तपस्या करनेवालों का एक छोटा-सा ग्राम बसा हुआ था, सब ही तपस्या के कष्ट से क्षीणकाय अवश्य प्रतीत होते थे, परन्तु उनके चेहरों से यह आभासित होता था कि रक्त निर्विकार एवं तप से शुद्ध होकर एक नई कान्ति उनमें भर रहा था। शरद्-ऋतु का मध्यभाग था, फिर भी ऐसी कोई उल्लेखनीय दुर्घटना नहीं घटी। वस्तुतः प्रमुख व्यवस्थापिका-समिति का निरीक्षण-कार्य बड़ी सतर्कतापूर्ण था। इस प्रकार यह उपधानतप का आराधनोत्सव सानन्द पूर्ण हुआ।

आकोली (मारवाड़) में उपधानतप और दीक्षा

वि० सं० २००२

आकोली बागरा से दक्षिण में लगभग १॥ या दो कोस के अंतर पर एक छोटा-सा ग्राम है। यहां के श्रावक जब बागरा उपधानतप चल रहा था कई बार आये थे। उपकेशज्ञातीय भंडारी श्री लालचंद्र मिश्रीमल का विचार अपनी ओर से उपधानतप का आराधन कराने का हुआ और उन्होंने अपनी शुभेच्छा आकोली के संघ के समक्ष प्रकट की। इस पर आकोली-संघ के कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति चरितनायक की सेवा में बागरा में उपस्थित हुये और आकोली में भी उपधानतप का आराधन कराने की प्रार्थना की। चरितनायक ने आकोली-संघ की विनती स्वीकार कर ली और उपधानतप के प्रारंभ करने का शुभ मुहूर्त्त वि० सं० २००२ माघ शु० ५ बुधवार तदनुसार ता० ६-२-१९४६ निश्चित कर दिया और फरमाया कि बागरा का उपधानतप समाप्त करके हम लोग अवसर देख कर सीधे आकोली आजावेंगे। चरितनायक की उपधानतप करवाने की स्वीकृति पाकर आकोली का संघ अति ही हर्षित हुआ और आकोली आकर उपधानतप संबंधी तैयारियों में लग गया।

आकोली के संघ ने थोड़े ही दिनों में उपधानतप संबंधी सर्व

तैयारियां कर डालीं और तपस्वी श्रावक एवं श्राविकाओं के लिये उपकरण-सामग्री भी जुटा ली। संघ ने वि० सं० २००२ माघ कृ० २ शनिश्चरवार को सकल संघ तथा श्री लालचंद्र मिश्रीमल के नाम से 'श्री उपधानतप-समाराधन—आमंत्रणपत्रिका' प्रकाशित की और दूर २ प्रान्त एव ग्राम, नगरों में उसको सधर्मी बंधु एवं संघों को प्रेषित की।

चरितनायक भी उपधानतप के समारंभ के पूर्व ही बागरा से विहार करके अपनी साधु मण्डली एवं शिष्यसमुदाय के सहित आकोली पधार गये। आकोली के संघ ने चरितनायक का ग्राम-प्रवेश अभूतपूर्व भक्ति एवं श्रद्धा से करवाया।

बागरा में उपधानतप करने वाले श्रावक एवं श्राविकाओं के लिये जैसी सुन्दर व्यवस्था की गई थी, उसी पंक्ति पर यहां भी की गई। अंतर इतना ही रहा की बागरा में हुये उपधानतप का व्यय बागरा-संघ ने एवं अमुक २ श्रीमंत सज्जनों ने वहन किया था;परन्तु यहाँ आकोली में होने वाले उपधानतप का समस्त व्यय आकोली के संघ की आज्ञा लेकर श्रीमंत शाह लालचंद्र मिश्रीमल ने ही वहन किया था।

उपधानतप माघ शुक्ला ५ (पंचमी) बुधवार को प्रारंभ हुआ और सैंतालीसा उपधान करने वाले श्रावक और श्राविकाओं का प्रवेश इसी दिन हुआ और उन्हें चरवला, कटासणा, माला, आसन और मुखवस्त्रिकायें सादर भेंट दी गई। श्री देवेन्द्रश्रीजी की लघुदीक्षा भी इसी दिन हुई थी, जिसका वर्णन यथाप्रसंग आगे किया जावेगा। उपधानतप के पंचमी को प्रारंभ किये जाने के उपलक्ष में माघ शुक्ला ४ (चतुर्थी) को ग्राम-नवकारशी की गई और प्रथम अट्ठाई-महोत्सव प्रारंभ किया गया।

पैंतीसा उपधान करने वालों का प्रवेश फा० कृ० २ सोमवार को, अठावीसा उपधान करने वालों का प्रवेश फा० कृ० १४ शनिश्चर को किया गया था। द्वितीय एवं अंतिम अट्ठाई-महोत्सव फा० कृ० १२ गुरुवार से फा० शु० ४ गुरुवार पर्यंत किया गया और अंतिम दिन एक सौ आठ

अभिषेक वाली महाशान्तिस्नात्रपूजा भणाई गई तथा मंत्रपूत जल की धारा ग्राम के चतुर्दिक शान्तिस्थापनार्थ दी गई। फा० शु० ३-४ बुधवार और गुरुवार इन दोनों दिनों में नवकारशियां हुई तथा फा० शु० ४ को मालापरिधानोत्सव भी मनाया गया। सम्पूर्ण उपधानतप भर संघ एवं तपस्वी एवं तपस्विनीवर्ग में पूर्ण आनंद एवं शाति रही। इस प्रकार महानंद के साथ आकोली में हुआ उपधानतप समाप्त हुआ। सियाणा के श्रीसंघ की अतिशय विनती थी; अतः आपश्री उपधानतप की समाप्ति के पश्चात् सियाणा पधारे और वहाँ कुछ दिनों के लिये विराजे। पुनः वहाँ से आपश्री आकोली, डूडसी होकर बागरा पधारे।

आकोली में श्री देवेन्द्रश्रीजी की दीक्षा—बागरा से पश्चिम में लगभग दो कोस के अंतर पर सरत एक छोटा सा ग्राम है। वहाँ श्रे० गेनमलजी की धर्मपत्नी लहरबहिन की कुक्षी से वि०सं० १९८४ कार्तिक के कृष्ण पक्ष में इनका जन्म हुआ और दीपावली बहिन इनका नाम रक्खा गया। वि० सं० १९९६ आषाढ़ कृ० १ को इनका शुभ विवाह गोलवासी मगाजी ओसवाल के साथ में कर दिया गया, परन्तु दो ही वर्ष का सौभाग्य भोग कर यह वि० सं० १९९८ ज्येष्ठ कृ० ४ को विधवा हो गई। विधवा होने के पश्चात् इन्होंने समस्त सांसारिक विषय वासनाओं से मन को हटा कर मन को धर्म-ध्यान में लगाना प्रारम्भ किया। अंत में इनमें भागवतीदीक्षा ग्रहण करने की भावनायें जाग्रत हो गई। अपने संरक्षकों से आज्ञा लेकर आकोली में चरितनायक के कर-कमलों से इन्होंने वि०सं० २००२ माघ शु०५ को उपधानतप के समारम्भ के प्रथम दिन पर लघु भागवती दीक्षा ग्रहण की और श्री देवेन्द्रश्री नाम से प्रसिद्ध होकर गुरुणीजीश्री कमलश्रीजी की आप शिष्या बनाई गई।

———

बागरा और हरजी में दीक्षायें

वि० सं० २००३

●

बागरा में दो दीक्षायें

श्री कुसुमश्रीजी की दीक्षा—बागरा में प्राग्वाटज्ञातीय लक्ष्मीचंद्रजी की पत्नी सदीबहिन की कुक्षी से वि० सं० १९६५ भाद्रपद शु० ६ के दिन इनका जन्म हुआ। इनका गृहस्थ नाम नवी बहिन रक्खा गया था। वि० सं० १९७८ मार्ग० कृ० ८ मी को बागरावासी मंशालाल के साथ में इनका शुभ विवाह कर दिया गया, परन्तु ६ वर्ष ही सौभाग्य भोग कर वि० सं० १९८४ चैत्र कृ० ८ के रोज यह विधवा हो गईं। पति की मृत्यु से दुःखी होकर इनने अपना मन तप और व्रत करने में लगाया। धीरे-धीरे संसार से इनका मन ऊबने लगा और अंत में वि०सं० २००३ वै० शु० ३ के दिन शुभ मुहूर्त में चरितनायक के करकमलों से लघुभागवती दीक्षा इन्होंने ग्रहण की और श्री कुसुमश्री के साध्वी नाम से प्रसिद्ध होकर गुरुणीजी श्री कमलश्रीजी की यह शिष्या बनाई गईं।

श्री कुमुदश्रीजी की दीक्षा—बागरावासी प्राग्वाटज्ञातीय अमीचंद्रजी की धर्मपत्नी रूदी बहिन की कुक्षी से वि० सं० १९७५ आश्विन शु० ११ को इनका जन्म हुआ और इनका रंभा बहिन नाम रक्खा गया। योग्य वय को प्राप्त होने पर इनका शुभ विवाह बागरावासी शाह भभूतमलजी के साथ में वि० सं० १९८८ ज्येष्ठ शु० ६ को संपन्न किया गया। पाच वर्ष सौभाग्य भोगकर यह वि० सं० १९९३ भाद्रपद कृ० ८ को विधवा होगईं। संसार इनके लिये सचमुच असार हो गया। इनने धर्म-ध्यान में मन लगाया और साध्वी महाराजों की संगत में अपना दुःखपूर्ण समय व्यतीत करना ही इनका ध्यान हो गया। अंत में इन्होंने भी चरितनायक के हाथों श्री कुसुमश्रीजी के साथ में ही बागरा में वि० स० २००३ वै० शु० ३ को लघु भागवती दीक्षा

ग्रहण की और श्री कुमुदश्री के नाम से गुरुणीजी श्री कमलश्रीजी की आप शिष्या बनाई गईं ।

हरजी में तीन दीक्षायें

मुनि सौभाग्यविजयजी की दीक्षा—चरितनायक बागरा से विहार करके हरजी पधारे और वहाँ पर ज्येष्ठ शु० ६ को आपश्री ने इनको और अन्य दो को दीक्षायें प्रदान की । इनका गृहस्थ नाम जेठमल था । इनके पिता ज्ञाति से भट्ट ब्राह्मण थे । उनका नाम माणिकलाल था । इनकी माता का नाम रेवाबहिन था । इनके माता-पिता बम्बई-प्रान्त के ताल्लुका ठासरा, प्रगणा खेड़ा के अन्तर्गत आये हुये ग्राम अञ्झाड़ी के निवासी थे । रेवाबाई की कुक्षी से इनका जन्म वि० सं० १९८५ में हुआ था । चरितनायक के कर-कमलों से इन्होंने हरजी में वि० सं० २००३ ज्येष्ठ कृ० ६ को दीक्षा ग्रहण की और ये मुनि सौभाग्यविजयजी नाम से प्रसिद्ध हुये ।

मुनि शान्तिविजयजी की दीक्षा—इनका गृहस्थ नाम देवीचंद्र था । इनके पिता ज्ञाति से रेबारी थे । पिता का नाम भगवानजी और माता का नाम जयंतीबाई था । ये पेथापुर (सिरोही-राज्य) के निवासी थे । इनका जन्म वि० सं० १९८३ में हुआ था । इन्होंने भी मुनि० सौभाग्य-विजयजी के साथ में वि० सं० २००३ ज्येष्ठ कृ० ६ को चरितनायक के कर-कमलों से लघु भागवती दीक्षा ग्रहण की और मुनि शान्तिविजयजी नाम से प्रसिद्ध हुये ।

श्री क्षमाश्रीजी की दीक्षा—वि० सं० १९७५ फाल्गुन कृ० ८ को इनका जन्म आहोर में प्राग्वाटज्ञातीय केसरीमलजी की धर्मपत्नी शृंगार बहिन की कुक्षी से हुआ था और इनका संसारी नाम भूरी बहिन रक्खा गया था । वि० सं० १९८९ माघ शु० ५ मी को इनका शुभ विवाह हरजीनिवासी शाह लक्ष्मीचंद्रजी के साथ में कर दिया गया । लगभग तीन वर्ष सौभाग्यावस्था का सुख भोग कर यह वि० स० १९९२ में विधवा हो गईं । जगत् में इनके लिये एक अन्धकार छा गया । निदान संसार के मोह, माया के जाल को तोड़ कर वि० सं० २००३ ज्येष्ठ कृ० ६ को हरजी में श्री पुण्यश्रीजी

के सदुपदेश से चरितनायक के कर-कमलों से लघु भागवती दीक्षा ग्रहण की और श्री क्षमाश्री नाम से प्रसिद्ध होकर गुरुणीजी श्री कमलश्री जी की शिष्या बनाई गई।

हरजी में भूति के प्रतिष्ठित सज्जन वहाँ के संघ की ओर से विनती करने के लिये आये थे। चरितनायक ने कारण-कार्य पर विचार करके आगामी चातुर्मास भूति में करने की भूति-संघ के प्रतिनिधियों की विनती स्वीकार करली। दीक्षा-उत्सव को समाप्त कर चरितनायक भूति की ओर पधारे। मार्ग में आहोर, गुड़ा, तखतगढ़, कवराड़ा में थोड़े २ दिनों का विश्राम करते हुये भूति में आपने आषाढ़ शु० १४ को नगर-प्रवेश किया।

भूति में ४० वां चातुर्मास और पाठशाला की स्थापना तथा प्रतिष्ठा-महोत्सव और दीक्षा

वि० सं० २००३

●

भूति में ४० वां चातुर्मास और पाठशाला की स्थापना का प्रस्ताव

चरितनायक का इस वर्ष का चातुर्मास भूति में हुआ। इस चातुर्मास का सम्पूर्ण व्यय सद्‌गृहस्थ श्रीमंत शाह० प्रतापमलजी मिश्रीमलजी ने अपूर्व भाव-भक्ति से वहन किया था। आगंतुक दर्शकगण के लिये भोजन की सुन्दर व्यवस्था थी और उन्हें अत्याग्रह करके कई दिन ठहराया गया था। चातुर्मास पर्यंत भूति में आनंद का अतिरेक रहा। आचार्यश्री व्याख्यान में 'उत्तराध्ययनसूत्र' और भावनाधिकार में 'धर्मबुद्धिपाप-बुद्धिचरित' का वाचन करते थे। लेखक को भी इस चातुर्मास में आचार्यश्री एवं साधुमण्डल के दर्शन करने का भूति में सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उक्त सद्‌गृहस्थ ने आचार्य श्री के सदुपदेश से जैन-जगती के स्थायी प्रकाशन-खाते में लेखक को रु० २५०) की सराहनीय आर्थिक

सहायता प्रदान की थी। लेखक को भी आचार्यश्री ने व्याख्यान-सभा में विद्यालयों की आवश्यकता पर बोलने का आदेश दिया था। मेरे भाषण कर लेने के पश्चात् आचार्यप्रवर का सारगर्भित एवं मार्मिक व्याख्यान हुआ। जिसका प्रभाव तत्काल यह हुआ कि उसी दिन भूति में जैन पाठशाला खोलने का निश्चय किया गया और लेखक को उक्त पाठशाला के लिये तत्काल विधान बनाने के लिये आचार्यश्री का आदेश प्राप्त हुआ। विधान बना लिया गया, सद्गृहस्थों का वार्षिक अर्थ-सहाय लिखा जाने के पश्चात् पाठशाला चालू करने का शुभ मुहूर्त्त भी निकाल लिया गया।

भूति में वह पाठशाला निश्चित मुहूर्त्त में चालू की गई और उसने थोड़े ही समय में इतनी अच्छी उन्नति की कि उसको राजकीय अर्थसहायता प्राप्त होने लग गई और आज वह पाठशाला राजकीय विद्यालय में परिणित होकर भूति, कवराड़ा आदि ग्रामों के छोटे, बड़े लड़कों को मिडिल-कक्षा तक का शिक्षण प्रदान कर रही है। इस प्रकार भूति में छोटे-बड़े अनेक धर्म एवं पुण्य व लोकहितकारी कार्य चातुर्मास भर होते रहे। चातुर्मास सानंद पूर्ण हुआ। परन्तु चरितनायक को श्रीसंघ-भूति ने शुभ मुहूर्त्त निकाल कर १ श्रीराजेन्द्रसूरि-प्रतिमा २ श्रीधनचन्द्रसूरि-प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाने की विनती की। चरितनायक ने विनती योग्य समझ कर उक्त प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित करने के लिये मार्गशीर्ष शु० पंचमी का लग्न निश्चित किया।

भूति में प्रतिष्ठोत्सव

आचार्यश्री अति ही आधुनिक विचारों के जैनाचार्य हैं। आप में वह रूढ़िचुस्तपन और हठाग्रह नहीं है, जिसके आगे बुद्धिमान् श्रावकों को भी नीचा देखना पड़ता है। आपश्री ने भूति-संघ से स्पष्ट कहा कि जमाने के अनुसार कम व्यय में प्रतिष्ठोत्सव करके कार्य पूर्ण किया जाय; इसी में शासन की महत्ता है। मार्ग० कृ० १३ से अट्ठाई-महोत्सव चालू किया गया। इन आठ दिनों में चार वार संघ-भोजन हुआ और मार्गशीर्ष शु० पंचमी को शुभ मुहूर्त्त में उक्त दोनों प्रतिमाओं की चरितनायक ने प्रतिष्ठा की और उनको श्री आदि-नाथ-मंदिर में स्थापित करवाया। इस दिन केवल वाहर और भूति के लगभग

१००० स्त्री, पुरुषों की संख्या थी। इसी रोज एक सौ आठ (१०८) अभिषेक वाली बड़ी शान्तिस्नात्रपूजा भणाई गई और अभिमंत्रित-जल की धारा ग्राम के चतुर्दिक दी गई। इस प्रकार प्रतिष्ठोत्सव सानंद पूर्ण हुआ। प्रतिष्ठोत्सव के सानंद पूर्ण होने के हर्ष में मार्ग० शु० ६ को ग्राम-भोजन किया गया।

इनका गृहस्थ का नाम शातिलाल था। इनके पिता भैंरूलालजी ज्ञाति से ओसवाल वृहद्शाखीय धारीवालगोत्रीय जावरा (मालवा) के निवासी हैं। इनका जन्म धर्मिष्ठा माता प्यारी बाई की कुक्षी से वि० सं० १६८८ में हुआ था। चरितनायक ने इनको इनके पिता की आज्ञा से तथा पिता की उपस्थिति में प्रतिष्ठोत्सव के शुभ दिवस मार्ग शु० ५ को लघु भागवती दीक्षा प्रदान की और मु० देवेन्द्रविजयजी इनका नाम रक्खा गया।

देवेन्द्रविजयजी की दीक्षा

अब सर्दी बड़े जोर से पड़ने लग गई थी; अतः आपश्री माघ मास के अंत तक भूति में ही विराजे और फा० कृ० ४ को आपश्री ने अपनी साधु-मण्डली के सहित भूति से पावा की ओर विहार किया।

कौशीलाव में शान्ति-स्नात्र

वि० सं० २००३

पावा में चरितनायक ने कुछ दिवस का विश्राम किया और सार-गर्भित व्याख्यानों से वहाँ के श्रावक एवं श्राविकाओं के धार्मिक मनों को तुष्ट किया। वहाँ से विहार कर कौशीलाव पधारे। कौशीलाव में आपश्री का नगर-प्रवेश बडे ठाट से करवाया गया। आपश्री के पदार्पण से वहाँ धर्मश्रद्धा में जागृति हुई। कौशीलाव के संघ ने एक सौ आठ अभिषेकवाली महाशान्ति-स्नात्रपूजा आपश्री के कर-कमलों से वि० सं० २००३ फाल्गुन शु० ६ को तीन दिवस पर्यंत महोत्सव करके करवाई और अभिमन्त्रित जल की धारा ग्राम के चतुर्दिक दी गई।

श्री गोडवाड़-पंचतीर्थी के लिये लघु संघ-यात्रा और तत्पश्चात् थराद में ४१ वां चातुर्मास

वि० सं० २००४

●

कौशीलाव से चरितनायक अपनी साधुमण्डली के सहित विहार करके धणा, ब्राह्मी होकर खिमेल ग्राम में पधारे। खिमेल के संघ ने आपश्री का भव्य स्वागत किया। यहाँ आपश्री कुछ दिवस विराजे और व्याख्यानों से शास्त्रवाणी के प्यासे श्रावक एवं श्राविकाओं के हृदयों को तृप्त किया। पावानिवासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह ताराचन्द्र मेघराजजी और खिमेलनिवासी ओसवालज्ञातीय भण्डारी शाह भीमचन्द्र भभूतमलजी ने गुरुदेव से श्रीगोड-वाड़-पंचतीर्थी की यात्रा करने की विनती की। उक्त सज्जनों की धार्मिक भावनाओं को मान देकर चरितनायक ने उनकी भावना को स्वीकार किया और फलतः यह लघु संघ-यात्रा खिमेल से शुभ मुहूर्त्त में चै० शु० ४ को प्रारम्भ हुई। यह लघु संघ निम्नलिखित नगर एवं तीर्थों के दर्शन करता हुआ चैत्री पूर्णिमा को मरुधर-देश के प्रसिद्ध जैन तीर्थ श्रीधरणविहार-नलिनी-गुल्मविमान चौमुखा श्री आदिनाथ-राणकपुरतीर्थ को पहुँचा :—

चैत्र शुक्ला ४	राणी स्टेशन से मण्डी
,, ५, ६	वरकाणातीर्थ
,, ७, ८	नाडोल
,, ९,१०	नडूलाई
,, ११	घाणेराव
,, १२,१३	मुछाला महावीर तीर्थ
,, १४	सादड़ी
१५ और वैशाख कृ० १	श्रीराणकपुरतीर्थ

उपरोक्त नगर एवं ग्रामों के संघों ने इस लघु संघ का सराहनीय मान-

सत्कार किया। चरितनायक ने अपने धार्मिक व्याख्यानों से जिज्ञासु श्रोतागण को आनंदित किया। श्री मुछाला महावीर तीर्थ में श्री महावीर-जयन्ती का उत्सव इस लघु संघ ने चरितनायक की तत्त्वावधानता में अतिशय श्रद्धा एव भक्ति से मनाया। संघ की ओर से पूजा पढ़ाई गई एवं रात्रि को आँगी रचवाई गई। श्री राणकपुर तीर्थ में संघ ने चैत्री पूर्णिमा मनाकर अपनी शुभ भावना को तृप्त किया। दिन भर पूजा का ठाट रहा और रात्रि को अत्यन्त सुन्दर आँगी-रचना करवाई गई। संघ राणकपुर में दो दिन ठहरा। इस प्रकार इस लघु संघ की यह पंचतीर्थी-यात्रा बड़ी ही सुखद एवं शान्ति-पूर्ण रही।

लघु संघ-यात्रा की समाप्ति, थराद में चातुर्मास होने का निश्चय और थराद के लिये विहार

श्री राणकपुर तीर्थ से विहार करके लघु संघ सादड़ी, मुंडारा, कोट होता हुआ वै० कृ० ७ को बाली आया। नगर के संघ ने चरितनायक एवं लघु संघ का सराहनीय स्वागत किया। लघु संघ बाली आकर विसर्जित हो गया। चरितनायक यहाँ अक्षय तृतीया अर्थात् वै० शु० ३ तक विराजे। यहाँ से आपश्री ४ थी को विहार करके खुडाला पधारे। खुडाला के संघ ने आपश्री का अति ही भव्य स्वागत किया। यहाँ चातुर्मासार्थ बाली, कौशीलाव, थराद के संघों की विनतियाँ हुईं। कार्य-कारण पर विचार करके चरितनायक ने थराद-संघ की विनती स्वीकार की। थराद खुडाला से बहुत अन्तर पर है। चातुर्मास में अब थोड़े ही दिन रह गये थे। चरितनायक ने खुडाला से तुरंत थराद के लिये विहार कर दिया। चरितनायक खुडाला से विहार करके बिलपुर, बीजापुर, बेड़ा, चामुण्डेरी होते हुये नाणा पधारे। नाणा का जिनालय गोडवाड़ की छोटी पंचतीर्थी में एक तीर्थ माना जाता है। वहाँ आपश्री ने प्रभु-प्रतिमा के दर्शन किये एवं धर्मोपदेश दिया। नाणा से आपश्री मालणुतीर्थ के दर्शन करके श्री बामनवाडतीर्थ में पधारे। सिरोही-राज्य में बामनवाड़तीर्थ सिरोही-रोड़ पर एक अति प्राचीन एवं सुन्दर जैन तीर्थ है। यहाँ से नादिया और नादिया से लोटाणा होते हुये तथा उक्त दोनों ग्रामों के प्राचीन जिनालयों के दर्शन करते हुये तथा धर्मोपदेश देते हुये दयाणा,

नीतोड़ा, काछोली, भारजा, आबूतलहटी, आरणा-चौकी होते हुये अर्बुदगिरि पर स्थित ग्राम देलवाड़ा में पधारे और वहाँ पर विनिर्मित अनन्यकलावतार जगद्विख्यात श्री विमलवसहि एवं लूणसिंहवसहि तथा श्री पित्तलहरवसहि एवं खरतरवसहि की प्रतिमाओं के दर्शन किये। वहाँ आपश्री चार दिवस पर्यंत विराजे। देलवाड़ा से अचलगढ़ पधारे और वहाँ आपश्री एक दिन ठहरे। अचलगढ़ से आपश्री पुनः लौट कर देलवाड़ा आये और हणाद्रा-चौकी की ओर उतर कर सेलवाड़ा पधारे। सेलवाड़ा से प्रसिद्ध तीर्थ जीरापल्ली पधारे। यहाँ आपश्री कुछ दिनों के लिये विराजे और वहाँ पर विराजित सर्व प्रतिमाओं के लेखों को शब्दान्तरित किया। जीरापल्लीतीर्थ से ही चरित-नायक ने यह निश्चय-सा कर लिया प्रतीत होता है कि यहाँ से थराद तक के विहार में जितने ग्राम, नगर आवें उनमें विनिर्मित जिनालयों में विराजित प्रतिमाओं के लेखों को शब्दान्तरित किया जाय, क्योंकि आपश्री ने इस विहार में आये सर्व ही ग्राम, नगरों के जिनालयों में विराजित प्रतिमाओं के लेख लिये हैं और ये लेख थराद नगर के जिनालयों के २७३ लेखों के साथ में संग्रहीत होकर पुस्तकारूढ़ किये गये और 'श्री जैन-प्रतिमा लेख-संग्रह' नामक पुस्तक के रूप में वि० सं० २००८ में प्रकाशित हुये। लेखक को उक्त पुस्तक का संपादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

जीरापल्ली तीर्थ से थराद पर्यंत विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० २००४

ग्राम, नगर	अन्तर (कोस)	जैन-मंदिर	जैन वस्ती (घर)
वरमाण	३	१	३
मंडार	४	२	२५०
आरखी	२।।	१	१४
कूचावाड़ा	३	०	८
फनदोतरा	१	०	२
राचो	१	०	३
जावल	१।।	०	

अईवाड़ा	२	०	५
अनोड़ा	२	०	५
वड़नाल	४	०	२
भीलड़िया	१	२	४
नेहडा	१॥	१	२०
शेरगढ	२	०	३
मानपुर	१॥	०	०
नारायण	१	०	०
वात्यम	१	१	२५
वासणा	१॥	१	३५
लुआणा	३	१	२५
खोरला	३	०	१
मलुपुर	३	०	०
थराद	१	१२	६००

थराद में पहुँचकर आपश्री वहां से पावड़ मोटी, जेतडा और पड़ादर नामक निकट के ग्रामों में विचरे और वहां के संघों को धर्मोपदेश दिया। आषाढ़ शु० १४ को आपश्री अपनी साधु-मण्डली के सहित थराद पधारे और वहा आपका अद्‌भुत ढंग से नगर-प्रवेश करवाया गया, जिसका वर्णन आगे पढ़िये।

———

थराद में ४१ वां एवं ४२ वां चातुर्मास, आपश्री का अतिशय बीमार पड़ना, समाज में खलबली का मचना और थराद में हुई प्रतिष्ठाञ्जनशलाका

वि० सं० २००४-९

●

४१—वि० सं० २००४ में थराद में चातुर्मासः—

जैन-समाज में इस समय भी अनेक आचार्य हैं और चातुर्मास के लिये उनका नगर-प्रवेश पूरी सज-धज के साथ प्रत्येक नगर-ग्राम अपनी २ शक्ति एवं भावनानुसार करता है। परन्तु चरितनायक का जो नगर-प्रवेश इस वर्ष थराद में थराद के समस्त नगर द्वारा ही नहीं, राज्य के अनेक ग्रामों से आकर जैन, अजैन सद्गृहस्थों ने किया, वह स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है।

नगर के जिन २ मार्गों में होकर आचार्यदेव को लेजाना था, वे सर्व रेशम एवं जरी के सुन्दर पट्टों से और तोरण-द्वारों से सजाये गये थे। ठेट नगर के वाहर से श्री भूदरभाई जवेरी के विशाल नव विनिर्मित भवन तक मार्ग के ऊपर चन्द्रवा बाँध कर सूर्य की धूप को रोका गया था। बाजार की दुकानों की सजावट तो और भी अद्भुत थी। किसी दुकान पर रजत्-तोरण, किसी पर नकद रुपयों की झूलती हुई मालायें, किसी की दुकान पर दस २ के नोटों की बनी हुई झूल और किसी दुकान पर चांदी और स्वर्ण के बने हुये पुष्पों की हारमालायें लटकती थी। नगर और आसपास के लगभग ५० ग्रामों की जनता ने नगर-प्रवेश-महोत्सव में १०००० की संख्या में भाग लिया था। ठौर-ठौर पर अगणित गुहलियाँ की गई थीं। लगभग ५००० से ऊपर श्रीफल और २०००) से ऊपर रुपयों का चढ़ावा हुआ था। इस प्रकार आचार्यश्री दर्शकगण के नेत्रों को पावन करते हुये, जब नगर के प्रतिष्ठित पुरुष भूदरभाई जवेरी के भवन के आगे पधारे, कई वर्षों से शीलव्रत के धारण करने वाले इन दोनों स्त्री-पुरुषों ने पक्के मोतियों का स्वस्तिक बना कर गुरुदेव को वधाया। लगभग एक बजे गुरुदेव सहमुनिमण्डल जवेरी-भवन में पधारे।

श्री भूदरभाई जवेरी ने उस भवन को एक लक्ष रुपयों का व्यय करके अभी दो मास के अल्प समय में ही विनिर्मित करवाया था और केवल इस दृष्टि से कि वह गुरु महाराज साहब के चातुर्मास-विश्राम के लिये उपयोग में भी आ सके।

थराद के वि०सं० २००४ के इस चातुर्मास में गुरुदेव की निश्रा में कविमुनि श्री विद्याविजयजी, ज्योतिषपंडित श्री सागरानंदविजयजी, वयोवृद्ध श्री तत्त्वविजयजी, श्रीचारित्रविजयजी, बालमुनि श्री मणिविजयजी, श्री कान्तिविजयजी, श्री शान्तिविजयजी, श्री सौभाग्यविजयजी, श्री देवेन्द्रविजयजी, श्री सुरेन्द्रविजयजी इस प्रकार १० मुनिराज थे। व्याख्यान में गुरुदेव 'श्री भगवतीसूत्र' का वाचन करते थे और भावनाधिकार में 'श्री विक्रमचरित्र' का श्रवण कराते थे। चातुर्मास में दर्शनार्थ आने वाले दर्शक एवं भक्तगण के लिये थराद-संघ ने ठहरने एवं सोने-बैठने तथा भोजन सम्बन्धी अत्यन्त ही प्रशंसनीय व्यवस्थायें की थीं। बम्बई, अहमदाबाद आदि बड़े २ प्रसिद्ध नगरों में बड़े २ धंधे करने वाले थराद के श्रावक इस वर्ष अपने २ धंधों को अपने विश्वासपात्र मुनीम एवं कर्मचारियों पर छोड़ कर चातुर्मास पर्यंत थराद में ही आकर ठहरे थे और अत्यन्त भक्ति-भाव से दर्शनार्थ आनेवाले संघ एवं स्वधर्मी सद्गृहस्थों की सेवा करने का अनुपम लाभ लेते थे। लेखक भी थराद में गुरुदेव एवं मुनिमण्डल के दर्शनार्थ जानेवाले व्यक्तियों में था। मैं थराद के संघ की ओर से किये जाने वाले आतिथ्य से अत्यन्त ही प्रभावित हुआ था और गुरुदेव में उनकी भक्ति और श्रद्धा को देखकर तथा सधर्मी बंधु के साथ उनका स्नेह एवं आत्मीय व्यवहार का अनुभव करके आश्चर्यान्वित रह गया था। मालवा, गुजरात, मारवाड़, मेवाड़ आदि प्रान्तों के अनेक नगरों से दर्शक आये थे। दर्शकगण की ओर से और स्थानीय संघ की ओर से दी गई प्रभावनाओं का और प्रीतिभोजों का अपूर्व ही समा बंध गया था।

नगर-प्रवेश के दिन से लगाकर चातुर्मास के पूर्ण होने के दिन तक थराद नगर में ही नहीं, थराद-राज्य के समस्त राज्य भर में अपूर्व आनंद, उल्लास, उत्साह रहा और इसका रसास्वादन जैन, अजैन दोनों समाजों ने

एक-सा लिया। इस प्रकार आनंदमय चातुर्मास के पूर्ण होने पर श्री सद्गृहस्थ भूदरभाई जवेरी की ओर से १०८ अभिषेकवाली बड़ी शान्तिस्नात्रपूजा पढ़वाई गई और उन्हीं की ओर से नगर-प्रीति-भोजन दिया गया। श्री जवेरी एक अच्छे श्रीमंत गुरुभक्त श्रावक हैं। राज्य भर में इनका बड़ा मान है।

थराद में आचार्य श्री के चातुर्मास में हुए तप एवं व्रतों की सूची

प्रतिक्रमण	४०००१	तेला	१००१	सोलह उपवास	२
पौषध	१००१	चार उपवास	१०१	पंचरंगी	१
बेआसणा	२००१	पांच उपवास	५१	मोटी पूजा	२१
ऐकासणा	५००१	अट्ठाई	१०१	प्रभावना	१५१
आयंबिल	४०५१	नव उपवास	१	चैत्यप्रवाड़ी	११
उपवास	१०००१	दस उपवास	४	देशावगासिक	२०१
बेला	२००१	ग्यारह उपवास	२	सामायिक	३०००१

चरितनायक का अति बिमार होना और श्री 'जैन प्रतिमा-लेख-संग्रह' का संपादन

यह तो पाठकों को भलीविध परिचय करा दिया गया है कि वि० सं० २००४ का चातुर्मास चरितनायक का थराद में था। कार्त्तिक मास में आपश्री डवल निमोनिया से इतने अधिक पीड़ित हुये कि जीवन की आशा भी नहीं रही। दूर-दूर के नगर, ग्राम एवं प्रान्तों से अनेक भक्तगण दर्शनार्थ दौड़े जा रहे थे। उस अवसर पर मैं भी सपरिवार गया था। आचार्यश्री की स्थिति यद्यपि सुधार पर थी; परन्तु फिर भी आपश्री इतने दुर्वल एवं अशक्त थे कि साधारण श्रम से भी आपको अति पीड़ा होती थी और बड़ा कष्ट होता था। आपश्री को अधिक भाषण करने से तथा आये हुये भक्तजन को दर्शन तक देने में होने वाले श्रम तक से बचने की चिकित्सकों की सम्मति थी। मुझको दर्शन करने की आज्ञा मिल गई थी। चिकित्सक आचार्य श्री के पास ही खड़े थे। आचार्यदेव ने मुझको कर-संकेत से धर्मलाभ देकर चिकित्सक की ओर देखा। चिकित्सक आचार्यश्री की अभिलाषा को समझ गये और मुझसे कुछ क्षणों के लिये बात-चीत करने की सम्मति दे दी।

आचार्यश्री ने हस्तलिखित पुस्तकों का एक बण्डल खोला और उसमें से शिला-लेखों की दो अक्षरान्तर-प्रतियाँ मुझको देखने को दीं। मैंने उन प्रतियों को सहज दृष्टि से देखा तो वे इतिहास एवं पुरातत्त्व की दृष्टि से अमूल्य प्रतीत हुईं। बात-चीत के अन्तर में आचार्यश्री ने कहा, "मैं इतना अस्वस्थ और अशक्त हूँ कि शिला-लेखों का अनुवाद, संशोधन और अनुक्रमणिका आदि तैयार करने में अपने को असमर्थ पाता हूँ। मेरी प्रार्थना पर वे मुझको दे दी गई। आचार्यश्री यद्यपि धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे थे, परन्तु वृद्धावस्था के कारण चलने, फिरने की शक्ति बिलकुल ही नही आ पाई थी। उधर शरद्-ऋतु आ चुकी थी। ऐसी विवशता में चरितनायक को सरदी का काल थराद में ही व्यतीत करने का निश्चय करना पड़ा। यहाँ यह कहना पड़ेगा कि आचार्यश्री के उपचार में श्री थराद-श्रीसंघ के प्रत्येक श्रावक ने तन, मन से ही नहीं धन से भी सेवा-भक्ति का पूरा २ परिचय दिया। धन पानीवत् बहा दिया गया और उसी का यह परिणाम था कि आचार्यश्री डबल निमोनिया में आकर तथा असाध्य जैसी स्थिति के निकट में पहुँच कर भी बच सके और समाज के सद्भाग्य में अन्तर नहीं पड़ने पाया। आचार्यश्री की सेवा में दो चिकित्सक रहते थे। एक चिकित्सक तो प्रतिक्षण, जब तक आचार्यश्री आशाजनक स्थिति में नहीं आ गये उपस्थित रहता था। आचार्यश्री के स्वस्थ होने एवं दीर्घायु होने की शुभाकांक्षा में थराद के श्रावक और श्राविकाओं ने इतने तप, व्रत, पौषधादि धर्मकृत्य एवं क्रियायें कीं कि उतनी कदाचित् ही इस वर्तमान काल में किसी अन्य आचार्य के दीर्घायु होने के निमित्त किसी विशाल नगर में भी की जा सकती हों।

४२—वि० सं० २००५ में थराद में चातुर्मास: —

चैत्र मास में जब आचार्य श्री पूर्ण स्वस्थ और विहार करने के योग्य हो गये तो विहार की तैयारियाँ होने लगीं और विहार का दिन भी निश्चित हो गया। विहार करने के दिन में कोई दो या तीन दिन ही अवशिष्ट रहे होंगे कि श्री सागरानन्दविजयजी का पेट इतना दर्द करने लगा कि लाख उपचार करने

मुनिसागरानन्दविजयजी का बीमार होना

और थराद में ही चातुर्मास का निश्चय और जय

पर भी वह ठीक नहीं हुआ और वे मरणासन्न-से हो गये। मुनि सागरानन्दविजयजी का मान साधु-मण्डल में अच्छा है और वे समाज के प्रतिष्ठित साधुओं में से हैं। गुरुदेव की वैयावच्च में मुनि विद्याविजयजी और आप दो ही साधु हैं, जो गुरुसेवा करने में अद्वितीय हैं। ऐसे सेवाभावी वैयावच्चीय साधु को गुरुमहाराज साहब उनकी विषम एवं अति वेदनाकारी अवस्था में अकेला या किसी साधु तथा योग्य श्रावकों के भी ऊपर छोड़कर कैसे विहार करने का निश्चय कार्यरूप में ला सकते थे। निदान विहार स्थगित करना पड़ा और मुनि श्री सागरानंदविजयजी क्षीण होते ही गये और पेट का रोग ठीक नहीं हुआ, इतने में चातुर्मास सन्निकट आ गया। थराद के पास में ऐसा कोई समृद्ध एवं समुन्नत ग्राम अथवा नगर नहीं था जहां वयोवृद्ध आचार्यदेव भी पहुँच सकते थे और मुनिराज सागरानंदविजयजी का उपचार भी कराया जा सकता था और इन सर्व के ऊपर थराद का श्रीसंघ आपश्री को विहार ही नहीं करने दे रहा था, अन्त में इस वर्ष के चातुर्मास की जय भी थराद में ही चातुर्मास करने की विवशतापूर्वक बोलानी पड़ी।

इस प्रकार वि० सं० २००५ का गुरुदेव का चातुर्मास उपरोक्त मुनिमण्डल के साथ में पुनः थराद में ही हुआ। वि० सं० २००४ के चातुर्मास में जैसा आनन्द और उल्लास था वैसा ही आनंद और उल्लास इस चातुर्मास में भी छाया रहा। वरन् उपवास, व्रत और पौषध आदि तपस्याओं की संख्या गत चातुर्मास से भी अधिक रही। दर्शकगण और बाहर से दर्शनार्थ आनेवाले सधर्मी बधुओं का समा बंधा ही रहा। व्याख्यान में गुरुदेव 'श्री भगवतीसूत्र' वाचते थे और भावनाधिकार में 'श्री धन्नाचरित।'

एक पाखंडी जैन साधु का गुरुदेव का अनिष्ट

इस चातुर्मास में उल्लेखनीय एक यह बात रही कि एक जैन साधु, जो कभी आपश्री के सम्प्रदाय में थे और पीछे से वे बहिष्कृत कर दिये गये थे गुरुदेव और कवि मुनि श्री विद्याविजयजी का अनिष्ट करने के लिये अनेक छल-छमंद दूर बैठे करवाते रहे और अनेक जादू-टोना करते रहे; परन्तु गुरुदेव के पावन

करने के लिये छल-छमंद करना और उनकी निष्फलता

तेज के आगे उनके समस्त कुयत्न निष्फल सिद्ध हुये और अन्त में पोपलीला का भण्डा-फोड हो जाने पर उनके लिये मुँह लेकर भाग जाने जैसी स्थिति उत्पन्न हो गई। नाक-कट हो जाने पर श्रावक एवं गृहस्थ से भी साधु या संन्यासी अधिक निर्लज्ज होकर चेष्टायें करता रहता है, दूर बैठे उन कुचक्री साधु का भी यही रूप रहा। ऐसे साधुओं से धर्म कलंकित होता है और समाज विनाश को प्राप्त होता है। परन्तु जब पाप बढ़ने का अवसर आ जाता है, तब समाज में से कुछ निर्बुद्धि, दम्भी, पाखण्डी जन ऐसे कुचक्री, षड्यंत्री, अनीति पर चलने वाले, यंत्र मंत्र-तंत्र पर जीवित रहने वाले वेषधारी गृहत्यागी को साधु रूप में पूजते हैं। चाहिए तो यह कि साधु-वेष को लज्जित करने वाले ऐसे साधु को उचित शिक्षा दें।

चातुर्मास सफलतापूर्ण हुआ और संघ-भोजन करके संघ ने अपना आनन्द प्रकट किया। परन्तु जब गुरुदेव ने विहार करने का

थराद के राज्य में विहार

निश्चय किया तो थराद-संघ एवं थराद नगर की अजैन जनता ने आकर गुरुदेव को कुछ दिनों के लिये थराद-राज्य के प्रान्त में ही भ्रमण करके ग्रामों में बसने वाली जैन, अजैन जनता को धर्मोपदेश देने की विनती की। ऐसी विनती करने का कारण यह था कि माघ मास में थराद में प्रतिष्ठा-कार्य करवाये जाने का आयोजन भी निश्चित-सा हो चुका था। निदान गुरुदेव श्री थराद-संघ एवं प्रजा की विनती को मान देकर थराद के निकट के ग्रामों में विचरण करने लगे और धर्मोपदेश देकर शास्त्रों की वाणी सुनने के लिये आतुर एवं प्यासे जनों की प्यास बुझाने लगे। जब प्रतिष्ठा के दिन समीप आ गये तब थराद नगर में गुरुदेव का पुनः पदार्पण थराद-श्रीसंघ ने बड़ी धूम-धाम एवं अपूर्व श्रद्धा एवं भक्ति के साथ करवाया।

अंजनशलाका और दीक्षायें

वि० सं० २००५ माघ शुक्ला ५ गुरुवार को अट्ठाई-महोत्सव-पूर्वक प्रतिष्ठा करके आहोर (मारवाड़) से लाई गई जिन प्रतिमा श्रीमुनि-

सुव्रतस्वामी के जिनालय में जो थराद की चकला सेरी में बना हुआ है स्थापित की तथा सुनारों की सेरी में बने हुये श्रीपार्श्वनाथ-जिनालय पर उसी दिवस शुभ मुहूर्त्त में दण्डध्वजारोहण और स्वर्णकलशारोपण करवाये तथा गुरुदेव श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरिजी की प्रतिमा की अञ्जनशलाका की।

माघ शु० ६ को शुभ लग्न में मुनि विमलविजयजी, मुनि सौभाग्य-विजयजी, मु० शान्तिविजयजी, मुनि देवेन्द्रविजयजी एवं साध्वीजी श्री प्रसन्नश्रीजी, देवेन्द्रश्रीजी, कुसुमश्रीजी, कुमुदश्रीजी और क्षमाश्रीजी को चरितनायक ने बड़ी दीक्षायें प्रदान कीं तथा आकोलीनिवासी ओसवाल-ज्ञातीय श्रेष्ठी अम्बाजी की धर्मपत्नी धर्मीबाई को लघु भागवती दीक्षा प्रदान करके उनका नाम चन्द्रप्रभाश्री रक्खा।

माघ शु० ७ को एक सौ आठ (१०८) अभिषेकवाली महाशान्ति-स्नात्रपूजा पढाई गई तथा अभिमंत्रित जल की धारा थराद नगर के चतुर्दिक दी गई। थराद का उक्त लघु प्रतिष्ठोत्सव इस प्रकार व्यस्त कार्य-क्रम के साथ सानन्द पूर्ण हुआ।

मुनि रसिकविजयजी की लघु भागवती दीक्षा

इनका गृहस्थ नाम कानजी था। इनके पिता का नाम कैरिंगजी और माता का नाम मनुबाई था। इनका जन्म १९५९ के आश्विन कृ० १२ को हुआ था। इनके माता-पिता जालोर प्रगणान्तर्गत मोरसिम नामक ग्राम के रहने वाले थे। अट्ठाई-महोत्सव के साथ में इन्होंने वि० सं० २००५ माघ शु० ८ को थराद में ही चरितनायक के कर-कमलों से लघु दीक्षा ग्रहण की और रसिकविजय नाम धारण किया।

मरुधर की ओर विहार

उक्त चातुर्मास में वाली मारवाड़ के प्रतिष्ठित श्रीमंत श्रावक श्री कुन्दनमलजी ताराचन्दजी गुरुदेव के दर्शन करने के लिये थराद गये थे तथा उन्होंने अपने नवविनिर्मित गृह-मंदिर की प्रतिष्ठा गुरुदेव के कर-कमलों से हो, ऐसी गुरुदेव से विनती की थी तथा साथ में ही वाली-नगर में

चातुर्मास करने की विनती भी की थी। गुरुदेव ने प्रतिष्ठा कराने की विनती तो स्वीकार करली थी, परन्तु चातुर्मास की विनती पर अभी चातुर्मास के आने में कई मास होने के कारण आगे विचार करने की कही। थराद में प्रतिष्ठा-कार्य सानन्द पूर्ण करके भी गुरुदेव सर्दी कम होने तक वहीं विराजे और फा० कृ० १० को थराद से विहार करके मरुधर-प्रदेश की ओर पधारे। इस विहार में गुरुदेव को चार मास से ऊपर दिन लग गये। मार्ग में आये हुये ग्राम एवं नगरों में विश्राम ग्रहण करते हुये एवं धर्मोपदेश देते हुये अनुक्रम से आषाढ़ शु० १० को वाली में आपने पुर-प्रवेश अति ही धूम-धाम एवं विशाल जन-समूह के मध्य किया। विहार मार्ग में आये हुये प्रमुख २ ग्राम रामसीण, धानेरा, मडार, जीरावला, सिरोड़ी, सिरोही, कोलर, पालड़ी, धनापुरा, फताह-पुरा, कोर्टाजीतीर्थ, जोयला, शिवगंज, सुमेरपुर, जाकोड़ा, सीन्द्रू, खुडाला के नाम उल्लेखनीय हैं। इन ग्रामों में चरितनायक ने दो-दो, चार-चार दिनों का विश्राम ग्रहण किया था। इन सर्व ग्रामों के संघों ने चरितनायक एवं साधु-मण्डली का ग्राम-प्रवेश भी अति उत्साह एवं धूम-धाम से करवाया था।

वाली में ४३ वां चातुर्मास और प्राण-प्रतिष्ठोत्सव

वि० सं० २००६

●

खुडाला मे आपश्री कुछ दिन विराजे और आषाढ़ शु० १० को सहमुनिमण्डल खुडाला से वाली जो ५ मील के अंतर पर है, पधारे। आचार्यश्री का चातुर्मास भी वाली में ही होना अब निश्चित हो चुका था। आपश्री का वाली में नगर-प्रवेश अति ही धूम-धाम और शाही समारोहपूर्वक कराया गया था। इस चातुर्मास के करवाने में अधिकतम श्रम और यत्न शाह कुंदनमलजी ताराचंद्रजी की ओर से जैसा पूर्व ही लिखा जा चुका है किया गया था और उसका प्रमुख कारण यह था कि उन्होंने श्री वासुपूज्यस्वामी का घर-मंदिर विनिर्मित करवाया था, जो बनकर पूर्ण हो चुका था और

उसकी प्रतिष्ठा करवानी थी। चातुर्मास का अतिरिक्त व्यय भी इन्हीं श्रीमंत सद्गृहस्थ ने किया था।

बाली के अति प्रतिष्ठित श्रीमंत कुलों में शाह प्रेमचंद्र गोमाजी का कुल भी अधिक प्रसिद्ध है। शाह प्रेमचंद्रजी के श्री ताराचंद्रजी और उदय-भाणजी नाम के दो पुत्र हुये। श्रीकुन्दनमलजी स्व० श्री ताराचंद्रजी के सुपुत्र हैं। प्राग्वाटज्ञातीय समाज में इस घर की अच्छी प्रतिष्ठा है।

आचार्यश्री की निश्रा में इस चातुर्मास में मुनि श्री विद्याविजयजी, मुनि सागरानंदविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्तिविजयजी, देवेन्द्रविजयजी थे। आचार्यश्री चातुर्मास पर्यंत व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र' एवं भावनाधिकार में 'श्री विक्रमचरित' वाचते थे। श्रोताओं की संख्या सदा व्याख्यान-परिषद् में सैकड़ों की रहती थी। प्रभावनाओं का भी क्रम अच्छा रहा था। लेखक को चरितनायक के दर्शन करने के लिये २ बार जाने का सुयोग प्राप्त हुआ था। आनेवाले दर्शकगण का आतिथ्य अति भक्ति एवं तत्परता से किया गया था। समयानुसार चातुर्मास में तप और व्रत भी अच्छे हुये थे। सुमेरपुर से 'श्री वर्द्धमान जैन बोर्डिङ्ग' की संगीत-मण्डली भी आचार्यश्री की भक्ति करने के लिये भेजी गई थी। निरीक्षकरूप में मण्डली के साथ मैं भी था। मण्डली ने जिनालय और गुरुसेवा में तीन दिन पर्यंत स्तवनों, कीर्त्तनों एवं अभिनयों से अच्छी सेवा-भक्ति की थी। थराद, कुक्षी, खाचरोद, जावरा, रतलाम आदि दूर २ के नगरों से भी अनेक सद्गृहस्थ आचार्यश्री एवं साधु-मण्डल के दर्शनार्थ संख्याबंद आये थे। प्रतिष्ठा का निश्चय हो चुका था और लग्न-मुहूर्त्त भी वि० सं० २००६ मार्गशीर्ष शु० ६ शुक्रवार का निश्चित कर दिया गया था। चातुर्मास के सानंदपूर्ण होते ही प्रतिष्ठोत्सव संबन्धी कार्य प्रारम्भ कर दिया गया; अतः आचार्यश्री को तद्पर्यन्त वहीं रुकना पड़ा।

बाली में अंजनशलाकाप्राण-प्रतिष्ठोत्सव

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि बाली नगर में श्री वासुपूज्यस्वामी

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

वाली प्राण-प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर वि० सं० २००३

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक सहशिष्यमण्डल एवं साधु-मण्डल, बाली

पाट पर बैठे हुओं मे —१ मुनि श्री सागरविजयजी, २ मुनि श्री हर्षविजयजी, ३ मुनि श्री विद्याविजयजी, ४ मुनि श्री लावण्यविजयजी
खड़े हुओं मे —५ मुनि श्री रसिकविजयजी, ६ शान्तिविजयजी, ७ कान्तिविजयजी, ८ हेमेन्द्रविजयजी, ९ सौभाग्यविजयजी,
१० देवेन्द्रविजयजी, प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० स० २००६

के घरमदिर की प्रतिष्ठा का शुभ मुहूर्त्त मार्गशीर्ष शु० ६ शुक्रवार निश्चित किया जा चुका था। तदनुसार प्राण-प्रतिष्ठोत्सव मार्ग०शु० १ सोमवार से प्रारंभ हुआ और शु० ११ गुरुवार को सानन्द सम्पूर्ण हुआ उस का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् हैः—

प्रतिष्ठोत्सव की शोभा बढ़ाने वाले सारे शोभोपकरण जैसे हस्ति, अश्व, नगारा-निशान, बैण्ड, स्वर्ण-रजत् के रथ और कलश और पण्डाल के सजावट के सामान सब विद्यमान् थे और यथास्थान उनका उपयोग किया गया था। मण्डप एक सद्गृहस्थ के आराम-उद्यान में, जो थाली के पश्चिम द्वार से दक्षिण को जाती हुई सड़क के ठीक मध्य में था और जो सुन्दर, विशाल भवन से युक्त था विनिर्मित करवाया गया था। मण्डप की रचना सुन्दर और चित्ताकर्षक थी। मण्डप सभी प्रकार की शोभा-सामग्री से सजाया गया था। अष्टाह्निका-महोत्सव और प्रतिष्ठा संबन्धी कार्य-क्रम निम्नवत् रहा।

मार्ग० शु० १ सोम०—वेदिकापूजन, जवारारोपण, मण्डप में वेदिका के ऊपर नवबिंबों की स्थापना, जलयात्रा का वरघोड़ा।

मार्ग० शु० २ मंगल०—नवग्रह-दशदिग्पाल और नन्दावर्त्तमण्डल पूजन।

मार्ग० शु० ४ बुध०—च्यवन-कल्याणक और जन्म-कल्याणक।

मार्ग० शु० ५ गुरु०—अष्टादशाभिषेक, दीक्षा-कल्याणक, अधिवासना, केवलज्ञान-कल्याणक आदि।

मार्ग० शु० ६ शुक्र०—मंगलकलशस्थापन, नूतन प्रतिमाओं और गुरु-बिंब की अंजनशलाका।

मार्ग० शु० प्र० ७ शनि०—विंशतिस्थानकपदतप-उद्यापन, मडल-पूजनादि।

मार्ग० शु० द्वि० ७ रवि०—नवपदमण्डल-घंटाकर्णमण्डलपूजन, आगमपूजा।

मार्ग० शु० ८ सोम—वास्तुकपूजा, द्वादशश्राद्धव्रतपूजा आदि।

मार्ग० शु० ९ मंगल०—द्वादशभावनापूजा, सभा का आयोजन, उपदेशादि।

मार्ग०शु० १० बुध०—श्री सुपार्श्वनाथप्रभु-प्रतिमा तथा गुरु-मूर्त्ति की ससमारोह स्थापना।

मार्ग० शु० ११ गुरु०—अष्टोत्तरशतशान्ति-स्नात्रपूजा, मंत्रपूत जलधारा का नगर के चतुर्दिक् लगाना और उत्सव की विसर्जन-क्रिया।

ऊपर लिखे अनुसार कार्य-क्रम के अतिरिक्त मंदिरों में आंगी-रचनायें, विविध पूजायें और संगीत-मण्डली के कीर्त्तन, गायन, स्तवन हुये और समय २ पर अभिनयों का अच्छा ठाट रहा।

इसी प्राण-प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर मार्ग शु० १० को श्रीकुन्दनमलजी की सुपुत्री लीलावती का शुभ विवाह भी बाबाग्रामवासी श्रीमंत शाह कपूरचन्द्रजी रत्नचन्द्रजी के सुपुत्र सागरमल के साथ संपन्न हुआ था। एक सांसारिक और द्वितीय पारलौकिक कृत्यों का मेल एक अद्भुत भावप्रद प्रतीत होता था। दोनों उत्सवों के मेल से शु० १० को सारे दिन भर और रात्रि भर अच्छा ठाट रहा था। लेखक भी उस दिन वहीं उपस्थित था और श्री वर्द्धमान-जैन-बोर्डिङ्ग, सुमेरपुर को, जिसका लेखक गृहपति था श्रीमान् कपूरचन्द्रजी ने अपने पुत्र के शुभ विवाह के उपलक्ष में रु० २५१) का सराहनीय दान दिया था।

इस प्रतिष्ठोत्सव में चरितनायक के विशाल दृष्टिकोण और समयज्ञता का पता लेखक को अच्छा मिला था। वाली के पास में ही बीजापुर में भी इन्हीं दिनों प्रतिष्ठा का उत्सव करवाया जा रहा था। दोनों में यही अंतर था कि इधर समयानुसार प्रीतिभोजनों की व्यवस्था थी और उधर वे ही बड़े माप पर नवकारशियाँ और स्वामीवात्सल्य हो रहे थे। इधर आडंबर में मितव्ययता थी और उधर अधिक व्यय करके आडंबर को साकार बनाया जा रहा

था। चरितनायक समय और स्थिति को देखकर वर्त्तते हैं, यह अधिक सराहनीय और अनुकरणीय है।

बाली से विहार और शेषकाल में कई महत्त्वशाली कार्य

खिमेल में वीशस्थानकतप-उद्यापनः—चरितनायक बाली से विहार करके खुडाला और धणी होते हुये पौ० शु० ७ को खिमेल पधारे। शा०जावंतराजजी ढोलावत की ओर से श्री वीशस्थानकपत-उद्यापन करवाया गया था। आपश्री वहा लगभग १५ दिवस विराजे और वहा से माघ कृ० ७ को विहार करके साण्डेराव, दूजाणा, तखतगढ़, सेदरिया होते हुये गुढ़ाबालोतरा पधारे।

गुढ़ा में ज्ञान-भण्डार की स्थापनार्थ भवन का निर्माणः—यहा आपश्री कुछ दिवस-पर्यत विराजे। गुढा के संघ ने एकत्रित होकर श्रीचरितनायक द्वारा प्रकाशित एवं संग्रहीत विपुल साहित्य को प्रतिष्ठित करने के लिये 'श्री यतीन्द्र जैन ज्ञान-भण्डार' नाम से एक सुन्दर भवन बनाने की योजना बनाई और उसको तत्काल कार्यान्वित किया। चरितनायक वहा सदा धर्मोपदेश देते थे। शा० लखाजी दोलाजी के वंशज प्रौढ़वयप्राप्त शाह राजमल केसरीमलजी ने एक दिन व्याख्यान परिषद् में चरितनायक से शीलव्रत अंगीकृत किया, यह एक उल्लेखनीय बात है।

बागरा में महाशान्तिस्नात्रपूजाः—गुढ़ा से विहार करके आपश्री आहोर, भेसवाड़ा, जालोर को स्पर्शते हुये एवं इन तीनों नगरों में कई दिनों का विश्राम लेते हुये बागरा पधारे। बागरा में श्रीसंघ ने चरितनायक की तत्त्वावधानता में एक सौ आठ अभिषेक वाली महाशान्तिस्नात्रपूजा ज्ये० शु० ५ पंचमी को पढ़ाई और अभिमंत्रित जल की धारा ग्राम के चतुर्दिक् दी गई।

सियाणा में दो वीशस्थानकतप-उद्यापनः चरितनायक अपनी साधु-मण्डली के सहित बागरा से विहार करके आकोली होते हुये सियाणा पधारे। सियाणा में आपश्री की निश्रा में दो वीशस्थानकतपों का उद्यापन हुआ। एक शा० नागचंद्र सुरतिंगजी की ओर से किया गया था और द्वितीय शाह

गेनाजी चांदनावालों की ओर से किया गया था दोनों उद्यापन द्वितीय आषाढ़ कृ० ५ से १२ पर्यंत साथ २ निर्वहित रहे ।

अब चातुर्मास भी संनिकट आ ही रहा था । यहां पर ही चातुर्मास की विनतियां बागरा, आहोर, गुढ़ा, भीनमाल, आकोली तथा सियाणा के संघों की ओर से हुईं । चरितनायक ने कारण-कार्य पर विचार कर गुढ़ा में चातुर्मास करना स्वीकृत करके गुढ़ा के संघ की विनती को स्वीकार किया ।

गुढ़ाबालोतरा में ४४ वां चातुर्मास और श्री यतीन्द्र जैन ज्ञान-भण्डार की प्रतिष्ठा एवं अन्य कई धर्मकृत्य

वि० सं० २००७

●

चरितनायक का जैसा ऊपर लिखा जा चुका है वि०सं० २००७ का चातुर्मास का होना गुढ़ाबालोतरा में प्रसिद्ध किया जा चुका था। आपश्री अपने शिष्य एवं साधु-मण्डल के सहित सियाणा से विहार करते हुये अनुक्रम से गुढ़ाबालोतरा में आषाढ़ शु० ७ को पधारे। विशाल जन-समारोहपूर्वक आपश्री का ग्राम-प्रवेश करवाया गया था। ग्राम में स्थान २ पर सुन्दर द्वारों की सजावट करवाई गई थी। जिन मार्गों में होकर प्रवेश करवाया गया था, उनको स्वच्छ किया गया था और शृंगारा गया था। मंदिर में पूजा पढ़ाई गई थी। गुरु के शुभागमन से घर २ में आनंद और हर्ष की ज्योति दिखाई देती थी। इस चातुर्मास-काल में आचार्यश्री की निश्रा में मुनिवर्य श्री लक्ष्मीविजयजी, विद्याविजयजी, सागरानंदविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्तिविजयजी, देवेन्द्रविजयजी, रसिकविजयजी आठ साधु प्रवर थे।

व्याख्यान में आचार्यश्री 'सटीक उत्तराध्ययनसूत्र' का नवमा अध्ययन का और भावनाधिकार में 'श्री शत्रुञ्जय-माहात्म्य' का वाचन करते थे। व्याख्यान-परिषद् में जैन, अजैन जिज्ञासु जन नित्य लाभ प्राप्त करते थे। प्रभा-

वना, तप, व्रत एवं पौषध आदि का अच्छा क्रम रहा था। आचार्यश्री के तेज एवं प्रभाव से इस वर्ष ग्राम में ७ अट्ठाईतप, १ पंचरगी, २ नव-उपवास, १ सोलह-उपवास, ११ मोटी पूजा और १०१ प्रभावना, २ प्रवाड़ी और १०१ दिशावकाशी पौषध हुये थे।

श्री यतीन्द्र जैन ज्ञान-भंडार मंदिर का निर्माणः—इस चातुर्मास में विशेष उल्लेखनीय कार्य यह हुआ कि श्री चरितनायक द्वारा लिखित, संग्रहीत, संशोधित एवं संकलित साहित्य का भंडार गुढ़ा में था और वह अभी तक संगमरमर-प्रस्तर की बनी हुई अलमारियों में ही रक्खा जाता रहा था। आपश्री के सदुपदेश से श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय बड़ी धर्मशाला के एक कक्ष में मकराणा के संगमरमर-प्रस्तर के कक्ष की भीतरी दीवारों में आलय बनाकर शुभ मुहुर्त्त कार्त्तिक पूर्णिमा को श्री यतीन्द्र जैन साहित्य ज्ञान-भंडार मंदिर का निर्माण प्रातःवेला में प्रारंभ किया गया। इस ज्ञान-भण्डार-भवन के निर्माण में लगभग रु० १५०००) (पन्द्रह सहस्र) का व्यय हुआ। आचार्यश्री के महत्त्वपूर्ण साहित्य को इस प्रकार सुरक्षित एवं चिरस्थायी बनाने का यह प्रयत्न गुढ़ा के श्रीसंघ का प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है। इसी प्रकार भूतकाल में ज्ञान-भण्डारों का निर्माण किया जाता था और उनमें साहित्य को रक्खा जाता था। आज जो जैन साहित्य इतने वर्ष, युग और आततायी विधर्मियों के आक्रमणों और विनाशकारी धर्मविरुद्ध कुचालों को सहन कर तथा उन से बचकर हमारे सामने है, वह ऐसे ही दूरदर्शी सद्प्रयत्नों का ही तो परिणाम है।

अन्य धर्मकृत्य

ज्ञान-भण्डार की सस्थापना हो जाने पर चरितनायक ने विहार करने का विचार किया, क्योंकि आज चातुर्मास भी पूर्ण होता था; परन्तु संघ के आग्रह से आपश्री को फिर वहीं ठहरना पड़ा, कारण कि कई-एक सद्-गृहस्थ वीशस्थानकतप-उद्यापन करवाना चाहते थे तथा बिंब-प्रतिष्ठा कराने की भी विचारणा चल रही थी। फलतः आपश्री महसाधु-मण्डल स्थान-परिवर्त्तन करके वहीं ठहरे।

१ शाह जीवाजी लखाजी के सुपुत्र रावतमलजी की पत्नी ने पौष मास में अट्ठाई-महोत्सव करके वीशस्थानकतप का उद्यापन किया।

२ माघ शु० १३ को दो गुरु मूर्त्तियों की, एक जिनेश्वर-प्रतिमा की, दो यक्ष-यक्षिणी-प्रतिमाओं की प्राण-प्रतिष्ठा की गई एवं श्री धर्मनाथ-जिनालय की चार देवकुलिकाओं में एक-एक त्रिगड़ा अर्थात् १२ जिन-प्रतिमा और एक राजेन्द्रसूरि-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की गई।

३ माघ शु० १३ को ही शाह राजमलजी केसरीमलजी की ओर से अट्ठाई-महोत्सव किया गया एवं वीशस्थानकतप का उद्यापन भी किया गया और इनकी ओर से ही नवकारशी भी हुई।

चरितनायक को वेदना

चरितनायक अब वहाँ से विहार करने का विचार ही कर रहे थे कि फा० कृ० ५ को एकाएक आपको असह्य मूत्रावरोध-वेदना उत्पन्न हो गई। इस वेदना को ठीक करने में और आपश्री के स्वस्थ होकर विहार योग्य समर्थ बनने में कुछ दिवस और लग गये।

———

गुढ़ा से श्री भाण्डवपुर तीर्थ की यात्रार्थ विहार और तीर्थ का परिचय तथा भेसवाड़ा में उद्यापन और जालोर में प्रतिष्ठा

वि० सं० २००७-२००८

●

भेसवाड़ा में उद्यापनः—चरितनायक का विचार श्री भाण्डवपुरतीर्थ की यात्रा करने का हो रहा था; अतः आपश्री स्वस्थ होने पर गुढ़ा से विहार करके आहोर पधारे और वहाँ कुछ दिवस पर्यंत विराजे। आहोर से भेसवाड़ा पधारे। भेसवाड़ा में शाह रत्नाजी किस्तूरजी की ओर से अट्ठाई-महोत्सव करके वीश-स्थानकतप का उद्यापन करवाया गया और अन्तिम दिन को एक-सौ आठ (१०८) अभिषेकवाली महाशान्तिस्नात्रपूजा पढ़ाई गई और अभिमंत्रित जल की धारा ग्राम के चतुर्दिक् दी गई।

जालोर में प्रतिष्ठाः—चरितनायक अपनी साधुमण्डली के सहित भेसवाड़ा से विहार करके जालोर पधारे और वहाँ लगभग १॥ मास भर विराजे। वि० सं० २००८ वै० शु० ५ पंचमी को आपश्री ने अपने कर-कमलों से तपावास के श्री महावीर-जिनालय में २५ पच्चीस जिन बिंबों की प्रतिष्ठा (स्थापना) की और मन्दिर के ऊपर कलश एवं दण्ड-ध्वजारोपण करवाये। डेढ मास की स्थिरता के पश्चात् यहाँ से आपश्री ने भाण्डवपुर तीर्थ की ओर प्रयाण किया।

गुढ़ाबालोतरा से भाण्डवपुर तीर्थ तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० २००७-२००८

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	जैन मंदिर	धर्मशाला व उपाश्रय
गागावा	॥	०	०	०
चरली	१	३०	१	६
आहोर	१॥	५५०	५	५

भेसवाड़ा	।।।	७०	१	२
भूता अरठ	१	०	०	०
सकराना	१।।	०	१	१
नाथुबाव	१।।	०	०	०
जालोर	१।।	६२५	१२	५
गौड़ी जी	।	०	१	१
मोबला-कुआ	१।	०	०	०
सीपीकुआ	२	०	०	०
मांड़वला	१।।	६०	१	२
डांगरा	१।।	२	०	०
ऐलाणा	१	३५	२	१
गोल	१।।	१५०	२	३
खरल	१	२	०	०
ओटबाड़ा	१।।	३०	१	२
सायला	१।।	१२५	२	३
मालीबाव	१	०	०	०
चतरा कुआ	१	०	०	०
चोराऊ	१	४०	१	१
वरली प्याऊ	१।	०	०	०
मींठा कुआ	१।।	०	०	०
मेंगलवा	१।।	७०	१	२
भांडवपुर तीर्थ	१।।	०	१	२
	२६	१६८६	३२	३६

गुरुदेव का श्री भाण्डवपुर तीर्थ में पदार्पण और श्री भाण्डवपुर तीर्थ का इतिहास की दृष्टि से वर्णन

गुढ़ाबालोतरा से गुरुदेव सहमुनि-मण्डल विहार करके ग्रामों में विचरण करते हुये धर्मोपदेश देते हुये एवं धर्मकृत्य करवाते हुये अनुक्रम से

श्री भाण्डवपुर तीर्थ पधारे। लेखक के हृदय में भी श्रीभाण्डवपुर तीर्थ के दर्शन करने की उत्कट लालसा कई वर्षों से लग रही थी। भाग्योदय एव गुरुदेव के प्रताप से उसके तृप्त होने का अवसर आ गया था। प्राग्वाट-इतिहास के निमित्त श्री सिरोही, अर्बुदाचल तीर्थ, गिरनार, प्रभाषपत्तन आदि प्रमुख तीर्थों का शोध की दृष्टि से पर्यटन करना था। अतः मै ता० ९-६-१९५१ को भीलवाड़ा से रवाना हुआ यह विचार लेकर कि श्रीभाण्डवपुर तीर्थ के दर्शन करके उधर से बागरा होकर सिरोही पहुँच जाऊँगा। ता० ९-६-१९५१ को मैं मेंगलवा पहुँचा, जहाँ गुरुदेव सह-मुनिमण्डल विराज रहे थे। गुरुदेव के दर्शन करके हृदय को आनन्द हुआ। ता० १०-६-१९५१ को गुरुदेव ने श्रीभांडवपुर तीर्थ के लिये प्रातः मेंगलवा से विहार किया और लगभग हम सर्व दिन के १०॥ बजे भाण्डव ग्राम में पहुँचे और तीर्थपति के दर्शन करके अति ही आनंदित हुये।

यद्यपि भांडवपुर में जैन वैश्य का एक भी घर नही है; परन्तु जिस भक्ति एवं श्रद्धा से श्री भांडवपुर की अजैन जनता ने, जिसमे शूद्र से लगाकर क्षत्रिय और ब्राह्मण संमिलित हैं, जो स्वागत किया, ऐसा हार्दिक स्वागत होता मैंने कहीं भी किसी आचार्य का नहीं देखा। उसका यहाँ कुछ परिचय देना नितान्त आवश्यक समझता हूँ।

श्री भांडवपुर के ठाकुर साहब ने नगे पैर कुछ साथियों के सहित एक कोस आगे आकर गुरुदेव एवं साधु-मण्डल के दर्शन किये। हम थोडे ही कदम और बढ़ पाये होंगे कि ग्राम की जनता के भी दर्शन होने लगे और भांडवग्राम अर्ध कोस के अंतर पर रहा होगा कि जनता की भीड़ बढ गई। प्रत्येक बालक, युवा, युवती, वृद्ध पुरुष एवं स्त्री दोनों हाथ जोड कर झुक २ कर, जमीन पर लेट कर गुरुदेव को और साधु-मण्डल को अति ही भक्तिपूर्वक प्रणाम करते थे। गुरुदेव अधिक अस्वस्थ रहने के कारण विहार के कष्ट को अब अधिक सहन नहीं कर सकते है। फिर जहाँ चलने को रेगिस्तान हो, कदम २ पर कोई न कोई भक्त आकर हटाने पर भी नही हट कर भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हो, वहा अत्यधिक थकावट का बढ़ जाना कोई आश्चर्य की

बात नहीं। ढोल, थाली और भेरी जो ग्रामीण वाद्ययंत्र हैं, इनके सुमधुर निनादों के मध्य गुरुदेव ने ज्ये० कृ० ६ को श्री भांडवग्राम में प्रवेश किया। गुरुदेव के दर्शन करके वहाँ की अजैन जनता कितनी मुग्ध एवं आनंदित थी, यह लेखनी उस आनंद का शब्दों में माप नहीं कर सकती। उस दिन समस्त भांडवग्राम ने अपना कृषिकर्म गुरुदेव के पदार्पण के शुभोपलक्ष में बंद रक्खा और समस्त दिन भर गुरुदेव की सेवा में ही सारी जनता रही। ग्राम में घर२ मंगल गीत गाये जाते रहे, गलियों में ग्राम-बालायें गीत गाती हुई इधर-उधर आती जाती रहीं।

इन सब सद्भावनाओं का फल मैंने यह अनुभव किया कि वहां के लोग अपेक्षाकृत अधिक सुखी, संतोषी और स्वस्थ हैं। घी और दूध के साधन अधिकतर घरों में विद्यमान हैं। अन्न का मैंने वहाँ कोई कष्ट नहीं देखा।

गुरुदेव वहाँ ता० १०, ११, १२ तीन दिन विराजे। मेंगलवा, धाणसा, सायला, बागरा और थराद के संघों के प्रतिनिधि चातुर्मास की विनती करने के लिये आये थे। श्रीभांडवपुरतीर्थ दियावट्ट-पट्टी में है, जिसमें ४८ ग्राम हैं। पट्टी में फूट एवं कुसंप होने के कारण वहां का संघ एकमत होकर चातुर्मास की विनती करने के लिये जब समय पर नहीं आ सका, तो यह भांडवपुर की अजैन जनता को अपनी पट्टी का अपमान-सा लगा। भांडव के मुखियों ने समस्त ग्राम को एकत्रित किया और गुरुदेव को श्री भांडवपुरतीर्थ में ही चातुर्मास करने के लिये विनती करने का निश्चय किया। इतना ही नहीं एक कृषक ने तो यह भी कह दिया कि चातुर्मास में जितना गेहूँ का व्यय होगा सब वह देगा, एक ने कहा कि जितना गुड़ और शक्कर का व्यय होगा वह देगा। इस प्रकार चातुर्मास में होने वाले व्यय तक का लगभग प्रबंध-सा करके भांडव के प्रमुख २ कृषक एवं क्षत्रिय गुरुदेव के चरणों में चातुर्मास की विनती करने के लिये उपस्थित हुये। उन भोले, सरल, सज्जनों की विनती और विनती करने का छलरहित स्वतंत ढंग देखकर प्रत्येक दर्शक मुग्ध हो गया; जिसमें मैं तो अत्यन्त ही प्रभावित हुआ। गुरुदेव का चातुर्मास कारणों पर विचार कर के अंत में थराद के लिये निश्चित हुआ और तत्काल

जय-ध्वनियों से उसका समर्थन भी हो गया। थराद के संघ की ओर से विनती करने के लिये आने वालों में प्रमुख स्वयं भूदर भाई जवेरी थे, जिनका परिचय पूर्व के पृष्ठों में कुछ २ आचुका है और कुछ २ आगे के पृष्ठों में भी आवेगा ही।

इन पंक्तियों के लेखक ने तीर्थ में विराजित प्राचीन प्रतिमाओं के लेख भी लिये हैं, जो यथासमय प्रकाशित होंगे। भाण्डवपुर में गुरुदेव तीन दिवस विराजे और ता० १३-६-१९५१ को प्रातःकाल विहार करके थराद की ओर अग्रसर हुये।

श्री भांडवपुर तीर्थ से थराद तक का विहार-दिग्दर्शन

वि० सं० २००८

ग्राम, नगर	अंतर	जैन घर	जिनालय	धर्मशाला व उपाश्रय
पुनावा	१।	०	०	०
नाभु कुआ	१।	०	०	०
सूराणा	१।	४०	१	१
तलोडा	१॥	१५	१	१
दाधाल	२	२५	१	१
वागोड़ा	१	६०	१	१
चेनपुरा नया	१॥	०	०	०
राउता जूना	१॥	०	०	०
मोरसिम	२	८०	२	२
मंगलाढ़ाणी	१	०	०	०
वाली जूनी	२	२५	०	०
अणखोल	१॥	०	०	०
जाव	१॥	७०	१	१
जाटगोलियो	१॥	०	०	०
खीरोड़ी	१॥	१	०	०

करावड़ी	१॥	०	०	०
जाखल	२	१५	०	१
कारोला	२	२०	०	१
साचोर	२	१२५	५	३
पारपड़ा	१॥	०	०	०
गोलासन	१	२	०	०
वातडाऊ	१॥	५	०	०
वाघासन	१॥	१०	०	०
पीलूड़ा	४	१५	१	०
मांगरोल	१॥	५	०	०
दूधवा	३	२२	१	०
जाणदी	१॥	२	०	०
बूढ़नपुर	२	०	०	०
नाणदी	॥	०	०	१
थराद	॥	६५०	११	५
	४८।	११८७	२५	१८

———

थराद में ४५ वां चातुर्मासार्थ विहार और विहार में किये गये उल्लेखनीय कार्य एवं थराद में अंजनशलाकाप्रतिष्ठा का होना

वि० सं० २००८

थराद में जैसा पूर्व के पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि वि० सं० २००४,५ में गुरुदेव के दो चातुर्मास लगातार हो ही चुके थे। फिर वि०सं० २००८ में जो इतना जल्दी चातुर्मास थराद में हुआ उसका कारण यह था कि थराद में श्री महावीरस्वामी की एक प्राचीन कायोत्सर्गस्थ प्रतिमा की प्रतिष्ठा, जो भूमि से निकली थी, करनी थी और उसके साथ में अन्य कई-एक प्रतिमाओं की अञ्जनशलाका-प्रतिष्ठा करनी थी। थराद का श्रीसंघ यह महत्त्वपूर्ण कार्य गुरुदेव के कर-कमलों से ही सम्पन्न करवाना चाहता था। श्री मांडवपुर से थराद लगभग ४५ कोस के अन्तर पर पड़ता है। मार्ग रेतीला और ऊंचे-नीचे धोरोंवाला है। गुरुदेव बीमार होने के पश्चात् अब अधिक लम्बी यात्रा करने में अशक्त रहते हैं और फिर शरीर में आपश्री स्थूल हैं। दिन में आप बड़ी कठिनाई से प्रातः और मध्याह्न के पश्चात् करके दो कोस अथवा ४, ५ मील से अधिक लंबा विहार नहीं कर सकते हैं। इतना भी चलकर आप इतने थक जाते हैं कि शरीर से पसीना पानी की तरह झरने लगता है और समस्त तन पर के वस्त्र झरने लग जाते हैं। परन्तु देव और गुरु भक्तों के अधीन होते हैं। थराद-संघ का अत्याग्रह देख कर आपश्री ने अतिशय शारीरिक कष्ट एवं मार्ग की विषमता की तनिक भी चिंता नहीं करते हुये ज्ये० शुक्ला १० के दिन श्री मांडवपुर तीर्थ से थराद के लिये अपने शिष्य-समुदाय के साथ में विहार कर दिया। चातुर्मास के बैठने में लगभग एक मास शेष रह गया था। मार्ग में पड़ते हुये ग्राम, नगरों में यथाकारण एवं यथावसर कम-अधिक विश्राम लेते हुये चरितनायक

थराद के लिये चातुर्मासार्थ विहार

आषाढ़ शु० ६ को थराद में पहुँचे। प्रथम थराद-नगर में नगर-प्रवेश का अथवा चातुर्मास का वर्णन लिखूं यह आवश्यक है कि इस विहार में आपश्री के प्रभाव से मार्ग के ग्रामों में जो धर्म-कार्य अथवा सुधार के कार्य हुये हों, उनका भी संक्षिप्त परिचय देना समुचित समझता हूँ।

बागोड़ा और मोरासिम के संघों के बीच में पड़े हुये ७० वर्ष पुराने झगड़े को शांत करना

गुरुदेव श्री मांडवपुर से विहार करते हुये अनुक्रम से बागोड़ा पधारे। बागोड़ा में ६० जैन घर हैं। यहाँ के श्रीसंघ ने गुरुदेव का अति ही भव्य स्वागत किया और अच्छी गुरुभक्ति की। बागोड़ा और वहाँ से ६ कोस के अन्तर पर मोरसिम नामक ग्राम के श्रीसंघ में बहुत प्राचीन झगड़ा पड़ा हुआ था। ये दोनों ग्राम चौहाण पट्टी में गिने जाते हैं। यह झगड़ा बढ़ते २ समस्त पट्टी का झगड़ा हो गया था। दोनों ग्रामों के संघों ने झगड़े को शान्त करने का अनेक बार यत्न किया; परन्तु विफल ही रहे। परस्पर भोजन का व्यवहार बंद हो गया। विवाहादि कार्यों में नाती-ज्ञाति का आवागमन बंद हो गया। विषमता बढ़ती ही जा रही थी। जब इस झगड़े की कहानी गुरुदेव के समक्ष कही गई तो गुरुदेव ने बागोड़ा के संघ को एकत्रित करके झगडे को शान्त करने के सम्बन्ध में उपदेश दिया। अत्यन्त हर्ष की बात यह हुई कि बागोड़ा के संघ ने यह स्वीकृत कर लिया कि गुरुदेव जिस प्रकार भी झगडा शान्त करना चाहेंगे, वह गुरुदेव की कठोर से कठोर आज्ञा एवं निर्णय का पालन करके भी झगड़े का हर प्रकार से अन्त करना चाहता है। बागोड़ा से गुरुदेव विहार करके राउता ग्राम में पधारे। बागोड़ा का संघ भी राउता ग्राम तक साथ में गया था। मोरसिम के श्रीसंघ ने आकर अत्यन्त ही श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण गुरुदेव का स्वागत किया और अतिशय धूम-धाम, मंगल गीत, वाद्ययंत्रों के मध्य गुरुदेव का ग्राम-प्रवेश करवाया। मोरसिम के श्रीसघ की अमोघ भक्ति एवं सेवा-सुश्रूषा देखकर गुरुदेव एवं उनके साधु-मण्डल की आत्मायें अत्यधिक सन्तुष्ट हुईं और संघ की भूरि २ प्रशंसा की। यहाँ गुरुदेव को दो दिन ठहरना पड़ा। भारी प्रयत्नों, उद्बोधन, उपदेश एवं गुरु-प्रभाव के कारण अंत में उक्त झगड़ा निपट गया। गुरुदेव ने अपना अंतिम निर्णय जो दिया, दोनों ग्रामों

के संघों ने जय-ध्वनियाँ करके एक-स्वर से अनुमोदित एवं स्वीकृत किया। हर्ष एवं आनंद का पारावार बढ़ा और दोनों की ओर से राउता ग्राम में अलग २ स्वामीवात्सल्य हुये। यह झगड़ा लगभग ७० सत्तर वर्ष प्राचीन था। झगड़ा निपटा कर गुरुदेव ने राउता से विहार किया और मोरसिम में पधारे।

झगड़ा निपट गया था, अतः मोरसिम के श्रीसंघ में अपार आनन्द छाया हुआ था। प्रत्येक स्त्री, पुरुष प्रसन्न एवं अतिशय आनंदित था। घर २ मंगलाचार हो रहे थे। गुरुदेव का ग्राम-प्रवेश इतनी भव्यता के साथ में किया कि मोरसिम की भक्ति और श्रद्धा देखकर गुरुदेव और साधु-मण्डल आल्हादित एवं आश्चर्यान्वित हो गये। यहाँ गुरुदेव को दो दिन ठहरना पड़ा। इस प्रकार गुरुदेव उक्त घातक झगड़े का अन्त करके आगे बढ़े।

श्री भाण्डवपुर से थराद का मार्ग पूर्ण रेतीला है। गुरुदेव जहाँ भी विहार करते हुये थक जाते और एक पद भर चलने में भी अशक्त रह जाते, अतिशय वैयावच्ची एवं अति गुरुभक्त काव्यप्रेमी मुनिराज सा० विद्याविजयजी, सागरविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्तिविजयजी, देवेन्द्रविजयजी, रसिकविजयजी और कभी २ वयोवृद्ध मुनिराज लक्ष्मीविजयजी गुरुदेव को डोली में बिठाकर चलते थे। इस प्रकार विहार करते हुये गुरुदेव अपनी मण्डली के सहित जाखल ग्राम में होते हुये साचोर में पधारे। विहार में मोरसिम के अनेक प्रतिष्ठित सद्गृहस्थ साथ में थे। जाखल में यद्यपि जैन संघ के केवल १६ ही घर हैं; परन्तु वहाँ के श्रावक एवं श्राविकायें अत्यन्त भावुक और श्रद्धालु हैं। मोरसिम के संघ की जैसी ही श्रद्धा और भक्ति जाखल के श्रावक एवं श्राविकाओं में गुरुदेव एवं साधु-मण्डली को देखने को मिली।

साचोर में विश्राम

साचोर अथवा सत्यपुर जोधपुर-राज्य का अति प्राचीन एवं ऐतिहासिक नगर है। यहाँ राजकीय उच्च अधिकारी (हाकिम) रहता है। साचोर अपने प्रगणा का पाटनगर है। यहाँ के जैन संघ में कई वर्षों से कई कारणों को लेकर घातक फूट पड़ी हुई थी। चरितनायक का जब पदार्पण साचोर में हुआ तो दोनों पक्षों ने मिलकर आपश्री का नगर-प्रवेश अति धूम-धाम से करवाया। इस

नगर-प्रवेश के लिये दोनों पक्षों को सम्मिलित करने में भीनमालवासी शाह दानमलजी पृथ्वीराजजी ने, जो सरकारी कर्मचारी थे बड़ा श्रम किया था। गुरुदेव के पदार्पण के उपलक्ष में साचोर के संघ के दोनों पक्षों की ओर से अलग २ स्वामीवात्सल्य हुये तथा तीसरा स्वामीवात्सल्य उक्त शाह दानमलजी पृथ्वीराजजी की ओर से हुआ।

चातुर्मास के १५ दिन अवशिष्ट रह गये थे और थराद अभी साचोर से ४० मील था। अतः गुरुदेव अब मार्ग के ग्रामों में थोड़ा २ विश्राम लेते हुये लगातार विहार करके थराद आषाढ़ शु० ६ को पधार गये। थराद तक मोरसिम और जाखल के संघों के प्रतिनिधि एवं सद्गृहस्थ गुरुदेव की सेवा में साथ थे। थराद के संघ के प्रतिनिधि एवं वहाँ के अनेक सद्गृहस्थ भी गुरुदेव की सेवा में मार्ग में ही जा पहुँचे थे। इस प्रकार अनेक ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुये, झगड़ों एवं कलहों का अंत एवं अन्त करने के सुप्रयत्न करते हुये गुरुदेव सह-साधुमण्डल थराद में पधारे।

४९—वि० सं० २००८ में थराद में चातुर्मास :—

थराद नगर में गुरुदेव का यह गत पाँच वर्षों में ही तृतीय चातुर्मास था। गत दो चातुर्मासार्थ गुरुदेव के पदार्पण पर जो नगर-निवासियों ने जैन, अजैन तथा समीपवर्त्ती ग्रामों की जनता ने आल्हाद भरे नगर-प्रवेशोत्सव की भव्य तैयारियाँ की थीं, उनका परिचय भलीविध पूर्व ही कराया जा चुका है। इस वर्ष तो गुरुदेव का चातुर्मास प्रतिष्ठा के महान् उद्देश्य को लेकर हुआ था, यह अपेक्षाकृत अधिक विशेषता थी। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इस वर्ष के प्रवेशोत्सव की तैयारियों में समस्त नगर ने अतिशय भाव-भक्ति से तन, मन, धन का योग देकर भाग लिया था। शोभा की दृष्टि से अवर्णनीय तैयारियाँ की गई थीं। नगर को अमरपुरी-सा बना दिया गया था। स्थान २ पर तोरण, उन्नत द्वार, गृहद्वारों पर मालायें, निवासों पर ध्वजायें, दुकानों पर रेशमी वस्त्रों द्वारा प्रतिष्ठित शोभा, अमूल्य आभूषण धारण की हुई, मंगलगीत गाती हुई सुन्दरियों के समूह, सुन्दर वस्त्रों मे पुरुष, बाल-बच्चे ऐसे भव्य प्रतीत होते थे, मानो नगर की ऋद्धि ही उस दिन गुरुदेव के दर्शन करने के लिये अतिशय भक्ति से प्रेरित होकर प्रकट हुई हो। अलम्।

इस वर्ष आपश्री की सेवा में संयम-स्थविर मुनि श्री लक्ष्मीविजयजी, कवि मुनि श्री विद्याविजयजी, ज्योतिषपंडित मुनि श्री सागरविजय जी, मुनि श्री चारित्तविजयजी, मुनि श्री कान्तिविजयजी, मुनि श्री सौभाग्य-विजयजी, मुनि श्री शान्तिविजयजी, मुनि श्री देवेन्द्रविजयजी, मुनि श्री रसिकविजयजी ९ (नव) साधु प्रवर थे। गुरुदेव व्याख्यान में 'उत्तराध्ययन' सूत्र सटीक और भावनाधिकार में पद्यबद्ध 'विक्रमादित्य-चरित्र' वाचते थे। व्याख्यान-परिषद् में जैन-अजैन जनता पूरी संख्या में नित्य उपस्थित होकर गुरु-मुख से अमूल्य शास्त्रोपदेश श्रवण करती थी। प्रायः प्रत्येक तिथि पर प्रभावनायें वितरित की जाती थीं। पौषध, सामायिक, प्रतिक्रमण, व्रत, आयंबिल व उपवास, बियासणे, अष्टमतप आदि विविध तपस्यायें अतिशय भाव-भक्तिपूर्वक सहस्रों की संख्या में हुई थी। गुरुदेव के दर्शनार्थ गूर्जर-देश, मालवा, मेवाड़, मारवाड़ आदि अनेक प्रान्तों से संख्याबंध श्रावकगण आये थे, जिनकी थरादसंघ ने अति प्रशंसनीय भक्ति की थी। इस प्रकार अनेक प्रकार के धर्मकृत्य, पुण्य, तपस्या, स्वामीवात्सल्य के साथ गुरुदेव का चातुर्मास सानंद पूर्ण हुआ।

थरादनगर में प्रतिष्ठा-अंजनशलाका-महोत्सव

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि गुरुदेव का थरादनगर में वि० सं० २००८ का चातुर्मास प्रतिष्ठोत्सव कराने के उद्देश्य को लेकर ही प्रमुखतः हुआ था। चातुर्मास में प्रतिष्ठा संबंधी अनेक कार्य किये जाते रहे। जैसे जयपुर से जिनबिंब, अधिष्ठायक-प्रतिमा, गुरु-मूर्त्तियां, मकराने से तीर्थपट्ट आदि का बनवाना, सामग्री का एकत्रित करना। प्रतिष्ठोत्सव का मुहूर्त्त तो चातुर्मास के पूर्व ही जब चरितनायक जालोर में विराज रहे थे उस समय ही माघ शु० ६ शुक्र० का निकलवा लिया गया था। चातुर्मास में चरितनायक की उपस्थिति में श्री प्रतिष्ठा-समिति का निर्वाचन हुआ और स्वयंसेवक-मण्डल तथा २१ जैन युवकों से 'श्री यतीन्द्र जैन संगीत-बैन्ड की स्थापना भी उन्हीं दिनों में की गई। थराद्री-प्रदेश में ज्ञाति एवं ग्राम तथा नगर में जो अग्रणी (आगे-वान्) व्यक्ति अथवा कुल या घर होते हैं, उन्हें खूंटा कहा जाता है।

प्रतिष्ठोत्सव के समय निम्न आगेवान् (खूंटा) घरों के प्रतिनिधियों से श्री प्रतिष्ठा-समिति का निर्माण हुआ था। थराद् के जैन आगेवानों के नाम और प्रत्येक के कुल के घरों का अनुमान नीचे अनुसार है।

आगेवान् व्यक्ति	उनके घर (लगभग)
शाह मेघराज जेताजी पारख	४०
,, जीवा बल्लू बोहरा	२२
,, हीरा वाहा डोसी	२०
,, आंबा मोती मघाणी पारख (संघवी)	१०
,, लादा धनजी भण्डशाली	२०
,, मियाचंद्र प्रेमचन्द्र देसाई	१००
,, फूलचंद्र पानाचंद्र धरू	१०
,, निहालचंद्र सवाईचंद्र बोहरा	७
,, डांबरदास कुअरजी अदाणी	१०
,, किस्तूरचंद्र हरजी संघवी	१५
,, हुक्मचंद्र चंदाजी संघवी	१०
,, मोतीचंद्र अमीचंद्र संघवी	१५
,, चेला मेघाणी अदाणी	२०
,, पीताम्बर जसवंत महाजनी	८
,, दोला बोहरा	२२
,, लाधा रंगाजी बोहरा	२०
,, रतनसी खुशाल मोदी	....

चातुर्मास के समाप्त होते ही नगर में प्रतिष्ठा संबधी तैयारियाँ की जाने लगी। वैसे वि० सं० २००४ के थराद् में हुये चातुर्मास से ही प्रतिष्ठा कराने की विचारणा तो चल ही रही थी और मंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार-कार्य प्रारम्भ भी हो चुका था; परन्तु अब अवशिष्ट कार्य शीघ्रता से सम्पन्न कराया जाने लगा। अभी प्रमुख महावीर-जिनालय का जीर्णोद्धार अर्धपूर्ण भी नहीं हो पाया था, उसको तुरन्त रात्रि एवं दिवस कार्य करवा कर पूर्ण

कराने के प्रयत्न होने लगे। निदान वह प्रतिष्ठा के शुभ दिवस तक पूर्ण हो गया। इस जिनालय के जीर्णोद्धार में लगभग संघ को एक लक्ष रुपया व्यय करना पड़ा। उक्त व्यवस्थापिका-प्रतिष्ठा-समिति ने समस्त नगर में मुख्य २ मोहल्लों एवं नगर के राजमार्गों में काष्ठमय उन्नत द्वार बनवाये और उन्हें वस्त्राभूपित करके उन पर ध्वजा-पताकायें फरकाई गई और तोरण बांधे गये। श्री महावीर-जिनालय के ठीक सामने श्री जैन धर्मशाला में विशाल दिव्य-मंडप की रचना करवाई गई। मण्डप में सुन्दर एवं विविध रंगीन चित्र जैन कथा एवं आख्यायिकाओं के आधार पर बनाये गये थे, जैसे सिद्धगिरि, गिरनार, अष्टापद, समवशरण, सुमेरुपर्वत आदि और वेदिकायें बनवाई गई थीं। मण्डप में ही आधुनिक उद्घोपक-यंत्र (Loud-Speaker) का एव विद्युत्-प्रकाश का प्रबंध था। स्नात्रियों एवं इन्द्र और इन्द्राणियों के लिये सेवा-पूजा के अर्थ खड़ा रहने के लिये स्थान रक्खा गया था एवं संगीत, कीर्त्तन और नृत्यादि अभिनय-कर्त्ता पात्रों के लिये भी स्थान रक्खा गया था। तात्पर्य यह है कि मण्डप विशाल था और उसके अंगों की रचना बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण करवाई गई थी। प्रतिष्ठा संबन्धी समस्त तैयारियां समय पर पूर्ण हो गईं। थराद-संघ ने उत्तम पत्र पर सुन्दराक्षरों में कुंकुमपत्रिका छपवा कर गूर्जर, मालव, मेवाड़, मारवाड, बम्बई, मद्रास, बंगाल, मैसूर आदि प्रान्तों में अपने सधर्मी बन्धुओं को एवं श्रीसंघों को प्रेषित कीं

पौप कृ० १२ (गुजराती) से दसदिनावधिक-महामहोत्सव का माघ शु० ७ तक किया जाना प्रारंभ किया गया। कार्य निम्नवत् संपादित किये गये।

१ माघ कृ० १२ गुरु० को वेदिकापूजन, कुंभस्थापना, जवारारोपण, जलयात्रा, क्षेत्रपालस्थापनादि।

२ माघ कृ० १४ शुक्र० को नंदावर्त्तमंडल, अष्टमंडल, नवपदमंडल-पूजन-स्थापनादि।

३ माघ कृ० १५ शनि० को बीशस्थानकपद-दसदिग्पाल-नवग्रह-मंडल-पूजन-स्थापना आदि तथा च्यवनकल्याणकोत्सव-विधान आदि।

४ माघ शु० १ रवि० को छप्पनदिक्कुमारी, चौसठ इन्द्र और इन्द्राणियां आदिकृत जन्मोत्सव ।

५ माघ शु० २ सोम० को भूपालपिताकृत जन्मोत्सव, निशाल-स्थापना, विवाहोत्सव, राज्य-स्थापनोत्सव आदि ।

६ माघ शु० ३ मंगल० को दीक्षाकल्याणक, केवलज्ञानकल्याणक-महोत्सव आदि ।

७ माघ शु० ४ बुध० को निवार्णकल्याणक-महोत्सवादि ।

८ माघ शु० ५ गुरु० को नवीन जिनबिंब, अधिष्ठायक-प्रतिमा, गुरु-मूर्त्तियां, तीर्थादि पट्टों की अंजनशलाका ।

९ माघ शु० ६ शुक्र० को बिंब-स्थापना, स्वर्णकलश-दण्डध्वजारोपण ।

१० माघ शु० ७ शनि० को एक सौ आठ (१०८) अभिषेकवाली श्री शान्तिस्नात्र-महापूजा और नगर के चतुर्दिक् मांगलिक मंत्राभिषिक्त जलधारा ।

नित्य पूजायें पढ़ाई जाती थी, आंगी रचना की जाती थी, दिव्य रोशनी करवाई जाती थी और स्वामीवात्सल्य होते थे ।

लेखक को भी उक्त प्रतिष्ठोत्सव देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उत्सव की शोभा जैसी देखी जा सकी थी, वैसी यहा लिखी नही जा सकती । गुरुदेव परिश्रम करते २ थक जाते थे; परन्तु कार्यों का अंत नहीं आता था । गुरुदेव दर्शकों को दर्शन देते २ क्लान्त हो जाते थे, लेकिन दर्शकों का तांता बंद ही नहीं होता था । जवेरी भूधर भाई महामंत्री के समान खुले मस्तिष्क प्रतिष्ठा संबंधी समस्त व्यवस्था का संचालन करते थे; परन्तु कार्यों की वृद्धि चढ़ती ही जाती थी । नगर के सर्व श्रावक आगन्तुक दर्शक एवं सधर्मी बन्धुओं की शयन, स्नान, नाश्ता, भोजन आदि की व्यवस्थायें प्रफुल्लवदन करते थे; परन्तु थकते नही थे । नगर में सर्व मुख्य मार्गों, मुहल्लों, मंदिरों, स्थानों पर गैस लगाये गये थे । महावीर-जिनालय के मण्डप में विद्युत्-प्रकाश का प्रबंध करवाया गया था । रात्रि के समय प्रखर

विद्युत्-प्रकाश में मण्डप और नवीन-सा बना हुआ त्रिशिखरी जिनालय अतिशय शोभायुक्त प्रतीत होते थे। मण्डप में विराजित प्रतिमायें, रक्खे हुये पट्ट और मण्डप के पर्दे और तोरण विद्युत्-प्रकाश में वस्तुतः अमरलोक का ही आभास करवाते थे।

मण्डप में तीर्थादि के १४ पट्ट और ७७ प्रतिमायें थीं। तीर्थ-पट्टों में भगवान् महावीर के सत्ताईस भवों का पट्ट एक नवीन सूझ का परिचायक था और वह बहुत ही मनोहर बनाया गया था। प्रतिमाओं में श्रीमद् राजेन्द्रसूरि-गुरु-प्रतिमा जिसके अगल-बगल में एवं नीचे अन्य आचार्यः— १ श्रीमद् धनचन्द्रसूरिजी २ श्रीमद् भूपेन्द्रसूरिजी ३ श्रीमद् उपा० मोहन-विजयजी ४श्रीमद् यतीन्द्रसूरिजी ५ श्रीमद् गुलाबविजयजी की प्रतिमायें उस ही एक ही प्रस्तर में निर्मित की गई थीं, वे बड़ी ही कलापूर्ण एवं अद्भुत् प्रतीत होती थीं।

स्वयंसेवक दल का कार्य भी अति ही सराहनीय था। उनकी कार्य तत्परता, निरालस्यता, श्रद्धापूर्वक कर्त्तव्यनिष्ठा मुझ को प्रभावित किये बिना नहीं रही।

श्री यतीन्द्र जैन सगीत-बैण्ड, थराद ने संगीत एवं उत्सव सम्बन्धी कार्यों को बड़ी ही तत्परता से निर्वहित किया था। थोड़े समय में बैण्ड-पार्टी ने बैण्ड बजाने में असाधारण कुशलता प्राप्त करली थी। तात्पर्य्य यह है कि थराद की समस्त जैन जनता आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष सर्व दत्तचित्त होकर प्रतिष्ठोत्सव की व्यवस्था में लगे हुये थे।

श्री भूदर भाई जवेरी का परिश्रम वस्तुतः लिखने योग्य है। वैसे तो समस्त थराद-संघ ही प्रतिष्ठा सम्बन्धी व्यवस्था में जुटा हुआ था; लेकिन इस व्यक्ति का कार्य और उसका निर्वाह अत्यन्त ही प्रभावक और अव-लोकनीय था। मण्डप की बगल पर एक कोण में एक कुटी बनाई गई थी, उसमें यह दृढ़ व्यक्ति बैठा रहता था। हाथ मे नोट, जेबों में नोट, पलंग पर नोटों के थौक और क नोटों से उबका हुआ। जिसने मांगे

उसको दे दिये और जिसने दिये उससे ले लिये । अद्भुत स्मरणशक्ति देने और लेने में । विलंब एक क्षण का नहीं । आये हुये की पूरी बात सुने और जाने वाले का पूरा कार्य करे । मुख पर अक्षुण्ण प्रफुल्लता, थकान की रेखा तक नहीं और व्यक्ति क्षीणकाय एक पसली । इस दृढ़ात्मा ने तन से तो योग दिया ही, लेकिन द्रव्य से भी अर्धलक्ष से ऊपर व्यय करके संभाग लिया । इस दृढ़तात्मा में गुरुभक्ति का प्रबल तेज था, जो प्रतिपल चमकता था और प्रस्फुटित होता रहता था ।

चरितनायक का बीमार होना और संघ की सराहनीय सेवा । मरुधर-देश की ओर विहार

प्रतिष्ठा के अंतिम दिन पर चरितनायक को एक दम असह्य ज्वर हो गया । कारण इसका अतिशय थकान थी । प्रतिष्ठोत्सव भर अविरल श्रम करना, दर्शकगण को दर्शन देना, प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रिया-काण्ड का सम्पन्न करवाना आदि इन श्रमसाध्य कार्यों से आप की थकान बढ़ती ही गई । वैसे आप मे अशक्ति तो पूर्व से थी ही, एक दम आपश्री बीमार हो गये और वह ही ज्वर पुनः निमोनिया में परिवर्त्तित हो गया । थराद के संघ ने आपश्री के उपचार में अपने को लगा दिया और ऐसी सुन्दर एवं समुचित उपचार की व्यवस्था की कि आपश्री के स्वस्थ होने में समय तो लगा; परन्तु संघ के सौभाग्य से आपश्री पूर्ण स्वस्थ हो गये और निदान आपश्री ने अपनी साधु-मण्डली के साथ में मरुधर-प्रदेश की ओर वि०सं० २००६ वै०कृ० ८ को सानंद विहार किया ।

वि०सं० २००८ में प्रकाशन

जैन-प्रातिमा लेख-संग्रहः—'चरितनायक और लेखक' प्रकरण में इस पुस्तक के बारे में कुछ कहा जा चुका है । यह पुस्तक प्रतिमा-लेख संबंधी प्रकाशित अद्यावधि पुस्तकों में अपना भी स्थान रखती है। अनुक्रमणिकायें, अनुवाद, अवलोकन से यह भलीविध सज्जित हैं । भावनगर, श्री महोदय प्रिं० प्रेस से मरुधर-देशान्तर्गत बालीनगरवासी प्राग्वाटज्ञातीय सौधर्म-बृहत्तपगच्छीय श्वेताम्बर जैन संघ द्वारा प्रदत्त अर्थ-सहायता से श्री यतीन्द्र-

साहित्य-सदन, धामणिया (मेवाड़) ने उत्तम कागज पर छपवा कर पक्की जिल्द में इस ही वर्ष इसको प्रकाशित की है। पृ०सं० ३१९। मूल्य रू० ३)

'चरितनायक और लेखक' प्रकरण के वाचन से पाठक समझ गये होंगे कि गुरुदेव की मेरे पर कैसी सुदृष्टि रही। मेरा साहित्यिक कार्य

लेखक को पांच हजार रु० की भेंट और श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन, धामणिया की दृढ़ नींव

अक्षुण्ण-प्रगतिशील रहे और अर्थ-कष्ट के कारण उसकी गति में रुकावट उत्पन्न नहीं हो जावे इस पावन उद्देश्य को दृष्टि में रखकर गुरुदेव ने ता० २० मार्च सन् १९५२ को थरादनगर से पत्र लिख कर भेजा, जिसमें इस प्रकार स्वहस्त से लिखा, 'तुमको श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन, धामणिया (मेवाड़) द्वारा प्रकाशित होने वाले ग्रथों के प्रति प्रकाशनार्थ रु० ५०००) पांच हजार भेंट रूप से अर्पित करवाये जाते हैं, सो स्वीकृत करना और यह निधि ग्रंथ प्रकाशन में ही व्यय हो ऐसी हमारी इच्छा है। शुभमस्तु।' गुरुदेव ने यह अमूल्य भेंट देकर मेरा मूल्य कितना बढ़ाया, मेरे भविष्य में कितनी आशा बांधी तथा श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन की नींव कितनी सुदृढ़ की यह सर्व सिद्ध करना अब मेरे पर निर्भर रह गया है। यहाँ तो पाठकों के समक्ष यह ही प्रकट करना है कि चरितनायक के हृदय में समाज में उदय होने वाले होनहार दिखाई देते हुये युवकों के प्रति कितना गहरा झुकाव है और साहित्योन्नति के लिये आपकी कितनी ऊंची दृष्टि है।

थराद से श्री भांडवपुर तीर्थ और वहाँ से बागरा तक का विहार-दिग्दर्शन

ग्राम,नगर	अंतर	कुल आबादी	जैन घर	मंदिर व धर्मशाला	दिनांक
नाणदेवी	॥	०	०	०	वै० कृ० ८
जाणदी	४	१२५	१	०	९
दूधवा	४	१५०	३०	धर्मशालागत मंदिर	१०-११
मागरोल	२॥	१५०	४	०	१२

पीलूड़ा	२	१७५	१५	१ गृहमन्दिर	वै० कृ० १३-१४
करवोन	४॥	१७५	१४	१ धर्मशाला	३० शु० १
नारोली	२	१२५	१०	१ गृहमन्दिर	वै० शु० २-३
वाघाहन	५	६०	१०	१ धर्मशाला	४-५
वांकड़ाऊ	२	८०	४	०	६
हनुमान	३	उजड़ ग्राम	०	०	७०
पारपड़ा	२	४०	०	०	०
सांचौर	५	१०००	२००	३ जैन मन्दिर	८-११
कारेला	६	०	२५	एक जैनधर्मशाला	१२
जाखल	४	१२५	१५	,,	१३-१५
हरियाली	२	१७५	६	१ जिनालय	ज्येष्ठ कृ० १
भादरून	७	८०	०	०	२
दोड़ाउ	३	२००	११	०	३-४
वाली	७	२००	२०	१ गृहमन्दिर	५-८
मोरसिम	६	५००	१००	२ गृहमन्दिर	१० से शु० २
धूमड़िया	७	३००	३५	१ गृहमन्दिर	ज्येष्ठ शु० ३
वागोड़ा	४	३५०	६०	१ शिखरवद मंदिर	४-६
दाधाल	२	३००	२५	१ ,,	७ ८
तलोड़ा	४	२४०	१४	१ एक गृहमंदिर	६
सुराणा	३	३००	४०	१ ,,	१०-११
भांडवपुर	६	३००	०	१ जिनालय १२ आ० कृ० १	
मेंगलवा	३	२००	७५	१ शिखरवद्ध जिना. आ. कृ० ३-४	
पोषा	४	२५०	४५	१ गृहमंदिर	५-६
ऊनड़ी	२	२५०	३०	१ ,,	७-८
पाथेड़ी	४	३००	३५	१ छोटा देवालय	९-१०
थलवाड़	७	१४०	२०	०	११-१२
धाणसा	३	६००	८०	२ शिखरवद्ध जिना० १३से शु० २	
सेरणा	२	२००	१५	१ शिखरवद्ध ,,	३

सूरत	४	२२५	७५	१ जिनालय	आ० शु० ४
सूरा	२	२००	३०	१ जिनालय	५
आगरा	६	१०००	२५०	२ सशिखर जि०	६से
	१३४॥	८५४५	१२९४	३२	१ मास १४ दिन

उपरोक्त विहार में उल्लेखनीय वर्णन निम्न प्रकार है:—

चरितनायक ने वै० कृ० ६ को अपनी साधुमण्डली एवं शिष्यवर्ग के साथ में थराद से विहार किया। थराद के लगभग ७५ श्रावक और श्री यतीन्द्र जैन बैण्ड के १८ युवक चरितनायक के साथ में थे, जो यद्यपि धीरे २ कम होते रहे; परन्तु करवोन तक थराद के कतिपय श्रावक साथ रहे। थराद वालों ने दूधवा में २-२ सेर शक्कर की प्रभावना, मांगरोल में थराद, पीलूड़ा, वामी, कुंभारा, लेड़मेर आदि ग्रामों की ओर से २-२ सेर शक्कर की ल्हाड़ियाँ, पीलूड़ा में थराद वालों की ओर से स्वामी-वात्सल्य और ग्राम वालों की ओर से ११ ग्यारह ल्हाड़ियाँ, करवोन में थराद वालों की ओर से एक नवकारशी और ग्यारह ल्हाणियाँ हुईं। थराद वालों की चरितनायक में अगाध भक्ति एवं श्रद्धा है का परिचय उक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है।

नारोल और वाघाहन के ठाकुरों ने चरितनायक के व्याख्यान से प्रभावित होकर मांस-मदिरा-सेवन का आजीवन त्याग किया।

वांकड़ाऊ में कई-एक कृषकों ने सूड (खेत में एकत्रित किया हुआ कचरा, जिसमें असंख्य जीव छिपे हुये रहते हैं) को जलाने का त्याग किया।

थराद का श्री यतीन्द्र जैन बैण्ड और २१ श्रावक साचोर तक साथ आये। यहाँ से वे लोग विसर्जित होकर थराद लौटे। साचोर तक के ग्रामों में श्री यतीन्द्र जैन बैण्ड-मण्डल के कारण श्री चरितनायक का पुर-प्रवेश का ठाट बड़ा ही आकर्षक और मनोहर होता रहा तथा प्रत्येक ग्राम में बैण्ड-मण्डल के युवक रात्रि को प्रभुभक्ति भी करते रहे। निस्संदेह वे सर्व युवक हार्दिक धन्यवाद एव सराहना के पात्र हैं।

जाखल में श्रे० कनुजी और खेंगारजी ने अपनी २ धर्मपत्नियों के सहित यावज्जीव सविधि चौथा व्रत ग्रहण करके श्रीफलों की प्रभावना दी।

देउड़ा में जाखल, हरियाली, थराद, बागरा के श्रावकों की ओर से २-२ सेर शक्कर की प्रभावनायें हुईं।

बाली (साचौर) में जैन संघ में दो पक्ष पड़ रहे थे। चरितनायक के श्रम एवं उपदेश से संघ में मेल हो गया। वहाँ के गृह-मन्दिर में चरितनायक ने वि० सं० १७४५ वै० शु० ७ की प्रतिष्ठित श्री पार्श्वनाथबिंब और श्री चन्द्रप्रभ-बिंब तथा बालीसंघ द्वारा स्वयं चरितनायक के कर-कमलों से वि० सं० १९९८ में प्रतिष्ठित करवाई हुई श्री वासुपूज्य-प्रतिमा को ज्येष्ठ कृ० ६ के दिन विजय मुहूर्त्त में धूमधाम-पूर्वक संस्थापित किया।

मोरसिम बड़ा ग्राम है। यहाँ आपश्री लगभग ७-८ दिवस पर्यंत विराजे। यहाँ चरितनायक के व्याख्यानों का अच्छा प्रभाव रहा। यहाँ के ठाकुर साहब की ठकुराणियों ने चातुर्मास में रात्रि-भोजन एवं हरा शाक का और एकादशी को रात्रिभोजन का एवं आजीवन मदिरा और मांस के सेवन का त्याग किया। यहाँ ही भीनमाल, थराद, बागरा, धाणसा, बागोड़ा, धूमड़िया, बाली आदि ग्रामों के संघों की ओर से ७५ श्रावक आचार्यश्री के दर्शनार्थ आये। इन सर्व की ओर से यहा २२ ल्हाणियां हुईं तथा बालीवासी शाह प्रभुलाल तोलाजी, शाह० हजारीमल केवलाजी और शाह फोजमल गमनाजी इन तीनों सज्जनों की ओर से तीन नवकारशियां हुईं।

चातुर्मास के लिये विनतियां और बागरा की ओर विहार

भाण्डवपुर में चरितनायक ज्ये०शु०१२ से आषाढ़ कृ०१ तक विराजे। यहाँ पर आहोर, जालोर, बागरा, आकोली, धाणसा, भीनमाल, मोरसिम, बागोड़ा, दाधाल, मेंगलवा, जीवाणा, पोशा, पाथेड़ी आदि ग्रामों के श्रीसंघों की ओर से लगभग ४०० प्रतिनिधि उपस्थित हुये और इस वर्ष के चातुर्मास के लिये उनकी ओर से विनतियाँ हुई। चरितनायक ने कारण-कार्य पर विचार करके बागरा के संघ की विनती स्वीकार की और फलतः वि०सं० २००६ का चातुर्मास बागरा में होने की जय बोली गई।

व्याख्यान-वाचस्पति चरित्रनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज

बागरा चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० [illegible]
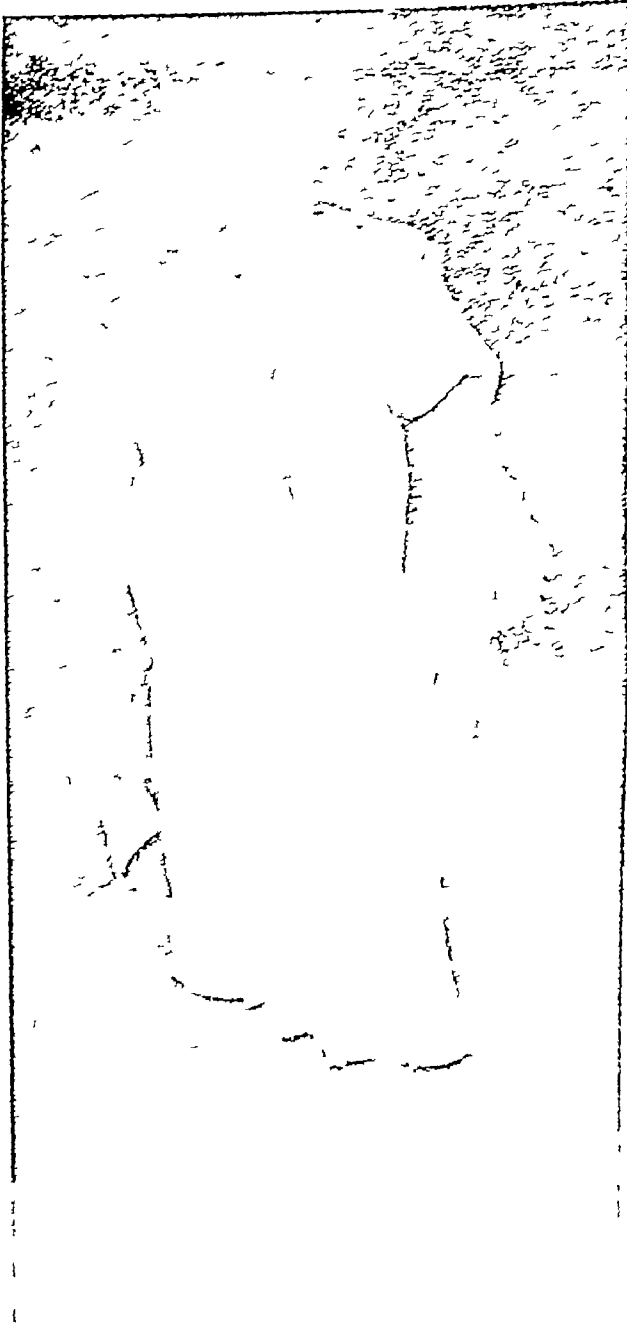
चरितनायक और गुरुदेव के अंतेवासी शिष्यवर मुनि श्री विद्याविजयजी महाराज

चरितनायक यहा से विहार करके मेंगलवा, पोषाा, ऊनड़ी, पाथेड़ी, थलवाड़, धाणसा, सेरणा, सरत, सूरा आदि ग्रामों में विचरते हुये कहीं एक और कहीं दो दिनों का विश्राम लेते हुये आषाढ़ शु० ६ को बागरा में पहुँचे ।

बागरा में ४६ वां चातुर्मास और चरितनायक को मूत्रावरोध की बीमारी

-वि० सं० २००९

●

चरितनायक का आषाढ़ शु० ६ को पुर-प्रवेश बागर-संघ ने धूम-धाम से करवाया । चातुर्मास भर चरितनायक ने व्याख्यान में 'श्री उत्तराध्ययन सूत्र' का पांचवां अध्ययन और भावनाधिकार में 'श्री पृथ्वीचन्द्र-चरित' का वाचन किया । आप ही के सदुपदेश से पुरानी धर्मशाला का जीर्णोद्धार करवाना तथा श्री पार्श्वनाथ-जिनालय की शृंगार-चौकी का निर्माण लगभग एक लक्ष रुपया व्यय करके करवाना बागरा-संघ ने स्वीकृत किया और उसको कार्यान्वित भी कर दिया । आपश्री के सदुपदेश से अन्य धार्मिक व्यय:--

बागरा-संघ ने जालोर दुर्गस्थ जिनालयों के जीर्णोद्धारार्थ रु० १००००),

कोरटाजीतीर्थ के जीर्णोद्धारार्थ रु० १००००),

साधुओं के अभ्यासार्थ रु० ३०००),

श्री माण्डवपुरतीर्थ के जीर्णोद्धारार्थ रु० ५०००),

जम्बूनिया के चैत्यालय के जीर्णोद्धारार्थ रु० ५००),

वासा के मंदिर के जीर्णोद्धारार्थ रु० ५१) अर्पण किये ।

चातुर्मास में चरितनायक को एकदम मूत्रावरोध का रोग हो गया ।

यह रोग आपश्री को पूर्व भी २-३ बार पीड़ित कर चुका था। बागरा के संघ के प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर चरितनायक से इस रोग का पूर्ण उपचार करवा लेने की प्रार्थना की। चरितनायक ने भी वह प्रार्थना स्वीकार करली। निदान जालोर के सहायक डाक्टर के द्वारा ऑपरेशन करवाया गया और कई सप्ताह पर्यंत उपचार चलता रहा। बागरा-संघ ने गुरुदेव के इस रोग को सर्वथा निर्मूल करने में व्यय पूरा २ किया। ता० ६ अक्टूबर के दिन गुरुदेव को मूत्रत्याग में दर्द उत्पन्न हुआ था, उस दिन लेखक भी वही उपस्थित था।

चरितनायक का बीमार पड़ना और बागरा-सघ की सराहनीय सेवा

मूत्ररोग से स्वस्थ होने में चरितनायक को लगभग तीन मास लग गये, तब तक शरद् ऋतु भी आगई। शरद्-ऋतु में अशक्ति के कारण चरितनायक विहार अब नही कर सकते हैं, अतः सरदी पर्यंत आपश्री बागरा में ही विराजे। चै० कृ० ३ को आपश्री ने बागरा से अपनी साधु-मण्डली के सहित विहार किया और आकोली पधारे। आकोली से आपश्री सियाणा पधारे।

भाण्डवपुर तीर्थ में चैत्री पूर्णिमा का मेला और प्रतिष्ठोत्सव

वि० सं० २०१०

●

भाण्डवपुरतीर्थ में प्रति वर्ष चैत्री पूर्णिमा का मेला होता है। वह मेला या तो दियावट्ट-पट्टी की ओर से किया जाता है या कोई श्रीमंत श्रावक की ओर से आमंत्रित किया जाता है। इस वर्ष का मेला सियाणावासी गाँधी मुथा अचलदासजी की ओर से भराया जाने वाला था। इन दिनों में आचार्यश्री अपनी साधु-मण्डली के सहित सियाणा ही विराज रहे थे। मुथा अचलदासजी ने चरितनायक से चैत्री पूर्णिमा की यात्रा करने की प्रार्थना की और चरितनायक ने श्रद्धापूर्वक की गई उक्त विनती को स्वीकार किया। आपश्री

यद्यपि अभी २ बीमारी से उठे हुये ही थे और अशक्ति भी पूरी २ दूर नहीं हुई थी, परन्तु आप में सदा यह स्वभाव देखा गया है कि आप भक्तों की श्रद्धापूर्ण विनती को बहुत ही कम अस्वीकार करते हैं।

चरितनायक सियाणा से विहार करके चैत्री पूर्णिमा के मेले के अवसर पर श्री माण्डवपुर तीर्थ पधार गये। साथ में मुनिश्री लक्ष्मीविजयजी, मुनिश्री विद्याविजयजी, मुनिश्री सागरविजयजी, न्यायविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्तिविजयजी, देवेन्द्रविजयजी, रसिकविजयजी, मंगलविजयजी और यशोविजयजी थे। दियावट्ट-पट्टी के ग्रामों के संघों की ओर से चरितनायक का ग्राम-प्रवेश बड़े ही ठाट से करवाया गया। दियावट्ट-पट्टी के २४ ग्रामों ही के संघ वहाँ चैत्री पूर्णिमा पर उपस्थित थे। उक्त पट्टी के संघों ने एकत्रित होकर तीर्थ की प्रतिष्ठा कराने का प्रस्ताव पास किया और चरितनायक से प्रतिष्ठा निकट भविष्य में ही कराने की उन्होंने प्रार्थना की। इस समय तक तीर्थ का जीर्णोद्धार भी लगभग एक लक्ष रुपया लगकर पूर्णप्राय हो गया था और फलतः प्रतिष्ठा कराने का विचार समयोचित ही था। चरितनायक ने संघ की प्रार्थना स्वीकार करली और ज्येष्ठ शु० १० सोमवार का प्रतिष्ठा-मुहूर्त्त* निश्चित करके जय बोली गई। प्रतिष्ठा के मुहूर्त्त-दिवस में अब

लग्न-मुहूर्त्त-पत्रिका—

* श्री महावीराय नमः, श्रीगौतमाय नमः। श्री ऋद्धि वृद्धि जयो मंगलाभ्युदयश्च। आदित्याद्याः ग्रहाः सर्वे सदाशय सर्वान् कामान् प्रयच्छन्तु यस्यैषा लग्नपत्रिका। श्रीमन्नृपति

लग्नकुण्डली चक्रम्
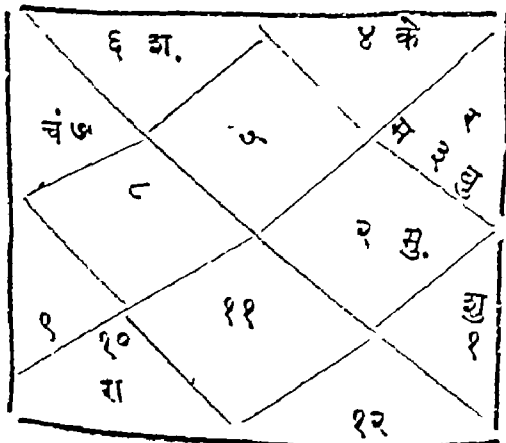
नवांशकुण्डली चक्रम्
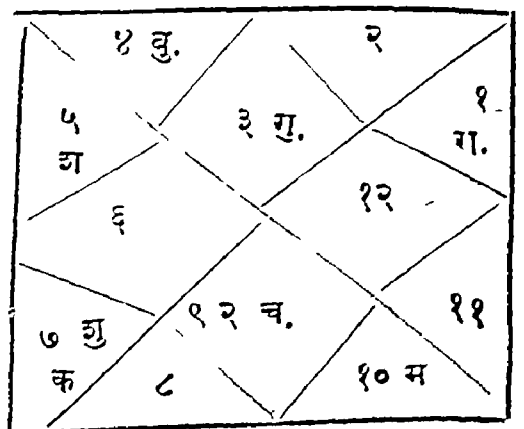
अधिक दिन नहीं रहे थे, अतः चरितनायक का वहीं विराजना संभव रहा और प्रतिष्ठा संबंधी सर्व तैयारियां एवं कार्यवाही आपश्री की तत्त्वावधानता में ही विशेषतः मुनिराज विद्याविजयजी के सहयोग और सम्मति के अनुसार दियावट्ट-पट्टी का संघ करता रहा, जिसका संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है।

मेले के विसर्जित होते ही पट्टी के २४ ग्रामों के संघों की बैठक हुई और पट्टी के ग्रामों के २५ प्रतिनिधियों से व्यवस्थापिका प्रतिष्ठा-समिति का प्रथम निर्माण हुआ और तत्पश्चात् तुरंत ही उन्हीं सदस्यों की नायकता में उपसमितियों का निर्माण करके प्रतिष्ठा सम्बन्धी कार्यों का समुचित विभाजन किया गया। समस्त दियावट्ट-पट्टी अब इसी कार्य में लग गई। जहां चौबीस ग्रामों के संघ एकमत होकर किसी कार्य को उठा लें, वहां उस कार्य के होने में क्या शंका रह सकती है ? फल यही हुआ। थोड़े ही दिनों में सुन्दर एवं भव्य मण्डप की रचना हो गई, ग्राम में ठौर २ नये विश्राम-स्थलों की रचना की गई, ग्राम के बाहर शिविर, चाँदनियाँ लगाकर सहस्रों यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था की गई। भोजन बनाने का स्थान और भोजन कराने का स्थान ४०००० वर्गफीट क्षेत्रफल का रक्खा गया था। इसका अधिकांश भाग चारों ओर एवं ऊपर चाँदनियों से ढक दिया गया था। आकर्षक एवं वर्णनीय विशेष यह रहा कि ग्राम की समस्त अजैन जनता भी अपने-अपने घरों को खाली करके अपने २ कुओं और अरटों पर जा वसी और अपने घरों को प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर आने वाले यात्रियों के ठहरने के लिये पूर्ण खाली छोड़ दिया। यह सहानुभूति एवं सहयोग अन्यत्र बहुत ही कम देखने में आया होगा। श्रीसंघ ने भी ग्रामवासी जनता का उतने ही अच्छे माप पर संमान रक्खा था। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त पट्टी

विक्रमार्क संवत् २०१० शालिवाहन कृत शाके १८७५ वर्षे मासोत्तमेमासे ज्येष्टमासे शुभे धवल-पक्षे दशम्यां तिथौ चन्द्रवासरे घटी ५।४ चित्र नक्षत्रे घटी ३।२० परं स्वातिनक्षत्रे घटी ७।२७ परिघयोगे घटी ११।१३ परं शिवयोगे घटी ०।५४ गरकरणे घटी ५।४ एव पंचाङ्ग शुद्धावत्रदिने श्री सूर्योदयात् इष्टघटी ११-४१, दिनमान घटी ३४-३५ रात्रिमान घटी २५-४५ सिहलग्न वह-मानायां तत्समये श्रीमाण्डवपुर-महावीर जिनचैत्ये विम्बप्रतिष्ठादण्डध्वजकलशारोहणमुहूर्त्तम्।

सं० २०१० जेठ सुदि १० सोमवार को शुभ लग्नांश में जिनप्रतिमा, गुरु एवं अधिष्ठायक मूर्तियाँ—

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक और शिष्य-मण्डल एवं साधु-मण्डल, श्री भाण्डवपुर तीर्थ, प्रतिष्ठा के अवसर पर. वि० सं २०१०

श्री महे नालय, भाराडवपुर तीर्थ
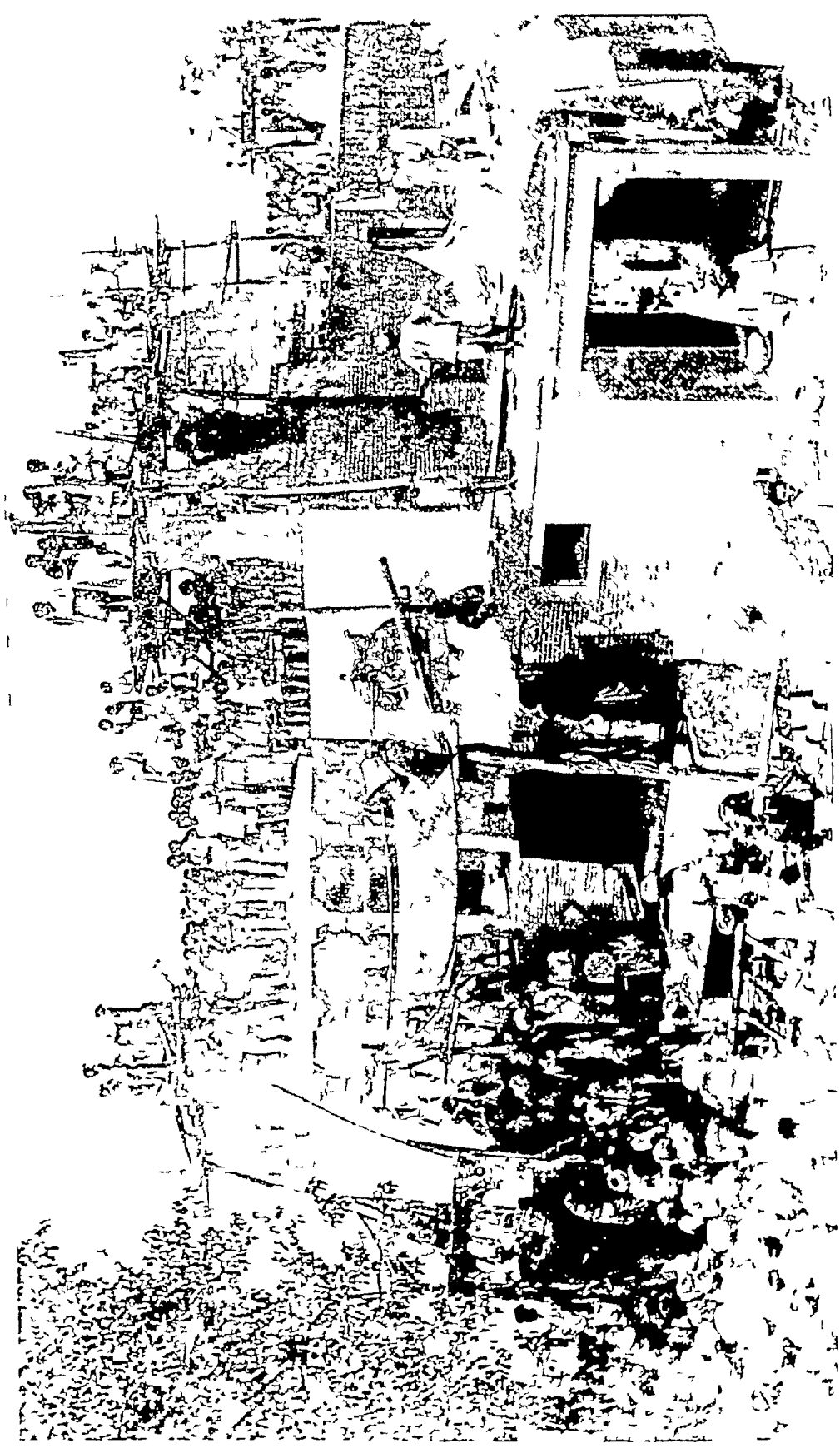
प्रतिष्ठा के अवसर पर वि० सं० २०१०.

एवं समस्त भाराडवपुर इसी कार्य में एकमत एवं एकमम होकर लग गया था। थोड़े दिनों के लिये छोटा-सा भाराडवग्राम सचमुच एक नगर की शोभा को ग्रहण कर चुका था। उद्घोषक-यंत्र (लाउड-स्पीकर) और विद्युत्-प्रकाश की व्यवस्था ने उसको पूरा नगर बना दिया था। प्रतिष्ठा-महोत्सव की कुँकुम-पत्रिका भारत भर में फैली हुई अपनी समस्त समाज को भेजी गई थी। पट्टी के श्रीमंत जन ने इस उत्सव पर अपनी सम्पत्ति का भी खूब खुले हृदय से दान किया था।

व्यवस्थापिका-प्रतिष्ठा-समिति की प्रथम बैठक वैशाख शु० १४ को शुभ मुहूर्त्त में हुई थी और उस प्रथम बैठक में ही अच्छी रकमों का चढ़ावा हुआ जो सचमुच प्रशंसनीय एवं उल्लेखनीय है और उसमें पट्टी में रहे हुये श्रीमंतों की हार्दिक सद्भावना, तीर्थ के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति का परिचय मिलता है।

रु० २७००१) मेंगलवानिवासी शाह हेमाजी, वेजराजजी, मिश्रीमलजी, गेवचंद्र, जुगराज, बेटा-पोता खीमाजी ओत की ओर से मिती ज्ये० शु० १० की नवकारशी।

रु० १७५०१) मेंगलवानिवासी संकलेचा शाह सागरमलजी, ताराचन्द्रजी, नेणमलजी, गुणेशमल, जेठमल, वस्तीचन्द्र, बेटा-पोता परागजी ओत की ओर से मिती ज्ये० शु० ११ की नवकारशी।

रु० ६००१) दाधालनिवासी झोटा शा० समर्थमलजी, हीराचन्द्रजी, चंदनमलजी, डाऊलाल, अमीचन्द्र, बेटा-पोता मुलताणजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ३ प्रातः समय।

रु० ४५०१) दाधालनिवासी वीरवाड़िया शा० हिम्मतमलजी, चुन्नीलालजी, चतरचन्द्र, राणमल, सोहनलाल, बेटा-पोता पेमाजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्येष्ठ ३ सायंकाल को।

रु० ५००१) मेंगलावानिवासी संकलेचा शा० सागरमलजी, कालू-

चन्द्र, डूङ्गरमल, बेटा-पोता हीमताजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ४ प्रातः समय ।

रु० ४५०१) मेंगलवानिवासी संकलेचा शा० लादाजी, हरकाजी, सांकलाजी, वागुलालजी, कुन्दनमल, पारसमल, भंवरलाल, लक्ष्मीचन्द्र, मनोहर-मल, सुमेरमल, जुगराज, सोनमल, हीराचन्द्र, चन्दनमल, मांगीलाल, बेटा-पोता सदाजो की ओर से वरघोड़ा (वानोल) ज्येष्ठ शु० ४ सायंकाल ।

रु० ५१०१) जीवाणानिवासी चतुरगोता बोहरा शाह० शुकराजजी, भंवरमल, धांगड़मल, कानमल, बेटा-पोता जीवाजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्येष्ठ शु० ५ प्रातः समय ।

रु० ४६०१) ऊनड़ीनिवासी बाफणा शा० जवानजी, भेराजी, सूरजमल, वस्तीमल, घेवरचन्द्र, उम्मेदमल, कानमल, देवीचन्द्र, बेटा-पोता फूसाजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ५ सायंकाल ।

रु० ५७०१) मेंगलवानिवासी संकलेचा शा० नेणमल, पारसमल, बेटा-पोता जूठा ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) मिती ज्ये०शु० ६ प्रातः ।

रु० ५५०१) सूराणानिवासी गदैयापारख शा० केसाजी, सोन-मलजी, ऋषभचन्द्र, थानमल, मुन्नीमल, चंपालाल, बेटा-पोता कुंवाजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोल) ज्येष्ठ शु० ६ सायंकाल ।

रु० ५५०१) ऊनड़ीनिवासी बाफणा शा० हिमताजी, मूलाजी, बेटा-पोता करताजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये०शु० ७ प्रातः समय ।

रु० ५५०१) मेंगलवानिवासी संकलेचा शा० छजाजी, माणकजी, त्रिलोकचन्द्र, हीराचन्द्र, दुधमल, मीठालाल, समर्थमल, कुशालचन्द्र, बेटा-पोता जवानजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ७ सायंकाल ।

रु० ६१०१) पाचेड़ीनिवासी श्रीपति राठौड़ शा० वछाजी मुल-तानमल, सुखराज, सुमेरमल, त्रिलोकचन्द्र, मनोहरमल, बेटा-पोता भगाजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ८ प्रातः समय ।

रु० ६१०१) सुराणानिवासी गांधी मुथा शा० सिरेमल, मिश्रीमल, दरगचन्द्रजी, सुखराजजी, लछमणराज, बेटा-पोता गोदाजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ८ सायंकाल ।

रु० ७७०१) सूराणानिवासी चतुरगोत्रीय वोहरा शाह रूपाजी, ओटमलजी, जीतमल, चम्पालाल, बेटा-पोता जयरूपजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ६ प्रातः समय।

रु० ६५०१) ऊनड़ीनिवासी पालरेचा शा० मुलताणजी, खंगारजी, सिरेमल, अनाजी, वस्तीमल, मानमल, रिखबाजी, गोबाजी, बेटा-पोता राजींगजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० ६ सायंकाल ।

रु० ७१०१) मेंगलवानिवासी संकलेचा शाह लादाजी, हरकूचन्द्र, सांकलचन्द्र, बागुलाल, कुन्दनमल, पारसमल, भंवरलाल, लक्ष्मीचन्द्र, मनोहरमल, सुमेरमल, जुगराज, सोनमल, हीराचन्द्र, चंदनमल, मुन्नीलाल, बेटा-पोता सदाजी की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० द्वि० ६ प्रातः ।

रु० ७००१) मेंगलवानिवासी बालगोत्रीय शा० सुरताजी, वछाजी, जानुजी, साहेबाजी, सिरेमल, पुखराज,पछाणमल, सुकराज, रूपचन्द्र, ऊखचंद्र, देशराज,शुकनराज, मांगीलाल, धनराज, थानमल, बागुलाल, बेटा-पोता बालाजी ओत की ओर से वरघोड़ा (वानोला) ज्ये० शु० द्वि० ६ सायंकाल ।

रु० ६२०१) ऊनड़ीनिवासी बालगोत्रीय शा० हीमताजी, तोलाजी, मिश्रीमल, बेटा पोता चेलाजी की ओर से 'शान्तिस्नात्रपूजा' ज्ये०शु० ११ को।

रु० १००१) पोसाणानिवासी श्रीश्रीमाल यशोधन शा० सुकराजजी, धनराजजी, बेटा पोता परतापजी ओत की ओर से 'कुंभस्थापना' ज्ये०शु० ६ को।

रु० २५०१) मेंगलवानिवासी सकलेचा शाह हजारीमल, कुन्दनमल, ताराचंद्र, पारसमल, कालूचंद्र, जुगराज, बेटा-पोता अनाजी की ओर से मंगल-कलश-स्थापना ज्येष्ठ शुक्ला ७ को ।

एक ही दिन और एक ही बैठक मे उक्त प्रकार चढ़ावे की रकमों

के हो जाने पर सचमुच उक्त रकमों के चढ़ाने वाले श्रीमंत एवं धर्मप्रेमी श्रावकों के प्रति आकर्षण का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है। इसी ही प्रकार अन्य बैठकों में भी भारी रकमें आई थी और कुल आय तीन लक्ष से ऊपर हुई बतलायी गई थी। समिति ने ध्वजा चढ़ाने का अधिकार तीर्थ के निर्माता के वंशजों का जो अभी कोमता ग्राम में रहते हैं, उनका ही रक्खा था—यह अत्यन्त सराहनीय निर्णय कहा जा सकता है।

प्रतिष्ठा ज्येष्ठ शु० २ से प्रारम्भ हुई थी और कार्यक्रम ज्ये० शु० ११ तक दसदिनावधिक चलता रहा था। नित्य वरघोडा निकलता था और उसमें थराद का 'श्री यतीन्द्र जैन मण्डल' सराहनीय सेवा बजाता था। नित्य रात्रि को श्री वर्धमान जैन बोर्डिङ्ग, ओसियां की संगीत-मण्डली प्रभुकीर्त्तन करती थी और जनता के चित्त को आह्लादित करती थी। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दियावट्ट-पट्टी के जैन संघ ने व्यय का विचार तनिक भी नही करके भोजन, शोभा-सामग्री पर विपुल धनराशि व्यय की थी। लेखक भी इस उत्सव में सम्मिलित हुआ था, लेकिन अनवकाश के कारण ज्येष्ठ शु० ११ को सायंकाल को वहाँ पहुँच सका था। फिर भी उत्सव की रूप-रेखा का अनुभव करने मे एवं उसको अच्छी प्रकार जानने में कोई कठिनाई जैसी बात नही हो पाई थी। भीनमाल एवं जालोर के प्रगणों में इस प्रकार का भारी प्रतिष्ठोत्सव कई १०० वर्षों में भी नही हुआ था और न सुना गया था—ऐसा इसके विषय में लोग कहते हुये सुने गये थे। चरितनायक के कर-कमलों से हुई प्रतिष्ठाओं में उक्त प्रतिष्ठा का स्थान आय, व्यवस्था एवं मान की दृष्टि से अनुपम कहा जा सकता है।

विशेष ज्ञातव्य यहाँ और यह है कि इस प्रतिष्ठोत्सव में मुनि विद्याविजयजी का श्रम अधिक सराहनीय एवं उनका नाम स्मरणीय है। चरितनायक अपनी ढलती हुई आयु एवं बढ़ती हुई अशक्ति के कारण उतना श्रम भी नहीं कर सकते थे और हर जगह भाग नहीं ले सकते थे, उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति को मुनिराज विद्याविजयजी ने पूरा किया। प्रतिष्ठा समाप्त करके आपश्री वहाँ आषाढ कृ० ९ पर्यंत और विराजे।
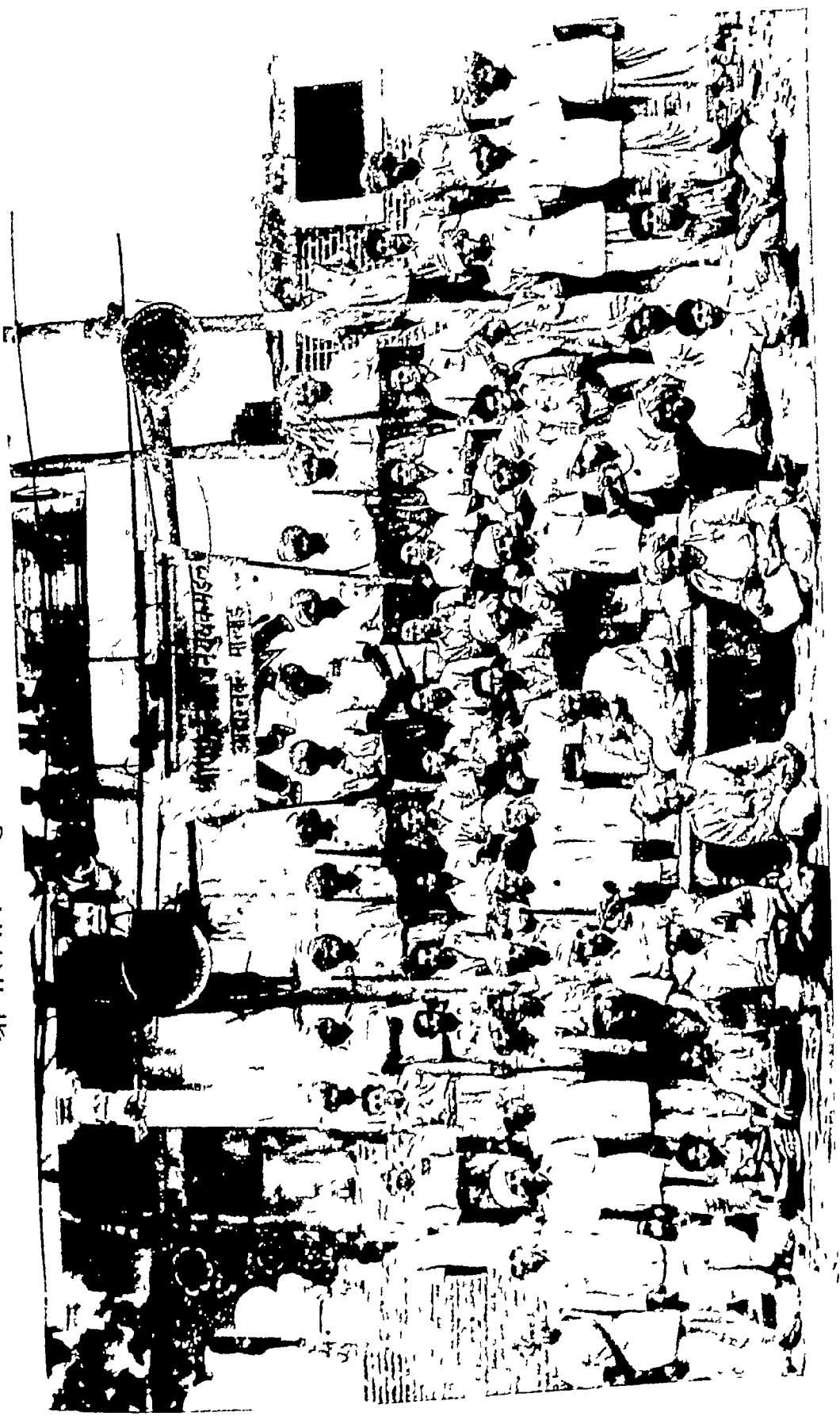
श्री भाण्डवपुर तीर्थ—प्रतिष्ठोत्सव के अवसर पर वि० सं० २०१०

श्री य   न बैण्ड-मण्डल, थराद (काठियावाड़)

इस वर्ष का चातुर्मास सियाणा में होना निश्चित हो चुका था; अतः आषाढ कृ० ९ को आपश्री भाण्डव ग्राम से विहार करके मेंगलवा पधारे। मेंगलवा से चड़ली, थलवाड़, धाणा, सूरा नामक ग्रामों में एक-एक दिवस का विश्राम करते हुये आषाढ़ कृ० १४ को बागरा पधारे। बागरा से आषाढ़ शु० २ को विहार करके आकोली पधारे। आकोली में भी आपश्री पंचमी पर्यंत विराजे। वहाँ से आषाढ शु० ६ को विहार करके सियाणा पधार गये।

सियाणा में ४७ वां चातुर्मास, मुनि वल्लभविजयजी का देहावसान और दो मुनि-दीक्षायें

वि० सं० २०१०

●

'प्राग्वाट-इतिहास द्वितीय भाग' के लिखाने का निश्चय

चरितनायक का सियाणा में चातुर्मासार्थ पुर-प्रवेश आषाढ़ शु० ६ शुक्रवार को बड़े ठाट-बाट एवं धूम-धाम से हुआ। चातुर्मास भर बड़ा ठाट रहा। शारीरिक अशक्ति के कारण अब आपश्री व्याख्यान-परिषद् में दो या तीन घंटों के लिये बैठ नहीं सकते थे, अतः आपश्री की आज्ञा से व्याख्यान मुनिराज न्यायविजयजी प्रायः बाचते थे और विशेष पर्व एवं तिथियों पर आपश्री व्याख्यान देते थे। चातुर्मास मे लेखक भी आपश्री के दर्शन करने के लिये दो बार गया था। एक बार श्री ताराचन्द्रजी मेघराजजी, मंत्रीः श्री 'प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति,' स्टेशन राणी के साथ । श्री ताराचन्द्रजी और मेरे बीच नगण्य परन्तु विवादास्पद कुछ नवीन प्रश्न उठ खड़े होने पर हम दोनो उनका निर्णय कराने के लिये चरितनायक की सेवा में उपस्थित हुये। आपश्री ने न्याय को तोल कर अपना निर्णय दिया जो हम दोनों को मान्य हुआ। लेखक आपके उस न्याय एवं सत्यप्रेम की यहाँ भूरि २ प्रशंसा करता है; इसलिये नहीं कि वह निर्णय पूर्णतः मेरी भावना के अनुसार रहा; परन्तु केवल इसलिये कि उस

निर्णय में सत्य का मण्डन और न्याय का पालन था। यह हो जाने पर 'प्राग्वाट-इतिहास' के द्वितीय भाग के लिखाने के संबन्ध में भी आपश्री की समक्षता में यह निश्चय हो गया कि 'प्राग्वाट-इतिहास द्वि०भाग' उसके लेखन-कार्य के प्रारम्भ करने के दिन से २० मास में पूर्ण करके मुझको 'प्रा० इति० प्र० समिति' को अर्पण कर देना चाहिए। बीस मास में १८ मास लिखने संबंधी और २ मास यात्रा के लिये रक्खे गये। लिखाई के श्रम के लिये ३०००) तीन सहस्र रुपया तथा यात्रा के लिये अलग वही २००) मासिक का वेतन एवं समस्त बाहरी व्यय समिति के ऊपर रक्खा गया। इस प्रकार 'प्राग्वाट-इतिहास द्वितीय भाग' का रचना सम्बन्धी निश्चय भी आपश्री की प्रमुखता में ही हुआ।

द्वितीय बार जाने का कारण आपश्री को प्रस्तुत 'गुरु-चरित' सुनाना था। यह चरित सन् १९५१ में ही दस मास भर श्रम करके लिखा जा चुका था; परन्तु लेखक को 'प्राग्वाट-इतिहास' में सदा व्यस्त रहने के कारण चरित-नायक को इसको आदि से अंत तक पढ़कर सुनाने का और इसमें आवश्यक परिवर्त्तन एवं परिवर्धन करने का लम्बा समय नही मिल सका था। वि०सं० २००९ में बागरा में हुये चातुर्मास में भी लेखक प्रस्तुत 'गुरु-चरित' को लेकर बागरा में उपस्थित हुआ था, परन्तु दुर्भाग्य से आपश्री अकस्मात् मूत्रा-वरोध से पीड़ित हो उठे और वहाँ भी लेखक आपके समक्ष इसका भलीविध वाचन नही कर सका। इस वार लेखक भीलवाड़ा से ता० १३ नवम्बर को रवाना होकर सियाणा पहुँचा। ता० १४ शनिश्चर से प्रस्तुत ग्रंथ का वाचन प्रारम्भ किया था जो ता० २१ शनिश्चर को पूर्ण हुआ।

लेखक ने देखा कि सियाणा-संघ आगन्तुक दर्शनार्थी संघों, सद्गृहस्थों एवं व्यक्तियों के आतिथ्य में खूब दिल-थैली खोल कर खर्च कर रहा था। इस चातुर्मास में विशेष उल्लेखनीय यह बात रही कि चरितनायक स्वस्थ रहे और आपके स्वास्थ्य में कभी भी कोई गड़बड़ नहीं हो पायी। मुनिराज विद्याविजयजी यहा विशेषतः अधिक स्मरणीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं। आप ही चरितनायक के खान-पान, औषध-उपचार का विशेष ध्यान रखते

हैं। आप अपना जीवन ही चरितनायक के स्वास्थ्य को बनाये रखने में लगाये हुये है यह कहा जा सकता है।

मुनि श्री वल्लभविजयजी पैंतालीस वर्ष के दीक्षित साधु थे। उनकी ग्रीवा में केन्सर-व्याधि उत्पन्न हुई और उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। कुशल सर्जन एवं डाक्टरों ने दो-तीन बार ऑपरेशन किया; परन्तु वह भी कुछ लाभ नहीं दे सका। मुनि इतने अशक्त हो गये थे कि चलना-फिरना भी उनके लिये कठिन हो गया था। इस कारण चरितनायक को भी चातुर्मास पूर्ण होने पर भी सियाणा में ही रुकना पड़ा।

मुनि वल्लभविजयजी का बीमारी से ग्रस्त होना। आचार्यदेव का सियाणा में रुकाव।

अंत में बीमार मुनि कई मास बीमार रह कर माघ कृ० अमावस्या को प्रातः साढ़े आठ बजे समाधिपूर्वक देवधाम पधारे। सियाणा के श्रीसंघ ने दिवंगत मुनिराज की बीमारी का उपचार करने में कुछ भी कमी नही रक्खी थी और उनका दाह-संस्कार भी भारी धूम-धाम के साथ में किया था। बागरा और आकोली आदि दो-दो, चार-चार कोस के अंतर वाले ग्रामों से अच्छी संख्या में स्त्री-पुरुष मृत्युप्राप्त मुनि के अंतिम दर्शन करने के लिये एवं अग्नि-संस्कार में सम्मिलित होने के लिये उपस्थित हो गये थे। लगभग तीन सहस्र से ऊपर स्त्री-पुरुष दाह-संस्कार में उपस्थित हुये थे। स्वर्गस्थ मुनि की सेवा मुनिराज विद्याविजयजी और मुनिराज कल्याणविजयजी ने पूरी २ की थी। ये दोनों मुनिवर यहा अत्यन्त धन्यवाद के पात्र हैं। जिनेश्वरदेव स्वर्गस्थ मुनिराज को शान्ति प्रदान करें।

बीमार मुनि का देहावसान

जावरावासी भैंरूलालजी धाड़ीवाल के पुत्र कान्तिलाल और थराद-वासी सरूपचंद्रजी धरू के पुत्र पूनमचंद्र चरितनायक की सेवा मे गत आठ वर्षों से रहते आ रहे थे। दोनो आवश्यक साध्वाचार, क्रिया-सूत्र अच्छी भाँति सीख चुके थे। संस्कृत व्याकरण का भी कुछ २ अभ्यास कर चुके थे और अध्ययन दोनों का चालू ही था। उक्त दोनों युवक चरितनायक से इन दो-तीन वर्षों में उनको भागवती-दीक्षा देने की प्रार्थना कर चुके थे। निदान

सियाणा में दो दीक्षा तत्पश्चात् विहार

चरितनायक ने उनके विद्याज्ञान, भावना और वय की योग्यता पर विचार करके दीक्षा देना स्वीकार कर लिया। सियाणा के संघ के अत्याग्रह से यह दीक्षा-कार्य सियाणा में ही सम्पन्न करना घोषित किया गया। दीक्षा ग्रहण करने वाले दोनों युवकों के माता, पिता एवं निकट संबंधियों को इस कार्य से पत्र द्वारा सूचित किया गया। दीक्षा-मुहूर्त्त के पहिले दोनों युवकों के माता, पिता, बहन, बहनोई एवं कई निकट संबंधी सियाणा में आ पहुँचे और उन्होंने दोनों युवकों को दीक्षा नहीं लेने पर भांति २ से समझाया; परन्तु दोनों युवक तिल भर अपने निश्चय से नहीं डिगे। अंत में दोनों युवकों के माता-पिता, संबंधियों ने गुरुदेव के समक्ष उपस्थित होकर दोनों को दीक्षा देने की आज्ञा दे दी। इस प्रकार वि० सं० २०१० माघ शु० ४ रविवार को शुभ मुहूर्त्त में उक्त दोनों विरागी युवकों को दीक्षा देना निश्चित किया गया।

सियाणा के संघ की सोत्साह बैठक हुई और देवपूजाओं, वरघोडों और बानोलों के चढ़ावे हुये। संघ ने संघवी जयराज हिन्दुजी और संघवी सिरेमल खूमाजी की चढ़ती भावना और उत्साह देखकर प्रथम और अंतिम दिन का बानोला, वरघोड़ा निकालने का और वस्त्रादि वहोराने का उनको आदेश दिया तथा मध्यवर्त्ती पांच दिवसों में पूजा, वानोला एवं वरघोड़ा निकालने का कार्य संघ के ऊपर रक्खा।

दीक्षोत्सव की तैयारियां होने लगीं। माघ कृ० १२ रविवार से श्री सुविधिनाथ बड़े जिनालय के परिकोष्ठ के खुले हुये आंगण में अट्ठाई-महोत्सव प्रारम्भ हुआ। भारी सज-धज से प्रतिदिन पूजायें पढ़ाई गईं, वानोला और वरघोड़ा आदि निकाले गये। भीनमाल, जालोर, बागरा, आकोली, डूडसी, थराद, सिरोही आदि कई ग्राम एवं नगरों से भावुक सज्जन दीक्षोत्सव में सम्मिलित होने के लिये अच्छी संख्या में आये। माघ शु० ४ रविवार के दिन शुभ मुहूर्त्तलग्नवेला में पूर्व दिशा में नदी तट पर स्थित विशाल वटवृक्ष की सघन छाया के नीचे भारी जन-मेदिनी के मध्य जय-रव और मंगल-ध्वनियों, मगलगीतों एवं वाद्ययन्त्रों की मनोहर स्वर लहरियों से गुँजित वातावरण में चरितनायक ने दोनों युवकों को भागवतीदीक्षा प्रदान की।

चरितनायक द्वारा दीक्षित मुनि-मण्डल
मु० वल्लभविजय जी
मु० विद्याविजय जी
मु० सागरविजय जी
मु० न्यायविजय जी
मु० लावण्यविजय जी
मु० हेमेन्द्रविजय जी
मु० रगविजय जी
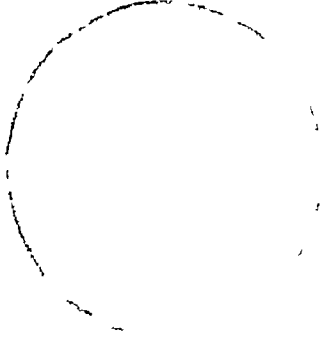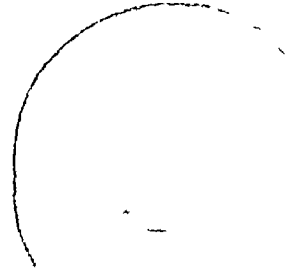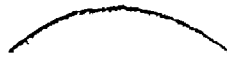
चरितनायक
चरितनायक द्वारा दीक्षित बाल-मुनिगण
मु० कान्तिविजय जी
मु० सौभाग्यविजय जी
मु० शान्तिविजय जी
मु० देवेन्द्रविजय जी
मु० रसिकविजय जी
मु० जयन्तविजय जी
मु० जयप्रभविजय जी
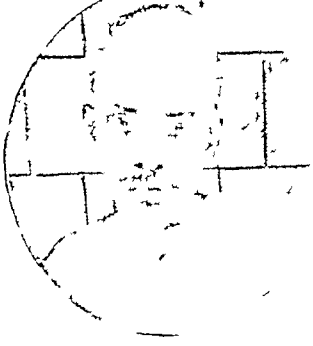
इस समय तक दोनों नवदीक्षित मुनियों की आयु लगभग सत्रह-सत्रह वर्ष की हो चुकी थी। श्री पूनमचन्द्र धरू का मुनि-नाम जयन्तविजयजी और श्री कान्तिलाल धाड़ीवाल का मुनि-नाम जयप्रभविजयजी रक्खा गया।

दीक्षोत्सव की सानन्द समाप्ति के उपलक्ष में माघ शु० ४ के दिन संघवी जसराजजी और संघवी सिरेमलजी ने नवकारशी की और माघ शु० ५ के दिन शा. भूरमल भल्लाजी ने नवकारशी की।

दीक्षोत्सव के पश्चात् चरितनायक कुछ दिवस और सियाणा में ही विराजे। आकोली-संघ का अत्याग्रह होने से आपश्री अपनी साधुमण्डली के सहित फा० कृ० ७ को सियाणा से विहार करके आकोली पधारे।

श्री साध्वी-व्याख्यान-समीक्षा — जैन समाज के चतुर्विध-संघ में साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविकायें चार अंग हैं। साध्वी-अंग पर इस मत को लेकर कुछ विवाद है कि साध्वी व्याख्यान वाच सकती है अथवा नहीं। इस मत को लेकर आचार्य श्री ने एक निबंध उक्त शीर्षक से क्राऊन १६ पृष्ठीय पृ० संख्या २६ में इसी वर्ष श्री राजेन्द्र-प्रवचन कार्यालय, खुडाला से श्री महोदय प्रिं० प्रेस, भावनगर में छपवा कर प्रकाशित करवाया है। आधुनिक युग में पुनः स्त्रीवर्ग को पुरुष के बराबर स्थान दिलाने के अहिर्निश प्रयत्न हो रहे हैं, इस मत के साथ मे आचार्यश्री का उक्त निबंध जैन विचार-धारा को लेकर जो प्रकाशित हुआ है पठनीय है।

———

चरितनायक का विहार-वर्णन और आहोर में ४८ वां चातुर्मास

वि० सं० २०११

आकोली में गुरुदेव का सहमुनिमण्डल एवं शिष्यवर्ग के साथ नगर प्रवेश फा० कृ० ७ को अति धाम-धूम के साथ हुआ। यहां आपश्री तीन दिवस विराजे और तत्पश्चात् बागरा पधारे। बागरा आकोली से लगभग चार मील के अन्तर पर ही बसा हुआ है। बागरा में आपश्री आठ दिवस पर्यंत अर्थात् फा० शु० ३ तक विराजे। मुनि-वर्ग में कई वर्षों से 'श्रीमद् राजेन्द्रसूरि-अर्ध-शताब्दी' मनाने की विचारणा तो चल ही रही थी। वह चलते २ बाहर भी फैली। इसमें ही लगभग ७-८ वर्ष व्यतीत हो गये और इसका भी यह कारण था कि अभी अर्ध-शताब्दी की अवधि में वर्ष भी घट रहे थे। अब तो केवल अवधि के पूर्ण होने में दो ही वर्ष अवशिष्ट रह गये थे; अतः वह मन्त्रणा अथवा विचारणा स्वभावतः बाहर आनी ही थी और वह सर्व प्रथम बागरा में संघ के समक्ष आयी। लेखक भी समय-समय पर जब-जब गुरुदेव एवं मुनि-मण्डल के दर्शनार्थ इन पिछले ७-८ वर्षों में जाता रहा है 'श्रीमद् राजेन्द्रसूरि-अर्ध-शताब्दी' के मनाने की मंत्रणा एवं विचारणा में भाग लेता रहा है। श्रीमद् स्व० जैनाचार्य राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज का परिचय पूर्व के पृष्ठों में पाठकों के समक्ष आ चुका है। यहाँ नवीनतः उनके विषय में कुछ नहीं कहना अथवा लिखना है। केवल इतना ही दिखाना है कि ऐसे दिग्गज एवं उद्‌भट तपस्वी, विद्वान् की अर्ध-शताब्दी मनाने में एक लक्ष से ऊपर निधि का व्यय तो साधारणतः सम्भवित है ही; परन्तु आज के युग में पैसे की समस्या बड़ी ही विकट जो है। गुरुदेव का प्रताप और तेज ऐसी समस्याओं को सुलझाने में सदा सफल ही रहे हैं। मुनिराज साहब विद्याविजयजी ने ज्योंही 'श्रीमद् राजेन्द्रसूरि-

बागरा में श्रीमद् 'राजेन्द्रसूरि-अर्ध-शताब्दी' पर विचार

अर्ध-शताब्दी' मनाने का विचार श्री बागरा-संघ के समक्ष रक्खा, उसने रु० ११०००) (ग्यारह सहस्र) से इस शुभ कार्य में योगदान देना स्वीकृत किया और साथ में यह भी कहा कि अवसर पर यथाशक्ति इस निधि में वृद्धि भी की जा सकेगी।

आहोर की ओर विहार और चातुर्मास की जय

बागरा से चरितनायक फा० शु० ३ को विहार करके डूडसी एक दिन ठहर कर फा० शु० ४ को सियाणा पधारे। सियाणा मे आपश्री १५ दिवस विराजे। आहोर से सियाणा में एक बरात आयी हुई थी। आपश्री की सेवा में आहोर के श्रावकगण उपस्थित हुये और आपश्री से आहोर मे आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की। आहोर के त्रिस्तुतिक सम्प्रदाय में दो दल हैं। आचार्यश्री ने कहा कि अगर सर्व संघ सम्मिलित रूप से चातुर्मास कराने की विनती करता है तो वह सम्भावित-सा ही समझिये। तत्पश्चात् वहाँ से आपश्री चै०कृ० ६ को विहार करके मायलावास, मेडा होते हुये चै० कृ० ८ मी को आहोर पधारे। यहाँ आपश्री अठारह दिवस पर्यंत विराजे। इन दिनों में ही चातुर्मासार्थ विनतियाँ करने के लिये कई ग्राम और नगरों के श्रीसंघो की ओर से प्रतिनिधि-मण्डल आपश्री की सेवा में आहोर में उपस्थित हुये। कारण एवं कार्य पर विचार करके सं० २०११ का चातुर्मास आहोर में ही करना आपश्री ने स्वीकृत किया।

आहोर में आपश्री के सम्प्रदाय के लगभग ५०० घर है। इन ५०० घर में से लगभग ७०-७५ घर आपश्री के साधु-मण्डल से कई वर्षों से बहिष्कृत एक साधु के रागी हैं। ये साधु यद्यपि पढ़े-लिखे हैं; परन्तु स्वभाव चाहे साधु-अवस्था हो, चाहे गृहस्थावस्था अपना प्रभाव दिखाता ही है। ये साधु ढोंगी हैं और यंत्र-मन्त्र-तंत्र करने का सदा ढोंग रचते हैं। और फलतः भोले श्रावक, पुत्र और धन के इच्छुक जन इनको मान देते हैं। इस ही प्रकार जैन समाज अपने दुर्भाग्य को कई शताब्दियों से बुलाती चली आ रही है और वह खण्ड-खंडित होती जाती हुई भी अपनी २ बात और मूंछ के बाल को रोती हुई नहीं सभल रही है। यह पारस्परिक

ढूंढ़ता ही जैन समाज का सर्वनाश कर रही है और करेगी। परन्तु इस बार आहोर के दोनों दलों ने आचार्यश्री से सम्मिलित रूप से चातुर्मास करने की प्रार्थना की और वह स्वीकृत हुई। शाह ताराचंद्र किस्तूरचंद्रजी की ओर से चै०शु० २ से चै०शु० ९ तक अष्टाह्निका-महोत्सव के सहित श्री वीशस्थानकतप का उजमणा था; अतः आपश्री चै० शु० ९ मी पर्यंत आहोर में ही विराजे।

गुढ़ा में वीशस्थानक का उजमणा, श्री केसरियाजी तीर्थ के लिये संघ का निष्क्रमण और श्री यतीन्द्रसूरि-साहित्य-मंदिर की प्रतिष्ठा

चै० शु० १० को आपश्री ने आहोर से गुढ़ाबालोतरा के लिये अपनी साधु-मण्डली के सहित विहार किया। श्रीसंघ-गुढा ने आचार्यश्री का नगर-प्रवेश सज-धज से करवाया। गुढ़ा में भी चै०शु० २ से शाह रत्नचंद्र जीवाजी की ओर से अष्टाह्निका-महोत्सव के सहित वीशस्थानकतप का उजमणा चल रहा था और उसकी पूर्णाहुति चै०शु० १० मी को ही थी। चरितनायक इसको लक्ष्य में रखकर ही आहोर से गुढ़ा को इसी पूर्णाहुति के दिन पर पधारे थे। आपश्री के पदार्पण से संघ में आनन्द बढ़ा और तप की पूर्णाहुति गुरुदेव की तत्त्वावधानता में हुई।

वीशस्थानकतप

चरितनायक के भक्तगण में शाह रत्नचंद्र जीवाजी का घर गुढ़ा के श्रीसंघ में विशेष प्रतिष्ठित एवं संमानित है। शाह रत्नचंद्र जीवाजी का विचार श्री केसरिया तीर्थ की संघ-यात्रा रेल द्वारा करने का कतिपय समय से हो रहा था। इस वर्ष यह संघ-यात्रा करने का विचार उन्होंने दृढ़ सा कर लिया था। गुरुदेव का गुढ़ा मे ज्योंही पदार्पण हुआ, उन्होने अवसर देखकर गुरुदेव से अपना विचार निवेदन किया। गुरुदेव ने सम्मति प्रदान करदी और शुभ मुहूर्त्त भी निश्चित कर दिया। स्पेशियल ट्रेन का प्रबंध करवाया गया। संघ ने शुभ मुहूर्त्त मे गुढ़ा से पैदल प्रयाण किया। संघ मार्ग में उम्मेदपुर, तखतगढ़, साण्डेराव होता हुआ और वहाँ विश्राम करता हुआ स्टे० फालना पहुँचा। यहाँ तक आते-आते संघ-यात्रा मे लगभग १५०० उपरात यात्री

श्री केसरियाजी तीर्थ के लिये सघ की यात्रा

सम्मिलित हो गये थे। संघ फालना स्टे० से स्पेशियल ट्रेन में बैठा। फालना स्टे० तक गुरुदेव की आज्ञा से मुनिश्री विद्याविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्तिविजयजी, देवेन्द्रविजयजी, जयंतविजयजी और जयप्रभविजयजी सात मुनि संघ के साथ में गये थे। फालना स्टे० पर संघ का अच्छा स्वागत हुआ। संघ स्पेशियल ट्रेन में बैठ कर श्री केसरियाजी तीर्थ के लिये रवाना हुआ और मुनिगण फालना से लौटकर पुनः गुढ़ा पधार गये।

श्री यतीन्द्रसूरि-साहित्य-मंदिर की प्रतिष्ठा

जैसा पूर्व लिखा जा चुका है कि गुरुदेव के सदुपदेश से गुढा के श्रीसंघ ने श्री सौधर्मबृहत्तपागच्छीय जैन धर्मशाला में ही श्री 'यतीन्द्रसूरि-साहित्य जैन ज्ञान-भण्डार' के निमित्त सगमरमर-प्रस्तर से ज्ञान-मदिर का निर्माण कार्त्तिक पूर्णिमा वि०सं० २०१०में प्रारंभ कर दिया था। वह ज्ञान-मदिर अब पूर्णरूपेण बनकर तैयार था। गुरुदेव अब वहाँ सहसाधु मण्डल एवं शिष्य-मण्डल के साथ में पधारे हुये थे ही। श्रीसंघ-गुढा ने यह उपयुक्त अवसर देखकर गुरुदेव से ज्ञान-मंदिर की प्रतिष्ठा करवाने की विनती की। गुरुदेव ने सघ की यह विनती स्वीकार की और फलतः वि०सं० २०१० वै० शु० ५ को शुभ मुहूर्त्त में अति धूम धाम के साथ श्री यतीन्द्र-साहित्य-भण्डार की उक्त ज्ञान-मंदिर मे प्रतिष्ठा की गई। इस समय इस ज्ञान-मंदिर में ८००० (आठ सहस्र) पुस्तकें हैं, जो गुरुदेव द्वारा वि०सं० १९८० से वि० सं० २०११ तक के काल में प्रकाशित, रचित एव संग्रहीत हैं। ये पुस्तकें दो भागों में विभक्त हैं—आगम और सार्वजनिक। आगम ग्रथ पत्रकार है और वे १४५ बण्डलों में बाधे हुये हैं। सार्वजनिक साहित्य के २६७ बण्डल हैं। मुनि श्री लक्ष्मीविजयजी साहब द्वारा संग्रहीत साहित्य भी इसी ज्ञान-मदिर में प्रतिष्ठित है। आपकी लगभग ४००० (चार सहस्र) पुस्तकें हैं, जो १६१ बण्डलों मे बंधी हुई हैं।

गुरुदेव द्वारा वि० सं० १९५४ से वि० सं० १९७९ तक रचित, प्रकाशित एवं संग्रहीत साहित्य रतलाम (मालवा) मे 'श्री यतीन्द्र-सरस्वती जैन भण्डार' के नाम से प्रतिष्ठित है।

गुढ़ा से गुरुदेव ने सहमुनि-मण्डल वै० शु० १२ को विहार किया और वीठुड़ा, थूम्भा और कवराड़ा स्पर्शते हुये वै०शु० पूर्णिमा को भूति पधारे।

चरितनायक सह मुनि-मण्डल भूति में ज्ये० कृ० १३ तक विराजे। भूति से थोड़ी ही दूरी पर श्री कंवलातीर्थ एक छोटा तीर्थ है। गुरुदेव और साधु-मण्डल की इच्छा उक्त तीर्थ के दर्शन करने की हुई। आपश्री के सदुपदेश से भूति से ज्ये० कृ० ११ को श्री कंवलातीर्थ के लिये भूति से चतुर्विध संघ निकला। संघ में स्त्री, पुरुष लगभग ३५० थे। तीन साध्वियां भी इस संघ में थीं। इस प्रकार यह चतुर्विध संघ श्री कंवलातीर्थ को ज्ये० कृ० ११ को गया और उस दिन वहीं ठहरा। शाह अनराजजी भूतिवाले और शाह पुखराजजी पावा वाले की ओर से नवकारशियां हुईं। ज्ये० कृ० १२ को संघ पुनः भूति लौट आया। दूसरे दिन ही ज्ये० कृ० १३ को आपश्री ने भूति से विहार कर दिया।

कंवला तीर्थ की यात्रा

४८— वि० सं० २०११ में आहोर में चातुर्मास:—

चरितनायक ज्ये० कृ० १३ को भूति से विहार करके नारणा, थूम्भा, विठुडा होते हुये गुढ़ा में पधारे और वहाँ ज्ये० शु० ४ तक विराजे। आहोर-संघ के प्रतिनिधि गुढ़ा में चरितनायक की सेवा में पुनः उपस्थित हुये और चरितनायक से आहोर की ओर विहार करने की प्रार्थना की। गुढ़ा से आपश्री ने ज्ये० शु० ५ मी को प्रातः विहार किया और उसी रोज आहोर पधार गये। आहोर के संघ ने चरितनायक का नगर-प्रवेश बड़ी ही धूम-धाम एवं भक्तिभावपूर्वक करवाया। आपका चातुर्मास आहोर में ही होना पूर्व निश्चित हो ही चुका था; अतः आपश्री ने आहोर में ही स्थिरता रक्खी।

इस चातुर्मास में आपश्री की सेवा में वयोवृद्ध मुनिवर लक्ष्मीविजयजी, कविमुनि विद्याविजयजी, ज्योतिषपंडित मुनि सागरानंदविजयजी, संस्कृत-पंडित मुनि कल्याणविजयजी, कान्तिविजयजी, सौभाग्यविजयजी, शान्ति-विजयजी, देवेन्द्रविजयजी, रसिकविजयजी, जयन्तविजयजी और जयप्रभ-विजयजी ११ मुनि ठाणा उपस्थित थे।

व्याख्यान में नित्य 'श्रीसूत्रकृताङ्गजीसूत्रसटीक' और भावनाधिकार में 'श्री मलयसुन्दरीचरित्र' पद्यबद्ध का वाचन किया गया। गुरुदेव के विराजने से धर्म-क्रिया एवं तप व्रत निम्नवत् हुये।

सामायिक	५२०१	आयंबिल	१५०१	अट्ठाई	११
प्रतिक्रमण	१०००१	उपवास	१०००१	पचरङ्गी	१
पौषध	१००१	बेला	५०१	पूजा	११
दिशावकासिक	३०१	तेला	३०१	प्रभावना	२१
वियासणा	३००१	चोला	२१	चैत्यप्रवाड़ी	५
एकासणा	२५०१	द्वादशभक्त	११	दशउपवास	१

वीशस्थानकतप-उद्यापनः—प्राग्वाटज्ञातीय शाह प्रेमचन्द्र, छोगालाल, मूलचन्द्र, वछराजजी, नरसिंहजी की ओर से अट्ठाई-महोत्सव के साथ में आश्विन शुक्ला १० से का० कृ० ३ तक आचार्यश्री की तत्त्वावधानता में यह तप उजमा गया। उपरोक्त परिवार ने रु० २००००) बीस सहस्र की लागत से स्वविनिर्मित श्री अंबिका-भवन में श्री गिरनारतीर्थ-पर्वत, श्रीसिद्धाचल-पर्वत की रचनायें करवाईं और दीवारों पर तीन चित्रः—पार्श्वनाथ-चित्र, माता त्रिशला का चौदह स्वप्न देखती हुई का चित्र और भगवान् ऋषभदेव का श्रेयांस्कुमार के हाथ से इक्षु-रस के १०८ घड़ों से पारणा करने का चित्र बनवाये गये। ये चित्र सुन्दर और प्रभावक बनाये गये थे। उद्यापन-कर्ता-परिवार ने विद्युत्-प्रकाश एवं उद्घोषक-यंत्र की भी व्यवस्था की थी; जिससे आठों ही दिन-गायन, भजन और भाषणों का कार्य-क्रम अच्छा निर्वहित रहा। इस उद्यापन में उक्त परिवार ने लगभग रु० २००००) व्यय किया। अंत में १०८ अभिषेकवाली महाशान्ति-स्नात्रपूजा पढ़ाई गई और ग्राम के चतुर्दिक् अभिमंत्रित पूत जल धारा दी गई और स्वामीवात्सल्य हुआ।

गुरुदेव और साधु-मण्डल के दर्शन करने के लिये निकटवर्त्ती ग्राम, नगरों से तथा मालवा, मेवाड़ आदि प्रान्तों के ग्राम, नगरों से कई सद्गृहस्थ श्रावक आये और आहोर के संघ ने उनकी अच्छी सेवाभक्ति की जो स्तुत्य है।

आहोर में जैसा पूर्व लिखा जा चुका है चरितनायक के सम्प्रदाय के लगभग ५०० घर हैं। थराद में हुये वि० सं० २००४-५ के चातुर्मासों के वर्णन में पाठक पूर्व पढ़ चुके हैं कि चरितनायक एवं मुनिराज सा० विद्याविजयजी का अनिष्ट करने के लिये एक, साधुजी चरितनायक के सम्प्रदाय से कई वर्षों से बहिष्कृत हैं, दूर बैठे छल-छमंद करवाते रहे थे और अंत में उनकी कोई युक्ति सफल नहीं हुई थी और अतिरिक्त लज्जा और अपयश के उनको कुछ नही हाथ लगा था। इस वर्ष उक्त ५०० घरों में कुछ घरवालों ने इस ठहराव के कि एक सम्प्रदाय के दो साधुओं का अलग २ चातुर्मास नहीं करवाने के विरोध में भी उक्त छल-छमंद-प्रिय साधु का उनके बहकावे में आकर आहोर में चातुर्मास करवाया। आश्चर्य तो अधिक यह है कि ये ही घर गुरुदेव का चातुर्मास कराने की विनती करने में भी संमिलित थे। परिणाम यह आया कि उक्त ५०० घरों में से क्लेशप्रिय ७५ घर उक्त अधिनियम को भंग करके उक्त साधु के पक्षवर्त्ती रहकर इस प्रकार अलग पड़ गये। भोले श्रावक केवल वेष और ममत्व पर मरते हैं और वेषधारी साधुओं को तो फिर इससे ऊपर क्या चाहिए। अतिरिक्त इसके चातुर्मास भर बड़ा आनन्द रहा और तपों की समयानुसार अच्छी आराधना हुई।

इस चातुर्मास का एवं इस वर्ष का वर्णन समाप्त किया जाय इसके पूर्व वि० सं० २०११ में चरितनायक द्वारा रचित एवं प्रकाशित पुस्तकों का पाठकों को परिचय देना ठीक समझता हूँ।

साधु-प्रतिक्रमणसूत्र (सार्थ हिन्दी)—रचना वि० सं० २०१०। साइज अठपेजी क्राउन। पृ० सं० १८०। कपड़े की पक्की जिल्द। इस वर्ष इसको बागरानिवासी शाह वनेचंद्रजी खुशालजी ने श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में छपवाकर इसकी १००० प्रतिया प्रकाशित की। मू० रु० २)

इस पुस्तक में जैनशास्त्रों में साधुओं के लिये जो प्रतिक्रमण-विधि दी हुई है, उसको आपश्री ने अर्थसहित प्रकाशित की है। वे साधु जो थोडे पढे हुये होते हैं, उनके लिये यह पुस्तक अधिक उपयोगी है। इसमे ही पृ० १२५ से १७८ पर्यंत दशवैकालिकसूत्र के आदि के चार अध्ययन सार्थ

दिये हैं। ये चारों अध्ययन साधुव्रत अंगीकृत करने वालों के निमित्त ही रचे गये है। अतः साधु प्रतिक्रमणसूत्र इन चार अध्ययनों से संयुक्त होकर अधिक उपयोगी बन गया है।

सत् पुरुषों के लक्षण—रचना वि० सं० २०११। आकार क्राउन १६ पृष्ठीय। यह भी इस ही वर्ष श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में छपकर प्रकाशित हुई है। पुस्तक के शीर्षक से ही उसमें उल्लिखित विषय स्पष्ट है। चरितनायक ने इस पुस्तक को प्रकाशित करके सत् पुरुषों की पहिचान करने की कई-एक विभिन्न पद्धतियों में जैन पद्धति को भी सम्मिलित किया है। सत् पुरुषों के विषय में जैन विचार-धारा क्या है और क्या विशेषता रखती है यह पुस्तक पढ़कर उसका सहज निर्णय किया जा सकता है।

स्त्री-शिक्षा-प्रदर्शन—रचना वि० सं० २०१०। आकार क्राउन-१६ पृष्ठीय पृ० सं० ६६। बढ़िया कागज पर सियाणावासी प्राग्वाटज्ञातीय शाह जेताजी के पुत्र-पौत्र शाह सांकलचंद्र, नरथमल, फूलचंद्र, बाबूलाल ने श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में इसको १००० प्रतियों में छपवाकर इस ही वर्ष प्रकाशित किया। मू० सदुपयोग। यह पुस्तक स्त्री-शिक्षा के विरोधी पुरुषों को अच्छी समझ देने वाली है। इस निबन्ध में चरितनायक ने उन सर्व ही बातों का थोडा २ उल्लेख किया है, जो एक अच्छी स्त्री के बनने में अनिवार्यतः अपेक्षित है। पुस्तक पठनीय है—स्त्री और पुरुष दोनों के लिये।

श्री तपःपरिमल—रचना वि० स० २०११। आकार डबल फुल-स्केप। पृ०स० ४८। मू० दो आना। तपस्या के विधि-विधान और तपों के प्रकार समझने के लिये यह पुस्तक छोटी होकर भी बहुत ही उपयोगी है। इसको श्री साध्वीजी श्री सुमताश्रीजी के सदुपदेश से भीनमालनिवासी शाह ताराचंद्रजी भीमाणी ने इस ही वर्ष श्री महोदय प्रिंटिंग प्रेस, भावनगर में १००० प्रतियों में छपवाकर प्रकाशित किया है। तप, व्रत करने वालों के लिये यह पुस्तक अति ही उपयोगी है।

———

उपसंहार

आपश्री का जन्म राजस्थान की एक छोटी, परन्तु प्रसिद्ध रियासत की राज्यधानी धौलपुर नामक प्रसिद्ध नगरी में वि०सं० १९४० का०शु० २ रविवार को दिगम्बरमतानुयायी एक समृद्ध जैसवाल जैन कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम व्रजलालजी और माता का नाम चंपाकुंवर था। श्री व्रजलालजी रियासत के ऊँचे अधिकारियों में थे और वे 'राय साहब' की उपाधि से अलंकृत थे। माता चंपाकुंवर अच्छी पढ़ी-लिखी विदुषी गृहिणी थीं। समृद्ध घर एवं योग्य माता-पिता—इस प्रकार के सुयोग में आपका लालन-पालन हुआ था, परन्तु आपकी छः वर्ष की आयु में ही माता का स्वर्गवास होगया। योग्य पत्नी के वियोग पर श्री व्रजलालजी धौलपुर का परित्याग कर भोपाल में जाकर रहने लगे। उनका भी वि० सं० १९५२ में स्वर्गवास हो गया। अब आप अपने मामा के घर रहने लगे। आपके मामा भोपाल में दुकान करते थे। कुछ समय तक तो मामा का आप पर अच्छा प्यार रहा; परन्तु प्रारंभ से ही आपका लालन-पालन लाड़-प्यार में हुआ था, आप स्वतंत्र वातावरण में पले थे; सुसंस्कृत माता-पिता का प्रेम-भरा दुलार आपने भोगा था; आप स्वतंत्र प्रकृति, निडर और उग्र स्वभाव के थे, बस मामा और आप में तनाव शीघ्र ही बढ़ने लगा। संसार का सुख और वैभव भी आपने देख ही लिया था और अब संसार का दुःख और दैन्य भी आपको देखने को मिल रहा था। इस कुयोग का आपके हृदय पर यह प्रभाव पड़ा कि आपने छोटी वय में ही संसार को अच्छी प्रकार समझ लिया; परन्तु इस असार ससार से कैसे छुटकारा प्राप्त हो यह आपको तब तक समझ में नहीं आ रहा था। वि० सं० १९५३ में उज्जैन में 'सिंह का मेला' भरने को था। मामा से आप ऊब गये थे। एक रात्रि को आप मामा के घर से चुपचाप निकल पड़े और 'सिंह मेले' को देखने के लिये उज्जैन चले गये। वहाँ से लौट कर आप इधर-उधर ग्राम, नगरों में चक्कर काटते हुये महेंदपुर में आये। उन दिनों में महेंदपुर में प्रख्यात् विद्वद्वर्य श्रीमद् विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब अपनी शिष्यमण्डली के सहित विराज रहे थे। आपने उक्त आचार्यश्री के

दर्शन किये। आचार्यश्री के दर्शनों का आपके हृदय पर यह प्रभाव पड़ा कि आप में एकदम वैराग्यभाव उत्पन्न हो गया और योग्य अवसर देख कर आपश्री ने आचार्यश्री से साधुव्रत अंगीकार कराने की प्रार्थना की। आचार्यश्री भी आपकी प्रतिभा से एवं आपके सुसंस्कृत स्वभाव से कुछ ही दिनों में भलीविध परिचित हो चुके थे। आपश्री के पुन प्रार्थना करने पर आचार्यश्री ने योग्य अवसर देखकर आपको भागवती दीक्षा देने का वचन प्रदान दिया।

वि०सं० १९५४ आषाढ़ कृ० २ सोमवार को आपश्री को खाचरोद में भागवती लघु दीक्षा प्रदान की गई और आपका नाम श्री यतीन्द्रविजय मुनि रक्खा गया। आपने गुरु-सेवा में रहकर जैनागमों का अच्छा अध्ययन किया। संस्कृत, प्राकृत में कुछ ही वर्षों में आपकी अच्छी योग्यता हो गई। जब वि० सं० १९६३ में श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज राजगढ़ (मालवा) में स्वर्गवासी हुये, आप पर और मुनिराज श्री दीपविजयजी पर 'श्री अभिधान-राजेन्द्र-कोष' के सम्पादन का भार आ पड़ा। आप दोनों मुनिवरों ने मिलकर उक्त जगद् विख्यात महाशब्दार्णवकोष का संपादन, मुद्रण दस वर्ष पर्यंत बड़ी ही योग्यता एवं तत्परता से किया। उक्त कोष संसार के लगभग प्रत्येक छोटे-बड़े राष्ट्र के सम्पन्न पुस्तकालयों में पहुँचा है। अगर वह श्रीमद् राजेन्द्रसूरि महाराज जैसे उद्भट विद्वान् लेखक का श्रमफल है तो आप जैसे योग्य एवं विद्वान् नवयुवक मुनि की संपादनकला को प्राप्त करके सफल ग्रंथ बना है, यह निर्विवाद है।

इस प्रकार मुनिव्रत लेने के पश्चात् आपश्री दस वर्ष गुरु-सेवा में रहे और तत्पश्चात् दस वर्ष पर्यंत आपश्री कोष का सम्पादन करते रहे।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी महाराज के स्वर्गवासी होने पर मुनि श्री धनचन्द्रविजयजी आचार्य बने थे। विजयधनचन्द्रसूरिजी का वि० सं० १९७७ भाद्रपद शु० १ को बागरा (मारवाड़) में स्वर्गवास हो गया। मुनिराज दीपविजयजी को जावरा में वि० सं० १९८० ज्ये० शु० ८ को महोत्सवपूर्वक सूरिपद से अलंकृत किया गया था, उसी दिन आपश्री को भी उपाध्याय पद से सुशोभित किया गया था।

दीक्षा-संवत् १९५४ से उपाध्याय-पद-संवत् १९८० तक का आपश्री का परवर्तीकाल कहा जा सकता है। इस छब्बीसवर्षीय मुनिकाल में आपको कई प्रकार के अनुभव करने को प्राप्त हुये; जिनका पूरा-पूरा विवरण जीवन-चरित में दिया गया है। आगे के काल की आपश्री की चर्य्या एक निश्चित नियमितता एवं प्रगति को लेकर चली है; जिसको विहार, चातुर्मास, प्रतिष्ठोत्सव, यात्रा और संघ एवं साहित्य-सेवा तथा शिक्षण-प्रेम विषयों में विभाजित करके उपसंहृत किया जा सकता है।

आपश्री ने मुनिपद से २६ छब्बीस चातुर्मास, उपाध्यायपद से १५ पन्द्रह चातुर्मास और सूरिपद से वि० सं० २०११ तक १७ चातुर्मास किये।

चातुर्मास

इस प्रकार कुल ५८ अट्ठावन चातुर्मासों में से १९ उन्नीस मालवा में ३२ बत्तीस मारवाड़ में, १ एक सूरत में, २ दो सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में और ४ थराद (उत्तरगूर्जर) में हुये। तात्पर्य यह है कि आपश्री के अधिक चातुर्मास मालवा और मारवाड़-प्रदेश के भिन्न २ प्रसिद्ध ग्राम एवं नगरों में हुये। इस से यह सहज सिद्ध हो जाता है कि आपश्री के भक्त मालवा और मारवाड़ तथा थराद-प्रदेश में अधिकतर बसते हैं और जिन २ ग्राम एवं शहरों में चातुर्मास हुये उन ग्रामादि स्थानों में उनकी अच्छी संख्या है अथवा कई स्थानों में समूचा जैन सम्प्रदाय आपका ही अनुयायी है।

विहार-दिग्दर्शन से यह भली विध प्रतीत होता है कि आपश्री ने अपनी शिष्य एवं साधु-मण्डली के सहित वि० सं० १९८० से अद्यावधिपर्यंत

विहार

मालवा से मारवाड़ की ओर २ दो बार, मालवा से पालीताणा की ओर एक बार, मारवाड़ से मालवा की ओर १ एक बार, मारवाड़ से थराद की ओर ३ तीन बार, मारवाड़ से पालीताणा की ओर १ एक बार, थराद से मारवाड़ की ओर ३ तीन बार विहार शेष काल में किये हैं। आपने अपने उपरोक्त विहार का वर्णन विहार-दिग्दर्शन नाम से चार भाग लिखकर प्रकाशित किया है। इन चारों भागों में लगभग ६०० से ऊपर ग्रामों के नाम, कई छोटे-मोटे तीर्थों

के इतिहास, थोड़ा २ प्रत्येक ग्राम, नगर, राज्य, प्रगणा एवं राजवंशों का परिचय, जैनमंदिर, जिनोपाश्रय, जिनधर्मशाला, जैन जन-संख्या आदि का वर्णन और कहीं २ जैनियों के रहन-सहन, धार्मिक श्रद्धा, भाव-भक्ति आदि का भी उल्लेख दिया है। इस प्रकार विहार की नियमित रूप से नौंध तैयार करने की आपकी जैसी रुचि बहुत ही कम जैन साधु एवं जैनाचार्यों में पायी जा सकती है। यह नौंध आपके अन्तर में रही हुई इतिहास-प्रेम-भावना और भूगोल के प्रति झुकाव को स्पष्ट प्रकट करती है।

वि० सं० १९८० के पश्चात्वर्त्ती शेषकाल में आपश्री ने छोटी-बड़ी ८ संघ यात्रायें कीं — श्री मराडपाचलतीर्थ की २ दो बार, श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा की १ एक बार, श्री गिरनारतीर्थ की २ दो बार, श्री सिद्धक्षेत्र पालीताणा की १ एक बार, श्री गिरनारतीर्थ की २ दो बार, श्री अर्बुदतीर्थ एवं गोड़वाड़पंचतीर्थी की २ दो बार, श्री कच्छ-भद्रेश्वर की १ एक बार। अपने शिष्य एवं साधुवर्ग के सहित भी आपश्री ने सिद्धक्षेत्र-पालीताणा तीर्थ, शंखेश्वरतीर्थ, तारंगतीर्थ, अर्बुदतीर्थ, वरकाणातीर्थ, ढीमा, भोरेलतीर्थ, श्री केसरियातीर्थ, श्री लक्ष्मणीतीर्थ, श्री गोड़वाड़-पंचतीर्थी, श्री जीरापल्लीतीर्थ की १-१ एक-एक बार और श्री कोर्टाजी तीर्थ की ३ तीन बार तथा श्री माण्डवपुरतीर्थ की चार बार यात्रायें कीं। इन दोनों प्रकार की यात्राओं में मार्ग में जितने ग्राम, नगर पड़े उनका भी आपने विहार-दिग्दर्शन के चारों भागों में यथाशक्ति अच्छा वर्णन दिया है और तीर्थों का वर्णन तो पूरा २ दिया गया है। पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि आपश्री की यह इतिहास-विषयक सेवा कितनी महत्त्व की है और कितनी अनुकरणीय एवं समादरणीय है। तीर्थ-दर्शन-प्रेम और प्रभुप्रतिमा के आह्लादकारी दर्शनों के प्रति आप की अगाध भक्ति और श्रद्धा तो उक्त संघनिष्क्रमण एवं यात्राओं का मूल हेतु है ही इस विषय में कुछ भी कहना केवल पृष्ठ बढ़ाना मात्र है।

लघु और बृहद् संघ-यात्रायें तथा स्वयात्रायें

आपश्री के सदुपदेश से ही बागरा-मारवाड़ के श्री संघ ने श्री जालोर-दुर्गस्थ जिनालयों के जीर्णोद्धारार्थ रु० १००००) एवं श्री कोर्टाजीतीर्थ के

तीर्थ-सेवायें

जीर्णोद्धारार्थ रु० १००००) की एक साथ अर्थ-सहायता प्रदान की तथा श्री लक्ष्मणीतीर्थ (आलीराजपुर-स्टेट) और श्री भाण्डवपुरतीर्थ (जालोर-जोधपुर-राज्य) का जीर्णोद्धार जो प्रत्येक में दो लक्ष रुपया लगवा कर करवाया गया है उससे हम आपके तीर्थ-प्रेम एवं प्राचीन तीर्थ-स्थानों के प्रति तत्परतापूर्ण रक्षा करने की भावना को भलीविध समझ सकते हैं।

अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें और उपधानतप

आपश्री ने अपने करकमलों से अद्यावधि वि० सं० २०११ पर्यंत ४५ पैंतालीस अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें और सात उपधानतप करवाये, जिनमें वि० सं० १९८० के पश्चात् आपश्री ने ३८ अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें और छः उपधान करवाये हैं। २९ अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें वि० सं० १९८० के पश्चात् तथा २ दो इस सम्वत् से पूर्व इस प्रकार कुल ३१ अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें सिरोही और जोधपुर-राज्य के भिन्न स्थानों में, २ दो अंजनशलाका-प्रतिष्ठायें थराद में और शेष मालवा-ग्वालियर राज्य के भिन्न स्थान एवं तीर्थों में की गई हैं। जैसा मैं वि० सं० १९९५ से आपश्री के सम्पर्क में आकर अवलोकता आ रहा हूँ मेरा अनुमान है कि आपश्री के कर-कमलों से अद्यावधि प्राचीन और नवीन लगभग १५०० पन्द्रह सौ प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा—अंजनशलाका हुई होगी। उपधानतपों में एक उपधानतप श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में हुआ और एक खाचरोद (मालवा) में हुआ। शेष पांच उपधानतप मारवाड़ के सियाणा, गुढ़ा-बालोतरा, बागरा और आकोली नामक प्रसिद्ध कस्बों में हुए।

उपसंहार करके यहां इतना कहा जाना ठीक रहेगा कि विहार एवं यात्राओं के समय मार्ग के ग्राम, नगरों में यथाकारण ठहर कर, उपधानतप एवं अंजनशलाका और प्रतिष्ठा के आयोजनों के अवसर पर, चातुर्मासों की जय-चोलियों के अवसरों पर एवं चातुर्मास-कालों में आपने संघों में पड़े प्राचीन एवं घातक कुसंपों का अंत करने में अपनी सर्व योग्यता एवं प्रभाव से काम लिया और यह कहा जा सकता है कि आपने प्रत्येक प्रकार के

व्याख्यान-वाचस्पति चरितनायक श्रीमद् विजययतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब
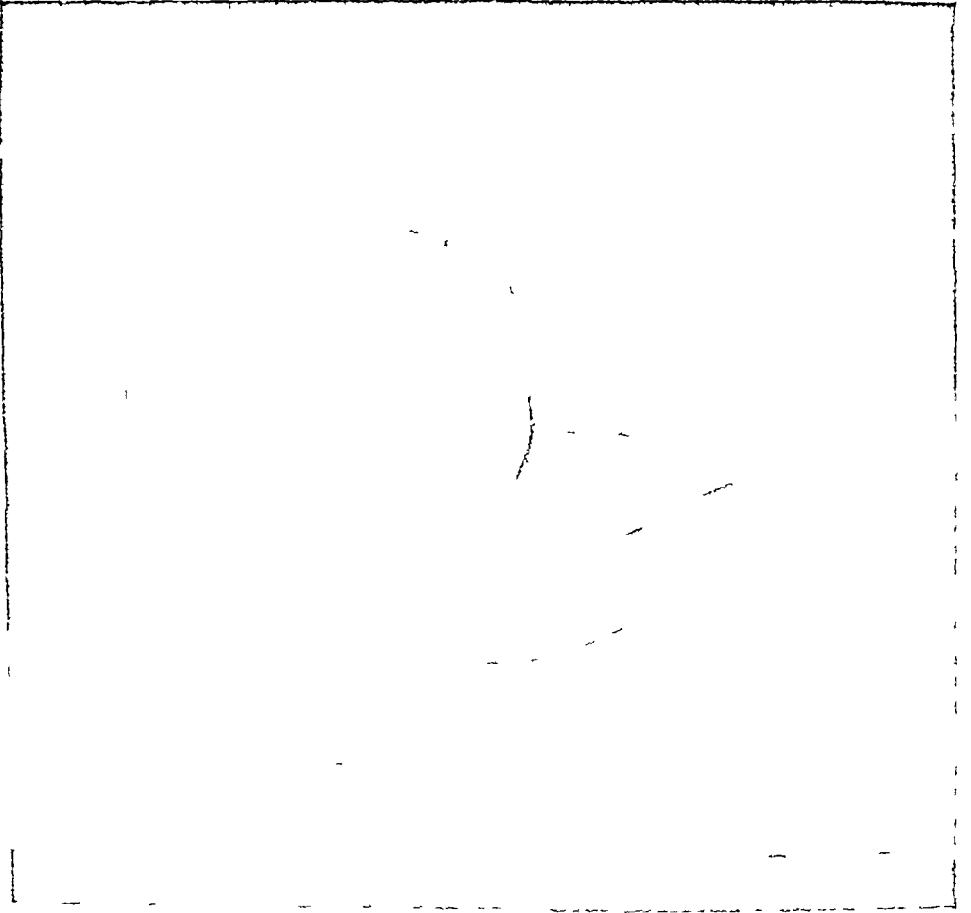
बागरा चातुर्मास के अवसर पर वि० सं० २००१.

प्राचीन एवं घातक से घातक कुसंपों को विनष्ट करके ही किसी उत्सव के आयोजन में भाग लिया। अनेक स्थलों पर आपश्री ने उपदेश देकर पाठशाला, गुरुकुल एवं कन्या-पाठशालायें खुलवाईं और नवीन मण्डल, सभा एवं परिषदों की स्थापनायें करवाईं; जिनका यथाप्राप्त परिचय यथास्थान कर दिया गया है पुनः पिष्टपेषण करने का मेरा प्रयोजन भी नहीं है। वीशस्थानक-तपाराधन, अट्ठाई-महोत्सव, १०८ एक सौ आठ अभिषेकवाली महाशांतिस्नात्र-पूजायें तथा विविध प्रकार के अन्य तप आपश्री की मधुर देशना से और आपश्री की अधिनायकता में मालवा, मारवाड, थराद आदि प्रान्तों के अनेक ग्राम, नगरों के श्रीसंघों ने सद्गृहस्थों ने जो किये हैं, उनका भी पूरा २ वर्णन दिया ही जा चुका है। यहां केवल इतना ही पुनः स्मरण कराना है कि आपश्री ने तपमाहात्म्य को चरितार्थ करने में भी अपने को किसी प्रकार पीछे नहीं रक्खा है। अब नीचे की पंक्तियों में आपश्री द्वारा की गई साहित्य-सेवा के ऊपर कहा जाकर उपसंहार समाप्त किया जा रहा है।

आचार्यश्री और उनका साहित्य

मुनिव्रत ग्रहण करने के समय से ही आपश्री का साहित्य की ओर विशेष झुकाव हो गया था। आपको जैसा अध्ययन से प्रेम था, वैसा ही लेखन-क्रिया से भी अनुराग था। कहावत है कि इच्छा के अनुकूल साधन मिल ही जाते हैं, हो उस इच्छा की पूर्त्ति के प्रति इच्छाधारक की तत्परता-पूर्ण चेष्टा। 'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' जैसे महाशब्दार्णवकोष के तेजस्वी विद्वान् गुरु का जहाँ सान्निध्य एवं सहवास प्राप्त हो, वहाँ पर साहित्य-सेवा की ओर बढ़ने वाले के भाग्य में क्या कमी रह सकती है। गुरु के साथ आप दस वर्ष पर्यंत रहे और ऐसी योग्यता प्राप्त की कि आपने अपनी दीक्षा के दस वर्ष पश्चात् गुरुदेव के स्वर्गवासी होने पर अपनी चौबीस वर्ष की वय में ही उक्त कोष के सम्पादक रह कर अपने दस वर्ष के कठिन श्रम से उक्त कोष का सम्पादन करके उसको मुद्रित करवाया।

'अभिधान-राजेन्द्र-कोष' समस्त जैन वाङ्मय का समुच्चय-ग्रंथ है।

इस कोष में जैन आगम, निगम, कथा, पुराण, दर्शनशास्त्र सभी को पूरा २ स्थान दिया गया है। अब यहाँ पाठक सहज समझ सकते हैं कि आपका जैन वाङ्मय का ज्ञान और संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं का ज्ञान भी पूरा-पूरा है।

आप जैसे भाषा के विद्वान् हैं वैसे तार्किक भी हैं। प्रसिद्ध आगमवेत्ता श्रीमद् सागरानन्दसूरिजी, जो अपने समय के समस्त जैनाचार्यों में अपने आगमज्ञान के लिये अद्वितीय रहे हैं, जिन्हें समस्त जैन आगम ऐसा माना जाता रहा है कि कंठस्थ थे और जिनकी आगमों के प्रति कितनी श्रद्धा थी यह तो उनके उपदेश एवं श्रम से बनवाये गये श्री सिद्धक्षेत्र-पालीताणा में स्थित श्री आगम-मंदिर के दर्शन करके भलीविध समझा जा सकता है—ऐसे उद्भट आगम-ज्ञानधारी आचार्य के साथ में चर्चा करने पर तैयार हो जाने वाले और चर्चा करने वाले आप में भी कैसी तर्क-शक्ति हो सकती है सहज समझ में आने की वस्तु है। आपश्री तो फिर उक्त आचार्य के साथ चर्चा करने में विजयी रहे हैं।

आपश्री व्याख्यान-कला में भी अत्यन्त निपुण हैं। आपका भाषण सरल, सुन्दर एवं मुहावरेदार देशी भाषा में होता है। आगम के कठिन से कठिन श्लोकों के अर्थ एवं उनको लक्ष्य में रखकर कही जाने वाली हित-शिक्षायें आप व्याख्यान-परिषद् में ऐसे ढंग से चर्चते हैं कि श्रोतागण को हृदयंगम करने में तनिक भी काठिन्य प्रतीत नहीं होता। व्याख्यान की शैली आपकी सचमुच ही अद्भुत है, तभी तो आप 'व्याख्यान-वाचस्पति' कहलाते हैं।

उक्त पंक्तियों का सार यह है कि आप भाषाविद्वान्, तार्किक और व्याख्यान-कला में निष्णात एक जैनाचार्य है, जिनकी साहित्य-सेवा पर यहाँ कुछ कहा जाने वाला है।

आपकी सर्वप्रथम कृति जो प्रकाशित हुई है वह है 'तीन स्तुति की प्राचीनता।' यह पुस्तक १६ पृष्ठ की है और विक्रम सं० १९६२ में ही

लिखी गई और प्रकाशित हुई है। सब से पश्चात् का ग्रंथ अथवा पुस्तक 'तपःपरिमल' है। यह वि० सं० २०११ अर्थात् इसी वर्ष छपी है।

आपश्री द्वारा रचित एवं सम्पादित और संकलित पुस्तक एवं ग्रंथों की सूची, मुद्रण-संवत् और पृष्ठ-संख्या के अंकनों के सहित प्रस्तावना-खण्ड में दे दी गई है।

सूचीगत पुस्तकों में कई पुस्तकें आपश्री द्वारा मौलिकरूप से रची हुई और कई अनूदित, सम्पादित एवं संकलित हैं। विषय की दृष्टि से वे धार्मिक और इतिहासविषयक हैं। बड़ा सौभाग्य है कि आज के जैनाचार्य एवं जैनमुनियों की दृष्टि धर्मविषय के ऊपर जैसी रहती है अब वैसी ही इतिहास के विषय पर भी रहने लगी है।

ऐसे इतिहास-प्रेमी जैनाचार्यों में आपका नाम अग्रगण्यों में रहेगा। प्रदत्त सूची में बारह पुस्तकें इतिहास की दृष्टि से लिखी गई हैं। इनमें तीन यद्यपि जीवन-चरित हैं; परन्तु उनमें भी अधिकांशतः इतिहास का ही तत्त्व रखा हुआ है। इतिहास की दृष्टि से लिखी गई पुस्तकों में विशेष उल्लेखनीय एवं संग्रहणीय आपश्री द्वारा मौलिक रूप से रची गई १ 'श्री यतीन्द्र-विहार-दिग्दर्शन के चारों भाग', 'श्री कोर्टाजीतीर्थ का इतिहास', 'श्री नाकोड़ा-पार्श्वनाथ', 'मेरी नेमाड़ यात्रा', 'मेरी गोड़वाड़ यात्रा' नामक पुस्तकें हैं। प्रत्येक पुस्तक के लिखने का उद्देश्य आपश्री का जैसा भिन्न रहा है, उसी प्रकार प्रत्येक पुस्तक में इतिहास के भिन्न २ तत्त्व उनमें स्थान पा सके हैं। जैसे 'विहार-दिग्दर्शन'—शब्द ही बतलाते है कि इन चारों भागों मे आपश्री द्वारा किये गये मुख्य २ विहार का वर्णन है। विहार-वर्णन में आपश्री ने अपने मार्ग में आये हुये समस्त छोटे—बड़े ग्राम, नगर, तीर्थों का एवं राज्यों का जैन-आबादी, जैनमंदिर, जैन धर्मशाला, जैन उपाश्रय एवं कुल जनसंख्या की दृष्टि से अच्छा परिचय दिया है। कहीं २ उनके प्राचीन इतिहास भी देने का प्रयत्न किया गया है। इसमें कोई शंका नहीं कि ये चारों भाग भविष्य में इतिहास और पुरातत्त्व के विद्यार्थियों एवं विद्वानों

के लिये बड़े अमूल्य सिद्ध होंगे। आज भी जिस किसी विद्वान् ने इनका उपयोग किया है वे इनके मूल्य को मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार 'मेरी नेमाड़ यात्रा' और 'मेरी गोड़वाड़-यात्रा' नामक दोनों पुस्तकें भी नेमाड़ और गोड़वाड़ प्रान्तों की अच्छी इतिहास-पुस्तकें हैं। 'मेरी नेमाड़-यात्रा' में नेमाड़ राज्य और उसमें रहे हुये जैन आबादी वाले ग्राम, नगरों तथा तीर्थों का अच्छा वर्णन है। 'मेरी गोड़वाड़-यात्रा' में मरुधर-प्रदेश (राजस्थान) के गोड़वाड़ (गिरिवाड़) प्रान्त के प्रसिद्ध पाच जैन तीर्थ वरकाणा, नडूलाई, नाडोल, श्री महावीर मुच्छाला और जगद् विख्यात श्री धरणविहार-नलिनीगुल्मविमान श्री आदिनाथ चतुर्मुख जिनालय श्री राणक-पुर तीर्थ का अच्छा इतिहास गूंथा गया है। 'श्री नाकोड़ापार्श्वनाथ और श्री कोर्टाजी तीर्थ' का इतिहास अपने २ तीर्थों के इतिहास हैं। आपने उक्त इतिहास-पुस्तकों की रचना शिला-लेख, प्रतिमा-लेख, ताम्रपत्र और राज्य के पट्टे-परवानों की सामग्रियों का उपयोग करके की है तथा लेखों और पट्टों की प्रतिलिपियाँ भी आपने साथ ही साथ प्रकाशित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। इस प्रकार उक्त इतिहास पुस्तकें पुरातत्त्वदृष्टि से भी मूल्य-वती ठहरती हैं।

आपश्री का इतिहास के विषय से कितना ऊँचा प्रेम रहा है वह आपश्री के सदुपदेश से प्रारंभ किये गये, आपश्री की देख-रेख में रचे जाते हुये, आपश्री द्वारा चुने गये लेखक के द्वारा लिखे गये 'श्री प्राग्वाट-इतिहास' नामक इतिहास से भलीविध समझा जा सकता है। इस इतिहास का लिखना वि० सं० २००० में प्रस्तुत जीवन-चरित के लेखक ने ही प्रारंभ किया था और जो इसी वर्ष वि०सं० २०१० में प्रकाशित हुआ है, जिस पर श्री प्राग्वाट-इतिहास प्रकाशक समिति ने लगभग २७०००) रुपया व्यय करके इसको लिखवाकर प्रकाशित किया है।

आपश्री द्वारा संग्रहीत किये गये ३७४ प्रतिमा-लेखों का संग्रह, जिसमें श्री जीरापल्लीतीर्थ से लगाकर थराद-नगर तक के मार्ग में आये हुये ग्राम, नगरों में स्थित जिनालयों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं एवं स्वयं जीरापल्ली

और थराद नगर के लेख हैं, 'श्री जैन प्रतिमा-लेख-संग्रह' नाम से वि० सं० २००८ में प्रकाशित हुआ है। इन पक्तियों के लेखक को उक्त प्रतिमा-लेख-संग्रह का सम्पादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पुरातत्त्व एवं लेख-संग्रह-विषयक पुस्तकों मे इस पुस्तक की रचना अपनी स्वतंत्र विशेपता भले न भी रखती हो, परन्तु कई-एक अज्ञात एव अप्रसिद्ध स्थानों को प्रकाश में ला सकी है और एक सहस्र वर्ष प्राचीन कई कुलों का यथा-प्राप्त संक्षिप्त परिचय देने में अवश्य सफल हुई है यह कहा जा सकता है। सम्पादन-शैली के विषय में चालू पद्धति की दृष्टि से यद्यपि मुझको कुछ भी नहीं कहना चाहिए; परन्तु इतना तो कहना लाभदायक ही समझता हूँ कि जो इसको पढ़ेंगे वे इसको समझने में और अपने अर्थ की वात शोध निकालने में किसी वात की कठिनाई का सामना नहीं करेंगे।

धार्मिक-साहित्य-प्रेम भी आपश्री का कम स्तुत्य नही है। आपने कथा, चरित, पूजा, आचार आदि विषयों पर ही अधिकांशतः अपनी लेखनी चलाई है। कई-एक धार्मिक पुस्तकों का व्याख्यान देते समय अच्छा उपयोग किया जा सकता है; क्योंकि उनमें रोचक, हितकारक एवं अत्यन्त शिक्षाप्रद कहानियों, वार्त्ताओं का संग्रह किया गया है। आपश्री जैसे व्याख्यान देने में प्रसिद्ध हैं, आपश्री के विषय-प्रतिपादन करने के उस रोचक ढंग से लिखे गये आपश्री के प्रकाशित उक्त प्रवचन ग्रथ वड़े ही रोचक हैं और सरल और सुवोध भापा मे लिखे गये है। 'श्री गुणानुरागकुलक (सानुवाद)' 'श्री अघटकुमार चरित' 'श्री जगडूशाह और कयवन्ना चरित' 'श्री चंपक-'मालाचरित' और 'श्री यतीन्द्र-प्रवचन' नामक चरित और प्रवचन-पुस्तकें इस दृष्टि से वड़ी ही अच्छी शैली और सरल सुवोध भापा में लिखी गई कही जा सकती है। भापा आपकी हिन्दी की खड़ी वोली की ओर ही अधिक झुकती हुई है और उसमें सर्वसाधारण के समझने योग्य शब्दों का ही अधिक प्रयोग हुआ है। लेख लम्बा नहीं हो जाय इस दृष्टि मे संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य सेवा की दृष्टि से आपने इतिहास, पुरातत्त्व एवं धर्मविषयो पर अच्छा लिखा हे यह प्रारम्भ के पृष्ठों में दी गई पुस्तक-ग्रथ-सूची से जाना जा सकता है।

आप शेषकाल में स्थिरता के अवसरों में सदा लिखते रहे हैं, यात्रा-काल में सदा कुछ न कुछ लेखन-सामग्री जुटाते रहे हैं और चातुर्मासों में आप प्रकाशित करवाते रहे हैं तथा अपनी श्रमसाध्य पुस्तकों की रचना करते रहे हैं। आपके नाम से श्री गुढ़ाबालोतरा (मारवाड़) के जैन श्री संघ ने 'श्री यतीन्द्र-जैन ज्ञान-भण्डार' को संस्थापित करके आपके द्वारा रचे गये साहित्य को प्रतिष्ठित किया है। आपका समस्त साहित्य वहाँ सुरक्षित है। वैसे तो आपका साहित्य श्री राजेन्द्र-प्रवचन-कार्यालय, खुडाला में भी रहता है।

अंत में लेखक यह स्वीकार करता है कि आपश्री की सतत् प्रेरणा, कृपा एवं शिक्षाओं का ही फल है कि लेखक साहित्य के क्षेत्र में 'जैन-जगती' 'श्री प्राग्वाट-इतिहास' 'श्री राजमती' जैसे काव्य और इतिहास के ग्रंथ रख सका है। आपश्री ने लेखक को जो रु० ५०००) की अमूल्य भेंट प्रदत्त करवाई है तथा उक्त रकम का उपयोग केवल साहित्य के प्रकाशन के लिये ही करने की लेखक को जो अमूल्य सम्मति प्रदान की है वह आपश्री के उत्कट साहित्य-प्रचार-प्रेम को प्रकट करती है। लेखक ने भी आपश्री के स्वनामधन्य अभिधान से अपने जन्म ग्राम धामणिया (मेवाड़) में 'श्री यतीन्द्र-साहित्य-सदन' नाम की साहित्य-सेवा-संस्था को खोलकर कुछ विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया है। 'जैन-जगती' की द्वितीय आवृत्ति और 'श्री जैन प्रतिमा-लेख-संग्रह' का प्रकाशन इस ही संस्था की ओर से हुआ है। लेखक द्वारा भविष्य में जितना भी साहित्य लिखा जावेगा वह समस्त इस ही संस्था द्वारा प्रकाशित होता रहेगा इस निर्णय की सत्यता यद्यपि पूर्णतः लेखक पर ही अवलंबित है; परन्तु यहां जो लिखने का तात्पर्य है वह यह ही है कि आपश्री का साहित्य-सेवियों के प्रति भी गहरा सहयोगभाव रहा है और साहित्य-प्रचार-प्रेम आपके अंतर में पूरा २ जाग्रत है। शुभम्—

वीर संवत् २४८८
वि० सं० २०१० पौ० कृ० १३
शनिश्चर
ता० २-१-१९५३

लेखक—
दौलतसिंह लोढा 'अरविंद' बी० ए०
अमरनिवास—भीलवाड़ा

श्री श्री १००८ भट्टारक–पूज्यपाद—

आचार्यदेव-श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वराणां

गुणस्तुत्यात्मकानि 'अष्टकानि।'

गुरुप्रेमकुसुमाञ्जलिः ।

मान्यैर्मान्यो वदान्यो भविकजनकृते शंप्रदो मानदोऽय-
शोहारी कीर्त्तिधारी प्रथितमतिमतां मानकारी व्यगारी ।
जैनीयग्रन्थमर्मी भणितबहुयशास्त्यक्तकर्मी सुधर्मी,
वाचं वाचंयमो वै मधुरश्रुतयुतां श्रावयेच्छ्रीयतीन्द्रः ॥ १ ॥
श्रीमद्राजेन्द्रसूरिप्रवरतपगणे गीयमानप्रकीर्त्ति-
र्ज्ञानी मानी सुमानी बहुविधसुजनैः प्रथ्यमानप्रगीतिः ।
कान्तो दान्तोऽतिशान्तोऽखिलविबुधनरैर्नम्यमानो मुनीन्द्रो,
धन्यो धन्योऽतिधन्यो निखिलजनसुखानन्दकृच्छ्रीयतीन्द्रः ॥ २ ॥
भावं भावं सुभावं भविकभविकवृन्दे यशोगीयमानम्,
पायं पायं व्यपायं सकलसकललोके सुधापीयमानम् ।
ख्यायं ख्यायं स्वभिख्यां निखिलभुवितले यो गुरोरद्वयस्य,
वन्दं वन्दं पदाब्जे विविधबुधवरे राजते श्रीयतीन्द्रः ॥ ३ ॥

—पं० श्यामसुन्दराचार्य ।

यद्व्याख्यानकलाकलापमहिमालोके पुमर्थोन्नति-
प्रख्यातः श्रुतसम्मतः सुमधुरिमोद्गारप्रकर्षाश्रितः ।
उत्सूत्र वदता जिगाय बहुशो व्याख्यानवाचस्पतिः,
सोऽयं नः श्रियमातनोतु विजयी श्रीमान् यतीन्द्रः प्रभुः ॥ १ ॥
श्रीमद्राजेन्द्रसूरि प्रवरगुरुवराणा लसत्कीर्त्तिकानाम्,
पादाम्भोजद्वयी सद्बहुलपरिमलाऽऽस्वादलुब्धं सुभृङ्गम् ।
सर्वाशासु प्रसाराऽतुलविमलयशोराशिसंशोभमानम्,
वन्दे श्रीमद्यतीन्द्राभिधमनिशमहं सर्वलोकप्रशस्यम् ॥ २ ॥
सच्चारित्र्यचणस्य यस्य विदुषः श्लाघेयोपदेशामृतम्,
पायं पायमनारतं व्युपरताः सावद्य कृत्यादमी ।
श्राद्धाः शासनमुन्नतिं विदधते प्रोन्माद्यन्त सर्मे,
दत्ता मे सहि सन्ततं बहुसुखं श्रीमान् यतीन्द्रः प्रभुः ॥ ३ ॥

परोपकारकारिता विभाति यत्र भूयसी,
सदैव कल्पवृक्षवत् प्रदानिता महीतले ।
कृतज्ञता सुविज्ञता सुसाधुता च सद्गुरौ,
यतीन्द्रनामधारिणं तमद्वयं नमाम्यहम् ॥ ४ ॥

—पं० व्रजनाथ मिश्र शास्त्री ।

तपसा रविरेवलसत्किरणो, यशसा चलपार्वणचन्द्रचणः ।
वचसा ननु गीष्पतिरेव भवान्, महसा च यतीन्द्रमुनिर्जयति ॥१॥
श्रीमज्जिनेन्द्रशुभधर्मधृतावतारो,
भव्योपदेशकरणाभरणार्णवौघः ।
देशाटनाटवि(प्र)पत्तनचाटुवाटः,
श्रीमद्यतीन्द्र मुनिराजवरो विजीव्यात् ॥ २ ॥
मूर्त्या महर्षिरिव चन्द्र इव स्वकीर्त्या,
मत्या बृहस्पतिरिवाब्धिरिवातिधृत्या ।
सत्यावृतो विधिरिव श्रुतिधर्मवेत्ता,
श्रीमद्यतीन्द्रविजयोऽवतु मां मुनीन्द्रः ॥ ३ ॥

—पं० विहारीलाल शास्त्री ।

यस्य प्रोद्यन्निपुणधिषणासाम्यमाप्तुं न दक्षो-
ऽलक्ष्यो देवालिपक्षोऽप्यदितिसुतगुरुर्गीष्पतिर्भूतलेऽसौ ।
यः स्वीयज्ञानकाण्डप्रखरकिरणध्वंसिताऽज्ञानजाल-
ध्वान्तो जैनो जयति विजयश्रीयतीन्द्रो महीयान् ॥ १ ॥
यदीयसुयशो विधुर्धवलयन् महीमण्डलम्,
प्रचण्डतरकल्मषव्रजसरोजमामीलयन् ।
विराजतितरामसौ विविधशास्त्रपारङ्गमो,
यतीन्द्रविजयाभिधः सदयजैनतत्वाविशः ॥ २ ॥
संस्तारयन्निजगुणैरुपकारजातान्,
प्रेम्णा हि कं न मनुजं हि वशीकरोति ।
शिष्योऽप्युदारचरितस्तवशान्तचित्तः,
विद्याविनोदरसिको जगतां हितैषी ॥ ३ ॥

श्रीगुरुदेवयतीन्द्रसूरिविबुधोऽहिंसापथः सत्वरम्,
कारुण्यायुतमानसः प्रतिदिनं लोकान्तमोमोदीत् ।
साध्वुपकारकरो हि लोभरहितो भिक्षाव्रतः संयमी,
स्याद्वादादिप्रचारकरणपरः कारुण्यपूर्णोपमः ॥ ४ ॥

—पं० विश्वेश्वर व्याकरणाचार्य-साहित्यतीर्थ ।

(२)

स्वागत-स्तवकगुच्छः ।

वसन्ततिलकावृत्तम्

भूव्योमखद्वयमिते ननु वैक्रमाब्दे,
पक्षे सिते भृगुयुते सुतिथौ चतुर्थ्याम् ।
आहोरनाम्नि नगरे रमणीयहर्म्ये,
सुस्वागतं विजयसूरियतीन्द्रकाणाम् ॥ १ ॥

श्रीमद्यतीन्द्रमुनिवर्य्यमुनीन्द्रकाणाम्,
व्याख्यानवारिधिवरैर्हि सुपूज्यकानाम् ।
राजेन्द्रसूरिपदपङ्कजपूजकानाम्,
सुस्वागतं विजयसूरियतीन्द्रकाणाम् ॥ २ ॥

रम्याननेऽमृतरसं स्रवतीह येषाम्,
कान्तिस्तथैव वदनस्य हि भाति येषाम् ।
सन्दर्शनं नयनमोदकरं च येषाम्,
सुस्वागतं सुखकरं सुखदं च येषाम् ॥ ३ ॥

शिष्याः सदैव परितः परिरम्यमाणाः,
सेवारताः सुविनया विनतिं दधानाः ।
पार्श्वेऽनिशं परिभ्रमन्ति गुणाकराणाम्,
सुस्वागतं विजयसूरियतीन्द्रकाणाम् ॥ ४ ॥

तेषां सुपार्श्ववसतां विनताऽन्तराले,
संदृश्यतेऽद्भुतमतिर्महनीयकीर्त्तिः ।
कान्तः कविः कमनकाव्यकलापकर्त्ता,
राराजते च इह काव्यकलानुरक्तः ॥ ५ ॥

गाम्भीर्यभावभरणे कविभारविर्यः,
साहित्यसारसरणे कविकालिदासः ।
लालित्यपादरचने कविदण्डितुल्यो,
नानार्थसिद्धिसहितः कविमाघ एव ॥ ६ ॥

नामैव यस्य सुकवेः सुखदं श्रुतीनाम्,
विद्यां विकासमतिदां विशुभां विजेता ।
तन्नाम एव चरितार्थमभिप्रयाति,
विद्याविजेतुरनघस्य कवित्वचञ्चोः ॥ ७ ॥

पद्यप्रकाशनपटुः प्रविभासमानः,
श्रीमद्यतीन्द्रपदपङ्कजमादधानः ।
प्रद्योतकः प्रबलपुण्यफलप्रभावैः,
श्रद्धायुतैः सुमनुजैः परिसेव्यमानः, ॥ ८ ॥

स्रग्धरावृत्तम्

स्निग्धे साहित्यसारे सुपदसरसिजे, स्नेहसिक्तानुरक्तः ।
रम्ये पद्यप्रबन्धे ललितपदयुते, प्रौढमत्यातिशक्तः ॥
श्रीमद्व्याख्यानवाचस्पति-विजययतीन्द्रार्यसूरेः सुशिष्यः ।
जिव्याज्जीयाच्च विद्याविजय इह कविः कान्तकायः कवीशः ॥

वसन्ततिलकावृत्तम्

इत्थं सुशिष्यकरैः सततं सुवन्द्याः,
आचार्यवर्य्यविभुसूरियतीन्द्रपादाः
स्वागत्य बोधपरिपूर्णसुदेशनातः,
आहोरजैनजनतां विदधत्त्वनज्ञाम् ॥ १० ॥

—पं० मदनलाल जोशी दशपुरस्थः ।

(३)

हृद्याऽनवद्या यद्विद्या, विद्वद्वृन्दाभिनन्दिता ।
वादिवादाऽवसादाय, प्रकामं क्षमता मिता ॥ १ ॥

ग्रामं ग्रामं प्रतिग्रामं, मुनिमण्डलमण्डितः ।
धर्मव्यवस्थां तनुते, कुर्वन् यो धर्मदेशनाम् ॥ २ ॥
यदीयो नित्यआचारो, युक्ताहार-विहारवान् ।
दर्शकाना मनोवृत्तौ, प्रभावं जनयत्यरम् ॥ ३ ॥
नित्यमाचार्यमाणा यच्चारित्राद्यखिलक्रियाः ।
कदाचिदपि नायान्ति, शैथिल्यं तद्भयादिव ॥ ४ ॥
कामादिककषाया यद्भयादिव यदन्तिकात् ।
दूरं पलाय्य शरणीचक्रुः पाखण्डमण्डलम् ॥ ५ ॥
यद्धर्म्यसूक्तिमाकर्ण्यविधीरितसुधारसाम् ।
समस्ता जनता तृप्ता, सुधां कलयते मुधा ॥ ६ ॥
पापक्रान्तिमयेऽप्यस्मिन्, विकराले कलौ युगे ।
धर्मस्थिति यस्तनुते, क्षान्त्वाऽसहपरिषहान् ॥ ॥ ७ ॥
जिनालयप्रतिष्ठानमधिष्ठानं शुभाश्रियाम् ।
कारयन् यः प्रतिष्ठान, प्रतिष्ठानं श्रितोऽसमाम् ॥ ८ ॥
तं श्रीयतीन्द्रसूरीन्द्र, नरो भक्तिभराञ्चितः ।
प्रणमन् संस्मरन् ध्यायन्, कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ९ ॥

(४)

गुरुदेवस्तवः ।

क्षपणीयकर्मरम्भा-तरुवभिदा करीन्द्रम् ।
शिववर्त्तनीगतीन्द्रं, भजता गुरुं यतीन्द्रम् ॥ १ ॥
गुणगौरवावरस्तात्, कृतदिव्यभा गिरीन्द्रम् ।
जिनसेवि-सद्यतीन्द्रम्, भजता गुरु यतीन्द्रम् ॥ २ ॥
विनयानमन्नरेन्द्रम्, सुमनस्वि-किन्नरेन्द्रम् ।
गुणितोल्लसन्मतीन्द्रम्, भजता गुरुं यतीन्द्रम ॥ ३ ॥
भजनेन नैजमिन्द्रम्, नमता पद किलेन्द्रम् ।
भजता गुरु यतीन्द्रम्, भजता गुरुं यतीन्द्रम् ॥ ४ ॥

वदन्तीति भव्यविद्या, जगतीतराऽनवद्या ।
क्रियतां निजाऽनवद्या, शिवसौख्यसाधिपद्या ॥ ५ ॥

गीतिकाछन्दमय-प्रार्थना ।

(५)

भगवन् यतीन्द्रसूरे ! चरणेषु ते नतोऽहम् ।
शुचिशास्त्रबोधशालिन् !, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ १ ॥
पीयूष कल्पवचसा, तुष्टा नरास्तवेह ।
रससिक्तशब्दधारिन् !, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ २ ॥
सुविधाय दर्शनं ते, नन्दन्ति मानवा वै ।
कमनीयकान्तिधारिन् !, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ ३ ॥
नतशीलमानवानामसि, सौख्यकारकस्त्वम् ।
त्रयतापशापहारिन् !, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ ४ ॥
प्रथितप्रदेशप्रान्ते, ह्यतिरम्यरत्नपुर्य्याम् ।
पीताम्बरप्रजेतः, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ ५ ॥
विद्यानिधे विहारिन् !, विविधाप्तवाक्यधारिन् ।
यतीन्द्रदेव हे दयालो !, चरणेषु ते नतोऽहम् ॥ ६ ॥

शिखरिणी-छन्दः ।

(६)

गुरोः ते गम्भीरा रुचिरमुखमुद्रा मदकरी,
प्रकर्षाह्लादं मे प्रकटयति चित्ते प्रणमतः ।
अतो वारम्वारं विषयविटपीकृन्तनकृते,
सदा तां ध्यायामि प्रखरकरपत्राकृतिमहम् ॥ १ ॥
असारं संसारं गुरुवर ! विचार्य स्वहृदये,
त्वया सर्वे त्यक्ताः नरभवप्रपञ्चाः द्रुततरम् ।
भवद्भिः संप्राप्तुं कठिनतरकैवल्यपदवीं,
गृहीतं वैराग्यं जगति परमानन्दकरणम् ॥ २ ॥

अगाधं श्रीजैनागमजलनिधिं निर्मलधिया,
विगाह्याऽवाप्तं च प्रवरतरलं रत्ननिचयम् ।
जनेभ्यस्तच्छ्रद्धासन्नतशिरोभ्यो वितरता,
निरस्तं लोकानां घनतिमिरमज्ञानप्रभवम् ॥ ३ ॥

शरीरं कृत्वैवं यमनियमवर्माणि सततम्,
जगज्जैत्रामोघं स्मरबलं व्यर्थमकरोः ।
कषायान्निर्जित्य क्षितिमनकितन्वं हि वचलाम्,
पताकां यत्कीर्तेरिह जगति विस्तारयसि वै ॥ ४ ॥

सुधासिक्ता दृष्टिर्भवति नितरां भाविकजने,
विलक्षा त्वद्वाणी कलितकृतधियां शिक्षणविधौ ।
सतां नित्यं पूज्यास्तदनुकरणीयास्तव क्रियाः,
अहं त्वां पूर्णेशं गुरुवर ! यतीन्द्रं ननु वन्दे ॥ ५ ॥

—तव शिष्याणुर्विद्याविजयः ।

(३)

गुरुवन्दना

सदसि वागधिपोपममर्थिनां, नवपयोदमिवेष्टवसुप्रदम् ।
सकलविश्वजनीनपुरःसरं, परिणुमो गुरुधीर-यतीन्द्रकम् ॥ ७ ॥
श्रुतिसुखावहधर्मसुदेशनां, मधुरया गिरया ददतं सदा ।
सकलजीवदयारतमानसं, नमतधीर-यतीन्द्रगुरुं जनाः ॥ ८ ॥
अष्टकं कृतवानेतद्विजयान्तिक उत्तमः ।
उपाध्यायगुरोरस्य, कृपयाऽसीमया मुदा ॥ ९ ॥

—मुनि उत्तमविजय ।

(८)

शार्दूलविक्रीड़ितं छन्दः

यः शिष्यान् परिपाति मोहरहितान् योग्यान् स्वपादाश्रितान् ।
यं वै विश्वविभीषकाः सविनतं देवं स्तुवन्ति प्रभुम् ॥
येनेदं निखिलं जगत् सुमहसा संभासते सर्वतः ।
यस्मै श्रीविदुषे नमन्ति सुजना जीयात्स लोके सुधीः ॥ १ ॥
यस्माद्बोधमवाप्य यान्ति च जना धन्यात्मनो मानवाः ।
यस्य श्रीसुविदः प्रसादकरणात्, स्तुत्यं पदं सर्वथा ॥
यस्मिन् भान्ति दयादिकाः (हि) सुगुणा व्याख्यानवाचस्पतौ ।
विश्वस्मिञ्जयताद् वसत्वथ चिरं सूरिर्यतीन्द्रो हि सः ॥ २ ॥
मोहध्वंसदिवाकरो यतिवरः सज्ज्ञानधर्माम्बुधिः ।
कारुण्यार्द्रहृदः कवित्त्वकुशलो देदीप्यमानो मुनिः ॥
जेता जल्पकपुंगवो जनहितः पीताम्बरीयान् मुनीन् ।
भाषाकल्पतरुः सदा विजयतां सूरिर्यतीन्द्रो यतिः ॥ ३ ॥
वैदुष्यादियमादिभिर्गुणगणैर्विद्वद्वरैरर्चितः ।
शान्तिक्षान्तिदयादिरत्नसहितो दीप्तो जनाह्लादकः ॥
कृत्याकृत्यविवेचने सुनिपुणः सद्धर्मसंस्थो मुनिः ।
जैनाचार्यवरः सदा विजयतां श्रीमदयतीन्द्रः सुधीः ॥ ४ ॥

मालिनीवृत्तम्

मुनिमहितमुनीन्द्रो मारसंमर्दनेन्द्रः,
सकलगुणगणेन्द्रो धीमतां यः सुधीन्द्रः ।

विजनकरिमृगेन्द्रः शास्त्रसत्त्वे करीन्द्रः,
जयतु जयतु देवः श्रीलसूरिर्यतीन्द्रः ॥ ५ ॥

सुविनतमुनिवृन्दैः शिष्यवर्गैः सुवन्द्य. ।
विविधविधिविधानेनासमान्यो वदान्यः ।
गुरुगुणगणरक्तस्त्यक्तदर्पो विरक्तः ।
जयतु जयतु देवः श्रीलसूरिर्यतीन्द्रः ॥ ६ ॥

विहितहितसुकृत्यो विश्ववन्द्योऽनवद्यः,
निखिलगुणगणानामालयो यः सुनम्यः ।
रविरिव हि सुदीप्तो माननीयो मुनीन्द्रः ।
जयतु जयतु देवः श्रीलसूरिर्यतीन्द्रः ॥ ७ ॥

द्रुतविलम्बितवृत्तम्

परमपण्डितमण्डितमण्डलः, सुनयनो नयनन्दितमानवः ।
जयतु सूरियतीन्द्रयतीश्वरः, यमवतामवतां च पुरः प्रभः ॥ ८ ॥

वसन्ततिलका छन्दः

श्रीमद्यतीन्द्रयतिवर्यमहामतीनाम्,
सिद्धिप्रदं मदन-संविहितं स्तवं यः ।
स्तौत्यर्थसिद्धिसहितं ह्यनिशं सुचित्तः,
सर्वार्थसिद्धिमधिगम्य स नन्दतीह ॥ ९ ॥

पं० मदनलाल जोशी, शास्त्री, मन्दसौर ।

(६)

श्रीगुरुगुणस्तुतिः

व्याख्यानादिसुधामहोदयगुणैस्तुष्यत्सभामद्गणः,
श्रीजैनेन्द्रपदार्चनप्रवणतानाडक्ष्यज्जनुः कारणः ।
संस्तुत्या चरणो बहुश्रुतनयोदश्चत् क्रियानैपुणः,
जैनाचार्य-यतीन्द्रसूरिरिह राराजीति विद्याचणः ॥ १ ॥

* * *

श्रीस्याद्वादिपदारविन्दमहिमावश्यं विनंक्ष्यज्जनिः,
स द्विद्याजनितानवद्ययशसा विद्योतिताशावनिः ।
दान्तिक्षान्तिनितान्तशान्तिकरुणादीनां गुणानां खनिः,
श्रीलाचार्य-यतीन्द्रसूरिरिह राराजीति जैनो मुनिः ।। १ ।।

*   *   *

गरिमजितगिरीन्द्रः कर्मरम्भा करीन्द्रः,
सुगुणनत नरेन्द्रश्रितुस्ववत् किन्नरेन्द्रः ।
शिवसरणिगतीन्द्रः सद्गुणाश्चन्मतीन्द्रः,
स जयति भुवि जैनाचार्यवर्यो यतीन्द्रः ।। १ ।।

—पं० श्यामसुन्दर शास्त्री ।

(१०)

सटीका

जिनमतजनता-सुजातमानो,
यम-नियमादिगुणैर्विराजमानः ।
मुनिजनमनसि सुधासमानो,
जय 'सुयतीन्द्र यतीन्द्र !' वन्द्यमानः ।। १ ।।

जिनस्य = वीतरागस्य, मते = धर्मे, या जनता = जनसमूहस्तस्मिन्, सुष्ठ्वधिकं जातं मानं, = प्रतिष्ठा यस्य स । यमश्च, नियमश्च तावादिर्येषां ते, ते च ते गुणास्तैर्विराजमानः = सुशोभित । कायेन = तन्मात्रेण क्रियमाणं प्रतिक्रमण-कायोत्सर्गादिकं यमः, बाह्यसाधनापेक्ष कर्म नियम, प्रतिलेखनादि । वा-इन्द्रियाणां दमन यम, संयमः इत्यर्थः । इयन्तं कालमेतदेव कर्तव्यमिति स्वीकृतिरूपो नियम । मुनय एव जनास्तेषां मनसि हृदये, सुधया = पीयूषेण, समानस्तुल्य, अतएव वन्द्यते = स्तूयते, जनैरिति शेष । सुष्ठु-यतयः = संयमिनस्तेषां इन्द्र = श्रेष्ठोऽधिपतिः स चाऽसौ 'यतीन्द्र' एतन्नामको सूरिस्तत्सम्बुद्धौ, ईदृशस्त्वं जय = सर्वत. उत्कर्षेण वर्तस्व ।।१।।

गुणिगण-गणनाऽग्रगण्यमानः,
शिव-पदवी-पदवी-प्रवर्तमानः ।
भवि-भवभव-भीतिभज्यमानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र ! वन्द्यमानः ।। २ ।।

गुणिनां = गुणवतां, गण = समूहस्तस्य, गणनायां = संख्यानकाले, अग्रे आद्यो गण्यते यः सः। शिवस्य = मोक्षस्य, या पदवी = सरणिस्तस्या मोक्षमार्गस्येत्यर्थः। पदव्यां = पथि, प्रवर्त्तमानस्तिष्ठन्। भवो जन्म विद्यते येषां ते, तेषां भवे भवे = प्रतिभवं या भीतिर्जननमरणक्लेशरूपा सा भज्यते = नाश्यते येन सः। अतएव वन्द्यमान. = जनैः स्तूयमान, हे सुयतीन्द्र = विजययतीन्द्रसूरे! त्वं जय ॥२॥

अविरत-सुतपस्तपस्यमानः,
शम-दम-शीलगुणैश्च शोभमानः।
जगति जडजनान् विबोधमानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र! वन्द्यमानः ॥ ३ ॥

हे सुयतीन्द्र = सुश्रमणपते-यतीन्द्रसूरे! त्वं जय = सर्वोत्कृष्टो भव। कीदृशोऽसि, अविरतम् = अनवरत सुष्ठ तपस्तपस्यां तपस्यसे इति स। च = पुन शमश्च दमश्च शीलश्च ते, त एव गुणास्तैः शोभस इति सः। जगति = संसारे, जडा = अज्ञा धर्मतत्त्वमजानन्तो ये जनाः = लोकस्तान् विबोधसि = बोधं ददामीति सः ॥३॥

अनुपमतनुदीप्ति-दीप्यमानो,
जिनतति-शासित-शासने सुमानः।
कविरिव कविसङ्घसेव्यमानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र! वन्द्यमानः ॥ ४ ॥

अनुपमा = लोकोत्तरा, या तनोः = शरीरस्य, दीप्तिस्तेजस्तया दीप्यते, = शोभत इति सः। जिनतत्या = जिनचतुर्विंशत्या, (सु)शासिते = सुरक्षिते, शासने = सम्प्रदाये, सुष्ठु मानं यस्य सः। कविरुशनेव, कवीनां सङ्घेन = समूहेनसेव्यते = श्रीयत इति सः। अतएव वन्द्यते = स्तूयते लोकैरिति शेषः। ईदृशः, हे सुयतीन्द्र = यतीन्द्रसूरे! त्वं जय = सर्वोत्कर्षतया वर्तस्व ॥४॥

जन-जनन-मृतिविदार्यमाणः,
सतत-सुदुर्द्धर-वीर्यधार्यमाणः।
मतिमदतिनतो गताऽभिमानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र! वन्द्यमानः ॥ ५ ॥

जनानां = जीवानां, जननं = जन्म, मृतिर्मरणं च विदार्यमाणः = दलेते येन स। सततं = सर्वदा, सुदुर्द्धरमितरैर्धर्तुमशक्यं वाऽशक्य वीर्यं = शक्ति, धार्यते = ध्रियते येन स। मतिर्बुद्धिः सदसद्विवेकरूपा येषां ते, तैरतिशयेन नत. = नमस्कृत। गतं = नष्टम् अभिमानं यस्य स.। ईदृक् त्वं सुयतीन्द्र = यतीन्द्रसूरे! मुनिपुङ्गव! जय ॥५॥

जगदुदधि—सुजीवतार्यमाणः,
सकल-सदागम-मर्म-पार्यमाणः ।
मदगदरहित. प्रधी प्रधानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र ! वन्द्यमानः ॥ ६ ॥

जगदुदधेः = संसारसागरात् सुजीवास्तार्यन्ते येन सः । सकलानां = समस्तानां सदागमानां यानि मर्माणि = साराणि तेषां पारं गतवानिति स । समस्तागमपारदृश्वः इति । मद एव गदो रोगस्तेन रहितः । प्रकृष्टा धीर्येषां तेषु प्रधानोऽग्रयश्च, शे प्राग्वत् ॥६॥

तपन इव विभाविभासमानो,
जनकमलौघमुदाविकास्यमानः ।
अखिल—खल—खलत्वहीयमानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र ! वन्द्यमानः ॥ ७ ॥

तपनः = सूर्य इव विभया = कान्त्या विभासत इति सः । विभासतेः-कर्तरि लट', शानच् । जना एव कमलानि तेषामोघः = समूहस्तस्य मुद्धर्षः-आ समन्तात् कासत इति तथा । अखिलेषु = सकलेषु 'खलस्य' खलत्वं = दौर्जन्य हीयमानं = त्यज्यमानं येन स. । शेषं प्राग्वत् ॥७॥

कलिमलिनमलं बलादलं यो,
दलतितरां मुनिमण्डलाऽग्र्यमाणः ।
अपरपरनरे सदा समानो,
जय सुयतीन्द्र-यतीन्द्र ! वन्द्यमानः ॥ ८ ॥

कलेः = कलियुगस्य, मलिनं = मलिनकारी, यन्मलं = पापं तद्, बलाद्धठाद् अलमत्यर्थं योऽतिशयेन दलति = हिनस्ति सः । मुनीनां मण्डले, अग्र्यं श्रेष्ठं मानं यस्य सः । अपरोऽद्वेष्टा, मित्रमिति भावः । परः शत्रुः सचासौ नरस्तस्मिन्, सदा = सर्वदा समान, उभावपि समौ पश्यन्नित्यर्थः । अवशिष्टं सुगमम् ॥८॥

स्तुतिरिह रचिता सुपुष्पिताग्रा,
पदरुचिरा च यतीन्द्रसूरिकाणाम् ।
भवतु सुफलदा सदा तदेषा,
द्युतरुलतेव फला सुपुष्पिताग्रा ॥ ९ ॥

इह = संसारे यतीन्द्रसूरिकाणाम् = श्रीमद्विजययतीन्द्रसूरीश्वराणाम् । सुष्ठु = सुन्दराणि पुष्पिताग्राऽऽख्या वृत्तानि यस्यां सा । पदैरुचिरा = सुन्दरा स्तुतिः, रचिता = कृता मयेति शेषः । सा चाऽसावेषा तद्वेषा, सदा = सर्वदा, सुफलदा = मनोभीष्टफलदायिनी भवतु । फलानि सन्त्यस्यामिति विग्रहे मत्वर्थीयेऽचि फला = फलवती, सुपुष्पितमग्रं यस्याः सा । ध्रुवतरुलता = कल्पलतेव ।

—पं० व्रजनाथ-शास्त्री, धगजरी ।

(११)

पञ्चचामरच्छन्दः

कलानिधानवन्धुरं धुरन्धरं निमज्जतां,
भवोदधाववाप्य भारतीं शिशावनर्गलाम् ।
दिनेशवद् विराजितं जगत्त्रयेऽपराजितं,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ १ ॥

कुशेशयं यथोपयान्ति षट्पदास्तथैव यं,
श्रयन्ति भावुका मुदा वचोविलासलोलुपाः ।
कुतोऽपि नाऽऽत्मनीनमाश्रयं प्रपद्य सादरं,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ २ ॥

समस्तमानसान्धकारमाशु संप्रलीयते,
यदीय देशनादिनेश दीपितेऽनिशं भृशम् ।
जगन्ति मोदमावहन्ति हन्यते च किल्बिषं,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ३ ॥

कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदीनदैन्यकं,
जिनोक्तधर्मधारणाज्जितोरुकामसैन्यकम् ।
अगण्यपुण्यसञ्चयाज्जनैरतः प्रपूजितम्,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ४ ॥

अनेकजीर्णशीर्णतीर्थमन्दिरस्य कारिता,
समुद्धृतिर्द्रुतञ्च येन मानवस्य वारिता ।
अधोगतिः सतां मतं मुमुक्षुभिश्च वन्दितं,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ५ ॥

अतिष्ठिपत्सुबिम्बमर्हतामनेकमर्हतां,
चिरागतप्रभूतकर्मकर्तने पटीयसाम् ।
व्रतोपधानकर्मकारितञ्च येन भूरिशो,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ६ ॥
अजेयकामकोपलोभमोहमत्सरानरीं,
सुहेलया विजित्य शेमुषीमिवाप्य सत्तरिम् ।
ततार योऽतिदुस्तरं भवं तमानतोऽहकं,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ७ ॥
गुरो ! गुणैर्गरिष्ठतावकीनकीर्त्तिकीर्तना-
दियत्तया न संहृतं वचस्त्वशक्तितो मया ।
तथापि तत्त्वेप्सितं पदं सुनाम संरटन्,
भजे यतीन्द्रसूरिणं सुसूरिचक्रवर्त्तिनम् ॥ ८ ॥

शार्दूलविक्रीडितछन्दः

यः प्रातःस्मरणीयतामुपगतो राजेन्द्रसूरीश्वर-
स्तच्छिष्यप्रवरस्य सूरिनृपतेः श्रीमद्यतीन्द्रप्रभोः ।
पादाम्भोरुहचञ्चरीकसदृशं श्रीवल्लभेनाष्टकं,
देयाच्छं मुनिना कृतं सुपठतां नृणामदः सन्ततम् ॥

मुनि श्रीवल्लभविजयजी ।

(१२)

वसन्ततिलकाछन्दः

श्रीधौलपत्तनवरे व्रजलाल इभ्य-
श्चम्पाऽभिधा च ललनाऽजनि तस्य पुत्रः ।
द्योवेदनन्दविधुगे शुचिरामरत्न-
स्तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ १ ॥
राजेन्द्रसूरिसुगुरोरुपदेशमाप्य,
श्रीखाचरौदनगरे रुचिरोत्सवेन ।

दीक्षां ललौ गतिशराङ्कधरासुवर्षे,
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥२॥
साधुक्रिया च समधीत्य जवात्सुबुद्धया,
लेभेऽपरां पुनरयं महतीं सुदीक्षाम् ।
आहोरमध्य इषुपञ्चनवाचलाब्दे,
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ३ ॥
काव्यादिजैनवचनस्फुटशब्दशास्त्रे,
सम्यग् विबोधकरणे सुमतिश्च यस्य ।
व्याख्यानपद्धतिवराखिलबोधदात्री,
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ४ ॥
सद्वाचकेतिसमुपाधिविभूषितात्मा,
देशेतरे विचरणे प्रियतास्ति यस्य ।
श्रीलक्ष्मणी ह्यजनि पद्मजिनस्य तीर्थः
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ५ ॥
संघेन सार्द्धममुना बहुतीर्थयात्रा,
भद्रेश्वरस्य विहिता विमलाचलस्य ।
प्रीत्या पुनर्विकटजैसलमेरुकस्य,
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ६ ॥
अन्योपकारकरणार्थमनेन भूरि-
शास्त्राणि मञ्जुलतराणि विनिर्मितानि ।
ख्यातानि तानि च बहून्यपि मुद्रितानि,
तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ७ ॥
उद्यापनादिसुकृतानि बहून्यभूवन्,
यस्योपदेशमनुसृत्य तथा प्रतिष्ठाः ।
शिष्यावलिश्च शुभधर्मपथप्रवृद्धि—
स्तं सज्जना हि सुनमन्ति यतीन्द्रसूरिम् ॥ ८ ॥
पञ्चाद्धाङ्कधराब्दकेऽतिसुमहे, राधे सिताशातिथौ,
यं सूरिं सकलोऽन्यसंघसहितश्चाऽऽहोरसंघो व्यधात् ।

भक्त्यैतस्य जनो हि योऽष्टकमदो नित्यं मुदा सम्पठेत्,
सर्व्वर्द्धिस्तमियाद् गुलाबविजयो वक्तिस्फुटं वाचकः ॥६॥

—उपाध्याय मुनि श्रीगुलाबविजयजी।

(१३)

उपेद्रवज्रा-छन्दः

यश पताका चिहुँ ओर छाई, प्रभात मानो? जिसने दिखाई।
अशेष अज्ञान विनाशकारी, यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ १ ॥
महागुणालंकृत पुण्यशाली, मुनीन्द्र हैं ज्ञान-प्रभा निराली।
प्रमोदकारी विभु-ध्यानधारी, यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ २ ॥

स्वदेश में औ परदेश में भी,
सुकीर्त्ति फैली जनवृन्द में भी।
महाप्रतापी यश-धामधारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ३ ॥

सुकाव्य औ व्याकरणादि-धारी,
सुबोध-शैली अतिमुग्ध—कारी।
दयार्द्र हो नाथ! परोपकारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ४ ॥

मनीषि गाते गुण हैं जिन्हों का,
सदा सुखी जीवन हैं उन्हों का।
सदा मनोवृत्ति अहो! सुचारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ५ ॥

दिखा जनों को शुभ नीति प्यारी,
लगा रहे मानसवृत्ति सारी।
जिनेन्द्र-संदेश सदा पुकारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ६ ॥

न कोप मूर्छा मद मान जानो,
न दंभ माया अरु लोभ मानो।

मनोज्ञ वाणी मृदु मिष्टकारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ७ ॥
कुपन्थ मिथ्यात्व-स्वरूप टारी,
महीजनों के मनमोदकारी।
महान् चारित्र सहर्ष-धारी,
यतीन्द्रसूरीश्वर ब्रह्मचारी ॥ ८ ॥

द्रुतविलम्बितछन्द—

यह गुणाष्टक गान यतीन्द्र का,
सतत संपत्तिकार मुनीन्द्र का।
मनुज जो पढ़ता अति प्रेम से,
वह लहे फल वल्लभ नेम से ॥ ९ ॥

—मुनि श्रीवल्लभविजयजी।

(१४)

त्रिंशन्मात्रिक-चौपइया छन्दः

जय जग-हितकारी, हो यशधारी, अद्भुत् रूप निहारी।
सूरिगुणालंकृत, धर्मधरा धृत, दिनकर विश्वविहारी॥
करते हैं जागृत, उपदेशामृत से निशदिन नर-नारी।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ १ ॥
हैं शासननायक, संयमपालक जैनागम दिलधारी।
निरख-निरख भू पर चलते पग धर, इरियासमिति निहारी॥
शम-दम-गुण-धारी, कर्मविदारी, हरते संशय भारी।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ २ ॥
क्रोध, लोभ नहीं है, मान नहीं है, मायाकपटनिवारी।
कूटवचन त्यागी, शिवपुररागी जीवदया नित धारी॥

परवस्तु नहीं लेते, नहीं स्त्री सेते, परिग्रह सब ही टारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ ३ ॥

भवि-मधुकर आकर, गुण-रस पाकर, लख शुभ संयम-क्यारी ।
चित्त प्रफुल्लित कर, समकित को धर संसृति का दुःखवारी ॥
इन्द्रियगण गोपी, विकथा लोपी, करते तप जयकारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ ४ ॥

विमलाचल गिरिवर, तीर्थ भद्रेश्वर, जैसलमेरुविहारी ।
श्रीलक्ष्मणी, मांडव, मक्षी, भाँडव, रैवतगिरि मनुहारी ॥
आबु, तारंगा, है अति चंगा, श्रीधुलेव जुहारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञान गुणागर, आबालब्रह्मचारी ॥ ५ ॥

उपधानोद्यापन, तपसोपासन, प्रतिष्ठादि करि सारी ।
जिनशासन उन्नति, फिर-फिर करि अति, परम आनंदकारी ॥
ग्रन्थावली गुम्फित, हर्षित पण्डित, होते लख-लख प्यारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर आबाल ब्रह्मचारी ॥ ६ ॥

है जन्म धवलपुर, चंपा मातर, सद्गुणी शीलाचारी ।
है व्रजलाल पिता, सद्गुणाङ्किता, श्रावकव्रत नित धारी ॥
दुलिचन्द किशोरी, गंगा जोरी, भगिनी रमाकुमारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ ७ ॥

गुरु राजेन्द्रसूरि, सद्गुणी भूरि, योगीश्वर उपकारी ।
खाचरौद दीक्षा, पाई शिक्षा, वृहत् आहोर धारी ॥
वाचकपदभूषित, मनकलि विकसित, संघ जावरा भारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ ८ ॥

सकल संघ मिलकर आहोर नगर उत्सव किया विचारी ।
आचार्य दिया पद, संघ हुआ मुद, जय-जय ध्वनी उच्चारी ॥
सौधर्मगच्छपति, प्रसरो यशतति, जयवन्त रहो भारी ।
यतीन्द्रसूरीश्वर, ज्ञानगुणागर, आबाल ब्रह्मचारी ॥ ९ ॥

—मुनि श्रीसागरानन्द विजयजी ।

(१५)

गुरु-कीर्तन

जरीहर्ति जाड्यं जनानामजस्रम्,
चरीकर्ति यद्दर्शनं पापपुञ्जम् ।
दरीदर्ति मिथ्यात्विता तत्क्षणं यत्,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ १ ॥

नरीनर्ति यद्दर्शनान् मानवाली,
पयोदागमे शोभना पिच्छशाली ।
दिनेशोदये षट्पदालीव भूयः,
सजीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ २ ॥

परीपर्ति पीयूषतुल्यैर्वचोभि—
र्जनानामभीष्टं द्रुत यः समग्रम् ।
सरीसर्ति लोकोपकाराय भूमौ,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ ३ ॥

जरीगर्दि यस्यामला देशना यः,
तरीतर्ति काम भवाब्धिं जनः सः ।
वरीवर्ति तस्यागमेनैव भूय,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ ४ ॥

यदीयैर्गुणैरर्जितैर्भव्य वर्गै-,
स्तुवद्भिर्यदीयं कला कौशल च ।
दिगन्तेऽपि यत्कीर्त्तिरातन्यते च,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ ५ ॥

चरीक्लृप्यते यो विपक्षेऽपि शश्वत,
सभाया जितो सूरिभो वादकस्य ।
अरियेन नीतः स्वपक्षेऽपि दक्ष,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ ६ ॥

यमालोक्य-सन्तो विकासं भजन्ते,
सम दुर्धियो दिग्विभाग श्रयन्ते ।

सुशान्तश्च दान्तश्च धन्यो वदान्यः,
स जीयाद् यतीन्द्रः सदाचार्यवर्यः ॥ ७ ॥
सकलागमपारगतस्य यदि,
प्रपठेदिदमष्टकमच्छमति ।
विजयादि यतीन्द्र-यतीन्द्रगुरोः,
स च याति बृहस्पतितां झटिति ॥ ८ ॥

—पं० अवधकिशोरजी मिश्र
व्याकरणाचार्य मैथिल

(१६)

(राग-कल्याण ध्रुपद)

भजत भजत भो जनाः !, श्रीयतीन्द्रसूरिम् ।
नमत नमत भो नराः ! श्रीयतीन्द्रसूरिम् ॥ १ ॥
विगतमोहवीतरागविश्ववन्द्यमानं,
धनभृतैर्धराधिपैः सदा हि ध्यायमानं ।
प्रणतशीलपापहारिणं श्रीयतीन्द्रसूरिम् ॥ भ० ॥ २ ॥
श्रुतिमधुरमञ्जुलैः पदैर्युतां सुवाणी,
वदनकमलधारिणं सुपूज्यवन्द्यपादं ।
वचनसुमनभूषितं च श्रीयतीन्द्रसूरिम् ॥ भ० ॥ ३ ॥
शोक-मोह-भोग-रोग-नाशिनं यतीशं,
सुकृतकृत्यसंरतं महान्तकं मुनीशं ।
गुणगणैः गुरूपमं हि श्रीयतीन्द्रसूरिम् ॥ भ० ॥ ४ ॥
सर्वशास्त्रसारहारभूषिताङ्गभव्य,
तरुण-अरुण-तेजसा युतं तथा हि नव्यं
लसितललितकमललोचनं यतीन्द्रसूरिम् ॥ भ० ॥ ५ ॥
सत्यस्नेहसत्पदैः स्तवैर्हि स्तूयमानं,
भवपरैर्विरक्तयोगिभिश्च ध्यायमानं ।
मदनवदनकान्तिधारिणं यतीन्द्रसूरिम् ॥ भ० ॥ ६ ॥

पं० मदनलाल जोशी, व्या० शास्त्री, दशपुर (मालवस्थः)

क्षमापनस्तोत्रम्

संसारसागरनिमज्जनकर्णधारिन् !,
कारुण्यपूर्णकृतकार्यसुकान्तकाय !! ।
श्रीमद्यतीन्द्रमुनिपादिसुशोभिताख्य,
सर्वं क्षमस्व कृपया विहिताऽपराधम् ॥ १ ॥

श्रीजैनशास्त्रसरसो ननु पारगामिन् !,
नृणां भवेरतहृदां कलुषापहारिन् !
भक्तान् सुबोधमनुजान् ह्युपदेशदातः ! ,
सर्वं क्षमस्व कृपया विहिताऽपराधम् ॥ २ ॥

शिष्यैः सुचित्तविभवैः परिसेव्यमान ! ,
सुश्रावकैः सहृदयैः परिपूज्यमान !! ।
देदीप्यमानतनुभिः परिपूतकाय !!!,
सर्वं क्षमस्व कृपया विहिताऽपराधम् ॥ ३ ॥

व्याख्यानवारिधिमहोदयसूरिवर्य्य ! ,
भूपेन्द्रपट्टसमलंकृत-पादपीठ !! ।
राजेन्द्रसूरिगुरुवर्य्यसुशिष्यश्रीमन् ! ,
सर्वं क्षमस्व कृपया विहिताऽपराधम् ॥ ४ ॥

स्तोत्रञ्च सादरमदो हि क्षमापनस्य,
श्रीमत्कृपेपि मदनेन विनिर्म्मितं यत् ।
स्वीकृत्य तच्च कृपया मुनिराड्-यतीन्द्र !,
सर्वं क्षमस्व विहितं ननु मेऽपराधम् ॥ ५ ॥

—क्षमाप्रार्थी मदनलाल जोशी ।

(१७)

शार्दूलविक्रीडितं छन्दः

यस्याऽऽस्ये शरदिन्दुसुन्दरतरे वाणी नरीनृत्यते,
वादीन्द्रानपि सञ्जतानधिसभ युक्त्या जयन्ती सपान ।
विद्वद्वृन्दमनःसुतोपजननी संछेदिनी सन्मयान्[1],
विद्याढ्यं तमुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ १ ॥

1. यस्मान्मयतान्यर्येण पट्टग. सातुग्वन्, धान्ययोन्नयता[illegible] [illegible]

द्राक्षापाकसमानतामुपगता यद्देशनाऽत्यद्भुता,
वर्षन्ति वचनामृतं सुमधुरं धर्म्यं पयोवाहवत् ।
सद्युक्तिः श्रुतिसेविताऽपरिमिता पापापहारक्षमा,
विद्याढ्यं समुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ २ ॥

सर्वाङ्गे कमनीयतां विदधतं सौन्दर्यरत्नाकरम्,
भास्वन्तं गुरुतेजसा सुयशसा प्रद्योति नाशं परम् ।
साक्षात्काममिवापरं विजयिनं लोकानुकम्पाकरं,
विद्याढ्यं तमुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ ३ ॥

यावज्जीवसुसंयमव्रतपरं षट्शास्त्रचर्चाकरं,
श्रामण्याऽखिलसद्गुणातुलमहारत्नश्रिया मण्डितम् ।
निर्धूताखिलकर्मसन्ततिभरं वैज्ञानिकानां वरं,
विद्याढ्यं तमुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ ४ ॥

क्षान्तिर्यस्य महीयसी भुवितले विभ्राजते शाश्वती,
हेतौ सत्यपि जायते नहि मनाक् कोपोद्भवो जातुचित् ।
धन्यं धन्यजनैः प्रशस्यमतुलं सत्कीर्त्तिमन्तं विभुं,
विद्याढ्यं तमुपास्महे सिवजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ ५ ॥

धैर्यंयत्रवरीवृतीतिसततंलोकोत्तरंसद्गुरौ,
चित्तक्षोभकरेषु सत्स्वपि मनो नायाति चाञ्चल्यताम् ।
ध्यानारूढमना विपश्यति सदा स्वात्मानमेवाचलं,
विद्याढ्यं तमुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम ॥ ६ ॥

विश्वेषामतिमण्डनंसुमनसांचित्ताम्बुजोल्लासनं,
भव्याभव्यजनप्रबोधपटुतोद्भूताच्छकीर्त्तिव्रजम् ।
दीनानाथजनोपकारकुशलंव्याख्यानवाचस्पतिम्,
विद्याढ्यंतमुपास्महेसविजयंश्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ ७ ॥

भास्वद्भासुरसद्गुणाकरजगत्पोपूज्यमानस्फुर-
च्छ्रीमद्गौरवपादपद्मयुगलध्यानप्रसन्नात्मनाम् ।
युक्त्याखण्डयतामनल्पकुधियांवाचः सभायां विदां,
विद्याढ्यंतमुपास्महे सविजयं श्रीमद्यतीन्द्राभिधम् ॥ ८ ॥

श्रीमद्यतीन्द्रविजयप्रमुसद्गुरूणां,
स्याद्वादपद्मपरिबोधनभास्कराणाम् ।
विद्याविवेकवरशिष्यगणैःप्रयुक्त—
श्चक्रेऽष्टकंमश्रुतिसुखं व्रजनाथमिश्रः ॥ ९ ॥

—पं० व्रजनाथ मिश्र शास्त्री ।

(१८)

यतीन्द्र-गरिमा

यो वेदान्ते तरुणतिमिरद्वैत-ध्वसप्रचण्डः,
कार्याकार्यकलनकरणनीतदक्षावतारः ।
धर्माधर्माचरणचलननीतधर्मावतारः,
श्रीसूरीशो विबुधजलजोद्दीपकः श्रीयतीन्द्रः ॥ १ ॥
यो विद्याब्धिविगूढमन्थनलभच्छ्रीशब्दरत्नोऽधुना,
व्याख्यानामृतपायनेन मृतकान्मूर्खान् मुहुर्जीवयन् ।
कारुण्याम्बुविसेचनैर्भुवि बुधान् संमोदयन् सत्वरं,
कं कं रुद्धजनं न रक्षति महाकारुण्यपूर्णो भवान् ॥ २ ॥
लोकस्यान्तगतान्धकारतपनः कान्त्या (च) स्वर्णोपमो,
दारैश्वर्यपराङ्मुखो मतिमतामग्रेसरः केसरी ।
धर्माचारसुचारुकारणचयैः कालान्मुहुर्यापयन्,
सूरीशो जयतेऽधुना च नितरां श्रीमान् यतीन्द्रो यतिः ॥ ३ ॥
यतीशः संयमी नित्यं, बुधान् सन्तोषयन् सुधीः ।
वार्तासुधाप्रदानेन, सर्वान् साधून् (हि) मोमुदीत ! ॥ ४ ॥
शिष्ये खलु कृपादृष्टिः, गुरुभक्तिश्च वर्तते ।
सोऽयं यतीन्द्रसूरिर्हि, राजतां धर्मगो बुधः ॥ ५ ॥
गाम्भीर्ये सरितांपतिं परिजयन् धैर्ये जयन्मेदिनीं,
औदार्येऽन्नमहीपतिं परिजयन् कीर्त्या सुधांशुं जयन् ।
पुण्यैर्धर्मसुतं जयन् सुरगुरुं वाचा तु विस्मापयन्,
भक्तिं श्रीचरणे दधं (श्च) नितरां श्रीमान् दयावारिधिः ॥ ६ ॥

कन्दर्पं दमयन् रिपून् विदलयन् विद्याविनोदैर्निजैः,
सन्तोषं जनयन् बुधेष्वतितरां प्रासादमासादयन् ।
शिष्ये स्नेहवचो ब्रुवन्नतितरां दुखं बुधानां हरन्,
श्री श्रीमान् (सु) यतीन्द्रसूरिविबुधो विद्यावतामग्रगः ॥ ७ ॥
श्रद्धा श्रेष्ठजने दया बुधजने भक्तिः जिने जायतां,
स्नेहः शिष्यजने जयो रिपुजने धर्मश्च ते वर्धताम् ।
शिष्यस्याततनियोगपालनपरो विद्यावृतो जायतां,
श्रीमच्चन्द्रकलासु धवलितयशोराशिः शुभाभासताम् ॥ ८ ॥
एवं विद्यावयोवृद्धं, श्रीयतीन्द्रं पुनः पुनः
नमामि भक्तिभावेन, पायान्मां सततं नुतः ॥ ९ ॥

—पं० विश्वेश्वरनाथ वैयाकरण तर्क-काव्य-भूषण ।

(१९)

गुरुवर

यतीनां राजानो जिनरचितमार्गानुसरणाः
कृपापारावारा जिनसमुदयावाप्तिविषयाः ।
विजेतारः पीताम्बरधरमुनीनां सुमहसा,
स्वतंत्रा जीयासुर्गणधरमनीषा इव पराः ॥ १ ॥
श्रीमान् धर्म्मधुरन्धरो धृतियुतो विद्वज्जनैस्सेवितो,
निर्दर्पः सुविनायको गणधरो विख्यातकीर्तिः क्षितौ ।
श्रद्धानां प्रियकारकोऽस्ति महतां विद्यानिधेर्वारिधिः,
दिव्याच्छ्रीमुनिराजराजमुकुटो श्रीमान् यतीन्द्रोगुरुः ॥२॥
व्याख्यानवाचस्पतिरेव धीरः,
गम्भीरतावार्धिरिवापरश्च ।
राद्धान्ततत्त्वार्थनिषण्णमेधो,
जीयाद् मुनीन्द्रप्रवरो यतीन्द्रः ॥ ३ ॥
राजेन्द्रसूरीश्वर एव विद्वान्,
गुरुर्दयालुः परमार्थबुद्धिः ।

आराधितो येन मुनीश्वरेण,
भक्त्या महत्या परित्यक्तकामः ॥ ४ ॥
ज्ञाने परः कोविदहेमचन्द्रः,
उदारचेता महनीयकीर्तिः ।
गृहीतकार्यं न जहाति कामम्,
उद्योगशाली जयताद् यतीन्द्रः ॥ ५ ॥
आह्लादने चन्द्रमसो हि शोभां,
धत्ते कृपालुर्जनतापहर्त्ता ।
समाधिनिष्ठः पुरुषार्थहस्तः
गुरोः कृपातो जयताद् यतीन्द्रः ॥ ६ ॥
कार्यान्तरं शिक्षणपारदृश्वा,
गुरोश्च वाक्यानि वहत्यजस्रम् ।
क्रोधादिजेता जगदद्वितीय—
धाराप्रवाही वचने यतीन्द्रः ॥ ७ ॥
गृहीतविद्याविजयः सुशिष्यः,
समस्तलोकोपकरिष्णुरेषः ।
सामान् हि वेदान् गमयन् हि कुक्षौ,
सुखेन तस्थौ मुनिराड् यतीन्द्रः ॥ ८ ॥
इदं हि पद्यमष्टकं कृतं मयाल्पबुद्धिना,
विशोध्य सूरयस्ततो गुणान् विभाव्य सन्ततम् ।
भणन्तु पण्डिता जनाः सभासु तान्सुपूजितान्,
व्रजन्तु सज्जनाः सुखं सुखालयं स्वकर्मणा ॥ ९ ॥

—पं० पन्नालाल शास्त्री-नागर, रतलाम (मालवा)

(२०६)

क्षमस्वापराधम्

विद्यानिधान, विदितागमतत्त्वज्ञान !
राराजते तव पुरः शुभकीर्त्ति-लक्ष्मीः ।

सौजन्यसागर, समाहित सत्यसिद्धे,
आचार्य हे विजयसूरियतीन्द्रदेव ॥ १ ॥
कल्याणकाय विजयप्रभ हे प्रदीप्त !
सौभाग्यसंयुतसुभूषितकान्तिकान्त !,
देवेन्द्रदेव जिनशासनपूर्णभक्त,
आचार्य हे विजयसूरियतीन्द्रदेव ! ॥ २ ॥
शान्तिः सदा वसति ते हृदि हे प्रणम्य,
साहित्यसाररसिकप्रतिभाप्रकाश !!
कारुण्यपूर्णकरुणावरुणालयेश !,
आचार्य हे विजयसूरियतीन्द्रदेव ! ॥ ३ ॥
सज्ज्ञानदानशुभकर्मणि हे जयन्त !
सम्प्रार्थयेऽहमयि देव ! दयानिधे हे !,
सर्वं क्षमस्व विहितं खलु मेऽपराधम्,
आचार्यवर्य्य ! विभुसूरियतीन्द्रदेव ! ॥ ४ ॥
मन्ये मया ह्यनुचितं विहितं च कर्म,
वाक्कायजं हृदयजं करपादजं वा ।
सर्वं क्षमस्व विहिताऽविहितापराधम्,
आचार्य हे विजयसूरियतीन्द्रदेव ! ॥ ५ ॥
क्षमात्मकमिदं स्तोत्रं, मदनेन विनिर्म्मितम् ।
स्वीकृत्य कृपया देव, क्षम्यतां विजितेन्द्रिय ! ॥ ६ ॥

—पं० मदनलाल जोशी, शास्त्री-साहित्यरत्न । दशपुर (मध्यभारत)

अगाधसंसारपतितजीवजन्तूनां समुद्धारक

जैनश्वेताम्बर-पूज्यपाद-भट्टारकश्रीम-

ज्जैनाचार्यवर्य-व्याख्यानवाचस्पति-

श्रीविजययतीन्द्रसूरीश्वराणां कर-

कमलयोः सादरं समर्पितेयं

हारबन्धः ।
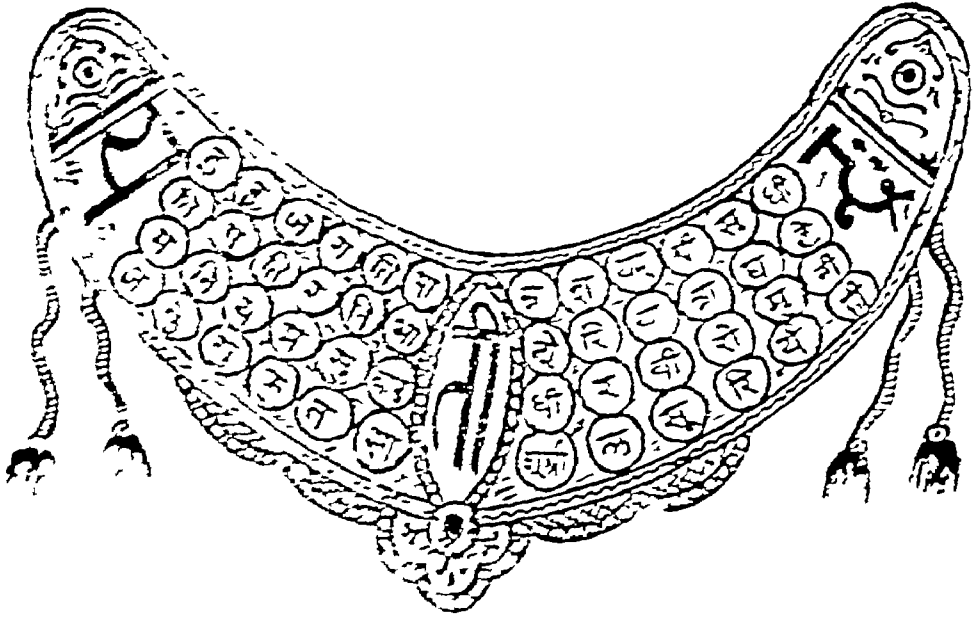
य इह जगति पातीन्नाशयन् श्रीसुधीन्द्रः,

यतिपतिरतिभातीन्दोरिवात्राघहेन्द्रः ।

यमनियमसुवार्त्ती धीरवीरो मुनीन्द्रः,

यजतु सुकृतसातीरश्रीलसूरिर्यतीन्द्रः ॥ १ ॥

पं० मदनलाल जोशी, व्या० शास्त्री, मन्दसौर (मालवस्थः)

योगीन्द्रयतिवर्य्याय, सत्यतत्वप्रकाशिने ।
आचार्य श्रीयतीन्द्राय, सन्त्वस्मन्नतयोऽनिशम् ॥ १ ॥

कलशबन्धस्तुतिः ।
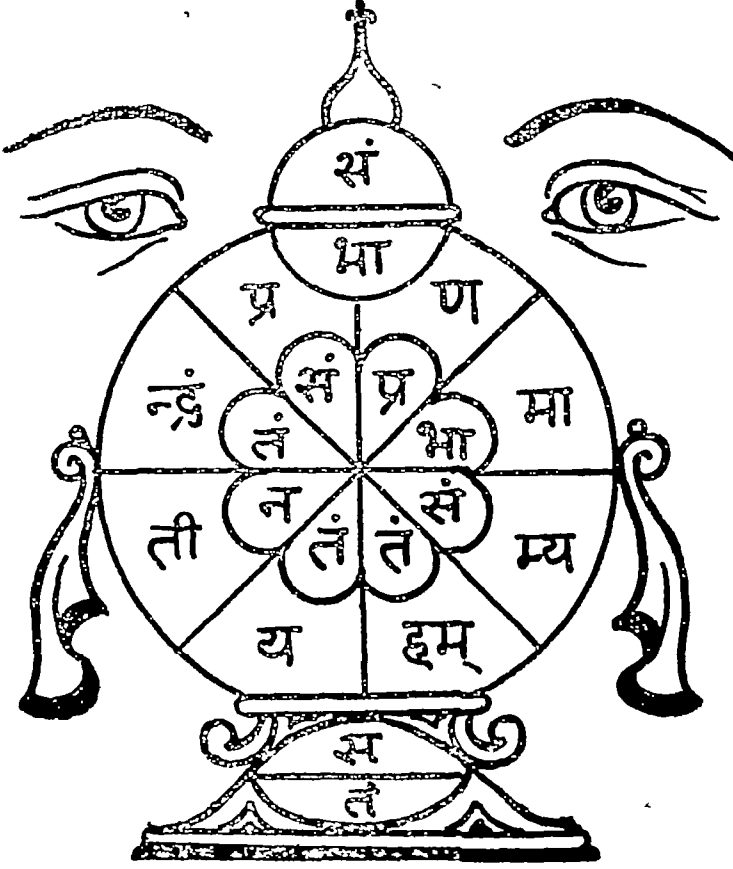
तं सतं संप्रभासन्तं, संभासन्तं नतं सतम् ।
तं नतं संप्रभासन्तं, यतीन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

—पं० मदनलाल जोशी व्या० शास्त्री, मु० दशपुर (मालवस्थः)